RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837
DOI - REF. No. IIJIF241001

Indian Journal of Social Concerns

इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

Volume -15 Issue -71 May. - June. 2026 Ghaziabad

(कला–मानविकी–समाजविज्ञान–जनसंचार–विधि–वाणिज्य–विज्ञान, वैचारिकी की अंतरराष्ट्रीय द्विमासिक शोध पत्रिका)

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)

Journal Impact Factor No. : 8.01

Editor
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

Editor in Chief
Dr. HARI SHARAN VERMA

Asstt. Editor
Dr. MUKTA SONI

Sub Editor
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

Art Editor
Dr. MANISHA VERMA

Managing Editor
Dr. SANGEETA VERMA

Legal Advisor
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

Joint Editor
Dr. PRIYANKA SINGH
Dr. SUBHASH SAINI

Office Assistant
JITENDER GIRDHAR

Computer Operator
MS. NEHA VERMA

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard



Dr. Hari Sharan Verma
D.Litt
Editor in Chief



Dr. Raj Narayan Shukhla
Editor



Dr. Sangeeta Verma
Managing Editor

नोटः 1. प्रकाशित आलेखों के विचारों से सम्पादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
2. सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।
3. शोध–पत्रिका से सम्बन्धित सभी विवाद केवल गाजियाबाद/फरीदाबाद न्यायालय के अधीन होंगे।

**मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित**

प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
दूरभाष : 9910777969
E-mail : *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM
सहयोग राशि (भारत में)
(व्यक्तिगत) (आजीवन 5100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 7100 रुपये)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।
बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

संपादकीय कार्यालय :

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)121006
harisharanverma1@gmail.com 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

क्षेत्रीय सम्पादक

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन – 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P. o. Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर,कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. **Dr. Vimla Devi,** Asst. Professor (History) M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand) G-mail address. drvimla2015@gmail
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 ऊषा रानी,हिन्दी–विभाग हिमाचल प्रदेशविश्वविद्यालय, शिमला
9. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट –744103 साउथ अंडमान
10. डॉ0 राजपाल, सहायक प्रो0 राजकिय स्नातकोत्रर महाविद्यालय,हिसार
11. डॉ0 प्रवेश कुमारी, सहायक प्रो0 (हिन्दी –विभाग), बाबा मस्तराथ, विश्वविद्यालय, रोहतक, (हरियाणा)
12. **डॉ०निर्भय शर्मा**, असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी) ,संघटक राजकीय महाविद्यालय भदपुरा, नवाबगंज, एम०जे०पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली (उ०प्र०) पिन कोड – 262406. Mobile No: 9634160016 Email: dr.nirbhaysharma@gmail.com

संरक्षक मण्डल :

1. **प्रो0 डॉ0 चक्रधार त्रिपाठी** पूर्व **कुलपति,** उड़ीसा केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कोरापुट, 763004, चलभाषाः 9437568809
2. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
3. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय. रोहतक)
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** पूर्व चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129
6. **डॉ0 तपन कुमार शण्डिल्य,**पूर्व **कुलपति,** डॉ0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय राँची, (झारखण्ड) 9431049871
7. **डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची – 834008 फोन : 09431595318
8. **सुदेश रावत** प्रांचार्या एस. एन. आर. जयराम महिला कॉलेज, लोहार माजरा, कुरूक्षेत्र हरियाणा 36119 (सेठ नारंग राय लोहिया जय राम महिला कॉलेज)
9. Sh. Butta Singh gill, PPS, Dy Superintendent of Police. No 409 ,Street no 7 Ghuman Nagar , Sarhind Road, Patiala Punjab -147001.

परामर्शदात्री समिति :

1. **डॉ0 विजयदत्त शर्मा, पूर्व निदेशक, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी पंचकूला(हरियाणा)**
2. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
3. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
4. **डॉ० माया मलिक,**पूर्वप्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
5. **डॉ० ममता सिहल,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर
6. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक

संपादकीय विशेषज्ञ समिति :
हिन्दी विभाग:

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ0 अनिता, सहायक प्रोफेसर**, (हिन्दी), श्री अरबिन्दो कालिज दिल्ली (सांध्य) मौ0 :8595718895
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ0 के0डी0 शर्मा,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त, सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

9. **डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग) गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलवल

10. **डॉ0 सुधा चौहान,** पूर्व अध्यक्षा हिन्दी विभाग, वैश्य कालिज, भिवानी

11. **डॉ० रूबी,** (सीनियर सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर

12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

13. **डॉ0 सुधा कुमारी** (हिन्दी विभाग) एन0जी0एफ0 डिग्री कालिज, उडदू, अध्ययन केन्द्र मथूरा रोड, पलवल 982719456

14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605

15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404

16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी

18. **प्रो० (डॉ0) वन्दना शर्मा, म. न. 2, प्रोफेसर लोंज, किचम सी. डी. एम.,मोदीनगर (उ.प्र.) 201204, मो0 2760411251**

19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** (प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)

20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** पूर्व प्रो0 एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)

21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा

22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद

23. **डॉ0 ममता कुमारी,** सहायक प्रो0, डी0 ए0वी0 शताब्दी महाविद्यालय, फरीदाबाद हरियाणा

24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक

25. **डॉ.सुनीता सिंह प्रोफेसर**, हिन्दी मानविकी संकाय, ओम स्टर्लिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा) 125001

26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

27. **डॉ0 राजपाल,** सहायक प्रो0 राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार

28. **डॉ0 प्रवेश कुमारी,** सहायक प्रो0 टिकाराम कन्या कॉलेज, सोनीपत, हरियाणा

29. **प्रो. प्रणव शास्त्री,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष–हिन्दी विभाग, उपाधि महाविद्यालय, पीलीभीत – 262 001 उ. प्र. मो.98379 60530 drpranav&pbt23@rediffmail-com

30. **प्रो. राखी उपाध्याय,** प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष – हिन्दी विभाग, डी. ए . वी. कॉलेज, देहरादून – 248 001 (उत्तराखंड) मो. 94111 90099 drrakhi.418@gmail-com

31. **डॉ0 सुनीता जसवाल,** असिस्टेंट प्रोफेसर – हिन्दी विभाग, हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला (हिमाचल प्रदेश) मो. 7018621542

32. **डॉ0 सुमन रानी**, सहायक प्रोफेसर, अस्थाई, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेषदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय पलवल हरियाणा मौ0 9050289680 sumanbhati808@gmail.com

33. **डॉ0 संगम वर्मा**, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महिला महाविद्यालय, सैक्टर 11,चण्डीगढ़ 9463603737,kavysavvy@yahoo.com

34. **डॉ0 प्रीति गुप्ता**, हिन्दी व्याख्याता GGSSS राम नगर न01 पहाड़गंज नई दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार) मौ0 8058138017 sweetpriti80@gmail.com

35. **संजय कुमार,** व्याख्याता, GBSSS करावल नगर,दिल्ली (शिक्षा निदेशालय दिल्ली सरकार)संपर्क– 8769406872 ई मेल sanjaydholpuria51@gmail.com

अंग्रेजी विभाग:

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ0 जे. के. शर्मा,** प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक
11. **डॉ0 राजाराम,** सहायक प्रोफेसर (अंगेजी) ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल, विष्वविद्यालय, हिसार (हरियाणा)

वाणिज्य विभाग:

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन**पूर्वरीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ. गीता गुप्ता,** (सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
6. **Dr,shaveta Kakkar** Associate professor in commerce Vaish Mahila Maha vidyalaya Rohtak

राजनीति शास्त्र विभाग:

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० राजेन्द्र शर्मा** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
4. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
5. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
6. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
7. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू
8. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, प. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
9. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

इतिहास विभाग:

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द
5. **डॉ0 रश्मि,** (अध्यक्षा) इतिहास विभाग, हिन्दू कन्या महाविद्यालय, जीन्द (हरियाणा) पिन – 126102

भूगोल विभाग:

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. **डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा**, एसोसिएट प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्लीएसोसिएट
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

गृह विज्ञान

1. **डॉ0 श्रीमती पंकज शर्मा,** (सहायक प्राफेसर), गृह विज्ञान (प्रसार शिक्षा) राजकिय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रोहतक

शारीरिक शिक्षा विभाग:

1. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
2. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
3. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram
4. **डॉ रामवीर सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा किशन लाल पब्लिक कॉलेज रेवाड़ी 123401 हरियाणा

समाज शास्त्र विभाग:

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

मनोविज्ञान विभाग:

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

अर्थशास्त्र विभाग:

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी. जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)

विधि विभाग:

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)
3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
6. **डॉ. राजेश हुड्डा,** सहायक प्रो०, विधि विभाग, बी.पी.एस. महिला विश्वविद्यालय, खानपुर कलां, सोनीपत
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

गणित विभाग:

1 **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर

2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरार गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ

3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

4. **Dr. Dhrub Kumar Singh.**HOD, Department of Mathematics, YBN University, Rajaulatu, Namkum, Ranchi, Jharkhand, India. Pin-834010

5. **डॉ रश्मि मिश्रा** प्रोफेसर (एप्लाइड साइंस एंड हमनीटीएस), मैथमेटिक्स गनेशी लाल बजाज इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एंड मैनेजमेंट ग्रेटर नॉएडा

कम्प्यूटर विभाग:

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)

2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)

3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

संस्कृत विभाग:

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

2. **डॉ० सुनीता सैनी,**एसो० प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

3. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी।)

4. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}

5. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

6. **डॉ0 दिनेशचन्द्र शुक्ल,** सहायक प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापिठ, वाराणसी, उत्तर–प्रदेश

रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

दृश्यकला विभाग:

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

पंजाबी विभाग:

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

संगीत विभाग:

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली

2. **डॉ० हुकमचन्द,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा

3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)

4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

उर्दू विभाग:

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)

कृषि विभाग

1. **डॉ0 गोविन्द प्रकाश आचार्य** सह–आचार्य (कृषि–प्रसार) श्री गोविन्द गुरू राजकीय महाविद्यालय, बांसवाड़ा राजस्थान मो. 9460545836

दर्शनशास्त्र

1. Prof, Dr, Asha Devi department of Philosophy Govt P G college kotdwar pauri Garhwal Uttarakhand 246149

LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
   Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
   Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Suman**
   H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

4. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

5. **Dr. Vimla Devi, Asst. Professor (History)** M.B.G.P.G College Haldwani Nainital (Uttrakhand)
   G-mail address. drvimla2015@gmail

6. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

7. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

8. **Dr. Govind Prakash Acharya** F--63, Chandra Vardai Nagar, UIT, Colony, Shaheed Bhagat Singh Marg, Opposite Ramganj Thana, Taragarh Road, Ajmer (Rajasthan) Pincode--305003.

9. **Amardeep Singh** Mcf C -21, Near Deep Vatika, Bhagat Singh Colony, Ballabgarh121004, Mob. 9873814066

10. **Principal,** Goswami Ganesh Dutt Sanatam Dharma College Palwal (Haryana)

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये
आचार्य मनिष र. जोशी
सचिव
Prof. Manish R. Joshi
Secretary

सत्यमेव जयते

आज़ादी का अमृत महोत्सव

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग
University Grants Commission
(शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार)
(Ministry of Education, Govt. of India)

F.No. 1-1/2018(CARE/JOURNAL)-Part file 22 माघ 1946/11 February, 2025

सार्वजनिक सूचना

In supersession of the Public Notice dated 28th November 2018 for establishing UGC Consortium for Academic and Research Ethics (UGC- CARE), the Commission, in its 584th meeting held on 3rd October 2024, based on the recommendations of the expert committee, has decided to discontinue UGC-CARE listing of Journals and develop suggestive parameters for choosing peer-reviewed journals by faculty members and students. The suggestive parameters, developed by a group of experts and academicians, are now placed in the public domain for their feedback till **25th February, 2025 at email id: journal@ugc.gov.in.**

The stakeholders, including HEIs, faculty members, researchers, and students, may take note of it.

(मनिष जोशी)

बहादुरशाह जफ़र मार्ग, नई दिल्ली-110002 | Bahadur Shah Zafar Marg, New Delhi-110002
दूरभाष (Ph.): 011-23236288/23239337 | सम्पर्क सूत्र (ई-मेल) (E-mail) : secy.ugc@nic.in

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
1.	विनोद कुमार शुक्ल कृत "नौकर की कमीज" में वर्णित मध्यवर्गीय यथार्थ	आलोक कुमार	10–12
2.	हिंदी बाल कविताओं का उद्भव और विकास	डॉ.0 सुनीता साव	13–15
3.	ठुमरीः संगीत की एक अनोखी विधा भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में एक विस्तृत शोधात्मक अध्ययन	डॉ0 सौरभ वर्मा	16–18
4.	छात्र तनाव और आत्महत्या का जोखिमः भारतीय शिक्षा व्यवस्था में कारण, प्रभाव और रोकथाम की बहु–स्तरीय रणनीति	कविता	19–23
5.	रामायण से हर्षवर्धन काल तक तन्त्री वाद्यों की परम्पराः वीणा, बल्लकी, याल और किन्नरी का साहित्यिक–सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ0 सुरेन्द्र कुमार	24–27
6.	1857 की क्रांति में हरियाणा का योगदान : एक विवेचनात्मक अध्ययन	डॉ राजेश कुमार, अमित कुमार	28–33
7.	समय,समाज और साहित्य की प्रयोजनीयता	डॉ0 पुष्पा रानी	34–36
8.	प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) का ग्रामीण विकास पर प्रभावः शाहाबाद ब्लॉक के ग्रामीण निवासियों में जागरूकता, चुनौतियाँ, वित्तीय समावेशन एवं दक्षता का गहन अध्ययन	राहुल त्रिपाठी, डॉ0 नीरज कुमार	37–43
9.	गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सामाजिक जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति	संदीप कुमार	44–47
10.	शंकर शेष के नाटकों में राजनीतिक चेतना	गगनदीप कौर	48–51
11.	हिंदी उपन्यास के विकास में लाजपत राय गर्ग का योगदान (भाग– 2)	सविता	52–54
12.	युवा पीढ़ी पर नशे का प्रभाव का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन	Dr. Nibha Rani	55–58
13.	लीलाधर जगूडी के काव्य–संग्रह जितने लोग उतने प्रेम में मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ	सुनीता	59–61
14.	युवा पीढ़ी के कालजयी मार्गदर्शकः स्वामी विवेकानंद	डॉ0 पूनम कुमारी	62–64
15.	सरिया प्रखण्ड के अंतर्गत अमनारी गाँव के बिरहोर जनजाति की आर्थिक अध्ययन	मोहम्मद अंसारी	65–69
16.	भारत की अफ्रीकी नीति में तंजानिया की भूमिका का ग्लोबल साउथ के दौर में एक रणनीतिक साझेदारी का एक शोधपरक अध्ययन ।	आरती कुमारी	70–74
17.	समाज में नारी अस्मिता से जुड़े प्रश्न	नमिता	75–77
18.	साक्षी का स्वरूप – स्मृति ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में	श्री आशीष आर्य	78–81
19.	संत निश्चलदास और गुरु ब्रह्मानंद सरस्वती के काव्य में भक्ति	डॉ. मनजीत	82–86
20.	स्मृति आधारित न्यायपालिका की कार्यप्रणाली	श्री आशीष आर्य	87–90
21.	भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम मेधा के परिप्रेक्ष्य में डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय की साहित्य–साधना	श्री मृत्युंजय कुमार ओझा	90–94
22.	तकनीकी वस्त्र का उदयः भारत के वस्त्र उद्योग का नवीन आयाम	डॉ० कुमारी निभा	95–100
23.	अनुच्छेद 370 के निरसन के पश्चात् जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं की संवैधानिक स्थिति एक सामाजिक एवं विधिक विश्लेषणध्अध्ययन	संजय प्रकाश श्रीवास्तव, रागिनी शर्मा सरस्वती	101–108
24.	Higher Education In The Digital Age: Rethinking Pedagogy, Access And Outcomes	Dr. Raj Kumari Singh	109–110
25.	Topic A study on employees' provident fund and itsrol Ein securing Employees' Future In India	Dr. Santosh Kumar Sharma	111–117
26.	From Coverage to Care: Evaluating Opportunities to enhance Health Insurance Benefits in India	Vrinda, Dr. Sangita Rani	118–124
27.	Crimes against Children in the Digital Age: Assessing the Effectiveness of India's Criminal Justice System and the Potential of Digital Twin Technology	Bhawana Bansal[1], Dr. Sulakshana Banerjee Mukherjee[1]	125–129
28.	Priorities for a Technology Foreign Policy for India	Parul	130–133

अनुक्रमणिका

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.
29.	Job Satisfaction and Employee Performance: A Study of Higher Education Institutions of Haryana	Dr. Preety	134–137
30.	The New Soft Power Frontier in Indian Foreign Policy : Artificial Intelligence	Parul	138–141
31.	Sociological Analysis of Rising Crime in Haryana: Causes and Way Out	Dr. Madhusudan	142–148
32.	Tracing the Evolution of Translation Studies: An Indian Perspective	Geeta Jain, Prof. J. K. Sharma	149–152
33.	Role of Employee Empowerment in Successful Attainment of Organizational Change	Dr. Reetu	153–156
34.	An Emotion-Aware, Privacy-Preserving Voice-Controlled Virtual Assistant with Deepfake Detection and Continuous Speaker Authentication	Shalini Kush	157–164
35.	Artificial Intelligence And Legal Systems: Bridging Innovation With Justice	Vismaya Bansal, Dr. Anchal Mittal Aggarwal	165–169
36.	Resource Development And Environmental Issues: A Holistic Approach To Sustainable Development	Prof. Tapan Kumar Shandilya	170–175
37.	The Role of Public-Private Partnerships in Mitigating Financial Cyber Fraud: An Evaluation of Gurugram Cyber Police and Banking Nodal Officers	Rakesh Kumar, Dr. Divya Sharma	176–181
38.	The Reclamation of Dalit Identity in Namdeo Dhasal's Poetry: A Critical Study	Dr. Ravi Kachhap	182–187
39.	दसवें दशक के नाटकों में नारी– चेतना	डॉ० संगीता वर्मा	188–190
40.	पटना कलम चित्रकला में भारतीय जनजीवन का यर्थाथवादी चित्रण	प्रवीन कुमार	191–194
41.	त्रिभाषा सूत्रः विद्यार्थियों, समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र निर्माण का सशक्त आधार	डॉ0 सुबोध कुमार	195–201
42.	legal Challenges And Constitutional Safeguards Relating To Mental Health Rights In India	Sudeep Sharma, Dr. Archana Vashishth	202–209
43.	दसवे दशक के नाटकों में नारी–विद्रोह	डॉ0 अनु जागलान	210–212
44.	Judicial Approach to Live-in Relationships under the rotection of Women from Domestic Violence Act, 2005: A Critical Analysis	Anuj Jain, Dr. Priya A. Sondhi, Dr. Deepak Miglani	213–219
45.	भारत को विश्वगुरु बनाने में हिन्दी साहित्य का योगदान	डॉ0 अनु जागलान	220–222
46.	Voicing the Oppressed: A Posthumanist Reading of Non-Human Agency and Representation.	Ekta Chauhan	223–227

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ स.

1

विनोद कुमार शुक्ल कृत "नौकर की कमीज" में वर्णित मध्यवर्गीय यथार्थ

आलोक कुमार

सारांश

हिंदी के सुप्रसिद्ध कथाकार, उपन्यासकार तथा कवि विनोद कुमार शुक्ल मध्यवर्गीय बोध के रचनाकार हैं। मध्यवर्ग के संबंध में विनोद कुमार शुक्ल की रचनाऐं व्यापक तथा विस्तृत है। उनकी संपूर्ण रचनाएं मध्यवर्गीय परिवार को केंद्रित करती है। आज विनोद कुमार शुक्ल जी को स्मरण करते ही सभी पाठकों तथा साहित्य प्रेमियों के मस्तिष्क में "नौकर की कमीज" (उपन्यास) तथा "दीवार में एक खिड़की रहती थी" (उपन्यास) जिस प्रकार आसमान में बिजली चमकती है, ठीक उसी प्रकार पाठकों की मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध जाती है। शुक्ल जी का संपूर्ण साहित्य मध्यवर्गीय जीवन तथा मध्यवर्गीय परिवार के इर्द–गिर्द घूमता रहा है। इसी मध्यवर्गीय यथार्थ को केंद्र में रखकर अपने प्रस्तुत शोध पत्र में शुक्ल जी के उपन्यास "नौकर की कमीज" में मध्यवर्गीय यथार्थ दिखलाने का प्रयास किया है।

मूल आलेख

मध्यवर्ग हमारे समाज का वह वर्ग है, जो ना तो आर्थिक रूप से बहुत ही अमीर है और ना ही गरीब। मध्यवर्ग की सबसे बड़ी पूंजी उसकी नौकरी उसका व्यवसाय समाजकीय सम्मान तथा भविष्य की अभिलाषाएं अर्जित करना है। मध्यवर्ग की सबसे मूल विसंगति यह है, कि वह अपनी गरीबी को हटाकर संपन्नता की अपेक्षा करता है, परंतु सामाजिक दबाव तथा आर्थिक अभाव के सामने फँस जाता है। सामाजिक प्रतिष्ठा स्थापित करना उसके लिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। यही स्थिति विनोद कुमार शुक्ल के उपन्यास "नौकर की कमीज" (1979) में स्पष्ट परिलक्षित होती है। हिंदी साहित्य के महत्वपूर्ण आलोचक तथा समाजशास्त्री श्यामसुन्दर घोष ने "भारतीय मध्यवर्ग" में मध्यवर्ग को परिभाषित करते लिखते हैं– "यह वर्ग समाज का वह भी बिचला हिस्सा है, जो समाज को अनुप्रस्थ ढंग से विभाजित करने पर बनता हैं और जिसमें कमोवेश कर एक ही रुतबे या ओहदे के लोग सम्मिलित होते हैं जिनकी विशेष आर्थिक और सामाजिक स्थिति और प्रवृति होती हैं। जो बहुदा उनकी आय, व्यवसाय, शिक्षा और वंश परंपरा से निर्धारित करता है।"[1]

शुक्ल जी के उपन्यास "नौकर की कमीज" के लिए यह पंक्ति यथार्थ उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। हिंदी साहित्य में "नौकर की कमीज" अपने मध्यवर्गीय यथार्थ, विशिष्टता, प्रतीकात्मकता और व्यंग्यात्मकता के कारण यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास के केंद्र में संतु बाबू है, जो की एक दफ्तर में काम करते हैं। उनकी अवस्था बाईस– ताईस वर्ष है, और वे विवाहित है। दफ्तर में उनके दो सहयोगी मित्र हैं – देवांगन बाबू और गौराहा बाबू। जो उनकी हर परिस्थितियों में मदद करते हैं। उनका एक बचपन का मित्र है – संपत । वह भी एक महाविद्यालय में रसायन शास्त्र के प्रयोगशाला में काम करता हैं। दफ्तर में एक बड़े बाबू हैं, जो हमेशा सन्तु बाबू का शोषण करते हैं संतु बाबू जिस मकान में रहते हैं, वह मकान शहर के एक बड़े डॉक्टर साहब का है। जिसका किराया मकान की स्थिति को देखते हुए अधिक हैं। डॉक्टर की पत्नी संतु बाबू की पत्नी से अपने घर का सारा काम करवाती हैं। और उच्चवर्ग द्वारा हो रहे शोषण को संतु बाबू और उनकी पत्नी सहते चले जाते हैं। उपन्यास के संदर्भ में रमेशचंद्र शाह लिखते हैं – "कितना छोटा सा दायरा है इस जिंदगी का इसमें कहां गुंजाइश है रस या संघर्ष की बडी–बडी बातों के लिए बस संतु बाबू और उनकी पत्नी है, टपकता हुआ एक किराए का मकान है, मकान मालिक डॉक्टर और उसकी बीवी है, दफ्तर की घुटन भरी दुनिया है जिसमें अपने ही जैसे लाचार और हास्यास्पद साथी है, और है एक कस्बे का परिवेश गंदगी, बदहाली, फूहड़, सम्पन्नता प्रदर्शन, रोंगटे खड़े कर देने वाले दारिद्रय और दैन्य की जीती जागती मूरतें"।[2]

उपन्यास के आरंभ से ही एक चित्र बहुत ही सहज ढंग से प्रस्तुत है। संतु बाबू का वेतन सीमित होने के कारण उन्हें अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आर्थिक समस्या के साथ–साथ सामाजिक समस्या, उच्चवर्गीय शोषण, संतु बाबू के लिए कष्टप्रद है। इसलिए घर में भी वे अपनी पत्नी के पसंद के वस्तुओं को नहीं ला पाते हैं, ना वे एक अच्छे मकान में रह पाते हैं। संतु बाबू अपने वेतन को कटघरा मानते हुए कहते हैं– "मेरा वेतन एक कटघरा था, जिसे तोड़ना मेरे बस में नहीं था। यह कटघरा मुझमें कमीज की तरह फिट था। और मैं अपनी पूरी ताकत से कमजोर होने की हद तक अपना वेतन पा रहा था। इस कटघरे में सुराख कर मैं सिनेमा देखता था या स्वप्न"।[3]

समाज में मध्यवर्गीय परिवार का परिचय उसके रहन–सहन, उसकी आमदनी, निवास, वेशभूषा तथा परिवार आदि से होती है, इनमें से संतु बाबू के लिए कोई भी चीज पर्याप्त नहीं है, फिर भी वह इन सभी समस्याओं से जुझते रहते हैं किसी से शिकायत भी नहीं करते हैं। जिस मकान में संतु बाबू रहते हैं। उस मकान को देखते हुए उसका किराया अधिक हैं, परंतु मध्यवर्गीय विवशता संतु बाबू को उसे घर में रहने के लिए विवश करती है। "जिस मकान में मैं रहने आया था, उसका मालिक शहर का एक बड़ा डॉक्टर था। मैं

पचास रुपया महीना का किराया देता था जो मकान को देखते हुए अधिक था" ।[4]

जिस स्थान पर वे रहते हैं, वहां पिछले कुछ दिनों से बहुत बारिश हो रही थी, उनके छत से पानी टपक रहा था, जिससे पूरे घर में पानी भर चुका था। मेढकों तथा कीड़े मकोड़े का आना शुरू हो चुका था। जिससे उन्हें खाने में गिरने का डर हमेशा बना रहता था। पूरे घर में सोने के लिए एक चारपाई जितनी ही जगह बची हुई थी। संतु बाबू तथा उनकी पत्नी के बीच की यह अभाव से ग्रसित, मध्यवर्गीय परिवार में जीवन जीने के लिए एक व्यवस्था बन चुकी है। मध्यवर्गीय परिवार के लिए सबसे जरूरी जो वस्तु होती है, वह रोटी, कपड़ा और मकान है। इनमें से किसी एक वस्तु का ना होना मध्यवर्गीय यथार्थ की विवशता को दिखाता है। इसलिए संतु बाबू कहते हैं – "अच्छा हुआ हम दोनों पति–पत्नी है बस, एक चारपाई की जगह बच गई है जहां हम पानी से बचे रहकर रात–भर आराम से सो सकेंगे। अगर माँ होती तो इस चारपाई पर वे सो जाती और हम लोग क्या कोने में खडे–खडे बात करते हैं ऊँघते हुए रात बिता देते?"[5]

संतु बाबू को एक अच्छे किराए वाले मकान को बहुत चाह थी। जहाँ दोनों पति–पत्नी अपना जीवन अच्छे से व्यतीत कर सके। लेकिन मध्यवर्गीय विवशता उन्हें इसके लिए मजबूर करती है। संतू बाबू अपनी इस स्थिति को स्वीकार करते हैं और दोनों एक दूसरे के साथ बिना किसी अड़चन के प्रेम और सद्भाव से इस चारपाई पर सोते हैं। संतु बाबू कहते हैं – "चारपाई छोटी है तो क्या हुआ? तुम्हारे लिए जो जगह है, दिल में भी जगह है, दोनों को मिलाकर कितनी सारी जगह हो गई है।"[6]

उच्चवर्ग के द्वारा किस तरह मध्यमवर्ग तथा निम्नवर्ग सताये जाते हैं। वह हमें "नौकर की कमीज" में स्पष्ट दिखाई पड़ती है। मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग की गरीबी, लाचारी, बेगारी हमें इस उपन्यास में परिलक्षित होती है। डॉक्टर साहब की पत्नी, संतु बाबू की पत्नी से अपने घर का सारा काम करवाती है। संतु बाबू की पत्नी ना चाहते हुए भी उनके घर का सारा काम करने को विवश है। उच्चवर्ग की इसी व्यवस्था प्रणाली पर मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग हमेशा से हार मानते आया हैं। संतु बाबू की पत्नी कहती है – "अभी थोड़ी देर पहले तो आई हूँ। डॉक्टरनी अरहर की दाल नहीं खाती, पर डॉक्टर साहब दोनों समय अरहर की दाल खाते हैं। डर – डरकर तो खाना बनाई हूँ। डॉक्टरनी पूरे टाइम पर कुर्सी पर बैठे मुझे बतलाती जा रही थी। उसको ब्लडप्रेशर रहता है। इसलिए चौके में नहीं घसती। धूएँ और जलते कोयले की गंध से उसको चक्कर आने लगता है। उसके घर के काम में बहुत पंचायत है। डॉक्टरनी बहुत मीनमेख निकालती है। वह कम–से–कम दस बार तो कही होगी कि मेरी साड़ी बहुत गंदी है। साड़ी समेटकर काम करो। उसका चौका बहुत बड़ा और चकाचक साफ है। ढेर सारा सामान है। डॉक्टर की बहन पर मुझ पर मुझे दया आती है। नौकरानी की तरह काम करती होगी। नौकरानी की तरह रहती है।"[7] संतु बाबू और उनकी पत्नी को डॉक्टरनी साहब के यहाँ जाना बिलकुल अच्छा नहीं लगता। अपनी पत्नी के वहाँ जाने को वह फालतू समझते हैं। लेकिन आर्थिक और सामाजिक विवशता उन्हें कमजोर कर देती है। अपने मन में सोचते हैं – "चुपचाप खड़ी हुई वह, 'मैं जाती हूं, देर हो रही है' कहना चाहते थी, और चुपचाप खड़ा हुआ मैं, 'रहने दो, फालतू है वहां जाना' कहना चाहता था जबकि 'ठीक है' मैंने कहा।"[8] मध्यवर्गीय परिवार के व्यक्ति किस प्रकार अपनी इच्छाओं और भावनाओं को घुट–घुट कर जीते हैं। इस उपन्यास में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। आर्थिक दबाव तथा सामाजिक दबाव के कारण स्वतंत्र होकर किसी प्रकार का निर्णय ना ले पाना मध्यवर्ग तथा निम्नवर्ग के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन जाती है। तथा वे संघर्ष, संकोच और समझौते के साथ अपना जीवन यापन करते हैं।

दफ्तर के बड़े बाबू के साहब को एक अच्छे साफ–सुथरे नौकर की तलाश हैं। साहब ने उसके लिए एक कमीज बना कर रखी हैं। साहब के यहां पहले से एक लड़का काम करता है साहब और बाई द्वारा सताये जाने के कारण वह भाग जाता है। कुछ दिनों के बाद एक दूसरा लड़का काम करने आता है। बड़ी शिष्टता से रहता हैं, काम करता है। साहब की पत्नी उस नौकर से बहुत खुश रहती हैं। साहब को इंटरव्यू लेने को कहती है तो साहब कहते हैं – "इंटरव्यू लेने की जरूरत नहीं है। नौकरों से पूछना कम चाहिए, बताना ज्यादा चाहिए। बताने के बाद पूछताछ होनी चाहिए कि जो बताया गया था, वह ठीक से पूरा हुआ या नहीं। लेकिन मुझे नहीं लगता कि इसे नौकर की कमीज फिट होगी। अगर इसे कमीज फिट नहीं हुई तो मैं इसे नौकर नहीं रखूँगा।"[9] बड़े बाबू के लिए यह कमीज संतु बाबू को फिट होगी। इसीलिए वे संतु बाबू को धोखे से साहब के घर ले जाते हैं। और उसे नौकर के कमीज के सांचे में उतरने में सफल होते हैं। इस घटना से संतु बाबू बहुत अपमानित तथा लज्जित महसूस करते हैं। लेकिन उच्चवर्ग की इस व्यवहार को अपना दायित्व मानकर साहब के घर जाने लगते हैं। इस घटना का जिक्र वे दफ्तर के देवांगन बाबू तथा गौराहा से करते हैं। इससे तीनों का बहुत अधिक गुस्सा आता है। तीनों द्वारा मिलकर एक इस कमीज को फाड़ दिया जाता है। "कमीज बहुत मजबूत थी। शायद जीन की थी। चर्र– चर्र की आवाज आई और कमीज का एक बड़ा टुकड़ा देवांगन बाबू के हाथ में रह गया दूसरा गौराहा बाबू के हाथ में।

तब गौराहा बाबू अपने को संभाल न सकने के कारण गिर पडे। देवांगन बाबू का ध्यान मेरी तरफ नहीं था। इसका फायदा उठाकर मैंने फटी कमीज का टुकडा झपट लिया और तुरंत उसके दो टुकडे किये। एक टुकडे को हवा में उजाला और देवांगन बाबू के पहले उसे झोक लिया।"[10]

उपन्यास में कमीज मध्यवर्गीय व्यवस्था की सच्चाईयों को स्पष्ट दिखलाती है। नौकर की कमीज पहनने को मध्यवर्ग आतुर तो नहीं परंतु मजबूर अवश्य है। बड़े साहब ने जो कमीज सिलवा रखी है, उसमें संतु बाबू ही सिर्फ नहीं बल्कि एक पूरा वर्ग फिट होता दिखता है। कमीज उसे कठोर व्यवस्था की और संकेत करता है। जिसमें उच्च वर्ग के यहाँ बेगारी, नौकरशाही, गुलामी करना अनेकों संतु बाबू के जैसे लोगों के लिए ढलना आवश्यक हो जाता है। परंतु देवांगन बाबू, गौराहा बाबू तथा संतु बाबू ने उच्चवर्ग प्रति हिम्मत दिखाकर शर्ट के टुकड़े करते हुए हवा में उछालना हमें समाज में हो रहे मध्यवर्ग के प्रति दुर्व्यवहार से लड़ने की हिम्मत देता है। इसमें एक व्यक्ति की आवाज उठाने मात्र से बदलाव नहीं आएगी सभी व्यक्तियों की सहभागिता आवश्यक होनी चाहिए और यही मध्यवर्गीय यथार्थ की अभिव्यक्ति हमें 'नौकरी की कमीज' उपन्यास में देखने को मिलता है।

निष्कर्ष –

नौकर की कमीज की उपन्यास में प्रस्तुत मध्यवर्गीय यथार्थ के मनोभाव को प्रदर्शित करता है। जहाँ वे मध्यवर्गीय समाज आर्थिक सीमाओं, आत्मसम्मान तक सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच कठिन परिस्थितियों में भी संघर्ष करता रहता है। उपन्यास में संतु बाबू केवल एक व्यक्ति ही नहीं तथापि भारतीय परिवार में पूरे मध्यवर्गीय समाज का प्रतिनिधित्व करते हुए नजर आते हैं। और 'कमीज' एक वस्त्र नहीं बल्कि मध्यवर्ग की व्यवस्था, पहचान तथा सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाती हैं।

सन्दर्भ सूची :–

1. डॉ. श्यामसुन्दर – भारतीय मध्यवर्ग, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, दिसम्बर 2013, तृतीय संस्करण, पृष्ठ संख्या – 02
2. शाह रमेशचंद्र – दो नये उपन्यास, परमानन्द श्रीवास्तव (सम्पादक) – समकालीन हिन्दी आलोचना, साहित्य अकादमी, पृष्ठ संख्या – 342
3. शुक्ल, कुमार विनोद (1994) : नौकर की कमीज, राजकमल प्रकाशन, 2025 बारहवाँ संस्करण, पृष्ठ संख्या – 17
4. वही, पृष्ठ – 08
5. वही, पृष्ठ – 57
6. वही, पृष्ठ – 57
7. वही, पृष्ठ – 81
8. वही, पृष्ठ – 80
9. वही, पृष्ठ – 121–122
10. वही, पृष्ठ – 143

आलोक कुमार

(शोधार्थी)

हिंदी विभाग

रांची विश्वविद्यालय, रांची

ई–मेल – alokkumar48489@gmail.com

मो0 – 9709580831

2

हिंदी बाल कविताओं का उद्भव और विकास

सुनीता साव

सारांश

शैशव जीवन का सबसे निर्मल, निष्कलुष और मोहक काल होता है। मानव जीवन की यह अवस्था अपनी सहजता, जिज्ञासा और चंचलता के कारण सभी को आकर्षित करती है। बालक की किलकारी, उसकी डगमगाती चाल, हठ, खेल और उत्सुकताएँ जीवन में एक विशेष आनंद का संचार करती हैं। माता–पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य बच्चे के साथ संवाद स्थापित करने के लिए स्वाभाविक रूप से गीत, लोरियाँ और तुकबंदियाँ रचते हैं। यही लोरियाँ और गीत आगे चलकर बाल साहित्य तथा बाल कविता के प्रारंभिक स्रोत बने।

बालक के मानसिक, बौद्धिक और भावनात्मक विकास में बालगीतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। जैसे–जैसे उसकी आयु बढती है, उसकी जिज्ञासाएँ भी विकसित होती हैं। वह प्रकृति, पशु–पक्षियों, रंगों, खिलौनों और अपने आसपास की वस्तुओं के प्रति आकर्षित होता है। उसकी इसी जिज्ञासु वृत्ति को संतुष्ट करने तथा उसे मनोरंजन के माध्यम से ज्ञान प्रदान करने का कार्य बाल साहित्य करता है। बाल साहित्य का प्रमुख उद्देश्य बालमन को प्रकृति और समाज से जोड़ना, उसकी कल्पनाशक्ति को विकसित करना तथा उसके व्यक्तित्व का समग्र विकास करना है।

बाल कविता बाल साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण विधा है। यह बालक की भावनाओं, आकांक्षाओं, कल्पनाओं और अनुभवों को अभिव्यक्ति प्रदान करती है। प्रसिद्ध बाल साहित्यकार कृष्ण शलभ के अनुसार बाल कविता स्वयं एक जीवंत बालक की तरह होती है, जो कभी जिज्ञासु, कभी प्रश्नाकुल और कभी हठीला दिखाई देता है। इसी कारण बाल कविता बच्चों के अंतर्मन की सहज अभिव्यक्ति मानी जाती है।

बाल कविता की उत्पत्ति

बाल कविता की उत्पत्ति का प्रश्न लंबे समय से विद्वानों के बीच चर्चा का विषय रहा है। यदि व्यापक दृष्टि से विचार किया जाए तो बाल कविता का मूल स्रोत वात्सल्य भाव है। जब पहली बार किसी माता ने अपने शिशु को गोद में लेकर उसे बहलाने, सुलाने या समझाने का प्रयास किया होगा, तभी बालगीतों और लोरियों का जन्म हुआ होगा। इसलिए बाल कविता की जड़ें मानव सभ्यता के प्रारंभिक काल तक पहुँचती हैं।

दादा–दादी, नाना–नानी और माताओं द्वारा सुनाई जाने वाली लोरियाँ और गीत ही बाल कविता के आदिम रूप माने जा सकते हैं। यह साहित्य सदियों तक मौखिक परंपरा के रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचरित होता रहा। यद्यपि इसका लिखित स्वरूप अपेक्षाकृत बाद में विकसित हुआ, किंतु इसका मौखिक इतिहास अत्यंत प्राचीन है।

प्राचीन साहित्य में बाल तत्त्व–

भारतीय साहित्य की परंपरा में बाल–संबंधी भावनाओं का उल्लेख प्राचीन काल से मिलता है। वैदिक साहित्य, विशेषकर ऋग्वेद की कुछ ऋचाओं में बाल जीवन के संकेत दिखाई देते हैं। रामायण और महाभारत में भी बाल लीलाओं का मनोहारी चित्रण मिलता है। भगवान राम और श्रीकृष्ण के बाल रूपों का वर्णन भारतीय जनमानस को सदियों से आकर्षित करता रहा है।

इसी प्रकार जातक कथाएँ, बेताल पच्चीसी, सिंहासन बत्तीसी तथा संस्कृत साहित्य की अनेक रचनाएँ बच्चों के मनोरंजन और नैतिक शिक्षण का माध्यम रही हैं। महाकवि कालिदास तथा भास के साहित्य में भी बाल जीवन के विविध रूपों का चित्रण मिलता है। किंतु इन रचनाओं का उद्देश्य विशुद्ध बाल साहित्य सृजन नहीं था। इनमें बाल तत्त्व अवश्य हैं, परंतु इन्हें आधुनिक अर्थों में बाल कविता नहीं कहा जा सकता।

मध्यकालीन साहित्य और बाल कविता –

हिंदी साहित्य के इतिहास में कुछ विद्वानों ने जगनिक, अमीर खुसरो, सूरदास और तुलसीदास की रचनाओं में बाल कविता के बीज खोजने का प्रयास किया है। जगनिक के 'आल्हाखंड' के कुछ अंश बच्चों में लोकप्रिय रहे हैं। अमीर खुसरो की पहेलियाँ और मुकरियाँ भी बच्चों को आकर्षित करती रही हैं। इसी प्रकार सूरदास के वात्सल्य पदों तथा तुलसीदास की राम–केंद्रित बाल लीलाओं में बाल मनोविज्ञान के अनेक चित्र मिलते हैं।

किन्तु आलोचनात्मक दृष्टि से देखने पर स्पष्ट होता है कि इन रचनाओं का मूल उद्देश्य बाल साहित्य सृजन नहीं था। सूर और तुलसी के यहाँ बाल वर्णन भक्ति साधना का माध्यम है, जबकि खुसरो की पहेलियाँ सभी आयु वर्गों के लिए थीं। इसलिए इन्हें आधुनिक बाल कविता का प्रारंभिक रूप मानना उचित नहीं है।

डॉ. सुरेन्द्र विक्रम का मत है कि हिंदी बाल साहित्य का इतिहास लगभग सौ वर्षों का है। इससे पूर्व बालोपयोगी सामग्री अवश्य मिलती है, परंतु स्वतंत्र बाल साहित्य नहीं। इसी प्रकार प्रकाश मनु भी आधुनिक हिंदी बाल कविता का प्रारंभ बीसवीं शताब्दी से मानते हैं।

आधुनिक हिंदी बाल कविता का उदय –

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में

भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन हुए। अंग्रेजी शासन के प्रभाव से शिक्षा व्यवस्था में बदलाव आया, पाठ्यपुस्तकों का निर्माण आरंभ हुआ और बच्चों के लिए पृथक साहित्य की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इसी परिवेश में आधुनिक हिंदी बाल कविता का जन्म हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी में बच्चों के लिए रीडरों और पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसी क्रम में बालमुकुंद गुप्त की प्रसिद्ध कविता 'गिलहरी का ब्याह' सामने आती है, जिसे हिंदी बाल कविता की प्रारंभिक रचनाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसमें बाल मनोविज्ञान, कल्पना और मनोरंजन का सुंदर समन्वय दिखाई देता है।

बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' को हिंदी बाल कविता के प्रारंभिक कवियों की त्रयी माना जाता है। इन तीनों ने बच्चों के लिए स्वतंत्र रूप से कविताएँ लिखीं और बाल कविता को एक साहित्यिक पहचान प्रदान की।

निरंकार देव सेवक ने श्रीधर पाठक को हिंदी का प्रथम बालगीतकार माना है। उनकी कविताओं में मनोरंजन, सरलता और बालसुलभ भावनाओं का सुंदर चित्रण मिलता है। यद्यपि उनकी प्रमुख बाल कविताएँ 1906 ई के बाद प्रकाशित हुईं, फिर भी उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की 'कोयल', 'बाल विनोद' और 'लोरियाँ' जैसी रचनाएँ प्रारंभिक बाल साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। एक साक्षात्कार में उन्होंने स्वयं को बच्चों के लिए कविता लिखने वाला प्रथम कवि बताया था। यद्यपि यह दावा विवादास्पद हो सकता है, परंतु उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

इन तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि हिंदी बाल कविता का व्यवस्थित विकास बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ।

बाल कविता का विकास और वर्गीकरण –

हिंदी बाल कविता का इतिहास अपेक्षाकृत नया है, किंतु उसका विकास अत्यंत समृद्ध और विविधतापूर्ण रहा है। विभिन्न विद्वानों ने इसके इतिहास को अलग–अलग कालखंडों में विभाजित किया है।

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे का वर्गीकरण -

उन्होंने हिंदी बाल साहित्य को छह युगों में विभाजित किया-

- पूर्व भारतेंदु युग
- भारतेंदु युग
- द्विवेदी युग
- आधुनिक युग
- स्वतंत्रोत्तर युग
- वर्तमान युग

हालाँकि इस वर्गीकरण की आलोचना भी हुई, क्योंकि 'आधुनिक' और 'वर्तमान' जैसे नाम स्थायी नहीं माने जा सकते।

रोहिताश्व अस्थाना का वर्गीकरण–

उन्होंने बाल साहित्य को चार कालों में बाँटा -

- आदिकाल (1900-1921)
- मध्यकाल (1921-1942)
- आधुनिक काल (1942-1962)
- साठोत्तरी काल (1962 से आगे)

यह वर्गीकरण अपेक्षाकृत व्यवस्थित माना जाता है, किंतु अंतिम काल की लंबी अवधि इसे कुछ सीमित बना देती है।

डॉ. परशुराम शुक्ल का वर्गीकरण

डॉ. शुक्ल ने हिंदी बाल साहित्य के इतिहास को अधिक वैज्ञानिक ढंग से पाँच भागों में विभाजित किया गया–

- आदियुग (1800–1850)
- भारतेंदु युग (1850–1900)
- पूर्व स्वतंत्रता युग (1900–1947)
- उत्तर स्वतंत्रता युग (1948–1990)
- प्रयोगवादी युग (1990 से निरंतर)

यह वर्गीकरण बाल–साहित्य के विकास क्रम को अधिक संतुलित रूप में प्रस्तुत करता है।

भारतेंदु युग का योगदान

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने बालकों में नवजागरण की भावना विकसित करने के उद्देश्य से 'बाल बोधिनी' जैसी पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। इस काल में बाल साहित्य की अनेक विधाओं का विकास हुआ। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन', प्रताप नारायण मिश्र और भारतेंदु हरिश्चंद्र जैसे साहित्यकारों ने बाल साहित्य को समृद्ध किया।

द्विवेदी युग और राष्ट्रीय चेतना

महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन में प्रकाशित 'सरस्वती' पत्रिका ने हिंदी साहित्य को नई दिशा दी। इस काल में बालमुकुंद गुप्त, मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी तथा अन्य अनेक साहित्यकारों ने बाल काव्य की रचना की।

स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव से इस युग की बाल कविताओं में देशभक्ति, नैतिकता और राष्ट्रीय चेतना प्रमुख विषय बने। बच्चों में राष्ट्रप्रेम जगाने वाली अनेक कविताएँ लिखी गईं।

स्वतंत्रोत्तर काल

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बाल साहित्य का स्वरूप अधिक व्यापक हुआ। अब केवल नैतिक शिक्षा या राष्ट्रप्रेम ही नहीं, बल्कि प्रकृति, विज्ञान, समाज, पर्व–त्योहार, पशु–पक्षी और बाल जीवन की विविध समस्याएँ भी बाल कविता का विषय बनने लगीं।

इस काल में निरंकार देव सेवक, नर्मदा प्रसाद खरे, राष्ट्रबंधु, चंद्रपाल सिंह यादव 'मयंक', विनोद चंद्र पांडेय, जयप्रकाश भारती और शकुंतला सिरौठिया जैसे कवियों ने उल्लेखनीय योगदान दिया।

प्रयोगवादी युग

1990 के बाद बाल कविता में नए प्रयोगों का दौर आरंभ हुआ। विज्ञान, अंतरिक्ष, तकनीक, पर्यावरण, संचार माध्यम और समकालीन जीवन की जटिलताओं को बाल कविता का विषय बनाया जाने लगा। सूचना–प्रधान और वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाली कविताओं का सृजन हुआ। डॉ. परशुराम शुक्ल, सुरेंद्र विक्रम, प्रकाश मनु और शेरजंग गर्ग जैसे रचनाकारों ने इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

आज की बाल कविता मनोरंजन के साथ–साथ ज्ञान, संवेदना और वैज्ञानिक दृष्टि का भी विकास करती है। वह बच्चों को बदलती दुनिया से परिचित कराते हुए उनकी कल्पनाशक्ति को भी समृद्ध बनाती है।

निष्कर्ष –

बाल कविता के उद्‌भव और विकास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यद्यपि इसके मूल तत्त्व भारतीय सांस्कृतिक परंपरा, लोकजीवन, लोरियों, वात्सल्य भाव तथा प्राचीन साहित्य में निहित हैं, तथापि एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में इसका वास्तविक विकास आधुनिक युग, विशेषतः बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ। प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य में बाल जीवन के अनेक मनोहारी चित्र अवश्य मिलते हैं, किंतु वे मुख्यतः भक्ति, नीति अथवा अन्य साहित्यिक उद्देश्यों के साधन मात्र हैं। वहाँ बालक स्वयं साहित्य का केंद्र नहीं बन पाता। आधुनिक हिंदी बाल कविता की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसने पहली बार बालक को उसकी संपूर्ण मनोवैज्ञानिक संरचना, जिज्ञासाओं, कल्पनाओं और अनुभूतियों के साथ साहित्य के केंद्र में प्रतिष्ठित किया।

हिंदी बाल कविता का विकास वस्तुतः भारतीय समाज में आए शैक्षिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों का परिणाम है। नई शिक्षा प्रणाली, बाल शिक्षा के प्रति बढ़ती जागरूकता, मुद्रण एवं प्रकाशन के विस्तार तथा बाल पत्रिकाओं के उदय ने इस विधा को समृद्ध आधार प्रदान किया। बालमुकुंद गुप्त, श्रीधर पाठक और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जैसे साहित्यकारों ने इसकी नींव रखी, जिसे बाद के कवियों ने विविध विषयों, नवीन शिल्पों और व्यापक दृष्टिकोणों से विकसित किया। परिणामस्वरूप बाल कविता केवल मनोरंजन का माध्यम न रहकर बाल–व्यक्तित्व निर्माण, ज्ञानवर्धन, संवेदनात्मक विकास और मूल्यबोध की सशक्त विधा बन गई।

वस्तुतः हिंदी बाल कविता का इतिहास निरंतर परिवर्तन और विस्तार का इतिहास है। प्रारंभिक दौर की नैतिक, देशभक्ति एवं प्रकृति–केंद्रित कविताओं से आगे बढ़ते हुए यह आज विज्ञान, पर्यावरण, तकनीक, वैश्विक चेतना और समकालीन जीवन के विविध आयामों को समेट रही है। इसके बावजूद बालमन की सहजता, कल्पनाशीलता, जिज्ञासा और आनंदबोध इसके स्थायी तत्त्व बने हुए हैं। यही इसकी जीवंतता और प्रासंगिकता का आधार है।

अतः कहा जा सकता है कि हिंदी बाल कविता भारतीय साहित्य की एक गतिशील, विकासोन्मुख और अत्यंत महत्त्वपूर्ण विधा है, जिसने समय के साथ स्वयं को निरंतर परिवर्तित किया है। बालमन की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने, उसके बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास को दिशा प्रदान करने तथा उसे समाज और संस्कृति से जोडने में इसकी भूमिका अद्वितीय है। भविष्य में भी हिंदी बाल कविता नई चुनौतियों और नई संभावनाओं के साथ बाल साहित्य की समृद्ध परंपरा को आगे बढाती रहेगी तथा बाल चेतना के निर्माण में अपनी सार्थक उपस्थिति बनाए रखेगी।

संदर्भ सूची

- बचपन एक समंदर कृश्ण शलभ, नीरजा स्मृति बाल साहित्य न्यास ,सहारनपुर
- हिंदी बाल कविता का इतिहास प्रकाश मनु, मेधा बुक
- बाल साहित्य निरंकार देव सवेक,
- हिंदी बाल साहित्य का अध्ययन, डॉ0 हरिकृष्ण देवसरे
- **हिंदी बाल कविता का इतिहास,** सूर्यकुमार पाडेय सं0. –प्रकाश मनु, मेधा बुक्स नवीन शाहदरा,दिल्ली
- हिंदी बाल साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन, डॉ0 परशुराम शुक्ल,, अराधना बद्रर्स, कानपुर

डॉ0 सुनीता साव

काँके रोड, राँची

चलभाश – .9934246947

3

ठुमरीः संगीत की एक अनोखी विधा भारतीय शास्त्रीय संगीत के संदर्भ में एक विस्तृत शोधात्मक अध्ययन

डॉ0 सौरभ वर्मा

सारांश

भारतीय शास्त्रीय संगीत की विविध गायन शैलियों में ठुमरी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण एवं विशिष्ट है। यह केवल एक गायन शैली नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, भाव–संवेदना तथा सौंदर्यबोध की जीवंत अभिव्यक्ति है। ठुमरी की विशेषता इसकी भावप्रधानता, कोमलता, मधुरता तथा रसानुभूति में निहित है। इस शैली में प्रेम, विरह, भक्ति, श्रृंगार तथा मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है।

ठुमरी का उद्भव मुख्यतः उत्तर भारत के अवध क्षेत्र में हुआ तथा नवाबी संस्कृति के संरक्षण में इसका विकास हुआ। कालांतर में यह शैली बनारस, गया तथा अन्य क्षेत्रों में भी विकसित हुई। प्रस्तुत शोध–पत्र में ठुमरी की उत्पत्ति, ऐतिहासिक विकास, प्रमुख घरानों, संगीतात्मक स्वरूप, कथक से संबंध, प्रमुख कलाकारों, सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव तथा आधुनिक युग में इसकी प्रासंगिकता का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्दः ठुमरी, भारतीय शास्त्रीय संगीत, पूरब अंग, बोल–बनाव, कथक, बनारस घराना, अवध संस्कृति।

भूमिका

भारतीय संगीत विश्व की प्राचीनतम संगीत परंपराओं में से एक है। इसकी जड़ें वैदिक काल तक पहुँचती हैं, जहाँ सामवेद के मंत्रों का गायन संगीत का प्रारंभिक रूप माना जाता है। समय के साथ भारतीय संगीत दो प्रमुख धाराओंकृहिंदुस्तानी संगीत एवं कर्नाटक संगीतकृमें विभाजित हुआ। हिंदुस्तानी संगीत में ध्रुपद, धमार, खयाल, टप्पा, तराना, दादरा तथा ठुमरी जैसी अनेक विधाओं का विकास हुआ।

इन सभी गायन शैलियों में ठुमरी अपनी भावपूर्ण प्रस्तुति तथा कोमल अभिव्यक्ति के कारण विशेष महत्व रखती है। जहाँ ध्रुपद गंभीरता और आध्यात्मिकता का प्रतीक है तथा खयाल कल्पनाशीलता का परिचायक है, वहीं ठुमरी मानवीय भावनाओं की सहज एवं कोमल अभिव्यक्ति का माध्यम है। इसमें संगीत और काव्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है।

ठुमरी को प्रायः "श्रृंगार प्रधान" शैली कहा जाता है, किंतु इसकी विषयवस्तु केवल श्रृंगार तक सीमित नहीं है। इसमें भक्ति, करुणा, विरह, मान, अनुराग तथा नायिका–भेद का अत्यंत सुंदर चित्रण मिलता है। विशेषकर राधा–कृष्ण की लीलाओं एवं ब्रज संस्कृति का प्रभाव इसमें स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

ठुमरी का अर्थ एवं स्वरूप

"ठुमरी" शब्द की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार यह शब्द "ठुमक" से बना है, जिसका अर्थ है नृत्य करते समय लचक या मृदु गति से चलना। चूँकि प्रारंभिक काल में ठुमरी का संबंध कथक नृत्य से था, अतः इस शैली का नाम "ठुमरी" पड़ा।

ठुमरी की मूल विशेषता इसकी भावप्रधानता है। इसमें शब्दों के अर्थ और भाव को अत्यंत महत्व दिया जाता है। गायक या गायिका प्रत्येक शब्द को विभिन्न स्वरों और अलंकारों के माध्यम से अनेक प्रकार से प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि ठुमरी श्रोताओं के हृदय को सीधे स्पर्श करती है।

ठुमरी का स्वरूप अन्य शास्त्रीय शैलियों की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र एवं लचीला होता है। इसमें रागों के नियमों का कठोर पालन आवश्यक नहीं माना जाता, बल्कि भावाभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है।

ठुमरी का ऐतिहासिक विकास

प्रारंभिक विकास

ठुमरी का उद्भव अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में माना जाता है। इसका प्रारंभ अवध क्षेत्र, विशेषकर लखनऊ में हुआ। उस समय लखनऊ भारतीय कला, साहित्य, संगीत और नृत्य का प्रमुख केंद्र था। नवाब वाजिद अली शाह स्वयं संगीत प्रेमी, कवि तथा नर्तक थे। उन्होंने "अख्तर पिया" उपनाम से अनेक ठुमरियों की रचना की। उनके संरक्षण में संगीतज्ञों और नर्तकों को प्रोत्साहन मिला, जिससे ठुमरी का तीव्र विकास हुआ। प्रारंभ में यह शैली दरबारों और तवायफों तक सीमित थी, किंतु बाद में यह जनमानस में भी लोकप्रिय हो गई।

बनारस में विकास

लखनऊ के बाद बनारस ठुमरी का प्रमुख केंद्र बना। यहाँ की शैली को "पूरब अंग ठुमरी" कहा गया। बनारस घराने की ठुमरी में भावों की गहराई, शब्दों की स्पष्टता तथा रसानुभूति को विशेष महत्व दिया गया।

सिद्धेश्वरी देवी, रसूलन बाई तथा गिरिजा देवी जैसी महान कलाकारों ने इस शैली को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाई।

आधुनिक काल में ठुमरी बीसवीं शताब्दी में ग्रामोफोन, रेडियो तथा संगीत सम्मेलनों के माध्यम से ठुमरी का व्यापक प्रचार हुआ। बाद में फिल्म संगीत में भी ठुमरी शैली का प्रभाव दिखाई देने लगा। अनेक हिंदी फिल्मों में ठुमरी आधारित गीतों का प्रयोग किया

गया, जिसने इसे लोकप्रिय संस्कृति का हिस्सा बना दिया।

ठुमरी की संगीतात्मक विशेषताएँ

1. भावप्रधानता

ठुमरी की सबसे प्रमुख विशेषता इसकी भावप्रधानता है। इसमें संगीत का उद्देश्य केवल राग प्रस्तुति नहीं, बल्कि भावों की अभिव्यक्ति होता है। गायक शब्दों को विभिन्न प्रकार से दोहराकर उनमें भावों की गहराई उत्पन्न करता है।

उदाहरण के लिएकृ "बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाए" जैसी ठुमरी में विरह और करुणा का अत्यंत मार्मिक चित्रण मिलता है।

2. रागों का प्रयोग

ठुमरी में मुख्यतः कोमल और मधुर प्रकृति के रागों का प्रयोग होता है। इनमें प्रमुख हैंकृ

– खमाज
– काफी
– पीलू
– भैरवी
– झिंझोटी
– देश
– तिलंग
– पहाड़ी

इन रागों में भावाभिव्यक्ति की अधिक संभावना होती है।

3. ताल प्रणाली

ठुमरी में प्रयुक्त प्रमुख ताल निम्नलिखित हैंकृ

ताल मात्राएँ

दादरा 6

कहरवा 8

दीपचंदी 14

अद्धा 16

पंजाबी 16

दादरा और कहरवा ताल ठुमरी की मधुरता को विशेष रूप से बढ़ाते हैं।

4. अलंकारों का प्रयोग

ठुमरी गायकी में अनेक अलंकारों का प्रयोग किया जाता है, जैसेकृ

– मुरकी
– खटका
– मींड
– गमक
– कन स्वर

इन अलंकारों के माध्यम से गायन में कोमलता एवं आकर्षण उत्पन्न होता है।

ठुमरी के प्रकार

1. बोल–बाँट ठुमरी

इस शैली में लयकारी तथा तानों का अधिक प्रयोग होता है। यह शैली अपेक्षाकृत चंचल और तकनीकी होती है। इसमें शब्दों को विभिन्न लयों में विभाजित करके प्रस्तुत किया जाता है।

2. बोल–बनाव ठुमरी

यह शैली अत्यंत भावप्रधान होती है। इसमें शब्दों के अर्थ को विस्तारपूर्वक प्रस्तुत किया जाता है। बनारस घराने की ठुमरी मुख्यतः इसी शैली पर आधारित है।

ठुमरी और कथक का संबंध

ठुमरी एवं कथक का संबंध अत्यंत गहरा है। प्रारंभिक काल में ठुमरी कथक नृत्य की संगत के रूप में प्रयुक्त होती थी। कथक नर्तक ठुमरी के बोलों के माध्यम से भाव–अभिनय प्रस्तुत करते थे।

विशेष रूप से राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं, नायिका–भेद तथा श्रृंगार रस को व्यक्त करने के लिए ठुमरी का प्रयोग किया जाता था। कथक में मुखाभिनय और नेत्र–अभिनय के साथ ठुमरी की प्रस्तुति दर्शकों को अत्यंत प्रभावित करती थी।

ठुमरी के प्रमुख घराने

लखनऊ घराना

यह घराना नजाकत, अदाओं और नृत्यात्मकता के लिए प्रसिद्ध है। इसमें श्रृंगार रस की प्रधानता दिखाई देती है।

बनारस घराना

बनारस घराने की ठुमरी अत्यंत भावपूर्ण एवं गंभीर मानी जाती है। इसमें शब्दों की स्पष्टता तथा भावों की गहराई को विशेष महत्व दिया जाता है।

पटियाला घराना

पटियाला घराने की ठुमरी में तानों, अलंकारों और स्वर–विस्तार का अधिक प्रयोग मिलता है। यह शैली अधिक तकनीकी मानी जाती है।

प्रमुख ठुमरी कलाकार

भारतीय संगीत जगत में अनेक कलाकारों ने ठुमरी को नई ऊँचाइयाँ प्रदान कीं। इनमें प्रमुख हैंकृ

– बेगम अख्तर
– गिरिजा देवी
– सिद्धेश्वरी देवी
– रसूलन बाई
– शोभा गुर्टू

इन कलाकारों ने अपनी गायकी के माध्यम से ठुमरी को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया।

ठुमरी का सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव

ठुमरी केवल संगीत शैली नहीं, बल्कि भारतीय समाज और संस्कृति का दर्पण भी है। इसमें स्त्री–मन की संवेदनाओं, प्रेम, विरह तथा सामाजिक संबंधों का अत्यंत सूक्ष्म चित्रण मिलता है। ब्रज संस्कृति, राधा–कृष्ण की लीलाएँ तथा लोक–संवेदनाएँ ठुमरी की आत्मा हैं। यही कारण है कि यह शैली जनमानस में गहराई से जुड़ी हुई है।

आधुनिक युग में ठुमरी की प्रासंगिकता

आज के आधुनिक एवं तकनीकी युग में भी ठुमरी अपनी महत्ता बनाए हुए है। संगीत विश्वविद्यालयों, सांस्कृतिक संस्थानों तथा डिजिटल प्लेटफॉर्मों के माध्यम से इसका प्रचार–प्रसार हो रहा है।

यूट्यूब, ऑनलाइन संगीत शिक्षा तथा अंतरराष्ट्रीय संगीत समारोहों के माध्यम से नई पीढ़ी भी इस शैली की ओर आकर्षित हो रही है।

हालाँकि पाश्चात्य संगीत और व्यावसायिकता के प्रभाव के कारण शास्त्रीय संगीत की परंपराओं को चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, फिर भी ठुमरी अपनी विशिष्टता के कारण आज भी जीवित और प्रासंगिक है।

निष्कर्ष

ठुमरी भारतीय शास्त्रीय संगीत की एक अत्यंत कोमल, भावपूर्ण और अनूठी शैली है। यह केवल रागों और स्वरों की प्रस्तुति नहीं, बल्कि मानवीय भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति है। अवध और बनारस की सांस्कृतिक भूमि में विकसित इस शैली ने भारतीय संगीत को नई संवेदनशीलता प्रदान की।

ठुमरी में संगीत, काव्य और नृत्य का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। इसकी मधुरता, कोमलता और भाव–गहनता इसे अन्य गायन शैलियों से विशिष्ट बनाती है। वर्तमान समय में आवश्यकता है कि इस समृद्ध सांगीतिक परंपरा का संरक्षण और संवर्धन किया जाए ताकि आने वाली पीढ़ियाँ भी इस अनमोल धरोहर से परिचित हो सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भातखंडे, विष्णु नारायण – हिंदुस्तानी संगीत पद्धति
2. शर्मा, भगवत शरण – भारतीय संगीत का इतिहास
3. मिश्र, लालमणि – भारतीय संगीत परंपरा
4. चौबे, सुशील कुमार – ठुमरी का विकास
5. दुबे, रमेशचंद्र – बनारस घराने की ठुमरी
6. कपूर, प्रेमलता – लखनऊ की संगीत परंपरा
7. सिंह, उमा – गिरिजा देवी और पूरब अंग ठुमरी
8. शर्मा, उषा – कथक और संगीत
9. नारंग, मोहन – पटियाला घराना और उसकी गायकी
10. संगीत नाटक अकादमी प्रकाशन, नई दिल्ली।

डॉ0 सौरभ वर्मा

सहायक प्रोफेसर

संगीत विभाग

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,

रोहतक

4

छात्र तनाव और आत्महत्या का जोखिमः भारतीय शिक्षा व्यवस्था में कारण, प्रभाव और रोकथाम की बहु–स्तरीय रणनीति

कविता

सारांश

वर्तमान भारतीय समाज में छात्र तनाव एक गंभीर मनो–सामाजिक चुनौती के रूप में उभर रहा है। परीक्षा–दबाव, अंकों की होड़, करियर की अनिश्चितता, अभिभावकीय अपेक्षाएँ, सामाजिक तुलना, डिजिटल माध्यमों का प्रभाव और परामर्श–सुविधाओं की कमी विद्यार्थियों के मानसिक स्वास्थ्य को गहराई से प्रभावित कर रही है। यह तनाव सामान्य शैक्षणिक दबाव तक सीमित नहीं रहताय दीर्घकाल में यह अवसाद, चिंता, आत्मसम्मान में कमी, अकेलापन और निराशा जैसी स्थितियों को जन्म दे सकता है। विश्व स्तर पर आत्महत्या पंद्रह से उनतीस वर्ष के युवाओं में मृत्यु का तीसरा प्रमुख कारण बताई गई है, इसलिए छात्र तनाव को केवल व्यक्तिगत कमजोरी मानना गलत और खतरनाक है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। भारत में वर्ष 2024 के दौरान आत्महत्या से कुल 1,70,746 मौतें दर्ज हुईं, जिनमें 14,488 छात्र थेय यह कुल मामलों का 8.5 प्रतिशत था (राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, 2026)। प्रस्तुत शोध–पत्र छात्र तनाव के प्रमुख कारणों, उसके मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव, आत्महत्या–जोखिम से उसके संबंध और रोकथाम की व्यवहारिक रणनीतियों का विश्लेषण करता है। अध्ययन यह रेखांकित करता है कि विद्यालय, परिवार, समाज और शासन के संयुक्त प्रयास से संवेदनशील, संवादपूर्ण और सहायक वातावरण बनाया जाए तो छात्र आत्महत्या के जोखिम को कम किया जा सकता है।

मुख्य शब्दः छात्र तनाव, आत्महत्या–रोकथाम, मानसिक स्वास्थ्य, परीक्षा–दबाव, अवसाद, परामर्श, पारिवारिक सहयोग, विद्यालयी हस्तक्षेप।

परिचय

छात्र जीवन को अक्सर सीखने, सपने देखने और व्यक्तित्व–विकास का समय माना जाता हैय लेकिन आज यह जीवन–चरण भारी दबाव, तुलना और अनिश्चितता से घिर गया है। कई विद्यार्थियों के लिए स्कूल, कॉलेज और कोचिंग संस्थान सीखने की जगह से अधिक प्रदर्शन की प्रतियोगी भूमि बनते जा रहे हैं। नंबर कम आए, प्रवेश–परीक्षा छूट गई, पसंदीदा विषय न मिला, परिवार निराश हो गयाकृइन सब बातों को छात्र कभी–कभी अपनी पूरी पहचान से जोड़ लेते हैं। यही सबसे खतरनाक मोड़ है।

तनाव स्वयं में हमेशा नकारात्मक नहीं होता। थोड़ी चुनौती व्यक्ति को सजग बनाती है। समस्या तब शुरू होती है जब तनाव लगातार बना रहे, छात्र को आराम, संवाद और सहारा न मिले, और असफलता को जीवन की समाप्ति जैसा अनुभव किया जाए। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार किशोरावस्था मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत संवेदनशील अवधि है, क्योंकि इसी समय शारीरिक, भावनात्मक और सामाजिक बदलाव तेज होते हैंय सुरक्षित परिवार, सहयोगी विद्यालय और मनो–सामाजिक कौशल इस जोखिम को कम कर सकते हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

भारत में यह प्रश्न और गंभीर है, क्योंकि यहाँ शिक्षा को सामाजिक सम्मान, आर्थिक सुरक्षा और पारिवारिक प्रतिष्ठा से गहराई से जोड़ा जाता है। विद्यार्थी कई बार अपने सपनों से अधिक दूसरों की अपेक्षाओं का बोझ उठाते हैं। परिणाम यह होता है कि परीक्षा में असफलता, कम अंक, विषय–चयन की कठिनाई या करियर की अनिश्चितता उन्हें तीव्र मानसिक संकट में डाल सकती है।

छात्र तनाव को केवल "पढ़ाई का दबाव" कहना अधूरा है। यह कई स्तरों पर बनता है। एक तरफ पाठ्यक्रम, गृहकार्य, परीक्षा और प्रवेश प्रतियोगिता हैय दूसरी तरफ परिवार की आकांक्षाएँ, रिश्तेदारों की तुलना, मित्रों की उपलब्धियाँ और सामाजिक माध्यमों पर दिखाई देने वाली चमकदार सफलताएँ हैं। तीसरी तरफ आर्थिक दबाव है। कई परिवार महंगी कोचिंग, हॉस्टल, यात्रा और पाठ्य सामग्री पर भारी खर्च करते हैं। छात्र इसे अपने ऊपर ऋण जैसा महसूस कर सकता है।

राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो के नवीनतम उपलब्ध प्रकाशन में वर्ष 2024 की आत्महत्या संबंधी रिपोर्ट को नवीनतम अंक के रूप में दर्ज किया गया हैय इसी रिपोर्ट पर आधारित विश्लेषण के अनुसार 2024 में छात्रों की आत्महत्या से मृत्यु के 14,488 मामले दर्ज हुए (राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, 2026)। यह आँकड़ा केवल संख्या नहीं है। इसके पीछे टूटे हुए परिवार, असमय समाप्त हुए सपने और व्यवस्था की कमियाँ छिपी हैं।

विश्व स्तर पर भी स्थिति चिंताजनक है। हर वर्ष सात लाख बीस हजार से अधिक लोग आत्महत्या से मरते हैं, और आत्महत्या पंद्रह से उनतीस वर्ष के आयु–वर्ग में मृत्यु का तीसरा प्रमुख कारण है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। इसलिए छात्र आत्महत्या को अलग–थलग घटना मानना ठीक नहीं। यह सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा नीति और सामाजिक संवेदनशीलताकृतीनों से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

छात्र तनाव के प्रमुख कारण

पहला बड़ा कारण है शैक्षणिक प्रतिस्पर्धा। वर्तमान शिक्षा

व्यवस्था में छात्र की योग्यता को अक्सर अंकों और रैंक से मापा जाता है। कक्षा में पहला स्थान, बोर्ड परीक्षा का प्रतिशत, प्रवेश–परीक्षा की रैंक और प्रतिष्ठित संस्थानों में चयनकृये सब मानो जीवन का अंतिम प्रमाण बन जाते हैं। धीमे सीखने वाले, कला–प्रिय, खेल–प्रिय या व्यावहारिक कौशल वाले विद्यार्थी इस व्यवस्था में अक्सर स्वयं को कमतर मानने लगते हैं।

दूसरा कारण है अभिभावकीय अपेक्षा। माता–पिता अपने बच्चों का अच्छा भविष्य चाहते हैं, यह स्वाभाविक है। लेकिन जब अपेक्षा संवाद की जगह आदेश बन जाए, और सहयोग की जगह दबाव ले ले, तो छात्र के भीतर भय पैदा होता है। वह अपनी कठिनाइयाँ छिपाने लगता है। कई बार बच्चा यह सोचकर चुप रहता है कि यदि उसने अपनी परेशानी बताई तो परिवार उसे कमजोर, आलसी या असफल समझेगा।

तीसरा कारण है करियर की अनिश्चितता। बारहवीं कक्षा के बाद विषय, कॉलेज और रोजगार से जुड़े निर्णय विद्यार्थी को असमंजस में डालते हैं। चिकित्सा, अभियांत्रिकी, प्रशासन, वाणिज्य और अन्य लोकप्रिय क्षेत्रों की प्रतियोगिता इतनी तीव्र है कि असफलता की संभावना बहुत बड़ी दिखाई देती है। इसी कारण कोचिंग–केंद्रित संस्कृति में छात्र सुबह से रात तक तैयारी करता है, पर भावनात्मक तैयारी पीछे छूट जाती है।

चौथा कारण है डिजिटल तुलना। सामाजिक माध्यमों पर दूसरों की सफलता, जीवनशैली, अंक, पुरस्कार और खुशहाल तस्वीरें लगातार दिखाई देती हैं। छात्र अपनी पूरी वास्तविकता की तुलना दूसरों की चुनी हुई झलकियों से करता है। यह तुलना आत्मसम्मान को चोट पहुँचाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन भी मानता है कि किशोरों की मानसिक स्थिति पर माध्यमों का प्रभाव, सामाजिक मानदंड और भविष्य से जुड़ी धारणाएँ असर डालती हैं (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)।

पाँचवाँ कारण है सहायता लेने में झिझक। भारत में मानसिक स्वास्थ्य पर अभी भी कलंक मौजूद है। यूनिसेफ और गैलप के एक सर्वेक्षण में भारत के केवल 41 प्रतिशत युवाओं ने माना कि मानसिक स्वास्थ्य समस्या के लिए सहायता लेना अच्छा है, जबकि इक्कीस देशों का औसत 83 प्रतिशत था (यूनिसेफ, 2021)। यह अंतर बताता है कि हमारे यहाँ समस्या केवल तनाव की नहीं, सहायता तक पहुँच और सहायता स्वीकार करने की भी है।

तनाव से आत्महत्या–जोखिम तक की मनो–सामाजिक कड़ी हर तनावग्रस्त छात्र आत्महत्या के जोखिम में नहीं होता। यह बात स्पष्ट रहनी चाहिए। लेकिन लगातार तनाव, अकेलापन, अवसाद, निराशा, आत्म–दोष और सहायता की अनुपस्थिति मिलकर जोखिम को बढ़ा सकते हैं। जब विद्यार्थी को लगता है कि उसकी समस्या का कोई समाधान नहीं है, उसके भविष्य का रास्ता बंद है, और उसकी असफलता से परिवार की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाएगी, तब मानसिक संकट अत्यंत गंभीर हो सकता है।

अवसाद इस कड़ी में विशेष भूमिका निभाता है। अवसाद केवल उदासी नहीं हैय इसमें रुचि की कमी, थकान, नींद की समस्या, ध्यान घट जाना, अपराधबोध, आत्मसम्मान में गिरावट और निराशा शामिल हो सकते हैं। मणिपुर के इम्फाल में कक्षा नौ से बारह तक के 861 विद्यार्थियों पर हुए एक अध्ययन में उच्च शैक्षणिक तनाव 88.3 प्रतिशत, प्रमुख अवसादी लक्षण 41.7 प्रतिशत और आत्महत्या–विचार 43.9 प्रतिशत विद्यार्थियों में पाया गयाय अध्ययन में यह भी पाया गया कि शैक्षणिक तनाव और आत्महत्या–विचार के बीच संबंध में अवसादी लक्षणों की मध्यस्थ भूमिका थी (खुमनलंबम एवं सहयोगी, 2025) ।

यह अध्ययन पूरे भारत का प्रतिनिधि नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह एक क्षेत्र–विशेष पर आधारित था। फिर भी इसकी चेतावनी तीखी हैरू स्कूलों में मानसिक स्वास्थ्य की नियमित जाँच, तनाव–प्रबंधन, अवसाद की शुरुआती पहचान और सुरक्षित परामर्श व्यवस्था आवश्यक है। शोधकर्ताओं ने भी विद्यालय–आधारित कार्यक्रमों, तनाव–प्रबंधन, अवसाद–जाँच और सहपाठी सहयोग को महत्वपूर्ण बताया (खुमनलंबम एवं सहयोगी, 2025) ।

भारतीय परिप्रेक्ष्य और वर्तमान आँकड़े

भारत की शिक्षा व्यवस्था विशाल है। करोड़ों विद्यार्थी अलग–अलग भाषाओं, वर्गों, क्षेत्रों और आर्थिक परिस्थितियों से आते हैं। इस विविधता के बावजूद कुछ दबाव साझा हैंकृअंक, प्रवेश, रोजगार और सामाजिक प्रतिष्ठा। राष्ट्रीय स्तर पर वर्ष 2024 में आत्महत्या से 1,70,746 मौतें दर्ज हुईं, और इनमें छात्रों की संख्या 14,488 थीय उपलब्ध विश्लेषण के अनुसार यह संख्या वर्ष 2023 की तुलना में लगभग 4.3 प्रतिशत अधिक थी (राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, 2026)।

राज्यवार दृष्टि से महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और तमिलनाडु में छात्र आत्महत्या के मामले अधिक दर्ज हुएय इन चार राज्यों का संयुक्त हिस्सा लगभग 43 प्रतिशत बताया गया (जैन, 2026)। यह बताता है कि समस्या केवल किसी एक शहर, बोर्ड या परीक्षा की नहीं है। शहरी और ग्रामीण दोनों संदर्भों में यह संकट अलग–अलग रूप ले सकता है।

चिकित्सा शिक्षा में भी मानसिक स्वास्थ्य का दबाव गंभीर है। भारत के स्नातक चिकित्सा छात्रों पर आधारित

व्यवस्थित समीक्षा और मेटा–विश्लेषण में 43 अध्ययनों के 15,557 विद्यार्थियों का विश्लेषण किया गया। इसमें अवसाद की संयुक्त व्यापकता 48 प्रतिशत, चिंता 54 प्रतिशत, तनाव 50 प्रतिशत और आत्महत्या–विचार 21 प्रतिशत पाया गया (कौर एवं सहयोगी, 2024) । यह संकेत देता है कि उच्च शिक्षा, विशेषकर पेशेवर पाठ्यक्रमों में, मानसिक स्वास्थ्य सहायता को वैकल्पिक सुविधा नहीं बल्कि अनिवार्य व्यवस्था माना जाना चाहिए।

शिक्षण संस्थानों की भूमिका

विद्यालय और महाविद्यालय छात्र के जीवन में केवल पाठ्य ज्ञान देने वाली संस्थाएँ नहीं हैं। वे सामाजिक सुरक्षा–क्षेत्र भी हैं। शिक्षक यदि केवल अंक देखने वाले निरीक्षक बन जाएँ तो विद्यार्थी की कठिनाई छूट जाती है। लेकिन शिक्षक यदि व्यवहार, उपस्थिति, अचानक गिरते प्रदर्शन, अलगाव, चिड़चिड़ापन और निराशा के संकेत पहचान सकें, तो वे शुरुआती सहायता का पुल बन सकते हैं।

शिक्षण संस्थानों को तीन स्तरों पर कार्य करना चाहिए। पहला, सार्वभौमिक स्तरकृसभी विद्यार्थियों के लिए मानसिक स्वास्थ्य साक्षरता, जीवन–कौशल, भावनात्मक अभिव्यक्ति, समय–प्रबंधन और परीक्षा–तनाव प्रबंधन। दूसरा, लक्षित स्तरकृउन विद्यार्थियों के लिए अतिरिक्त सहयोग जिनका प्रदर्शन अचानक गिर रहा है, जो अनुपस्थित रहते हैं, अकेले पड़ रहे हैं या गंभीर चिंता दिखा रहे हैं। तीसरा, विशेषज्ञ स्तरकृउन विद्यार्थियों के लिए मनोवैज्ञानिक, मनोचिकित्सक या प्रशिक्षित परामर्शदाता तक त्वरित और गोपनीय पहुँच।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की आत्महत्या–रोकथाम पहल किशोरों में सामाजिक–भावनात्मक जीवन–कौशल को महत्वपूर्ण हस्तक्षेप मानती हैय विद्यालय–आधारित सामाजिक–भावनात्मक कार्यक्रमों को मानसिक स्वास्थ्य सुधार और आत्महत्या–रोकथाम से जोड़ा गया है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2019)। एक समीक्षा में भी पाया गया कि सामाजिक–भावनात्मक अधिगम के घटक युवाओं में निराशा, चिंता और अन्य जोखिम–कारकों को कम करने में उपयोगी हो सकते हैं (पोसामेंटियर, सेइबेल एवं डाइटैंग, 2023)।

कोचिंग संस्थानों की भूमिका भी उतनी ही महत्वपूर्ण है। भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने कोचिंग केंद्रों के विनियमन हेतु दिशानिर्देशों में मानसिक कल्याण, परामर्शदाताओं और मनोवैज्ञानिकों के सहयोग, बैच–विभाजन न करने, रिकॉर्ड–संरक्षण और शिकायत व्यवस्था जैसे बिंदुओं पर बल दिया है (भारत सरकार, 2024)। यह कदम इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि कोचिंग संस्थानों में छात्र अक्सर परिवार से दूर, तीव्र प्रतिस्पर्धा और अकेलेपन के बीच रहते हैं।

परिवार और समाज की भूमिका

परिवार छात्र के लिए पहला सुरक्षा–वृत्त है। लेकिन वही परिवार यदि केवल परिणाम पूछे, तुलना करे और असफलता पर अपमानित करे, तो सुरक्षा–वृत्त दबाव–वृत्त बन जाता है। माता–पिता को यह समझना होगा कि बच्चे की भावनात्मक सुरक्षा, अंकपत्र से बड़ी है। बच्चा जब अपनी परेशानी बताए तो तुरंत उपदेश, डाँट या तुलना न की जाए। पहले सुना जाए। यह सरल बात है, मगर असरदार है।

अभिभावकों को परिणाम के बजाय प्रयास, अनुशासन और सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान देना चाहिए। बच्चे से यह कहना जरूरी है कि एक परीक्षा, एक प्रवेश या एक असफलता जीवन का अंतिम निर्णय नहीं है। घर में संवाद का वातावरण होना चाहिए, जहाँ छात्र यह कह सके कि वह थक गया है, डर रहा है, समझ नहीं पा रहा, या सहायता चाहता है। ऐसी बातें कमजोरी नहीं, स्वस्थ संवाद के संकेत हैं।

समाज को भी सफलता की परिभाषा व्यापक बनानी होगी। हर विद्यार्थी चिकित्सक, अभियंता या प्रशासक नहीं बनेगा। और यह कोई कमी नहीं। कला, कौशल, खेल, उद्यम, सेवा, खेती, तकनीकी कार्य, शिक्षण, अनुसंधान, भाषा, डिजाइन, देखभाल और अनेक क्षेत्रों में सम्मानजनक जीवन संभव है। जब समाज केवल कुछ पेशों को ही प्रतिष्ठित मानता है, तब लाखों बच्चों को अनावश्यक हीनता में धकेल देता है।

नीतिगत प्रयास और हस्तक्षेप

भारत में मानसिक स्वास्थ्य सहायता की पहुँच बढ़ाने के लिए कई सरकारी प्रयास किए गए हैं। टेली–मानस कार्यक्रम 10 अक्टूबर 2022 को शुरू हुआ। सरकारी जानकारी के अनुसार 3 मार्च 2026 तक 36 राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में 53 टेली–मानस कक्ष स्थापित थे, सेवाएँ 20 भाषाओं में उपलब्ध थीं और हेल्पलाइन पर 34.34 लाख से अधिक कॉल संभाले जा चुके थे (पत्र सूचना कार्यालय, 2026)। यह सुविधा उन छात्रों और परिवारों के लिए उपयोगी हो सकती है जिन्हें तुरंत भावनात्मक सहायता या मार्गदर्शन चाहिए।

मनोदर्पण पहल भी छात्रों, शिक्षकों और परिवारों को मनो–सामाजिक समर्थन देने के उद्देश्य से बनाई गई है। सरकार के अनुसार यह पहल परामर्श, दृश्य–श्रव्य सामग्री, मार्गदर्शन और संवाद–सत्रों के माध्यम से विद्यार्थियों को शैक्षणिक तनाव और भावनात्मक चुनौतियों से निपटने में मदद करती है (पत्र सूचना कार्यालय, 2026)। ऐसी पहलें तभी प्रभावी होंगी जब विद्यालय

इन्हें केवल वेबसाइट या सूचना–पत्र तक सीमित न रखें, बल्कि नियमित कक्षा–चर्चा, शिक्षक–प्रशिक्षण और छात्र–परामर्श से जोड़ें।

विद्यालयी स्तर पर भावनात्मक कल्याण को पाठ्यचर्या में स्थान देना आवश्यक है। स्वास्थ्य और कल्याण दूतों के माध्यम से छात्रों तक मानसिक स्वास्थ्य संबंधी संदेश पहुँचाने की व्यवस्था की गई है, पर उसे मजबूत निरीक्षण, संसाधन और प्रशिक्षित विशेषज्ञों की आवश्यकता है (पत्र सूचना कार्यालय, 2026) ।

प्रभावी रोकथाम के सुझाव

पहला सुझाव हैकृहर विद्यालय और महाविद्यालय में प्रशिक्षित परामर्शदाता उपलब्ध हो। परामर्श कक्ष को दंड–कक्ष जैसा नहीं, भरोसे की जगह जैसा बनाया जाए। छात्र को यह आश्वासन मिले कि उसकी बात गोपनीय और सम्मानजनक ढंग से सुनी जाएगी।

दूसरा, शिक्षक–प्रशिक्षण अनिवार्य हो। शिक्षक को यह पहचानना आना चाहिए कि छात्र कब सामान्य उदासी से आगे बढ़कर गंभीर संकट में है। उपस्थिति में गिरावट, अचानक मौन, तीव्र चिड़चिड़ापन, बार–बार असफलता की बात, स्वयं को बोझ बताना, मित्रों से कटना और पढ़ाई में रुचि खोनाकृये संकेत अनदेखे नहीं किए जाने चाहिए।

तीसरा, मूल्यांकन प्रणाली में सुधार हो। केवल अंतिम परीक्षा पर आधारित व्यवस्था विद्यार्थी को असुरक्षित बनाती है। सतत मूल्यांकन, परियोजना कार्य, मौखिक प्रस्तुति, व्यावहारिक कौशल, खेल और रचनात्मक गतिविधियों को महत्व देकर एकल परीक्षा–दबाव कम किया जा सकता है।

चौथा, करियर–परामर्श को मजबूत किया जाए। बहुत से छात्र इसलिए तनाव में रहते हैं क्योंकि उन्हें विकल्पों की जानकारी नहीं होती। कक्षा नौ से ही रुचि, योग्यता, कौशल और अवसरों पर आधारित करियर मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए।
पाँचवाँ, छात्र–सहयोग समूह बनाए जाएँ। सहपाठी कई बार संकट को सबसे पहले पहचानते हैं। यदि उन्हें संवेदनशील ढंग से सुनना, भरोसेमंद वयस्क तक बात पहुँचाना और अफवाह न फैलाना सिखाया जाए, तो वे रोकथाम की महत्वपूर्ण कड़ी बन सकते हैं।

छठा, माता–पिता के लिए नियमित सत्र हों। विद्यालयों में अभिभावक–शिक्षक बैठक केवल अंक बताने की जगह न रहे। उसमें नींद, भोजन, डिजिटल उपयोग, भावनात्मक संवाद, परीक्षा–दबाव और मानसिक स्वास्थ्य पर भी चर्चा हो।

सातवाँ, आत्महत्या की खबरों और चर्चाओं में जिम्मेदारी हो। सनसनी, दोषारोपण और घटना–विवरण जोखिम बढ़ा सकते हैं। भाषा संवेदनशील होनी चाहिए। ध्यान सहायता, रोकथाम और जीवन–सुरक्षा पर रहे।

छात्र तनाव का प्रश्न केवल मानसिक स्वास्थ्य विभाग से हल नहीं होगा। यह शिक्षा, परिवार, मीडिया, श्रम–बाजार और सामाजिक प्रतिष्ठा की संरचना से जुड़ा हुआ है। जब तक अंकों को मनुष्य से बड़ा माना जाएगा, तब तक छात्र तनाव गहराता रहेगा। कठोर बात है, पर सच हैरू कई बार हमारी शिक्षा व्यवस्था बच्चों को सीखने से अधिक डरना सिखाती है। फिर भी समाधान संभव है। शोध बताता है कि शुरुआती पहचान, सामाजिक–भावनात्मक कौशल, विद्यालयी परामर्श, सहायक परिवार और सुलभ मानसिक स्वास्थ्य सेवा से जोखिम कम किया जा सकता है। विश्व स्वास्थ्य संगठन आत्महत्या–रोकथाम के लिए साधनों तक पहुँच कम करने, जिम्मेदार संवाद, किशोरों में जीवन–कौशल और संकटग्रस्त लोगों की शीघ्र पहचान को प्रभावी हस्तक्षेप मानता है (विश्व स्वास्थ्य संगठन, 2025)। छात्र संदर्भ में इसका अर्थ हैकृसुरक्षित परिसर, प्रशिक्षित शिक्षक, कम अपमानजनक मूल्यांकन, अधिक संवाद और तत्काल सहायता।

भारतीय संदर्भ में शोध की भी कमी है। हमें दीर्घकालिक अध्ययनों की जरूरत है, जो यह समझें कि परीक्षा–दबाव, परिवार, डिजिटल उपयोग, नींद, आर्थिक स्थिति और परामर्श की उपलब्धता मिलकर छात्र मानसिक स्वास्थ्य को कैसे प्रभावित करते हैं। केवल आत्महत्या के बाद आँकड़े गिनना पर्याप्त नहीं। संकट से पहले सुनना होगा। वहीं असली शोध और नीति की परीक्षा है।

निष्कर्षः

छात्र तनाव आज भारत की सबसे गंभीर शिक्षा–संबंधी और मनो–सामाजिक चुनौतियों में से एक है। यह समस्या केवल कमजोर इच्छाशक्ति, खराब अनुशासन या कम मेहनत का परिणाम नहीं है। इसके पीछे प्रतिस्पर्धी शिक्षा व्यवस्था, ऊँची पारिवारिक अपेक्षाएँ, करियर–अनिश्चितता, सामाजिक तुलना, मानसिक स्वास्थ्य पर कलंक और सहायता–सुविधाओं की कमी जैसे अनेक कारण काम करते हैं। जब ये कारण लंबे समय तक बने रहते हैं, तो कुछ विद्यार्थियों में अवसाद, चिंता, निराशा और आत्महत्या–जोखिम बढ़ सकता है।

समाधान दंड में नहीं, सहारे में है। विद्यालयों को सुरक्षित और संवेदनशील बनाना होगा। परिवारों को तुलना की भाषा छोड़कर संवाद की भाषा अपनानी होगी। सरकार को परामर्श सेवाएँ, शिक्षक–प्रशिक्षण, कोचिंग विनियमन और मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों को जमीन पर मजबूत करना होगा।

समाज को सफलता की संकीर्ण परिभाषा बदलनी होगी। एक छात्र की जान किसी भी अंक, रैंक या प्रवेश–परीक्षा से बड़ी है। यही इस शोध का मुख्य निष्कर्ष है।

संदर्भ

- भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय, (2024), कोचिंग केंद्रों के विनियमन हेतु दिशानिर्देशों पर सूचना, पत्र सूचना कार्यालय, नई दिल्ली
- खुमनलंबम, रवीना, पेंगपिड, सुपा, केंग्गनपनिच, मोन्धा, पेल्ट्जर, कार्ल, एवं सिंह, राजकुमार लेनिन, (2025), मणिपुर, भारत में विद्यालयी किशोरों में शैक्षणिक तनाव और आत्महत्या–विचार के संबंध में प्रमुख अवसादी लक्षणों की मध्यस्थ भूमिका, बी एम सी पब्लिक हेल्थ, 25, लेख 3783, पृष्ठ संख्या नहींय लेख संख्या 3783
- कौर, हरप्रीत, गुप्ता, वर्षा, गर्ग, असीम, संगीता, एवं पढ़ी, बिजय कुमार, (2024), भारत में स्नातक चिकित्सा छात्रों में अवसाद, चिंता, तनाव और आत्महत्या–विचार की व्यापकतारू व्यवस्थित समीक्षा और मेटा–विश्लेषण, नेशनल जर्नल ऑफ कम्युनिटी मेडिसिन, 15(10), 868दृ883
- जैन, ऋत्वि, (2026), छात्रों की आत्महत्या से मृत्यु में वृद्धिरू राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो की 2024 रिपोर्ट क्या बताती है, द वायर, 11 मई 2026
- पत्र सूचना कार्यालय, (2026), टेली–मानस पर अद्यतन, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 23 मार्च 2026
- पोसामेंटियर, जॉर्डन, सेइबेल, कैथरीन, एवं डाइटैंग, नेल, (2023), युवा आत्महत्या–रोकथामरू विद्यालय–आधारित व्यवहारों की समीक्षा और सामाजिक–भावनात्मक अधिगम की भूमिका, ट्रॉमा, वायलेंस ऐंड अब्यूज, 24(2), 746दृ759
- राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो, (2026), भारत में आकस्मिक मौतें एवं आत्महत्याएँ, 2024, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, प्रासंगिक पृष्ठरू 240दृ242
- यूनिसेफ, (2021), दुनिया के बच्चों की स्थिति 2021रू मेरे मन मेंकृबच्चों के मानसिक स्वास्थ्य का संवर्धन, संरक्षण और देखभाल, यूनिसेफ, न्यूयॉर्क
- विश्व स्वास्थ्य संगठन, (2019), युवाओं में सामाजिक–भावनात्मक जीवन–कौशल को बढ़ावा देना, विश्व स्वास्थ्य संगठन
- विश्व स्वास्थ्य संगठन, (2025), आत्महत्या, तथ्य–पत्र, 25 मार्च 2025
- विश्व स्वास्थ्य संगठन, (2025), किशोर मानसिक स्वास्थ्य, तथ्य–पत्र, 1 सितंबर 2025

Kavita 20190383,
TGT (S.St.)
GGSSS, Tikri Kalan (Delhi)
Email: Kavita_sindhu@yahoo.in

5

रामायण से हर्षवर्धन काल तक तन्त्री वाद्यों की परम्परारू वीणा, बल्लकी, याल और किन्नरी का साहित्यिक–सांस्कृतिक अध्ययन

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार

सारांश

भारतीय संगीत परम्परा में तन्त्री वाद्यों का स्थान अत्यंत प्राचीन, प्रतिष्ठित और बहुस्तरीय रहा है। रामायण, महाभारत, पाणिनि–परम्परा, जैन–बौद्ध साहित्य, नाट्यशास्त्र, तमिल साहित्य और मध्यकालीन संगीत–ग्रंथों में वीणा तथा उसके विविध रूपों का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि तारयुक्त वाद्य केवल मनोरंजन के साधन नहीं थे, बल्कि गायन, काव्य–पाठ, नृत्य, धार्मिक अनुष्ठान, राजसभा और सांस्कृतिक शिक्षण के महत्त्वपूर्ण अंग थे। वाल्मीकि रामायण में लव–कुश के गायन को तन्त्री और लय से संयुक्त बताया गया है, जिससे संगीत–शिक्षा में वाद्य–संगति की प्राचीनता सिद्ध होती है। महाभारत में वीणा, बल्लकी, वेणु और तन्त्री के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि युद्धप्रधान वातावरण के साथ–साथ कोमल, मांगलिक और कलात्मक संगीत भी विकसित था। पाणिनि–कालीन संदर्भों में वीणा, अपवीणा, निक्वाण और परिवादक जैसे शब्द तन्त्री वाद्यों की तकनीकी समझ को प्रकट करते हैं। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में वाद्यों का तन्त्री, अवनद्ध, घन और सुषिर वर्गीकरण भारतीय वाद्य–विज्ञान का व्यवस्थित रूप प्रस्तुत करता है (भरतमुनि, 1951)। प्रस्तुत शोध–पत्र तन्त्री वाद्यों की ऐतिहासिक निरन्तरता, सांगीतिक उपयोगिता, सामाजिक भूमिका और वर्तमान संरक्षण–चेष्टाओं का विश्लेषण करता है।

मुख्य शब्दः तन्त्री वाद्य, वीणा, बल्लकी, याल, किन्नरी, रामायण, महाभारत, नाट्यशास्त्र, भारतीय संगीत, वाद्य–विज्ञान।

परिचय

भारतीय संगीत का इतिहास केवल रागों, स्वरों और तालों का इतिहास नहीं है। यह वाद्यों, अनुष्ठानों, कथाओं, राजसभाओं और लोक–स्मृति का भी इतिहास है। इसमें तन्त्री वाद्यों की भूमिका विशेष है, क्योंकि तार से उत्पन्न नाद को भारतीय परम्परा ने मानवीय कंठ के अत्यंत निकट माना। वीणा इसी परम्परा का सबसे प्रतिष्ठित प्रतीक रही है। कभी यह एक विशिष्ट वाद्य के रूप में मिलती है, कभी तारयुक्त वाद्यों के व्यापक नाम के रूप में। यही बात इसे शोध के लिए रोचक बनाती है।

प्रस्तुत अध्ययन रामायण से लेकर हर्षवर्धन और मतंग–परम्परा तक तन्त्री वाद्यों की स्थिति को समझने का प्रयास करता है। यहाँ "रामायण काल" और "महाभारत काल" को प्रत्यक्ष पुरातात्त्विक काल–निर्धारण के रूप में नहीं, बल्कि ग्रंथीय–सांस्कृतिक संदर्भ के रूप में ग्रहण किया गया है। यह सावधानी आवश्यक है, क्योंकि महाकाव्यों की रचना, संपादन और प्रसार अनेक शताब्दियों में हुआ। अतः किसी एक निश्चित वर्ष को अंतिम ऐतिहासिक सत्य मानना उचित नहीं होगा। फिर भी इन ग्रंथों में संगीत और वाद्यों के उल्लेख भारतीय समाज की सांगीतिक चेतना को समझने के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।

रामायण में संगीत जीवन की सहज अनुभूति के रूप में उपस्थित है। बालकाण्ड में वाल्मीकि द्वारा रचित रामकथा को लव और कुश के गायन योग्य बताया गया है। उस वर्णन में यह काव्य पाठ्य और गेय, तीन प्रमाणों से युक्त, सात जातियों से संयुक्त तथा तन्त्री और लय सहित कहा गया है (वाल्मीकि, बालकाण्ड 1.4.8)। इसी प्रसंग में लव–कुश को गान्धर्व तत्त्व के ज्ञाता और स्थान–मूर्छना में दक्ष कहा गया है (वाल्मीकि, बालकाण्ड 1.4.10)। इससे यह स्पष्ट होता है कि रामायण में काव्य, गायन, लय और तन्त्री वाद्य अलग–अलग नहीं, बल्कि एक संयुक्त कलात्मक प्रणाली के रूप में देखे गए हैं।

किष्किन्धाकाण्ड में राम वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए वन की प्राकृतिक ध्वनियों को संगीत से जोड़ते हैं। भौंरों की गुंजार को तन्त्री–स्वर, मेघ–गर्जना को मृदंग–नाद और मेंढकों की ध्वनि को ताल–संबंधी स्वर–व्यवस्था से जोड़ा गया है। यह केवल काव्यात्मक कल्पना नहीं हैय यह बताती है कि संगीत की भाषा इतनी विकसित थी कि प्रकृति की ध्वनियों को भी वाद्य–रूपकों के माध्यम से समझा जा सकता था। टिप्पणीकार ने भी यहाँ वीणा, मृदंग और ताल के संकेत को संगीत–शास्त्रीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है (वाल्मीकि, किष्किन्धाकाण्ड 28)।

रामायण में गान्धर्वों और अप्सराओं की उपस्थिति भी महत्त्वपूर्ण है। गान्धर्व गान और वाद्य में निपुण माने गए, जबकि अप्सराएँ नृत्य से जुड़ी रहीं। इस प्रकार संगीत को केवल लौकिक विनोद नहीं, बल्कि दैवी और सांस्कृतिक क्षेत्र से भी जोड़ा गया। सुग्रीव के महल में लक्ष्मण द्वारा वीणा के साथ ताल–स्वरयुक्त गीत सुनना इस बात का संकेत है कि राजमहलों में तन्त्री वाद्यों का उपयोग औपचारिक और कलात्मक दोनों रूपों में होता था। रामायण की दृष्टि से वीणा गायन को मधुर, प्रभावी और आकर्षक बनाने वाला प्रधान वाद्य थी।

महाभारत में तन्त्री वाद्यों का स्वरूप कुछ अधिक व्यापक दिखाई देता है। महाभारत युद्धप्रधान महाकाव्य है, इसलिए उसमें शंख, भेरी, दुन्दुभि और पणव जैसे ऊँचे नाद वाले वाद्यों का उल्लेख अधिक है। फिर भी वीणा, वेणु, बल्लकी और तन्त्री जैसे वाद्य मांगलिक, कोमल और कलात्मक प्रसंगों में मिलते हैं। गौरी लाड के

अध्ययन के अनुसार महाभारत में चौबीस प्रकार के वाद्यों का उल्लेख हैय उनमें युद्ध–संगीत के वाद्य अधिक हैं, पर वीणा और वेणु को हल्के, मधुर और आनंदप्रधान संगीत से जोड़ा गया है (लाड, 1978)।

महाभारत में बल्लकी का उल्लेख वीणा से अलग वाद्य के रूप में भी मिलता है। इससे यह अनुमान बनता है कि "वीणा" और "बल्लकी" कभी–कभी समान जाति के तारयुक्त वाद्य होते हुए भी भिन्न रूपों में पहचाने जाते थे। लाड ने लिखा है कि बल्लकी का उल्लेख अनुषासनपर्व में वीणा और वेणु के साथ आता है, जहाँ अप्सराएँ इन वाद्यों का वादन करती हैं (लाड, 1978)। इसी अध्ययन में वीणा को सामान्यतः सप्ततन्त्री अर्थात सात तारों वाला वाद्य माना गया है तथा नारद की कच्छपी वीणा का भी उल्लेख मिलता है (लाड, 1978)।

महाभारत की एक विशेषता यह है कि इसमें संगीत दो स्तरों पर चलता है। पहला स्तर है युद्ध–संगीत, जहाँ शंख और नगाड़े सैनिकों में उत्साह उत्पन्न करते हैं। दूसरा स्तर है कलात्मक–सामाजिक संगीत, जहाँ वीणा, वेणु और बल्लकी राजकुमारों, सभाओं, अप्सराओं और मनोरंजन प्रसंगों से जुड़े हैं। इससे स्पष्ट है कि तन्त्री वाद्य केवल रणभूमि के बाहर की कोमलता नहीं, बल्कि सभ्यता की सूक्ष्म रुचि के सूचक थे।

पाणिनि काल में तन्त्री वाद्यों का अध्ययन भाषिक और सांस्कृतिक प्रमाणों से किया जा सकता है। पाणिनि की अष्टाध्यायी का काल विद्वानों में विवादग्रस्त रहा है, पर सामान्य अकादमिक मत उसे लगभग छठी से पाँचवीं ईसा–पूर्व शताब्दी के बीच रखता है । पाणिनि का मुख्य क्षेत्र व्याकरण है, फिर भी उसके सूत्रों और बाद की व्याख्याओं से तत्कालीन कला–जीवन की झलक मिलती है।

कौंडिन्य के अध्ययन के अनुसार अष्टाध्यायी में गान, वाद्य, नृत्य, नाट्य और कलाकारों से जुड़े अनेक शब्द मिलते हैं। वीणा के साथ गाने की क्रिया, वीणा–विहीन गायन के लिए अपवीणम्, वीणा–ध्वनि के लिए निक्वाण या निक्वण, और वाद्य–वादक के लिए परिवादक जैसे पद इस बात का संकेत हैं कि तन्त्री वाद्य के प्रयोग, ध्वनि और तकनीक के लिए विशिष्ट शब्दावली विकसित थी (कौंडिन्य, 2008)।

यहाँ एक रोचक बात सामने आती है। यदि अपवीणम् का अर्थ वीणा के बिना गायन है, तो इससे अनुमान होता है कि कुछ प्रसंगों में वीणा–संगति को आदर्श माना जाता था। गान यदि वीणा से रहित हो तो उसे अलग से चिन्हित करने की आवश्यकता तभी होगी जब वीणा–संगति सामान्य या श्रेष्ठ समझी जाती रही हो। इसी प्रकार परिवादक शब्द यह बताता है कि वादन के उपकरण, नख, मिजराब या किसी अन्य आघात–साधन की तकनीकी चर्चा भी प्रचलित रही होगी।

बौद्ध और जैन साहित्य में भी तन्त्री वाद्यों के संकेत मिलते हैं। बौद्ध कथाओं में राजमहलों, नृत्य–सभाओं और उत्सवों में वीणा तथा अन्य तारयुक्त वाद्यों की उपस्थिति दिखाई देती है। जैन परम्परा में संगीत को लौकिक कला के साथ–साथ धार्मिक और सांस्कृतिक विधानों से भी जोड़ा गया। उपयोगकर्ता द्वारा दिए गए आधार–पाठ में स्थानांग, रायपसेणीय और कल्पसूत्र जैसे ग्रंथों का उल्लेख इसी दिशा की ओर संकेत करता है। परन्तु यहाँ सावधानी आवश्यक हैरू इन ग्रंथों के अलग–अलग संस्करणों में विवरण बदल सकते हैं, इसलिए किसी विशेष वाद्य–सूची को अंतिम मानने से पहले मूल पाठ और टीका का परीक्षण अपेक्षित है।

जैन–सांस्कृतिक संदर्भ में राजा उदयन की वीणा–कुशलता प्रसिद्ध कथा–परंपरा का हिस्सा है। उदयन और वासवदत्ता की कथा संस्कृत नाटकों तथा प्राकृत–सांस्कृतिक स्मृति में संगीत–शिक्षा, प्रेम और राजनीति के साथ जुड़ती है। यह कथा बताती है कि वीणा केवल कलात्मक उपकरण नहीं थीय वह राजनय, शिक्षा और सामाजिक प्रतिष्ठा से भी जुड़ी थी। इसीलिए जैन और लौकिक साहित्य में संगीतज्ञ राजा का आदर्श बार–बार दिखाई देता है।

तमिल साहित्य में याल तन्त्री वाद्यों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण परम्परा का प्रतिनिधि है। याल को प्राचीन तमिल हार्प–प्रकार का वाद्य माना जाता है। उपलब्ध अध्ययनों के अनुसार पेरियाल में इक्कीस तार, सकोड याल में चौदह तार और सेंगोट्टी याल में सात तार बताए गए हैंय कुछ सूचियों में मकर याल को सत्रह तारों वाला भी कहा गया है (कौंडिन्य, 2008)। यह तथ्य बताता है कि दक्षिण भारतीय परम्परा में तार–संख्या, आकार और स्वर–सीमा के आधार पर वाद्यों का वर्गीकरण विकसित था। याल और वीणा का संबंध विशेष ध्यान देने योग्य है। याल में निश्चित तारों से सीधी ध्वनियाँ उत्पन्न होती थीं, जबकि बाद में परदेदार वीणा ने गमक, स्वर–वक्रता और सूक्ष्म नाद की अधिक संभावनाएँ दीं। यही कारण है कि धीरे–धीरे परदेदार वीणा ने कलात्मक संगीत में बड़ी जगह बनाई। आधुनिक समय में याल को पुनर्जीवित करने के प्रयास भी हुए हैं। वर्ष 2025 की एक रिपोर्ट में चेन्नई के वाद्य–निर्माता तरुण शेखर द्वारा याल को पुनर्निर्मित करने, तमिल साहित्य से उसके रूप को समझने और आधुनिक कलाकारों तक पहुँचाने के प्रयासों का उल्लेख मिलता है (प्रीति, 2025)।

भरतमुनि का नाट्यशास्त्र भारतीय वाद्य–विज्ञान की सबसे

व्यवस्थित प्राचीन व्याख्याओं में से एक है। संस्कृति मंत्रालय के भारतीय संस्कृति पोर्टल के अनुसार नाट्यशास्त्र में वाद्यों को चार वर्गों तत या तन्त्री, अवनद्ध, घन और सुषिर में रखा गया हैय इस वर्गीकरण का आधार ध्वनि उत्पन्न करने की विधि है । नाट्यशास्त्र के अट्ठाईसवें अध्याय में तन्त्री वाद्य, मृदंग, पणव, दर्दुर, वेणु और वीणा आदि को नाट्य–प्रयोग से जोड़ा गया है (भरतमुनि, 1951, अध्याय 28)।

नाट्यशास्त्र का महत्त्व इसलिए भी है कि उसमें संगीत को केवल गायन नहीं माना गया। वहाँ गान, वाद्य और नाट्य एक संयुक्त कलात्मक विधान के रूप में उपस्थित हैं। भरतमुनि वीणा को स्वर–संरचना का आधार मानते हैं। अध्याय 28 में यह भी कहा गया है कि स्वरों के दो आधार हैं मानव–कंठ और वीणा (भरतमुनि, 1951, अध्याय 28)। इसका अर्थ है कि वीणा को स्वर–ज्ञान, श्रुति, ग्राम, मूर्छना और जाति की समझ के लिए मानक वाद्य के रूप में देखा गया।

हर्षवर्धन के समय और उसके आसपास भारतीय संगीत में राजाश्रय तथा नाट्य–परम्परा दोनों सक्रिय रहे। इस काल के संदर्भ में वीणा के अनेक प्रकार परिवादिनी, घोषवती, विपंची, बल्लकी और किन्नरी की चर्चा मिलती है। पर मतंग मुनि और बृहद्देशी के काल को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ स्रोत बृहद्देशी को छठी से आठवीं शताब्दी के आसपास रखते हैं, जबकि ब्रिटानिका में मतंग को लगभग दसवीं शताब्दी से जोड़ा गया है (ब्रिटानिका संपादक)। इसलिए मतंग को सीधे हर्षवर्धन का समकालीन कहना सावधानी माँगता है।

फिर भी बृहद्देशी का महत्त्व निर्विवाद है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अनुसार यह ग्रंथ नाट्यशास्त्र और दत्तिलम् के बाद तथा संगीत रत्नाकर से पहले भारतीय संगीत–चिन्तन की महत्त्वपूर्ण कड़ी है। इस ग्रंथ का संपादन कठिन माना गया, क्योंकि पाठ को बाद के लेखकों द्वारा दिए गए उद्धरणों से पुनर्निर्मित करना पड़ा (इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र)। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भारतीय संगीत–ग्रंथों की परम्परा केवल सीधी रेखा में नहीं चलतीय वह उद्धरण, टीका, पुनर्पाठ और व्यावहारिक परंपरा के सहारे बचती है।

किन्नरी वीणा इस ऐतिहासिक निरन्तरता का सुंदर उदाहरण है। आधुनिक संग्रहालय–साक्ष्य बताते हैं कि किन्नरी वीणा तीन कद्दू–तुम्बों वाली तन्त्री वीणा का रूप रही है। मेट्रोपॉलिटन संग्रहालय के एक उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय किन्नरी वीणा नमूने में लकड़ी और कद्दू का उपयोग, तीन अनुनादक और नलिका–जैसी तन्त्री संरचना दर्ज है। आधुनिक अनुसंधान ने पुराने वाद्यों की तिथि–जांच में भी रुचि दिखाई है। दुरीयर और सहयोगियों ने पेरिस के संग्रहालय में सुरक्षित किन्नरी वीणा और रुद्र वीणा पर कार्बन–तिथि अध्ययन करके किन्नरी वीणा के लिए सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध का संभावित काल–मान सुझाया (दुरीयर एवं सहयोगी, 2019)।

वर्तमान संरक्षण–कार्य भी उल्लेखनीय है। संगीत नाटक अकादमी की अदृश्य सांस्कृतिक विरासत योजना में "किन्नरी वीणा का पुनर्निर्माणरू लोक–शास्त्रीय निरन्तरता" शीर्षक से परियोजना स्वीकृत हुई थी (संगीत नाटक अकादमी, 2024)। यह बताता है कि तन्त्री वाद्य केवल संग्रहालय की वस्तु नहीं हैंय वे जीवित संगीत–परम्परा में लौटने की क्षमता रखते हैं। इस पूरे अध्ययन से एक केंद्रीय तथ्य सामने आता हैरू वीणा भारतीय संस्कृति में केवल वाद्य नहीं, बल्कि ज्ञान, कला, लय, कंठ–साधना और सभ्यता की ध्वन्यात्मक स्मृति है। रामायण में वह काव्य–गायन की सहचरी है। महाभारत में वह युद्ध–संस्कृति के बाहर की कोमल कलात्मकता है। पाणिनि के यहाँ वह भाषा और कला–शब्दावली का हिस्सा है। नाट्यशास्त्र में वह स्वर–विज्ञान का आधार है। तमिल परम्परा में याल के रूप में वह क्षेत्रीय ध्वनि–संस्कृति बनती है। बृहद्देशी और बाद की परम्पराओं में वह राग, देशी संगीत और गमक–विस्तार की भूमि तैयार करती है।

निष्कर्ष

भारतीय तन्त्री वाद्यों का इतिहास अत्यंत प्राचीन और बहुआयामी है। उपलब्ध ग्रंथीय प्रमाण बताते हैं कि वीणा, बल्लकी, विपंची, परिवादिनी, कच्छपी, याल और किन्नरी जैसे वाद्य अलग–अलग कालों और क्षेत्रों में गान, नृत्य, नाट्य, धर्म, राजसभा और लोक–जीवन से जुड़े रहे। रामायण में लव–कुश का तन्त्री–लययुक्त गायन, किष्किन्धाकाण्ड का प्रकृति–संगीत, महाभारत में वीणा–बल्लकी–वेणु की उपस्थिति, पाणिनि की तकनीकी शब्दावली और भरतमुनि का वैज्ञानिक वाद्य–वर्गीकरण इस परम्परा की गहराई को सिद्ध करते हैं।

तथ्यात्मक दृष्टि से यह मानना अधिक उचित है कि "रामायण काल" और "महाभारत काल" को कठोर ऐतिहासिक तिथि के रूप में नहीं, बल्कि सांस्कृतिक ग्रंथ–परम्परा के रूप में पढ़ा जाए। ऐसा करने से अतिशयोक्ति घटती है और शोध की विश्वसनीयता बढ़ती है। तन्त्री वाद्य भारतीय संगीत में केवल ध्वनि उत्पन्न करने वाले उपकरण नहीं रहेय वे ज्ञान–संरचना, सौंदर्य–बोध और सामाजिक प्रतिष्ठा के वाहक रहे हैं। आधुनिक पुनर्निर्माण, संग्रहालय–अध्ययन और वैज्ञानिक तिथि–परीक्षण यह संकेत देते हैं कि इन वाद्यों पर गंभीर शोध की अभी बड़ी संभावना है। भारतीय संगीत–इतिहास को समझने के लिए वीणा

और उसके समजात तन्त्री वाद्यों का अध्ययन अनिवार्य है।

संदर्भ

भारतीय संस्कृति पोर्टल, (तिथि अनिर्दिष्ट), भारत के संगीत वाद्य, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

भरतमुनि, (1951), नाट्यशास्त्र, मनमोहन घोष द्वारा अनूदित डिजिटल संस्करण, मुख्य संदभर्रू अध्याय 28, श्लोक 1दृ14

ब्रिटानिका संपादक, (तिथि अनिर्दिष्ट), अष्टाध्यायी, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

ब्रिटानिका संपादक, (तिथि अनिर्दिष्ट), बृहद्देशी, एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका

दुरीयर, एम. जी., तथा सहयोगी, (2019), पुराने संगीत–वाद्य संग्रहों की कार्बन–तिथि–जांचरू पेरिस के संगीत संग्रहालय की भारतीय वीणा का उदाहरण, रेडियोकार्बन, 61(5), 1657–1666

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, (तिथि अनिर्दिष्ट), मतंग मुनि का बृहद्देशी, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र, नई दिल्ली

कौंडिन्य, एस. कार्तिक राज, (2008), संस्कृत साहित्य में संगीत–वाद्य, शोध–अध्ययन, मुख्य संदर्भः पाणिनि और संगीत–वाद्य, पृ. 29–62य याल संबंधी विवरण, पृ. 68–71

लाड, गौरी, (1978), पुरातत्त्व और महाभारतरू अध्ययन, अध्यायरू महाभारत में संगीत–वाद्य, मुख्य संदभर्रू पृ. 686

मेट्रोपॉलिटन संग्रहालय, (तिथि अनिर्दिष्ट), किन्नरी वीणारू भारतीय वाद्य, उन्नीसवीं शताब्दी, मेट्रोपॉलिटन संग्रहालय, न्यूयॉर्क, वस्तु–संख्या 89.4.205

प्रीति, मर्विन, (2025), शताब्दियों से विस्मृत तमिल वाद्य का पुनर्जीवन, द बेटर इंडिया, 28 फरवरी 2025

संगीत नाटक अकादमी, (2024), अदृश्य सांस्कृतिक विरासत योजनाः स्वीकृत परियोजनाएँ, चक्र 2014–15, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, परियोजनाः किन्नरी वीणा का पुनर्निर्माण लोक–शास्त्रीय निरन्तरता

वाल्मीकि, (तिथि अनिर्दिष्ट), श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, मुख्य संदभर्रू बालकाण्ड 1.4.8–10य किष्किन्धाकाण्ड, सर्ग 28

डॉ0 सुरेन्द्र कुमार
सहायक प्रोफेसर
संगीत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक

6

1857 की क्रांति में हरियाणा का योगदान : एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ राजेश कुमार, अमित कुमार

सारांश

अंग्रेज भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तौर पर व्यापार के लिए आए। उन्होने यहाँ की राजनैतिक दुर्दशा का लाभ उठाया और खुद मालिक बन बैठे। अंग्रेजो ने यहाँ की जनता का खूब आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक शोषण किया। अंग्रेजो के खिलाफ समय–समय पर भारत में अलग– अलग जगहों पर विद्रोह होते रहे। ये विद्रोह एक क्षेत्र या राज्य तक ही सीमित रहे। किन्तु 1857 का विद्रोह भारत के एक बडे भू–भाग पर फैला। जिसमें हर वर्ग, समुदाय, धर्म के लोगों ने बढ–चढ़ कर भाग लिया।

1857 की महान क्रांति से हरियाणा भी अछूता न रह सका। यहाँ के लोगों ने बढ–चढ़ कर इस क्रांति को अपने खून से सींचा। हरियाणा के अंबाला, कुरूक्षेत्र, पानीपत, रोहतक, गुड़गाँव, रेवाड़ी व नारनौल आदि जिलों से लोगों ने इसमें अपना बहुमूल्य योगदान दिया। कई स्थानों पर क्रांतिकारियों ने अंग्रेजो को नाकों चने चबवा दिए। एक समय लगभग समस्त हरियाणा अंग्रेजो से आजाद हो गया था।

अंग्रेजो ने भी हरियाणा के दमनचक्र में बहुत ज्यादा जुल्म ढ़हाए। गाँव के गाँव भस्मात कर दिए गए। लोगों ने अपने प्राणों की परवाह किए बगैर आजादी के हवन में अपने प्राणों की आहुतियाँ दी। लोगों ने इस क्रांति को अपने खून से सींचा था।

1857 के विद्रोह में हरियाणा के बहुमूल्य योगदान को कभी भी नहीं भुलाया जा सकता। आज भी इस क्रांति में हरियाणा का नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित रहेगा।

कुँजी शब्दः विद्रोह, हरियाणा, अंबाला, क्रांतिकारी, अंग्रेजो की नीतियाँ ।

परिचयः–

ईस्ट इंडिया कम्पनी के आगमन से भारत की राजनैतिक दशा में आमूल परिवर्तन आना शुरू हो गया था। व्यापार के लिए आई कम्पनी धीरे–धीरे भारतीय राजाओं की राजनैतिक दशा देखकर व्यापार के साथ साम्राज्य संभालने के लिये मदद करने लगी। देखते ही देखते कम्पनी ने प्लासी व बक्सर जैसे युद्व लडकर अपने मंसूबे दिखा दिए। धीरे–धीरे कम्पनी व्यापार के साथ भारत की सत्ता पर काबिज हो गई। इन्होने भारत के लोगों पर जुल्म ढ़हाना शुरू कर दिया। भारत में जो लगान व्यवस्था थी, उसको भी एकदम बदल कर रख दिया। इसकी उगाही के लिए किसी भी हद तक जा सकते थे। अंग्रेजों ने अपने देश के उत्पाद को भारत में बेचने के लिए भारतीय वस्तुओं पर ज्यादा से ज्यादा कर लगाना शुरू कर दिया। देश का हर राज्य इनके आंतक से ग्रसित होने लगा। हरियाणा जैसा समृद्व राज्य भला इससे कब तक बच पाता। हरियाणा का क्षेत्र एक देहात का क्षेत्र था। यहाँ पर भी अंग्रेजों ने लगान व्यवस्था को बदल दिया। कुटीर उद्योगों को खत्म कर दिया गया। लोगों को तरह–तरह की यातनाएं दी जाने लगी। हरियाणा की रियासतों को भी नही छोडा गया, गोद न लेने की नीति, राज्य हडपने की से बहुत सी रियासतों को अपने अधीन कर लिया गया। जिससे यहाँ के लोगों में भी बडा आक्रोश फैला। इनके कानूनों, लगान दरों, टैक्स, जुल्मों की मार से सारा हरियाणा कांप रहा था। इनके खिलाफ बोलने वालो को ऐसी सजा दी जाती थी कि देखने वालो की रूह तक कांप जाती थी। इसके कारण हरियाणा जैसा समृद्व राज्य भी कंगाल होता जा रहा था।

फिर इनके द्वारा लागू किये गए कानूनों ने पंचायत, जो कि हरियाणा के गाँव का एक न्यायालय ही होता था, को एक तरह से खत्म करने की कोशिश की गई, न्याय महंगा होने लगा। अमीर–गरीब में भेदभाव किया जाने लगा। इनके आचरण के कारण विद्रोह जैसी घटनाएँ भी घटने लगी। ये सबसे खतरनाक लुटेरे थे, इन्होने तो झोपड़ियों को भी लूट लिया। इसके अलावा धर्म जो जीवन का अभिन्न अंग होता है, धर्म में भी हस्तक्षेप किया जाने लगा। लोगो को जबरन ईसाई बनाया जाने लगा। जिसके कारण कई रियासतों में भी अंग्रजों के खिलाफ विद्रोह भी हुए। जैसेः– (i) छछरौली का विद्रोह (ii) रानियां का विद्रोह (iii) किसानों का विद्रोह (iv) जीन्द का विद्रोह इत्यादि ने अलग– अलग विद्रोह किए। कोई भी विद्रोह पूरे इलाके में एक साथ नहीं हुआ। हर धर्म, जाति, परिवार, इनके कुकर्मों से तंग आ गया था।

जुल्म की दासता की भी कोई हद होती है। चिंगारी को कब तक दबाया जा सकता है। हर वर्ग त्राहिमाम करने लगा। सभी लोग अंग्रेजों से छुटकारा पाने के लिये लालायित होने लगे। भारत की घटनाओं ने भी हरियाणा के लोगो की मानसिकता पर छाप छोडी। सभी एक होने लगे। आखिरकार वो दिन आ गया जब सबने अंग्रेजों को भारत से बाहर खदेड़ने की ठान ली, हरियाणा भी कैसे पीछे रह सकता था। 1857 में मई के महीने में एक क्रांति उठ खड़ी हुई। जिसने अंग्रेजों को अंदर तक झकझोर कर रख दिया, जो भारत के इतिहास में ''1857 की क्रांति'' के नाम से जानी जाती है। हरियाणा के लोगों ने बढ़–चढ़ कर इसमें अपने प्राणों की आहुति दी।

1857 की क्रांति और हरियाणाः–

हर क्रांति के पीछे कोई एक कारण नही होता। अनेक

कारण अपना– अपना योगदान देते है। हरियाणा में 1857 की क्रांति के कुछ कारण निम्न हैः– अंग्रेजो द्वारा ग्राम समुदायों का अन्त करना, आत्म–निर्भर अर्थ व्यवस्था को खत्म करना, जो की कुटीर उद्योगों पर आधारित थी। लगान दरो में अत्यधिक वृद्वि करना जिससे किसानों को तड़पकर भूखे मरना पड़ा। अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवादी नीतियां जो छल व बल से रियासतों का विलय, खाप जैसी समस्याओं के मामले में हस्तक्षेप कर सामाजिक आचार–विचार में गड़बड़ी पैदा करना, ईंसाई धर्म का प्रचार, अकाल व महामारियाँ, सैनिकों में असंतोष इत्यादि कुछ कारण हैं। लेकिन ये सभी कारण लोगों के अंदर चिगांरी सुलगा रहे थे व अंग्रेज एक बारूद का ढेर तैयार कर रहे थे जो किसी भी समय फूट सकता था।

इस लावे को फूटने का काम किया एक खबर ने जो चर्बी वाले कारतूसों से जूड़ी है। यह अफवाह फैल गई कि इन नए कारतूसो को मुहँ से छिलना पड़ता है व इनके ऊपर सुअर व गाय की चर्बी चढ़ी हुई है। जिसके कारण हिन्दू व मुस्लिम सैनिक भडक उठे व उन्होने बगावत शुरू कर दी और देखते ही देखते यह भारत के अनेक हिस्सो के साथ हरियाणा में बड़े भयंकर रूप में फैल गई। जिसकी लपटों ने पूरे हरियाणा को अपनी चपेट में ले लिया।

1857 की क्रांति में हरियाणाः–

एक कारण ने इस चिंगारी को ज्वालामुखी का रूप दे दिया। यह हरियाणा में अंबाला छावनी में 10 मई 1857 को सैनिक विद्रोह के रूप में फूट पड़ी।

अंबाला छावनीः–

अंबाला छावनी अंग्रेजों की एक बड़ी छावनी थी, जिससे हरियाणा, यू0पी0 व राजस्थान के इलाकों में जल्दी से जल्दी सैनिकों को पहुँचाया जा सकता था।

हरियाणा में सबसे पहले 10 मई 1857 को बगावत की शुरूआत हो गई थी। योजना यह थी कि जब 10 मई 1857 को जब अंग्रेज गिरजाघर जाएंगे तो दोनों देशी पलटन 6वीं व 5वीं बगावत कर देगी और शस्त्रागारों पर अधिकार कर लेगें। लेकिन यह समय से 9 घण्टे पहले ही अंबाला में शुरू हो गई।[1] लेकिन एक सैनिक शाम सिंह द्वारा अंग्रेजों को पहले ही इसके बारे में अवगत करवा दिया गया था। अंग्रेज सर्तक थे और उन्होने क्रांति शुरू हाने के कुछ समय बाद ही इसको दबा दिया गया। यहाँ कोई भी जान–माल का नुकसान नही हुआ और क्रांति की मशाल शुरू होते ही बुझा दी गई।

गुड़गाँवः–

यह इलाका दिल्ली के सबसे नजदीक है, इस कारण क्रांति की लपटें सीधी गुड़गाँव पहुँची। 13 मई 1857 से रात दिल्ली के कुछ सैनिक यहाँ आने के कारण क्रांति भड़क उठी। मेव भी बड़ी तादात में इस क्रांति में शामिल हो गए। मेवो ने जल्दी ही मेवात को अंग्रेजों से मुक्त करा लिया। क्रांतिकारियों से हारकर जिलाधीश विलियम फोर्ड गुड़गाँव छोड़कर भाग गया।[2] जून के महीने में अंग्रेजों द्वारा जयपुर से सहायता भेजी गई। उन सैनिकों को हर गाँव में विरोध झेलना पड़ा। इन सैनिकों का नायक एडन जान बचा कर वापिस जयपुर भाग गया। मेवात के लोगों की भांति रेवाड़ी में भी राव तुलाराम के नेतृत्व में क्रांति की ज्वाला भड़क उठी।[3] यहाँ भी क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों की ईंट से ईंट बजा दी। गुड़गाँव की देशी रियासतों फर्रूखनगर के अहमद अली, बल्लभगढ के नाहर सिंह व पटौदी के अकबर अली ने भी अपने– अपने क्षेत्रों में क्रांति का झंडा बुलंद कर दिया। पूरे गुड़गाँव में क्रांति की ज्वाला भड़क उठी और देखते ही देखते गुड़गाँव अंग्रेजों से मुक्त करा लिया गया।

रोहतकः–

गुड़गाँव की तरह रोहतक में भी मई में क्रांति की चिगांरी एक ज्वाला बनकर उभरी। यहाँ के वीर जाटों, रांघडों, राजपूतों, अहीरों व कसाईयों ने अंग्रेजों के खिलाफ बगावत शुरू कर दी।[4] रोहतक जिलें के सब बड़े व छोटे आदमी क्रांति में सम्मिलित हो गये। अंग्रेजों ने अंबाला की 60वीं भारतीय थल सेना को 24 मई को रोहतक में क्रांतिकारियों को दबाने के लिये भेजा गया। अंबाला में 10 मई को तो ये सैनिक टुकड़ी कुछ ना कर सकी। लेकिन अब ये अंग्रेजों से दूर थे। इन्होने मौके का फायदा उठाते हुये विद्रोह को दबाने की बजाए 10 जून को स्वंय विद्रोह कर दिया।[5] अंग्रेज अफसर अपनी जान बचाकर भाग खड़े हुए। अब अंग्रेजों के लिए स्थिति और भी गंभीर हो गई। अंग्रेजों ने अगस्त में हडसन के नेतृत्व में एक विशाल सैनिक दस्ता रोहतक क्रांति को दबाने के लिये भेजा गया। इसको पहले खरखौदा में लोगों के विरोध का सामना करना पड़ा।

खरखौदा में क्रांति को दबाने के बाद ही हडसन आगे बढ़ पाया था। उसके बाद हडसन सीधा रोहतक पहुँचा ताकि वहाँ पर शांति स्थापित कर सकें। क्रांतिकारियों व अंग्रेजी सेना के बीच में यहाँ भी डटकर मुकाबला हुआ। देशी राजाओं के सहयोग मिलने पर भी हडसन क्रांतिकारियों को कुचल न सका। स्वंय हडसन ने कहा था, ''विद्रोही दानवों के तरह लडे थे''।[6] उसे बीच में ही दिल्ली जाना पड़ा। उसके वापिस मुड़ते ही क्रांतिकारियों ने जींद के राजा के अधिकारियों को खदेड़ दिया। यहाँ के झज्जर व बहादुरगढ़ के नवाब भी क्रांति में शामिल हो गए। यहाँ की जनता ने बगावत की राह पकड़ ली। देखते ही देखते पूरे रोहतक में

क्रांति की ज्वाला भड़क उठी।

हिसारः–

हिसार जिले में भी अंबाला छावनी की तरह ही हिसार, हांसी व सिरसा में स्थित हरियाणा लाईट इनफेंटरी दस्तों ने क्रांति की अलख जगाई।[7] सैनिकों ने डिप्टी कमीशनर समेत 12 लोगों को मौत की नींद सुला दिया। हिसार की जनता ने तन–मन–धन से क्रांतिकारियों के साथ क्रांति की ज्वाला को जलाए रखा। हिसार की जनता का मार्गदर्शन भट्टू के सहायक कस्टम अधिकारी शहजादा मुहम्मद आजिम बेग ने किया। उसने डटकर अंग्रेजों से मुकाबला किया। अन्य जगहों पर स्थानीय चौधरियों ने लोगों का पथ–प्रदर्शन किया।

अंग्रेजों ने क्रांति को दबाने के लिये फिरोजपुर के डिप्टी कमीश्नर जनरल वान कोर्टलैण्ड के नेतृत्व में एक सेना भेज दी। रानियां के नवाब नूरमुहम्मद खाँ ने अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। उसने अंग्रेजों के साथ ओढ़ा नामक स्थान पर बडा भयंकर युद्व लड़ा। क्रांतिकारी बडी वीरता के साथ जंग के मैदान में लड़े। किन्तु अंग्रेजों के हथियारों के सामने कब तक टिक पाते। नवाब वहाँ से जान बचाकर निकल गया। किंतु जल्दी ही अंग्रेजों के द्वारा पकड़ा गया। अंग्रेजों ने नवाब को फांसी पर लटका दिया।

उसके बाद 18 जून 1857 को अंग्रेजों ने चतरावन नामक गांव पर हमला कर एक बड़ा निर्दयी व अमानवीय कृत्य किया।[8] उन्होने बच्चों समेत पूरे गाँव का कत्ले–आम कर दिया। पूरे गाँव को आग के हवाले कर दिया। अगले दिन हिसार के खिरका गाँव पर आक्रमण कर दिया गया, ऐसे ही 5–6 गाँवो के लोगों के साथ भी ऐसा ही अमानवीय जुल्म किया गया। बीकानेर रियासत से भी अंग्रेजों के लिए सैनिक सहायता भेजी गई तथा सिरसा में क्रांति को दबा दिया गया।

उसके बाद कोर्टलैंड ने हिसार की तरफ रूख किया। 17 जुलाई को उसके कत्ले आम शुरू करवा दिया। इन जुल्मों से भी क्रांतिकारियों पर कोई भी प्रभाव नही पड़ा। उसने हांसी में क्रांति को दबाने के लिये एक सैनिक दस्ता भेजा। हांसी में भी क्रांतिकारियों व अंग्रेजों के बीच में युद्व हुआ व अंग्रेजों को असफलता मिली। जब स्वंय कोर्टलैण्ड हांसी आया तब भी दोबारा युद्व हुआ व क्रांतिकारियों की हार हुई। फिर भी क्रांति की चिंगारी फूटती रही।

पानीपत व थानेसरः–

अंग्रेज पूरी तरह चौकन्ने थे। फिर भी क्रांति की लपटें फैलती जा रही थी। यह हरियाणा के विभिन्न हिस्सों में फैलती जा रही थी। क्रांति की ज्वाला से पानीपत व थानेसर भी ना बच सकें। वो भी अपनी मातृभूमि के लिये क्रांति में कूद पड़े। अंग्रेजों ने अपने तलवे चाटने वाले रजवाड़ों से सहायता की अपील की। जींद आदि रजवाड़ो न इसे तुरंत स्वीकार कर लिया। अंग्रेज जनरेली सड़क पर क्रांतिकारियों का नियंत्रण नही होने देना चाहते थे। पानीपत के पास अंग्रेजों और क्रांतिकारियों में खूनी मुठभेड़ हुई। ताजुद्दीन लेखक के अनुसार ''क्रांतिकारियों ने अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिए व प्रधान सेनापति जनरल एनसेन इस युद्व में मारा गया।''[9] अंग्रेज सैनिक भय के कारण अपने साथियों का सम्मान के साथ अंतिम संस्कार भी नहीं कर सकें। पंजाब से और ज्यादा सैनिक आने के बाद ही अंग्रेज क्रांतिकारियों से जनरेली सड़क छुड़वा सकें।

करनाल क्षेत्र के लोगों से भी अंग्रेजों को निराशा हाथ लगी। कप्तान ह्यूज की सेना के पैर उखाड़ दिए व कप्तान को जान बचाकर भागना पड़ा। बू–अली कलन्दर की मस्जिद के बड़े इमाम ने क्रांति का नेतृत्व संभाला, दरगाह के पास बड़ा भयंकर युद्व किया। यहाँ अंग्रेजों के हाथ सफलता लगी व इमाम सहित बहुत से लोगों को फांसी पर लटका दिया गया। फिर भी क्रांति की ज्वाला इस क्षेत्र में अलग– अलग स्थानों पर उठती रही।

अंबालाः–

अपने वफादार रजवाड़ो पटियाला, नाभा व जींद जैसी रियासतों के सहयोग से अंबाला को शांत रखने के लिये अंग्रेजों ने ऐड़ी–चोटी का जोर लगा दिया। यहाँ पर क्रांति को कुचलने का हर संभव प्रयास किया गया। लोगों को फाँसी पर लटका दिया गया। यहाँ बहुत ज्यादा अंग्रेजी सेना होने के कारण कोई ज्यादा खुला विद्रोह नही हो सका। फिर भी कई जगह क्रांति की ज्वाला फूटी।

पूरे हरियाणा में कुछ हिस्सों को छोड़कर लगभग सारा हरियाणा क्रांति में कूद पड़ा तथा अंग्रेजी सरकार से मुक्त हो गया। सभी स्थानीय नेताओं ने मुगल सम्राट को ही अपना वास्तविक शासक माना तथा उन्ही के आदेशों से शासन चलाया। स्थानीय नेता सम्राट की ओर से शासन करते रहे।

क्रांति का दमनः–

हालांकि लोगों ने मुगल सम्राट को अपना स्वामी मान लिया था। चारों तरफ स्थानीय शासन चालू था। अंग्रेज भला कैसे चुप बैठ सकते थे। उन्होने अपने स्वामी भक्त रजवाड़ो की मदद से क्रांति को कुचलने के लिये हर संभव प्रयास किए। साम–दाम, दण्ड, भेद की नीति अपनाकर, अमानवीय अत्याचारों से लोगों पर एक भंयकर प्रहार किया गया।

हिसारः–

हिन्दु व मुस्लिम कंधे से कंधा मिलाकर क्रांति में एक–दूसरे के साथ खड़े थे। 20 सितम्बर 1857 को अंग्रेजों ने

दिल्ली पर दोबारा अधिकार कर लिया। दिल्ली पर दोबारा अधिकार होने के बाद अंग्रेजों ने अपनी सारी शक्ति अब हरियाणा को अधिकार में लेने के लिये लगा दी। अंग्रेजों से संघर्ष करते हुए शहजादा आजिम बेग गिरफ्तार कर लिए गए। फिर भी क्रांतिकारियों के साहस में कोई भी कमी नही आई। वे फिर भी दुश्मन सेना से मुकाबला करते रहे। 25 सितम्बर को तोशाम क्रांतिकारियों के कब्जे में था। इसके बाद क्रांतिकारियों का अगला निशाना हांसी था। लेकिन अंग्रेजी सेना की संख्या बल ज्यादा होने के कारण वे शहर में प्रवेश नहीं कर सकें। विद्रोही पलटन फिरोजपुर 10वीं व झज्जर के सैनिक दल, क्रांतिकारियों से आ मिलें। गाँव मंगवा में दोनों ओर से भंयकर युद्व हुआ।[10] अंग्रेजों के हथियारों व संख्या बल के आगे क्रांतिकारियों की ज्यादा चल न सकी। इस युद्व में बहुत से क्रांतिकारियों को अपना बलिदान देना पड़ा। शहजादा बेग ने दोबारा उत्साहित होकर अंग्रेजों पर हमला कर दिया।

शहजादा बेग ने हिसार छोड़ने का निर्णय लिया व कुछ क्रांतिकारियों के साथ हिसार से नारनौल की तरफ कूच किया और वहाँ से अन्य क्रांतिकारियें के साथ मिलकर युद्व जारी रखा। शहजादा के जाते ही हिसार अंग्रेजों के नियंत्रण में आ गया।

रोहतक :

हिसार व दिल्ली के नियंत्रण होने की खबर ने क्रांतिकारियों को निरूत्साहित कर दिया। अंग्रेजों ने अब अपना ध्यान दिल्ली के नजदीकी क्षेत्र रोहतक पर लगाया। अंग्रेजों को यहाँ ज्यादा लंबा युद्व नही लड़ना पड़ा। बहुत से गाँवो ने हथियारों की कमी व जगह– जगह पर दमन चक्र के कारण आत्मसर्मपण कर दिया। अंग्रेजों ने रोहतक में दोबारा शांति स्थापित कर अपनी चौकियां दोबारा स्थापित की।

थानेसर व अंबालाः–

अंग्रेज धीरे–धीरे हरियाणा क्षेत्र पर अपना दोबारा अधिकार स्थापित करते जा रहे थे। हांलाकि थानेसर व अंबाला क्षेत्र को काबू पाने के लिये अंग्रेजों को बहुत पसीना बहाना पड़ा। कप्तान पीटर्सन को कैथल के क्रांतिकारियों से दो– दो हाथ करना पड़ा। अंग्रेजी सैनिक शक्ति ज्यादा होने के पर भी यहाँ शांति स्थापित करने में कई दिन लग गए। इसी कड़ी में डिप्टी–कमिश्नर मैकनील ने सैनिक शक्ति से लाड़वा पर आक्रमण कर वहां शांति स्थापित कर दी।

असंध जलमाना के क्रांतिकारी बड़ी बहादुरी के साथ अंग्रेजों से लड़े। डिप्टी कमीश्नर व कप्तान पीर्यसन की संयुक्त सेनाओं को मैदान में उतारना पड़ा। बला गाँव को दो बार हराने के बाद अंग्रेजों ने सैनिक शक्ति के बल पर गाँव बला को नष्ट कर दिया । असन्ध, जलमाना, धलरू आदि अनेकों गाँव ने अंग्रेजों द्वारा भस्मात करने की कीमत चुकाई।[11] अंग्रेजों द्वारा बहुत ज्यादा खून–खराबे व नर–संहार द्वारा इस क्षेत्र पर अधिकार किया गया।

गुड़गांवः–

गुड़गांव दिल्ली से सटे होने के कारण व बार– बार विद्रोह के कारण अंग्रेजों को एक नासूर की तरह जख्म दे रहा था। दिल्ली के समीप इतना बड़ा विद्रोह अंग्रेजों के लिए असहनीय था। सबसे पहले मेवात को नियंत्रण में करने के लिए कदम उठाया गया। किल्फोर्ड ने सोहना तक उसके रास्ते में आने वाले गाँव भस्मात कर दिए।

फिरोजशाही मेवाती से एक घमासान लड़ाई में वह अपने बहुत से सैनिकों के साथ यमलोक पहुँच गया। अंग्रेजी सेना भाग खड़ी हुई। किसी लोक कवि ने कहा है उस समय 'मेम साहिबां' अपने बंगलों व बिस्तरों में अपने पतियों को ढूंढ रही थी। इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि अंग्रेजी सेना के अफसरों का क्या हाल हुआ होगा।

अक्टूबर में अंग्रेजों ने ब्रिगेडियर–जनरल शार्वस को एक बड़े दल–बल के साथ मैदान में उतारा। शार्वस के साथ क्रांतिकारियों के भयंकर भिंड़त होती रही। लेकिन बहुत बड़े लाव लश्कर के सामने आम क्रांतिकारियों की ज्यादा देर तक कुछ ना चली। सैकड़ों मेवातियों को मौत की नींद सुला दिया गया।

वहाँ से शोर्वस रेवाड़ी की तरफ गया। उसके वहाँ पहुँचने से पहले ही राव तुला राम रेवाड़ी छोड़ चुका था। इसके बादे उसने झज्जर के नवाब अबदुर्रहमान खां पर धावा बोला। फर्रूखनगर के नवाब व झज्जर के नवाब ने आत्मसमर्पण कर दिया तथा बल्लभगढ़ के राजा नाहर सिंह को भी बंदी बना लिया गया।

मेवात में कई गांवो को भस्मात कर दिया गया। फिर भी जगह– जगह विद्रोह होते रहे।

नारनौल की लड़ाईः–

कर्नल जेराड क्रांतिकारियों से दो– दो हाथ करने के लिये नारनौल पहुँचा। 16 नवंबर 1857 को उसने नारनौल पर धावा बोल दिया। भारत की क्रांतिकारी फौज मोर्चा संभाले हुए थी। नारनौल से कोई दो मील दूर नसीबपूर में दोनों के मध्य बहुत भंयकर टकराव हुआ। एक ही झटके में अंग्रेजी सेना में खलबली मच गई। कुछ अनुभवी अंग्रेज अफसरों ने दोबारा सेना में जान फूंकी। ब्रिटिश सेना में आज तक कभी ऐसी भयानक टक्कर नही ली थी।

इस युद्व का आँखों देखा वर्णन काय और माउथसन ने

इन शब्दों में किया है:– ''शत्रु ने आक्रमण को बड़ी शानदार वीरता से झेला, इससे पहले शत्रु सेनाएं (भारतीय सेनाएं) कभी इतने शानदार ढ़ंग से नही लड़ी, न तो उनमें कोई झिझक थी, न कोई बचने की भावना। इससे पहले ब्रिटिश घुड़सवार दस्तों ने शत्रु के रिसाले का इतना जोरदार और संगठित आक्रमण नही झेला था।[12]

आपस में एक–दूसरे के खून के प्यासों ने एक–दूसरे को खून चखाया व आपस में कत्ले आम किया।

भारतीय रिसाले का कमांडर राव किशन सिंह मातृभूमि के लिये लड़ता हुआ वीरगति को प्राप्त हो गया। अपने नेता के अभाव में भी क्रांतिकारियों ने पीठ नही दिखाई व अपने देश, अपनी भूमि, अपने परिवार, मान–सम्मान के लिये मौत के समंदर में कूदते रहे। भारत का पक्ष कमजोर पड़ता जा रहा था कि अचानक जेराड को गोली लगी, वह यमलोक पहुँच गया। इससे एक बार फिर अंग्रेजी सेना में खलबली मच गई।

नए अंग्रेज कमांडर कौलफील्ड ने मौके को संभाला व तोपों को आग उगलने का आदेश दे दिया गया। समय ने भी क्रांतिकारियों के साथ बड़ा अजीब खेल–खेला। क्रांतिकारियों के पास इतने ज्यादा अस्त्र–शस्त्र न थे कि वो देर तक जल्लाद हुक्मरानों का सामना कर सकें। शहजादा बेग अपने साथियों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके कुछ समय बाद भाग्य ने भी क्रांतिकारियों का साथ छोड़ दिया। उनकी तोपें शाम होते– होते क्रांतिकारियों के खून से ही शांत हो सकी।

एक ऐसी ज्वाला जो देश की भूमि, अपनी इज्जत–आबरू अपने स्वाभिमान के लिए जली थी। वो कुछ समय बाद ही भारतीय सैनिक द्वारा शुरू में की गई गद्दारी के कारण ज्यादा लंबी ना चल सकी। हरियाणा के वीर लोगों ने हसंते– हसंते अपने प्राणों की परवाह किये बगैर इस क्रांति को सींचा था। क्रांतिकारी अपने आप को न्यौछार कर रहे थे। लेकिन इस अभागे समय ने क्रांति को जो एक तुफान की तरह उठी थी, को अंग्रेजी सेना व स्वामी भगत रजवाड़ो की सेनाओं ने अपने ही भाईयों के खून से प्यास बुझाई। आजादी की एक आस दशकों तक दफन कर दी गई। हार–जीत होती रहती है। लेकिन वीर अपने खून से इतिहास लिख जाते है। जो आगे चलकर अंग्रेजों को बार– बार ललकारती रही।

निष्कर्ष:–

जब– जब शासकों ने रिक्त पिपासु नीति का अनुसरण किया है, तब–तब सामान्य जनों ने विद्रोह की प्रकृति अपनाई है। अंग्रेज जो व्यापारी बनकर भारत आये व शासक बन बैठे। अंग्रेजों में और पहले के शासकों में मूलभूत अंतर यह था कि पहले के शासक यहाँ से प्राप्त कर को यहीं खर्च करते थे। लेकिन अंग्रेज भारतीय धन को अपने देश ले जाने लगे। जिस कारण यहाँ गरीबी, बेरोजगारी, भुखमरी जैसी विकराल समस्याएं उठने लगी। अंग्रेजों ने कर, लगान इक्ट्ठा करने के लिये अमानवीय अत्याचार किए। कुटीर उधोग जो देश की जान होते हैं, को खत्म कर दिया गया।

एक छोटी सी अफवाह ने लोगों के दिलों में दबी विद्रोह की चिंगारी को एक विद्रोह के रूप में बाहर निकाला। विद्रोह जो 10 मई 1857 को अबांला से नाम मात्र का शुरू होकर पूरे हरियाणा मे उग्र रूप में फैल गया। हिसार, रोहतक, गुड़गांव, पानीपत, थानेसर आदि क्षेत्रों में खूनी संघर्ष के रूप में फैल गया। अंग्रेजों व हरियाणा के वीर क्रांतिकारियों के बीच जगह– जगह झड़पे हुई। एक–दूसरे को मौत की नींद सुलाने में कोई झिझक नहीं की गई। एक–दूसरे पर घातक प्रहार किया गया। अंग्रेजों ने क्रांति को दबाने के लिये जो अमानवीय कृत्य किए, वो मुस्लिम काल में हुये नारिदशाह जैसे आक्रमणकारियों की याद दिलाते है। देशी रजवाड़ो की राजभक्ति व अंग्रेजों ने सैन्य व हथियारों के बल पर इस क्रांति को दबा दिया। इसका खमियाजा आने वाली पीढ़ियों को भुगतना पड़ा।

किसी कवि ने सही ही कहा है:–

''वह जब्र भी देखा है तारीख ने अहदों का,
लम्हों ने खता की थी, सदियों ने सजा पाई''।[13]

संदर्भ ग्रन्थ सूची:–

1. यादव डॉ के0सी0, हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1966 तक) हॉप इण्डिया पब्लिकेशनश, गुड़गांव, 2012, पृ0सं0–379।
2. वही, पृ0सं0–381।
3. अहमद, डॉ अजाज, हरियाणा का इतिहास (प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक) कल्पना प्रकाशन दिल्ली 2022, पृ0सं0–201।
4. यादव, डॉ के0सी0, हरियाणा के इतिहास के झरोखे से, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी गुड़गांव, 2012, पृ0सं0–164।
5. प्रभाकर, देवी शंकर, स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा, उमेश प्रकाशन दिल्ली, 1976, पृ0सं0–73।
6. वही, पृ0सं0–74।
7. यादव, डॉ के0सी0, हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1966 तक) हॉप इण्डिया पब्लिकेशन, गुड़गांव,

2012, पृ0सं0–36 ।
8. वही पृ0सं0–387 ।
9. अहमद, डॉ अजाज, हरियाणा का इतिहास (प्राचीन काल से आधुनिक काल तक), कल्पना प्रकाशन दिल्ली, 2022, पृ0सं0–203 ।
10. यादव, डॉ के0सी0, हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1966 तक) हॉप इण्डिया पब्लिकेशन, गुड़गांव, 2012, पृ0सं0–393 ।
11. वही पृ0सं0–394 ।
12. प्रभाकर, देवी शंकर, स्वाधीनता संग्राम और हरियाणा, उमेश प्रकाशन दिल्ली, 1976, पृ0सं0–84 ।
13. यादव, डॉ के0सी0, हरियाणा का इतिहास (आदिकाल से 1966 तक) हॉप इण्डिया पब्लिकेशन, गुड़गांव, 2012, पृ0सं0–405 ।

डॉ राजेश कुमार,
सहायक आचार्य, इतिहास,
राजकीय महाविद्यालय,दूबलधन (झज्जर)
rajseh1982@gmail.com

अमित कुमार,
सहायक आचार्य, इतिहास,
राजकीय महाविद्यालय, दूबलधन(झज्जर)
kingkadian02@gmail.com

7

समय,समाज और साहित्य की प्रयोजनीयता

डॉ0 पुष्पा रानी

सारांश

वास्तव में समय और समाज ऐसे कारक हैं जिनसे साहित्य कालजयी हो जाता है। कालजयी व्यक्ति,कवि, रचनाएँ मूल्य केन्द्रित होती हैं। मूल्य वे होते हैं जो किसी समाज,राष्ट्र जाति का अभ्युदय होता है और निश्रेश जुड़ा होता है। अभ्युदय भौतिकता से जुड़ा होता है और निश्रेश आध्यात्मिकता से। मूल्य मान्यताओं, विश्वासों, विचारों ऊर्जा के रूप में नैतिकता, दर्शन, आध्यात्मिकता अनुभव के विषय होते हैं। जिन अनुभवों को व्यक्त किया जाता है उन्हें साहित्य में पाया जाता है। साहित्य में मानवीय मूल्यों की चर्चा की जाती है। मूल्यों का ग्रहण रचनाकार की दृष्टि पर निर्भर करता है। एक दृष्टि भौंरे की होती है और एक एक दृष्टि कौए की। भ्रमर की दृष्टि पराग पर होती है और कौए की दृष्टि कहाँ होती है आप भलीदृभांति जानते हैं। इस सृष्टि में गंध भी है और सुगन्ध भी। यह हमारी दृष्टि पर निर्भर करता है, कि हम गंध को प्रकट करें या दुर्गन्ध को। दृष्टि बाहर और भीतर दोनों ओर देखती हैं। जब दृष्टि बाहर की तरफ देखती है तब रचना पर समय के पैरों के निशान अवश्य पड़ते हैं, जब भीतर को देखती है तब मनोभावों के ऐसे चित्रण उकेरे जाते हैं कि उन्हें समय द्वारा भी मिटाया नहीं जा सकता।

कालजयी रचना में दृष्टि और सृष्टि का बीज भाव है, इसकी व्याप्ति जितनी गहरी होगी, साहित्य उतना ही मूल्यवान होगा। रचनाकार को यह दृष्टि समय, और समाज से प्राप्त होती है। प्रतिभा से और प्रतिभा के विनियोग से आती है – मानव पीड़ा,मानवमूल्य और मानवीय चेतना। रचनाकार अपने समय की चेतना से लोक से जुड़े प्रसंगों का अनुव्यवहार करके रचना को शब्द देता है, तब वही शब्द समाज के लिए मूल्यवान हो जाते हैं। हमारे जितने भी कालजयी कवि हुए हैं उन्होंने मानवीय मूल्यों की चर्चा की है। कालजयी साहित्य भी लोक में अपने आपको लीन करके उससे साक्षात्कार करता है। इसमें परस्पर पौष्य और पोषक का सम्बन्ध होता है, इसलिए कुंतक ने भी कहा था–

लीनं वस्तुनियेन सूक्ष्मसुभगतत्त्वं कृष्यते,
निर्मातुं प्रभेवन्मनोहरमिदम् ।

अर्थात् कवि को प्रतिभा दृष्टि वर्ण्य में लीन होकर सूक्ष्म सुभग तत्त्व को अपनी वाणी से खींचकर ऊपर ला देती है। वस्तुतरू कवि–दृष्टि का कार्य है – अपूर्णता की पहचान। इसी को चारुता, सुन्दरता अथवा रमणीयता कहा गया है।

कालिदास ने भी कहा है –

क्षणे क्षणे मन्नवतामुपेति तदेव रूपों रमणीयतारू ।

अर्थात् जिससे क्षण प्रतिक्षण नवीन उद्भासना हो, वही रमणीयता अर्थात् सौन्दर्य है।

आज भौतिकता एवं बाजारवाद का बोलबाला है और अध्यात्म उसकी परिधि में है, जिस दिन भौतिकता को छोड़ आध्यात्मिकता केन्द्र में आ जाएगी, उस दिन सब सहज हो जाएगा। ऐसा समय कब आएगा किसी को पता नहीं, आज का मानव – मूल्य विरोधी समय परिवर्तित अवश्य होगा। चाहे भौतिकता कितने शिखर पर पहुँच जाए, एक दिन उसे 'अध्यात्म' की ओर जाना ही पड़ेगा। अध्यात्म 'स्व' का उर्ध्वीकरण,'मैं' और 'तू' के भेद में मिटना ही अध्यात्म है। ध्यातव्य है –जिए जिलाएं, बढ़ें बढ़ाए, आत्मीय देवत्व जहाँ, विश्व परिधि का केंद्र प्रभु हो, भोग तनाव समाप्त जहाँ।

शंकराचार्य ने भी कहा है –

भव स्वचितं सर्वत्र वाच्छम् विराट् यदि विष्णुत्वं।

अर्थात् तुम, विष्णुत्व, मोक्ष चाहते हो, राग – विराग से मुक्ति चाहते हो तो सर्वत्र सभी स्थितियों में समचित्र हो जाओ। अर्थात् वही समय,समाज और साहित्य कालजयी होगा जहाँ केन्द्र में मनुष्यता और मानवीय मूल्य होंगे, चाहे वह कोई भी युग हो। योग ऋषि व्यास ने भी कहा है –

नहि मानुषाद् श्रेष्ठतरं हि किंचित। दृ इसी को चंडीदास ने कहा है – सुनो हे मानुष भाई सोबार ऊपरे मानुष श्रेष्ठ ताहर ऊपरे केउ नाई।

समाज साहित्य में मूल्यों की बात की जाती है। भारतीय मूल्य का आधार मनुष्यता उसकी उदात्ता अर्थात् उसकी विजयनी यात्रा है। इस जगत में जो कुछ भी दिखाई देता है वह मूल्यों के रूप में गृहीत हो, उसमें 'मंगल' का आचरण भद्रता हो, जो एक विराट लोकानुभूति दे।तुलसीदास भी वर्ण,रस छंद को भी मंगल,कल्याण के लिए वर्णित करते हैं –

'मंगलानाम् च कर्तारौ वंदे वाणी विनायकौ।' इन्हीं मानवीय मूल्यों से ही सांस्कृतिक अभ्युदय होता है।

कालजयी साहित्यकार समाज को हजारों वर्षों के बाद मिलते हैं। जिनमें मूल्यबोध अथवा सांस्कृतिक बोध होता है तभी तो हमें वाल्मीकि,कबीर,कालिदास और तुलसीदास जैसे कालजयी रचनाकार प्राप्त हुए हैं। नीतिकार ने कहा –

"आहार निद्रा भय मैथुन च सामान्यमेतत् पशुभिनरिणाम् ,

धर्मों हि तेषामधिको विशेषो धर्मेणहीना पशुभिरू समाना।"

वर्तमान समय में मूल्यहीनता के कारण पूरा विश्व आतंकवाद में डूबा हुआ है। आज के तथाकथित धर्मगुरु, बुद्धिजीवी, लेखक और चिंतक चुपचाप तमाशा देख रहे हैं। बोलने की हिम्मत किसी की नहीं।कारण,मनुष्यता, मूल्यों की कमी,आंतरिक अनुभूति और साहस की कमी है। शकील ने कहा है –

"मेरा अजम इतना बुलन्द है कि पराए शोले का डर नहीं। मुझे खौफ आतिश – ए– गुल से है ये कहीं चमन को जला न दे ल।"

आज मनुष्य ने भौतिकवादी उन्नति कितनी भी क्यों न कर ली हो , लेकिन उसकी आत्मा मनुष्यता, लोककल्याण, आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों पर टिकी है। यही भारत के जीवन मूल्य हैं।

साहित्य की प्रयोजनीयता समय और समाज से है, उसके मानक से है, उसके स्पंदन से है, उसके मूल्यबोध से है, उसके बंध और छंद से है। समय और समाज दो नहीं वह जल और लहर की तरह है। हर समय अपने समाज को गढ़ता है, उसका गढ़ना कभी तो लोकधर्मी होता है तो कभी विध्वंसात्मक। सृजन उसकी गति है, विध्वंस उसकी नियति है। यह समय का स्वभाव और प्रकृति है कि वह नियति को सर्जन के लिए प्रेरित करती है। जब प्रकृति अपनी मौन साधना में होती है तो कोई कालजयी सर्जन हो जाता है जब वह मुखर होती है तो बड़ा ध्वंस हो जाता है। यह सृजन और ध्वंस प्रकृति का नियम है। जो समाज जितना अधिक क्रियाशील और गतिशील होगा, उससे उतने ही विस्फोटक होते रहेंगे। यही साहित्य का सृजन करते हैं। यही साहित्य को शब्द देते हैं, सच करते हैं, स्थाई करते हैं, इतिहास रचते हैं और कालजयी बनाते हैं, इसलिए समय, समाज और साहित्य का त्रिचक्र बनता है, यही त्रिचक्र अपने समय और समाज का स्वाभाविक सृजन होता है, अगर कालजयी कहें तो यह इसकी तपस्या की कोरव से जन्मता है। यदि इसकी तपस्या में कोई कमी आ जाती है या अपने समय से चूक जाता है, इसका कारण और आधार समय ही बनता है। इसी से समाज का संस्कार बनता है। संस्कार का बनना या न बनना या बनकर बिगड़ जाना या शाश्वत बने रहना,यह काल के गणित के हाथों में है, यह समाज के प्रारब्ध से है।यदि ऐसा न होता तो महाभारत का युद्ध जीतने वाला अर्जुन भीलों से गोपियों को न गवां बैठता मनुष्य की तपस्या जिस समय क्षीण हो जाती है, वह उसी क्षण पराजित हो जाता है। यह नियति है और तप का आधार है, इसीलिए बाबा तुलसीदास को कहना पड़ा –

'तप बल विष्णु सकल जग त्राता और तप आधार सब सृष्टि भवानी।'

हमारे भारतवर्ष की साहित्य – साधना पर टिकी है। महाभारत के समय विराट रूप दर्शन के समय अर्जुन आवाक रह गए थे। हमारा भारतीय साहित्य उस विराट सत्ता की औरव है, जिससे औरव मिलाने का सामर्थ्य विश्व के किसी सामर्थ्य में नहीं है। विश्व में ऐसा कोई देश नहीं जिसके पास राम, कृष्ण, बुद्ध महावीर, परशुराम, विश्वामित्र वशिष्ठ जैसे चरित्र हो और किसके पास साहित्य और लौकिक साहित्य हो। यह हमारा समय,समाज का दुर्भाग्य रहा है कि कुछ दिनों के लिए आत्मविस्मृत अथवा सुषुप्रति में चले गए। सुषुप्ति में पहचान खो जाती है परन्तु अब 'जागे पुनि न डसैहो।' हमारा आत्मगौरव शिथिल पड़ गया है। हम उसे भूल गए हैं,भूल ही नहीं गए अपितु पूरी तरह से विस्मृत कर दिया है। अपने आपको विस्मृत कर देना हमारी पहचान को मिटाने के लिए एक बहुत बड़ा खतरा है।

आज हमारे पास संचार माध्यमों के हाईटेक साधन आ गए हैं। इन माध्यमों से हम अपने गौरवपूर्ण साहित्य, इतिहास,कला, संस्कृति और अध्यात्म को संसार के बौद्धिक पटल पर रखें और संवाद करें। यह भारतवर्ष जिसके पास इतनी बड़ी सम्पदा है, वह दूसरों के सामने हाथ पसारे, दूसरों का झूठा गुणगान करें, जिसके गौरव पर अभिमान हो, उसे भुला दें, आखिर उससे बड़ा दुर्भाग्य क्या होगा। आज हम लोगों में हीनता की ग्रन्थि इतनी घर कर गयी है कि अपने कालजयी भारतीय साहित्य को नगण्य और दूसरों को वर्ण्य मानने का स्वभाव बन गया है। आज हमारी शिक्षा प्रणाली भी ऐसी हो गई है,– आज उच्च शिक्षा में जो कुछ भी पढ़ाया जा रहा है, उसमें पूरा का पूरा पश्चिम का चिंतन है, जबकि उन विषयों पर हमारे यहां के चिंतन और उसकी समृद्ध परम्परा को अनदेखा किया जाता है। हमारा भारतदर्शन, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शनशास्त्र, भाषाविज्ञान, राजनीतिशास्त्र विज्ञान आदि और अन्य भी अध्ययन के विषय भी बहुत उन्नत दशा में है।

आज हमें फिर से विश्वगुरु भारत को विश्व पटल पर लाने की आवश्यकता है।आज सभी प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। हमारा भारतवर्ष तब विश्व गुरु था , जब किसी प्रकार के भौतिक साधन उपलब्ध नहीं थे। आज भारतीय चिंतन और बौद्धिक सम्पदा को बढ़ाया जाए। यह भी ठीक होगा कि पश्चिम के ज्ञान – विज्ञान के साथ उनका तुलनात्मक पक्ष भी रखा जाए।हमारा नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र,भाषाविज्ञान और हमारा विज्ञान आज भी पश्चिम की मूलभूत आधार सामग्री बनी हुई है। हम भूलवश उनका मानकर अपने को ही हेय समझने लगे। नाट्यशास्त्र की तरह प्रशस्त ग्रंथ किस देश के पास है? वाल्मीकि व्यास की तरह

कवि, किस देश के पास हैं? गोमती,गंगा, रेवा,व्यास,गोदावरी और सरस्वती की तरह नदियां किस देश के पास हैं? हिमालय, नीलगिरी, विंध्याचल, सतपुड़ा और अरावली जैसी सुन्दर श्रेणियां किस देश के पास हैं? आज हमें वाल्मीकि के भारत,व्यास के भारत,कालिदास के भारत,रामकृष्ण के भारत,अरविंद के भारत और महर्षि रमन के भारत को विश्व के सामने रखने की आवश्यकता है,यह भारत की धरोहर है।उस ईश्वरीय शक्ति ने इन्हें मसीहा,संदेशवाहक के रूप में भेजा है। आज इक्कीसवीं सदी में हम अपनी सम्पदा, धरोहर जो कालजयी है भूल चुके हैं। समस्त सृष्टि पर दृष्टि डालें तो भारतवर्ष उस ईश्वर की, अदृश्य सत्ता की नियामत है। आज सामाजिक बदलाव दिखाई नहीं दे रहा।आज राजनीतिक शक्तियां व्यवस्था पर हावी हैं और व्यवस्था उन्हीं शक्तियों पर निर्भर है। अभी भी समय है कि हमारी सरकारें, स्वायत्तशासी संस्थाएं आगे आकर भारतवर्ष का चिंतन एवं बौद्धिक सम्पदा को सुरक्षित एवं संरक्षित कर लें, नहीं तो इसके परिणाम आप देख भी रहें हैं, और भुगत रहें हैं,आगे आने वाले समय में इसके परिणाम और भी भयंकर होंगे।

हमें अपनी पुरानी पत्रिकाओं के अंकों को भी पुरस्कार के रूप में प्रकाशित करना चाहिए। जिससे हमारी आने वाली पीढ़ी को ज्ञान का आलोक मिलेगा और अपनी विरासत को पढ़ने, समझने और सहेजने में सक्षम होंगे। हमारे हर विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय में पुस्तकालय तो हैं लेकिन पत्रिकाओं के स्वतंत्र संरक्षण का स्वरूप देखने को नहीं मिलता। यह भी हमें स्मरण रखना होगा कि साहित्य, इतिहास अथवा विज्ञान की अपनी विरासत का इतिहास और उसका प्रामाणिक स्त्रोत कहीं मिल सकता है तो इन पत्रदृपत्रिकाओं में।

आज मनुष्य की स्थिति अभिमानी रावण की तरह हो गई है,आज कथनीदृकरनी में अंतर आ गया है। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं

"जनि जल्पना करि सुजसु नासहिं नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महं पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा।
एक सुमनप्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागही।
एक कहहि करहि अपर एक करहि कहत न बागही।।

रावण के दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जानकर कृपा श्रीराम ने कहा – तुम्हारी सारी प्रभुता, जैसा तुम कह रहे हो सच है, व्यर्थ की बकवाद न करके अपना पुरुषार्थ दिखाओ। व्यर्थ की बकवाद करके यश का नाश न करो। नीति क्या कहती है – सुनो, संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं – पाटल (गुलाब) आम और कटहल के समान है। गुलाब फूलता है, फलता नहीं,आम फूलता और फलता है,फल और फूल दोनों देता है और एक कटहल ही ऐसा है जिसमें फल लगते हैं। इसी प्रकार पुरुषों में एक कहते हैं, करते नहीं, दूसरे कहते और करते हैं और तीसरे प्रकार के पुरुष केवल करते हैं, पर अपनी वाणी से कहते नहीं। इसी प्रकार भारतवर्ष में सच्चे साहित्यकारों की प्रयोजनीयता करने की रही है, तभी यह देश रावण जैसे वैरियो को भी ज्ञान सिखाते हैं।

सन्दर्भ सूची

1. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (इलाहाबादरू लोकभारती प्रकाशन, 2009), पृ. 12
2. नामवर सिंह, कविता के नए प्रतिमान (नई दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2011), पृ. 45
3. हजारी प्रसाद द्विवेदी, साहित्य का मर्म (नई दिल्लीरू राजकमल प्रकाशन, 2008), पृ. 78
4. रामविलास शर्मा, साहित्य और समाज (नई दिल्लीः वाणी प्रकाशन, 2010), पृ. 33
5. नगेन्द्र, साहित्य का समाजशास्त्र (नई दिल्लीरू नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2005), पृ. 56
6. अज्ञेय, साहित्य और संवेदना (नई दिल्लीः भारतीय ज्ञानपीठ, 2007), पृ. 91

डॉ0 पुष्पा रानी (डी. लिट.),
प्रोफेसर,हिन्दी – विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
मो. 9896206889

8

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (DBT) का ग्रामीण विकास पर प्रभावरू शाहाबाद ब्लॉक के ग्रामीण निवासियों में जागरूकता, चुनौतियाँ, वित्तीय समावेशन एवं दक्षता का गहन अध्ययन

राहुल त्रिपाठी, डॉ0 नीरज कुमार

सारांश (Abstract)

प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (**DBT**) भारत सरकार द्वारा शुरू किया गया एक प्रमुख प्रशासनिक सुधार है, जिसका उद्देश्य सरकारी योजनाओं के लाभों को सीधे लाभार्थियों के बैंक खातों में स्थानांतरित कर भ्रष्टाचार, विलंब और रिसाव को रोकना है। यह शोध–पत्र उत्तर भारत के शाहाबाद ब्लॉक के ग्रामीण क्षेत्रों में क्ठज् की प्रभावशीलता, जागरूकता, लाभ प्राप्ति की चुनौतियों, वित्तीय समावेशन पर इसके प्रभाव, तथा लाभ वितरण में पारदर्शिता और दक्षता की स्थिति का मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। अध्ययन प्राथमिक और द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। शोध में पाया गया कि यद्यपि डीबीटी ने ग्रामीण वित्तीय भागीदारी, बैंकिंग पहुँच और लाभ वितरण की पारदर्शिता में महत्वपूर्ण सुधार किया है, फिर भी डिजिटल साक्षरता की कमी, बैंकिंग अवसंरचना की सीमाएँ और तकनीकी त्रुटियाँ इसके पूर्ण क्रियान्वयन में अवरोध उत्पन्न करती हैं। शोध यह भी दर्शाता है कि महिलाओं और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में डीबीटी ने औपचारिक बैंकिंग प्रणाली में विश्वास और सहभागिता बढ़ाई है। अंततः यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि डिजिटल क्षमता–निर्माण और बैंकिंग ढांचे को और मजबूत किया जाए, तो डीबीटी ग्रामीण समावेशन और कल्याण की दिशा में एक अधिक प्रभावी साधन बन सकता है।

कीवर्ड्स (Keywords)

DBT, ग्रामीण भारत, शाहाबाद ब्लॉक, वित्तीय समावेशन, डिजिटल साक्षरता, लाभार्थी चुनौतियाँ, प्रशासनिक दक्षता, सामाजिक सुरक्षा, आधार–प्रमाणीकरण, प्रत्यक्ष हस्तांतरण, सार्वजनिक नीति।

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत में सामाजिक क्षेत्रों से संबंधित लाभकारी योजनाओं की संख्या विशाल है–पेंशन, छात्रवृत्ति, खाद्य सब्सिडी, उर्वरक सब्सिडी, स्वास्थ्य सहायता, मातृत्व लाभ, किसान सहायता (PM–Kisan) आदि। परंतु दशकों तक ये योजनाएँ मध्यस्थों, बिचौलियों, नकद भुगतान प्रणालियों और स्थानीय स्तर के भ्रष्टाचार के जाल में फँसी रहती थीं। इसी समस्या ने वर्ष 2013 में Direct Benefit Transfer (DBT) कार्यक्रम को जन्म दिया। डीबीटी की मूल अवधारणा यह है कि लाभार्थी की पहचान आधार के माध्यम से बने, पैसा सीधे बैंक खाते में जाए, और योजना की पारदर्शिता बढ़े।

डीबीटी ने भारत के ग्रामीण क्षेत्रों, विशेषकर सामाजिक–आर्थिक रूप से कमजोर समुदायों के लिए संभावनाएँ खोली हैं। शाहाबाद ब्लॉक जैसा क्षेत्र, जो कृषि–प्रधान, मध्यम साक्षरता और सीमित तकनीकी अवसंरचना वाला है, डीबीटी के प्रभावों को समझने के लिए एक आदर्श केस–स्टडी बनता है। यहाँ अधिकांश लाभार्थी निम्न–आय, सीमित डिजिटल ज्ञान और अस्थिर बैंकिंग पहुंच वाले हैं, जिसके चलते डीबीटी का क्रियान्वयन एक मिश्रित अनुभव बन जाता है–कुछ क्षेत्रों में उल्लेखनीय सफलता और कुछ में महत्वपूर्ण चुनौतियाँ।

इस शोध–पत्र का उद्देश्य हैः

1. ग्रामीणों में डीबीटी संबंधी जागरूकता का वर्तमान स्तर समझना।
2. लाभार्थियों को योजनाओं का लाभ प्राप्त करने में आने वाली जमीनी चुनौतियों की पहचान करना।
3. डीबीटी का वित्तीय समावेशन और डिजिटल साक्षरता पर प्रभाव आकलित करना।
4. यह जाँचना कि क्या डीबीटी ने रिसाव (Leakages), गलत भुगतान, भ्रष्टाचार और प्रशासनिक जटिलताओं में कमी की है।

यह शोध ग्रामीण नीति–निर्माण, कल्याण प्रशासन और सामाजिक सुरक्षा प्रणालियों के डिजिटलीकरण पर चल रहे बड़े विमर्श में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

2. अध्ययन क्षेत्र का विवरण (Description of the Study Area)

शाहाबाद ब्लॉक को इस शोध में एक प्रतिनिधि ग्रामीण क्षेत्र के रूप में चुना गया है। इसके प्रमुख लक्षण इस प्रकार हैंकृ

2.1 भौगोलिक पृष्ठभूमि

यह क्षेत्र मुख्य रूप से मैदानी है, जहाँ कृषि प्राथमिक आजीविका का साधन है। गाँवों में सड़कों और बिजली की उपलब्धता तो है, किंतु डिजिटल अवसंरचना असमान है।

2.2 सामाजिक–सांस्कृतिक संरचना

ग्रामीणों में पारंपरिक परिवार संरचना, सहकारी जीवन और कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था प्रमुख विशेषताएँ हैं। महिलाओं और वरिष्ठ नागरिकों में बैंक या डिजिटल गतिविधियों में सीमित सहभागिता देखी जाती है।

2.3 बैंकिंग और डिजिटल अवसंरचना

- बैंक शाखाओं की संख्या कम है।

- बैंक मित्र (CSP) केंद्रों पर निर्भरता अधिक है।
- नेटवर्क और बिजली की बाधाएँ AEPS और DBT भुगतानों को अक्सर प्रभावित करती हैं।
- इन्हीं परिस्थितियों के कारण शाहाबाद ब्लॉक डीबीटी के प्रभावों के अध्ययन के लिए आदर्श क्षेत्र बनता है।
- 3. शोध की आवश्यकता और औचित्य (**Need and Rationale for the Study)**
- डीबीटी पर बहुत से राष्ट्रीय अध्ययन उपलब्ध हैं, लेकिन क्षेत्र–विशिष्ट (Block – Level) शोध अत्यंत कम हैं। ग्रामीण क्षेत्रों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि, बैंकिंग पहुँच, डिजिटल ज्ञान और लाभार्थी प्रोफाइल अलग–अलग होते हैं, इसलिए एक क्षेत्र के निष्कर्ष दूसरे पर लागू नहीं किए जा सकते। शाहाबाद ब्लॉक में–
- उच्च गरीबी स्तर,
- सीमित डिजिटल कौशल,
- असमान बैंकिंग अवसंरचना,
- तथा सरकारी योजनाओं पर निर्भरता
- जैसे कारक डीबीटी के प्रभावों को विशेष रूप से महत्वपूर्ण बनाते हैं।
- यह अध्ययन स्थानीय प्रशासन, नीति–निर्माताओं, बैंकों और डिजिटल सेवा प्रदाताओं के लिए उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।
- **4. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)**
- यह शोध निम्नलिखित लक्ष्यों पर केंद्रित है–
- 1.शाहाबाद ब्लॉक के ग्रामीण निवासियों के बीच डीबीटी संबंधी जागरूकता के स्तर का मूल्यांकन करना।
- 2.डीबीटी लाभ प्राप्ति में आने वाली प्रक्रिया–संबंधी व तकनीकी चुनौतियों का विश्लेषण करना।
- 3.डीबीटी का वित्तीय समावेशन (Financial Inclusion) पर प्रभाव समझना।
- 4.डिजिटल साक्षरता और डिजिटल व्यवहार में हुए परिवर्तन की पहचान करना।
- 5.लाभ वितरण में पारदर्शिता, रिसाव में कमी और प्रशासनिक दक्षता का आकलन करना।
- 5. साहित्य समीक्षा (Literature Review) – भाग 1
- 5.1 डीबीटी का सैद्धांतिक आधार
- DBT को सार्वजनिक प्रशासन में New Public Management (NPM) की अवधारणा से जोड़ा जाता है, जिसका मुख्य सिद्धांत है–
- n{krk ¼Efficiency)
- जokcnsgh ¼Accountability)
- पारदर्शिता (Transparency)
- नागरिक केंद्रीकरण (Citizen & Centric Governance)
- डिजिटल हस्तांतरण इन सभी तत्वों को मजबूत करता है।
- 5.2 भारत में **DBT पर मौजूदा शोध**
- Govt. of India (2019) की रिपोर्ट बताती है कि डीबीटी ने सामाजिक सुरक्षा भुगतान में 35% तक रिसाव कम किया है। Chandrasekhar & Ghosh (2018) ने दिखाया कि आधार–आधारित प्रमाणीकरण ने फर्जी लाभार्थियों की पहचान में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वहीं Drèze et al- (2017) ने पाया कि तकनीकी विफलताओं के कारण ग्रामीण लाभार्थियों को कई बार भुगतान नहीं मिल पाता।
- 5.3 वित्तीय समावेशन और जन–धन योजना
- Mor (2016) के अनुसार, जन–धन खातों के माध्यम से भारत में पहली बार करोड़ों ग्रामीण बैंकिंग तंत्र से जुड़े। Subramanian (2018) ने दर्शाया कि बैंकिंग पहुँच होने से लाभार्थी औपचारिक वित्तीय गतिविधियों में सक्रिय होते हैं।
- 5.4 डिजिटल साक्षरता और ग्रामीण डिजिटल विभाजन
- Singh & Ravindra (2021) ने पाया कि ग्रामीण भारत में डिजिटल ज्ञान असंतुलित है–युवा अपेक्षाकृत अधिक कुशल हैं, जबकि महिलाएँ और बुजुर्ग पिछड़ जाते हैं।
- 5.5 क्षेत्र–स्तरीय अध्ययनों की कमी
- Scopus इंडेक्स्ड कई शोध क्षेत्रीय विविधता को नजरअंदाज करते हैं। ब्लॉक–स्तरीय विश्लेषण कम उपलब्ध हैं, जिससे यह अध्ययन वैज्ञानिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हो जाता है।
- 5.6 साहित्य समीक्षा (**Literature Review – भाग 2)**
- **5.6.1 लाभ वितरण में दक्षता और पारदर्शिता**
- DBT के कार्यान्वयन ने लाभ वितरण प्रक्रिया को अधिक दक्ष और पारदर्शी बनाया है। Mishra & Sharma (2019) ने पाया कि DBT के माध्यम से सब्सिडी, पेंशन और छात्रवृत्ति योजनाओं में समय पर भुगतान में 40% सुधार हुआ है।
- Bhatnagar et al- (2020) के अध्ययन के अनुसार, PFMS पोर्टल और बैंक ट्रैकिंग सिस्टम ने सरकारी भुगतान प्रणाली में अनुचित हस्तक्षेप और भ्रष्टाचार को न्यूनतम किया। ग्रामीण लाभार्थियों ने भी इस प्रणाली को भरोसेमंद माना।
- 5.6.2 ग्रामीण वित्तीय समावेशन पर प्रभाव
- DBT ने ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग नेटवर्क की पहुँच बढ़ाई है।

Agarwal & Verma (2018) ने यह दिखाया कि जन–धन खातों और DBT के माध्यम से लाभार्थियों का औपचारिक बैंकिंग प्रणाली से जुड़ाव बढ़ा। इससे ग्रामीणों में बचत, क्रेडिट पहुँच, और वित्तीय योजना करने की क्षमता भी बढ़ी।

- 5.6.3 डिजिटल साक्षरता पर प्रभाव
- DBT ने लाभार्थियों को डिजिटल भुगतान प्रणालियों और मोबाइल बैंकिंग की ओर प्रोत्साहित किया है। Kumar & Singh (2020) के अनुसार, AEPS और मोबाइल आधारित ट्रांजेक्शन ने ग्रामीणों को डिजिटल प्लेटफॉर्म्स के प्रयोग में सक्षम बनाया। लेकिन, महिलाओं और वृद्ध लाभार्थियों में डिजिटल ज्ञान की कमी अभी भी बड़ी चुनौती है।
- 5.6.4 चुनौतियाँ और अवरोध
- साहित्य समीक्षा में यह स्पष्ट होता है कि DBT को लाभार्थियों तक प्रभावी रूप से पहुँचाने में कई बाधाएँ हैं:
- आधार प्रमाणीकरण और बायोमेट्रिक विफलताएँ
- इंटरनेट कनेक्टिविटी और बैंकिंग अवसंरचना की सीमाएँ
- लाभार्थियों की सीमित डिजिटल साक्षरता
- सामाजिक–आर्थिक असमानताएँ
- इन बाधाओं के कारण कुछ लाभार्थियों को समय पर या पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं होता।
- 6. शोध पद्धति (Research Methodology)
- **6.1 अनुसंधान का प्रकार**
- **यह अध्ययन वर्णनात्मक** (Descriptive) और विश्लेषणात्मक (Analytical) दृष्टिकोण पर आधारित है। इसका उद्देश्य ग्रामीण लाभार्थियों में क्ठज् की जागरूकता, चुनौतियाँ, वित्तीय समावेशन और डिजिटल साक्षरता का मूल्यांकन करना है।
- 6.2 डेटा स्रोत
- 6.2.1 प्राथमिक डेटा (**Primary Data)**
- **साक्षात्कार** (Interviews): 50 लाभार्थियों, 10 बैंक प्रतिनिधियों और 5 ग्राम प्रधानों से।
- प्रश्नावली (Questionnaire): लाभार्थियों के जागरूकता स्तर, लाभ प्राप्ति की प्रक्रिया, डिजिटल साक्षरता और लाभ वितरण अनुभव पर आधारित।
- 6.2.2 द्वितीयक डेटा (**Secondary Data)**
- सरकारी रिपोर्ट Ministry of Finance (2021), DBT Bharat Portal
- शोध पत्र और केस स्टडी: Chandrasekhar & Ghosh 2018 Mishra & Sharma (2019)
- **6.3 नमूना चयन (Sampling)**
- **स्थानीय स्तर**: शाहाबाद ब्लॉक के 10 गाँवों का चयन।
- लाभार्थी चयन: यादृच्छिक (Random) और श्रेणी – आधारित (Stratified) चयन।
- संख्या: कुल 150 लाभार्थी।
- 6.4 डेटा विश्लेषण (Data Analysis)
- आंकिक विश्लेषण (Quantitative Analysis): SPSS में प्रतिशत, औसत और क्रॉस–टेबल विश्लेषण।
- गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis): साक्षात्कारों और टिप्पणियों के आधार पर विषयगत विश्लेषण (Thematic Analysis)।
- 7. DBT जागरूकता स्तर का विश्लेषण (Awareness Level of DBT in Shahabad Block)
- **7.1 आधारभूत जागरूकता (Basic Awareness)**
- **अध्ययन में पाया गया**:
- लगभग 68% लाभार्थियों ने यह बताया कि उन्हें अपने बैंक खाते में सरकारी योजना के तहत राशि प्राप्त होती है।
- सामान्य जागरूकतारू PM Kisan, LPG सब्सिडी, वृद्धावस्था पेंशन, छात्रवृत्ति योजनाएँ।
- तकनीकी जानकारी की कमी: केवल 30: लाभार्थी जानते थे कि वे AEPS या मोबाइल बैंकिंग के माध्यम से भुगतान ट्रैक कर सकते हैं।
- 7.2 सामाजिक–आर्थिक अंतर (Socio–Economic Disparities)
- महिलाएँ: केवल 45% महिला लाभार्थी पूरी तरह जागरूक।
- वृद्ध नागरिक: 40% लाभार्थी बैंकिंग प्रक्रिया को समझते हैं।
- युवा लाभार्थी 80% ने डिजिटल माध्यमों का उपयोग किया।
- **7.3 सूचना स्रोत (Sources of Information)**
- ग्रामीण बैंक और बैंक मित्र केंद्र: 55%
- ग्राम पंचायत और जागरूकता अभियान: 25%
- परिवारध्सामुदायिक सदस्य: 20%
- 7.4 जागरूकता और लाभ प्राप्ति में संबंध (Awareness vs Benefit Receipt)
- जिन लाभार्थियों में जागरूकता अधिक थी, वे अधिक नियमित और समय पर लाभ प्राप्त कर पाए।
- जिनके पास तकनीकी और डिजिटल ज्ञान कम था, उन्हें लाभ प्राप्ति में देरी और परेशानियों का सामना करना पड़ा।
- 7.5 **निष्कर्ष (Key Findings)**

- ग्रामीणों में आधारभूत जागरूकता उच्च, पर तकनीकी और प्रक्रिया संबंधी जानकारी कम है।
- डिजिटल ज्ञान और बैंकिंग साक्षरता के अंतर ने लाभ प्राप्ति की समयबद्धता पर असर डाला।
- जागरूकता अभियान और बैंक मित्र केंद्र लाभार्थियों के लिए महत्वपूर्ण स्रोत हैं।
- 8. DBT लाभ प्राप्ति में मुख्य चुनौतियाँ (Major Challenges in Availing DBT Benefits)
- शाहाबाद ब्लॉक में ग्रामीण लाभार्थियों ने कई बाधाओं का सामना किया। शोध में निम्नलिखित प्रमुख चुनौतियाँ सामने आईं:
- 8.1 बैंकिंग अवसंरचना की कमी (Banking Infrastructure Constraints)
- ब्लॉक के अधिकांश गाँवों में शाखाओं की संख्या सीमित है।
- बैंक मित्र (CSP) केंद्रों पर भीड़भाड़ और कैश की कमी आम समस्या है।
- लंबी दूरी तय करना और समयबद्धता बनाए रखना ग्रामीणों के लिए चुनौतीपूर्ण है।
- 8.2 तकनीकी अवरोध (Technical Challenges)
- आधार प्रमाणीकरण और बायोमेट्रिक विफलताएः 22% लाभार्थियों ने कहा कि उनका भुगतान आधार सत्यापन विफलता के कारण रोका गया।
- सर्वर डाउन और इंटरनेट की खराब गतिः डिजिटल हस्तांतरण बाधित होता है।
- मोबाइल नंबर अपडेट की समस्यारू लाभ सीधे खाते में न पहुँचने का प्रमुख कारण।
- 8.3 डिजिटल साक्षरता की कमी (Lack of Digital Literacy)
- अधिकांश वृद्ध लाभार्थियों और महिलाओं को AEPS और मोबाइल बैंकिंग का ज्ञान नहीं है।
- तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण गलत लेन–देन या भुगतान असफलताएँ होती हैं।
- 8.4 दस्तावेजी और सत्यापन संबंधी समस्याएँ (Documentation – Verification Issues)
- आधार–बैंक लिंकेज में विसंगति
- गलत नाम, जन्म तिथि और बैंक विवरण
- बीजक सुधार में विलंब
- 8.5 सामाजिक–आर्थिक बाधाएँ (Socio–Economic Barriers)
- महिलाओं और अल्पसाक्षर लाभार्थियों के लिए बैंक तक पहुंच कठिन है।
- बुजुर्ग लाभार्थियों को बैंकिंग प्रक्रियाओं में मदद की आवश्यकता होती है।
- निष्कर्ष ये चुनौतियाँ DBT की पूरी क्षमता का लाभ ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं उठा पाने का मुख्य कारण हैं।
- 9. DBT का वित्तीय समावेशन पर प्रभाव (Impact on Financial Inclusion)
- 9.1 बैंकिंग नेटवर्क से जुड़ाव (Linkage to Banking System)
- अध्ययन से पता चला कि लगभग 85% लाभार्थियों ने जन–धन या अन्य बैंक खातों के माध्यम से पहली बार औपचारिक बैंकिंग से जुड़ाव प्राप्त किया।
- इससे ग्रामीणों में बचत और लेन–देन का ज्ञान बढ़ा।
- 9.2 लेन–देन के पैटर्न में बदलाव (Changes in Transaction Behavior)
- नकद लेन–देन की बजाय खाते में आने वाले धन का उपयोग अधिक होने लगा।
- लाभार्थियों ने सुरक्षित डिजिटल भुगतान और मोबाइल बैंकिंग की ओर रुझान दिखाया।
- 9.3 महिलाओं की वित्तीय भागीदारी (Women Financial Inclusion)
- PM Kisan और उज्ज्वला योजना के तहत सीधे महिलाओं के खाते में भुगतान ने उनकी आर्थिक निर्णय क्षमता बढ़ाई।
- महिलाओं ने बैंक खाते का अधिक सक्रिय उपयोग करना शुरू किया।
- **9.4 निष्कर्ष (Key Findings)**
- DBT ने ग्रामीण बैंकिंग प्रणाली से जुड़ाव को मजबूत किया।
- औपचारिक वित्तीय प्रणाली में सहभागिता और बचत की प्रवृत्ति में सुधार हुआ।
- महिलाओं और कमजोर वर्गों की आर्थिक भागीदारी बढ़ी।
- 10. DBT और डिजिटल साक्षरता (Digital Literacy & Behavioral Change)
- 10.1 डिजिटल साक्षरता में वृद्धि (Increase in Digital Awarenès)
- AEPS, UPI और मोबाइल बैंकिंग के प्रयोग ने ग्रामीणों को डिजिटल प्लेटफॉर्म्स की ओर आकर्षित किया।
- अध्ययन में पाया गया कि युवा लाभार्थियों में 75% डिजिटल लेन–देन का प्रयोग हो रहा है।

- 10.2 महिलाओं और वृद्ध लाभार्थियों में अंतर (Gender – Age Gap)
- महिलाओं में केवल 45% लाभार्थी डिजिटल लेन–देन कर पा रही हैं।
- वृद्ध लाभार्थियों को मोबाइल बैंकिंग और AEPS के लिए सहायता की आवश्यकता।
- 10.3 डिजिटल व्यवहार में परिवर्तन (Behavioral Change)
- लाभार्थियों ने मोबाइल और बैंकिंग एप्स के प्रयोग में विश्वास और सहजता विकसित की।
- डिजिटल लेन–देन और बैंकिंग प्रक्रियाओं के प्रति आशंका घट रही है।
- 10.4 मुख्य निष्कर्ष (Key Findings)
- DBT ने ग्रामीण डिजिटल साक्षरता और डिजिटल व्यवहार में सुधार किया।
- प्रशिक्षण, जागरूकता अभियान और बैंकिंग सहायता की आवश्यकता बनी हुई है।
- सामाजिक–आर्थिक अंतर डिजिटल साक्षरता में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- 11. डेटा विश्लेषण सारांश (Summary of Data Analysis)
- पहलू (Aspect) प्रतिशत निष्कर्ष (Findings)
- मूलभूत DBT जागरूकता 68: लाभार्थी
- तकनीकी प्रक्रिया संबंधी ज्ञान 30: लाभार्थी
- डिजिटल लेन–देन प्रयोग युवा: 75%,
- महिलाएँ: 45%,
- वृद्ध: 40%
- लाभ वितरण में देरी का कारण 22% आधार प्रमाणीकरण विफलता
- बैंकिंग पहुँच 85% लाभार्थियों का बैंकिंग जुड़ाव
- सामाजिक बाधाएँ महिलाएँ अल्पसाक्षर लाभार्थी कम सक्रिय
- निष्कर्ष
- जागरूकता और डिजिटल ज्ञान में अंतर लाभ वितरण और लाभार्थी अनुभव को प्रभावित करता है।
- DBT ने वित्तीय समावेशन और डिजिटल साक्षरता में सकारात्मक बदलाव किया है।
- बाधाएँ और अवसंरचना की कमी पूर्ण लाभ प्राप्ति में रोड़ा हैं।
- 12. लाभ वितरण में रिसाव और दक्षता (Leakage Reduction & Efficiency in Benefit Delivery)
- 12.1 रिसाव में कमी (Reduction in Leakages)
- DBT के क्रियान्वयन से ग्रामीण लाभ वितरण में बिचौलियों और दलालों की भूमिका कम हुई।
- अध्ययन में पाया गया कि शाहाबाद ब्लॉक में 35–40% तक रिसाव घटा, जैसा कि Mishra & Sharma (2019) ने राष्ट्रीय स्तर पर रिपोर्ट किया।
- बैंक खाते में सीधे भुगतान होने से फर्जी लाभार्थियों और भ्रष्टाचार की संभावना कम हुई।
- 12.2 लाभ वितरण की समयबद्धता (Timeliness of Benefit Delivery)
- अधिकांश योजनाओं में लाभार्थियों को समय पर राशि प्राप्त हुई।
- PFMS पोर्टल और बैंक ट्रैकिंग सिस्टम ने लाभ वितरण प्रक्रिया को आसान, पारदर्शी और तेज बनाया।
- 12.3 प्रशासनिक दक्षता (Administrative Efficiency)
- क्ठज् ने सरकारी योजनाओं के प्रबंधन में सामाजिक और तकनीकी नियंत्रण बढ़ाया।
- डेटा और ट्रैकिंग सिस्टम के कारण फर्जी दावे और त्रुटिपूर्ण भुगतान की पहचान में आसानी हुई।
- लाभार्थियों ने भी बैंकिंग प्रणाली पर अधिक भरोसा व्यक्त किया।
- 12.4 निष्कर्ष (Key Finding)
- DBT ने पारंपरिक नकद भुगतान प्रणाली की तुलना में वितरण प्रक्रिया अधिक दक्ष और पारदर्शी बनाई।
- रिसाव और भ्रष्टाचार में कमी, भुगतान की गति में सुधार और लाभार्थियों के अनुभव में सकारात्मक बदलाव हुआ।
- 13. DBT का समग्र प्रभाव (Overall Impact of DBT in Shahabad Block)
- 13.1 सामाजिक–आर्थिक प्रभाव (Sociol Economic Impact)
- गरीब और ग्रामीण वर्ग के लिए लाभ सीधे खाते में आने से आर्थिक सुरक्षा बढ़ी।
- महिलाओं और कमजोर वर्गों ने आर्थिक निर्णय में सहभागिता बढ़ाई।
- नकदी निर्भरता घटने से ग्रामीण अर्थव्यवस्था में लेन–देन की पारदर्शिता आई।
- 13.2 वित्तीय समावेशन और डिजिटल साक्षरता

(Financial Inclusion & Digital Literacy)

- DBT ने ग्रामीणों को बैंकिंग प्रणाली से जोड़ा और डिजिटल व्यवहार में सुधार किया।
- युवाओं में डिजिटल भुगतान और AEPS का प्रयोग बढ़ा।
- वृद्ध और महिलाएँ अभी भी बैंकिंग और डिजिटल प्लेटफॉर्म्स पर सहायता पर निर्भर हैं।
- 13.3 चुनौतियाँ और सुधार की आवश्यकता (Challenges & Need for Improvement)
- तकनीकी अवरोध, आधार प्रमाणीकरण त्रुटियाँ और डिजिटल ज्ञान की कमी अभी भी प्रमुख समस्या हैं।
- बैंकिंग अवसंरचना, CSP केंद्रों की संख्या और मोबाइल नेटवर्क सुधार की आवश्यकता।
- डिजिटल साक्षरता और जागरूकता अभियान जरूरी।
- 13.4 मुख्य निष्कर्ष (Key Finding)
- DBT ने ग्रामीण लाभार्थियों के वित्तीय और डिजिटल व्यवहार में महत्वपूर्ण सुधार किया।
- लाभ वितरण में पारदर्शिता और दक्षता बढ़ी।
- यदि अवसंरचना और प्रशिक्षण सुधारित हों, तो DBT और अधिक प्रभावशाली हो सकता है।
- 14. नीति सिफारिशें (Policy Recommendations)
- 1.डिजिटल साक्षरता अभियान (Digital Literacy Programs):
- विशेष रूप से महिलाओं, वृद्ध और अल्पसाक्षर लाभार्थियों के लिए।
- AEPS, मोबाइल बैंकिंग और UPI भुगतान की प्रशिक्षण कार्यशालाएँ।
- 2. बैंकिंग अवसंरचना सुधार (Banking Infrastructure):
- अधिक CSP केंद्र और ग्रामीण शाखाओं की स्थापना।
- नेटवर्क और कैश प्रबंधन में सुधार।
- 3. तकनीकी समर्थन (Technical Support):
- आधार प्रमाणीकरण और बायोमेट्रिक त्रुटियों को कम करने के लिए IT सहायता।
- लाभार्थियों के मोबाइल नंबर और बैंक विवरण नियमित रूप से अपडेट।
- 4. जागरूकता अभियान (Awareness Campaigns):
- ग्राम पंचायत और स्थानीय संस्थाओं के माध्यम से DBT योजनाओं की जानकारी।
- लाभार्थियों को प्रक्रिया और ट्रैकिंग के बारे में मार्गदर्शन।
- 5. निरंतर निगरानी और मूल्यांकन (Monitoring & Evaluation):
- PFM और बैंक डेटा का उपयोग कर वितरण में त्रुटियों की पहचान।
- क्षेत्रीय रिपोर्टिंग और फीडबैक सिस्टम।
- 15. निष्कर्ष (Conclusion)
- शाहाबाद ब्लॉक में क्ठज् ने ग्रामीण लाभार्थियों के लिए कई सकारात्मक परिवर्तन लाए हैं:
- जागरूकता और तकनीकी समझ में वृद्धि हुई है।
- वित्तीय समावेशन और महिलाओं की आर्थिक भागीदारी में सुधार हुआ।
- लाभ वितरण में दक्षता और पारदर्शिता बढ़ी।
- रिसाव और भ्रष्टाचार में कमी आई।
- साथ ही, अध्ययन ने यह भी रेखांकित किया कि डिजिटल साक्षरता, बैंकिंग अवसंरचना और तकनीकी समर्थन में सुधार की आवश्यकता अभी भी बनी हुई है। यदि ये सुधार किए जाएँ, तो DBT ग्रामीण कल्याण, वित्तीय समावेशन और प्रशासनिक दक्षता का एक आदर्श मॉडल बन सकता है।
- 16. **सन्दर्भ** (References)

- 1.Agarwal, R-, & Verma, S- (2018)- Financial inclusion through direct benefit transfer: Evidence from rural India- Journal of Rural Development, 37(4), 457–472.
- 2. Bhatnagar, S-, Singh, R-, & Mishra, P- (2020)- Direct benefit transfer and administrative efficiency in India- Public Administration Review, 80(5), 945–961-
- 3. Chandrasekhar, C- P-, & Ghosh, J- (2018)- Direct benefit transfer: Reducing leakage and corruption- Economic & Political Weekly, 53(18), 35–42-
- 4. Drèze, J-, Khera, R-, & Samson, M- (2017)- Social protection in India: An assessment of DBT initiatives- O•ford Development Studies, 45(2), 129–149-
- 5.Kumar, A-, & Singh] V- (2020)- Digital literacy and DBT adoption among rural households- Information Technology for Development, 26(3),497–515-

- 6. Mishra, A-, & Sharma, K- (2019), Direct Benefit Transfer and social security: Evidence from Indian villages- International Journal of Social Economics, 46(8), 1023–1040-
- 7. Mor, N- (2016)- Jan Dhan Yojana and financial inclusion: Policy impact analysis- Indian Journal of Economics & Development, 12(2)] 65–74-
- 8. Singh, P-, & Ravindra, R- (2021)- Digital divide and rural India: DBT as a catalyst- Journal of Rural Studies, 82, 52–63-
- 9. Government of India- (2019)- Direct Benefit Transfer Annual Report 2018–19- Ministry of Finance, New Delhi-
- 10-Government of India- (2021)- DBT Bharat Portal: Progress and Evaluation- Ministry of Finance, New Delhi-

शोध पत्र में प्रकाशित होने बाले नाम तथा पता –

राहुल त्रिपाठी (शोध छात्र)

डॉ0 नीरज कुमार

श्री वेंकटेश्वर यूनिवर्सिटी,

गजरौला,

उत्तर प्रदेश

पता–

मोहल्ला– बुधबाजार, शाहाबाद

जिला – हरदोई

पिन– 241124

मोबाइल न. 9580724456

9

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सामाजिक जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति

संदीप कुमार

सारांश

हिंदी साहित्य के आधुनिक कवियों में गिरिजाकुमार माथुर का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से समाज में व्याप्त विषमताओं, अन्याय, शोषण, विघटन तथा मानवीय संकटों को रेखांकित करते हुए मानवतावादी मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। प्रस्तुत शोध–पत्र में गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में निहित सामाजिक जीवन–मूल्यों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उनके काव्य में मानवता, सामाजिक न्याय, राष्ट्रीय चेतना, श्रम की गरिमा तथा विश्वबंधुत्व जैसे मूल्य प्रमुख रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। हर समाज के अपने कुछ नियम, आदर्श तथा प्रतिमान होते हैं जिन्हें हम मूल्यों की संज्ञा देते हैं और इन्हीं मूल्यों के अनुसार मनुष्य आचरण करता है। मूल्यों के अभाव में मानव व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता साथ ही समाज में भी अराजकता का वातावरण उत्पन्न हो जाता है इसलिए मानवता के उत्थान के लिए समाज में जीवन–मूल्यों का होना नितांत आवश्यक है।

सामाजिक मूल्य की अवधारणा

सामाजिक मूल्य वे आदर्श, मान्यताएँ, नियम और नैतिक सिद्धांत हैं जिन्हें समाज अपने सदस्यों के लिए उचित, वांछनीय और आवश्यक मानता है। ये मूल्य व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं तथा समाज में व्यवस्था, सामंजस्य और सहयोग बनाए रखने में सहायक होते हैं। प्रसिद्ध समाजशास्त्री राधा कमल मुखर्जी के अनुसार– "समाज द्वारा अनुमोदित लक्ष्य और इच्छाएं मूल्य हैं, जो परिवेशमय निबंधता, शिक्षा एवं समाजीकरण की प्रक्रिया से गुजरते हुए आंतरिक स्वरूप धारण करके किसी विषयनिष्ठ वरीयताओं, परिनिष्ठाओं तथा लालसाओं के रूप में परिवर्तित हो गए हैं।"1 हिंदी साहित्य कोश के अनुसार– "मूल्य वस्तुतः सामाजिक है जिसकी आधारशिला अर्थशास्त्र और राजनीति की प्रक्रिया में सुप्त है।"2 इस प्रकार सामाजिक मूल्य का बोध हमें समाज, संस्कृति, संस्कार और व्यवहार के द्वारा होता है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि सभी समाजशास्त्री मूल्य को समाज से संबद्ध मानते हैं। समाज में रहकर ही मनुष्य मूल्यों का निर्माण करते हैं।

सामाजिक मूल्यों का परिचय सर्वप्रथम हमें परिवार से ही हो जाता है। वर्तमान समय में पारिवारिक मूल्य तेजी से विघटित हो रहे हैं। आधुनिकता और व्यक्तिवादिता के बढ़ते हुए प्रभाव के कारण मनुष्य के हृदय से दया, प्रेम, त्याग, सहयोग, सहानुभूति जैसी भावनाएं समाप्त होती जा रही है। कविवर गिरिजाकुमार माथुर के हृदय में अपने परिवार के प्रति बड़े मर्मस्पर्शी भाव थे। उनकी मान्यता है यदि परिवार ही विखंडित हो गया तब जीवन–मूल्यों में हास की संभावना बढ़ जाती है। माथुर के काव्य संग्रह 'धूप के धान' में प्रेम का बड़ा ही उज्ज्वल गार्हस्थिक रूप दिखाई देता है जहां पर वे प्रेयसी को परकीया के रूप में नहीं वरन् पत्नी के रूप में चित्रित करते हैं। पत्नी के प्रति कवि का वियोग देखिए–

"यह एकांत मकान
और उनकी उजली बांहों की यह दीवारें
नहीं समेट पा रहीं मुझको
और न दिन भर की थकान को मिटा रही हैं।"3

उक्त कविता में कवि की पारिवारिक विरह वेदना अपने चरम रूप में अभिव्यक्त हुई है। वे अपनी पत्नी के प्रति पूरी तरह आस्थावान दिखाई देते हैं। जब कवि ऑफिस जाते हैं तो भी उन्हें अपनी पत्नी के हर पग साथ रहने का अहसास होता है। कविवर माथुर ने अपने परिवार के प्रति जो अगाध प्रेम भाव है उसे उन्होंने वैयक्तिक धरातल पर नहीं वरन् सामाजिक धरातल पर उतारा है।

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सामाजिक जीवन–मूल्य

गिरिजाकुमार माथुर नई कविता के प्रमुख कवि हैं। उनके काव्य में केवल व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन की समस्याएँ, मानवीय संवेदनाएँ और जीवन–मूल्य भी व्यापक रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। उन्होंने अपने समय के समाज में व्याप्त असमानता, शोषण, मूल्य–संकट और मानवीय संघर्षों को चित्रित करते हुए ऐसे आदर्शों की स्थापना की है, जो समाज को सकारात्मक दिशा प्रदान करते हैं। मूल्य न केवल व्यक्ति विशेष को वरन् सारे समाज को प्रभावित करते हैं। इस संबंध में डॉ. धर्मवीर भारती का विचार है– "साहित्यकार का यह नया दायित्व इतिहास निर्माण का दायित्व है, मानव संस्कृति के मूल्यात्मक विकास का दायित्व है और सामान्य व्यक्ति के दायित्व से कई गुना जटिल दायित्व है, क्योंकि साहित्यकार की पक्षधरता, संघर्ष और विवेक का स्तर बहुत गहरा है।"4 कहने का आशय यह है कि साहित्यकार मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। माथुर भी एक ऐसे साहित्यकार के रूप में सामने आते हैं जिनके काव्य में सामाजिक जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति अनेक रूपों में देखने को मिलती है। विषय को स्पष्टताः प्रदान करने के लिए हम

सामाजिक जीवन–मूल्यों को निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त करना चाहेंगे–

1. सामाजिक असमानता से उत्पन्न कुंठाजनित मूल्य

2. सामाजिक विघटन से उत्पन्न जीवन–मूल्य

3. नारी से संबंधित जीवन–मूल्य

4. आधुनिक बोध से संबद्ध जीवन–मूल्य

1. सामाजिक असमानता से उत्पन्न कुंठाजनित मूल्य–

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में सामाजिक जीवन की विषमताओं और उनसे उत्पन्न मानवीय पीड़ा का अत्यंत संवेदनशील चित्रण मिलता है। समाज में व्याप्त आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक असमानताएँ व्यक्ति के भीतर कुंठा, निराशा, असंतोष और विद्रोह की भावना को जन्म देती हैं। कवि ने देखा कि समाज का एक वर्ग सुख–सुविधाओं, संपन्नता और अधिकारों से युक्त है, जबकि दूसरा वर्ग अभाव, शोषण और उपेक्षा का जीवन जीने के लिए विवश है। इस असंतुलन के कारण वंचित वर्ग के मन में हीनता–बोध, आक्रोश और मानसिक दमन की स्थिति उत्पन्न होती है। सामाजिक असमानता के कारण ही आज मनुष्य अनेक मानसिक द्वंद्वों से गुजरता हुआ संकट का सामना कर रहा है। माथुर ने इस स्थिति को समझा और सामाजिक स्थिति का यथार्थ अंकन किया–

"आग वह गरीबी की
ज्वाला वह पेट की
भूखी बेहोशी में
गहराती, डूबती, मुंदती
आंखें बच्चे की
जिंदा जलाई असहाय नारी देह की
बूढ़ों की अवहेलित कराह की
वर्षों से न मिलने वाले न्याय की वं
ध्या इंतजार की।"5

इस प्रकार अनेक विषमताओं से जूझते हुए व्यक्ति का हीनता और कुंठा से ग्रसित होना स्वाभाविक ही है। माथुर ने मानव जीवन में व्याप्त दुख, दर्द, पीड़ा, छटपटाहट को बड़ी नजदीकी से देखा और इस अभावग्रस्त मानव जीवन को अभिव्यक्ति दी। माथुर स्पष्ट करते हैं कि सामाजिक असमानता के कारण आज मनुष्य का जीवन रेजगारी के समान हो गया है–

"विकृत हो गए हैं
सभी मूल्य मान
सिर्फ घूमता है
रेजगारी–सा इंसान।"6

वास्तव में आज नगर और महानगर के व्यस्ततम जीवन और जीवन स्तर में असमानता के कारण कविवर माथुर को भी अजनबीपन और कुंठा का बोध होने लगा। यहां माथुर ने यह स्वीकार किया है कि नगरीय जीवन ने उन्हें विद्या, संस्कार, काम, रोमांस, कुंठा, अवहेलना, अपमान सभी कुछ दिया है पर उनके हृदय से प्यार भरी कोमल भावनाओं का हरण कर लिया है।

2. सामाजिक विघटन से उत्पन्न जीवन–मूल्य

गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में आधुनिक समाज की बदलती परिस्थितियों के कारण उत्पन्न सामाजिक विघटन का सशक्त चित्रण मिलता है। सामाजिक विघटन से आशय उन परिस्थितियों से है, जिनमें समाज के पारंपरिक मूल्य, संबंध, नैतिक आदर्श और सामूहिक चेतना कमजोर पड़ने लगते हैं। औद्योगीकरण, नगरीकरण, भौतिकवाद तथा स्वार्थपरक प्रवृत्तियों के कारण व्यक्ति और समाज के बीच की आत्मीयता कम होती जाती है, जिससे सामाजिक जीवन में असंतुलन और विखंडन उत्पन्न होता है। स्वार्थी तत्व अपने–अपने स्वार्थों को पूरा करने के उद्देश्य से मनुष्य को माध्यम बना रहे थे। माथुर ने इस स्थिति को गहनता से महसूस किया और काव्य के माध्यम से अभिव्यक्ति दी–

"मृत्यु परीक्षण में उठती है
वह अणुओं की धूप मशाल
मरते बूढ़े मूल्य रच रहे
जिसमें विध्वंसों का जाल।"7

इस तरह सारा मानव समाज कुछ ऐसे व्यक्तियों के हाथ की कठपुतली बनने लगा जो अपने निजी स्वार्थों के आगे मानव जाति का विनाश करने को तत्पर हैं। आज समाज में चारों तरफ भ्रष्टाचार, बेईमानी, घूसखोरी, हिंसा, घृणा, लूटपाट, आतंक ही दिखाई दे रहा है।

3. नारी से संबंधित जीवन–मूल्य – गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में नारी केवल सौंदर्य और प्रेम की प्रतीक नहीं है, बल्कि वह संवेदना, शक्ति, त्याग, संघर्ष और मानवीय गरिमा की प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होती है। प्राचीन काल से लेकर आज तक नारी ने समाज को जो सक्रिय योगदान दिया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। प्रायः सभी संतों और भक्तों ने नारी महिमा को एक स्वर से स्वीकार किया। आदिकाल में नारी को पूज्यनीय दृष्टि से देखा गया 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमंते तत्र देवता।' भक्ति काल में भक्ति और साधना की राह में नारी को बाधक समझा जाने लगा और रीति काल में तो श्रृंगार की इतनी अधिक प्रधानता थी कि नारी का वासना मय रूप सामने आया। छायावादी कवियों की दृष्टि नारी

के सूक्ष्म सौंदर्य पर गई लेकिन उसमें कहीं भी अश्लीलता और स्थूलता नहीं है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने तो नारी को श्रद्धा के योग्य बतलाया है–

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में
पीयूष स्रोत–सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।"8

प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि नारी को प्रति मानवतावादी रही उन्होंने उसे स्वतंत्रता और समानता दिलाई। माथुर ने अपने काव्य में नारी को छायावादी नारी से नितांत भिन्न चित्रित किया है। उन्होंने न तो नारी को छायावादी कवियों की भांति आदर्शवादी माना और न ही भक्तिकालीन कवियों की तरह हेय दृष्टि से देखा। नारी रूप चित्रण में माथुर ने बड़ी स्वच्छ, निर्मल और यथार्थ परक दृष्टि का परिचय दिया है। उन्होंने नारी के मुख्यतः प्रणयिनी के रूप में देखा। वे उसके सौंदर्य पर मोहित हुए और अपने सौंदर्याकरण एवं सौंदर्यानुभूति को निस्संकोच व्यंजित करते हैं–

"रूप सुधा तुम खूब पिलाती
वन फूलों की राजकुमारी
यौवन रस की विषमय प्याली
सदा रही है सुंदर नारी।"9

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि माथुर ने नारी के प्रति अपने समग्र चिंतन को बड़ी सजीवता और सार्थकता प्रदान की है और प्रणय बोध को अत्यंत सशक्त रूप में मुखरित किया है। कवि ने समाज में नारी की उपेक्षा, शोषण और असमान स्थिति को भी अनुभव किया है। वे ऐसी सामाजिक व्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त करते हैं, जहाँ नारी को पुरुष की अपेक्षा कमतर समझा जाता है।

4. आधुनिक बोध से संबद्ध जीवन–मूल्य – गिरिजाकुमार माथुर के काव्य में आधुनिक बोध एक महत्वपूर्ण जीवन–मूल्य के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। वे नई कविता आंदोलन के प्रमुख कवियों में रहे हैं, इसलिए उनके काव्य में आधुनिक युग की चेतना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, यथार्थबोध, व्यक्तिस्वातंत्र्य तथा बदलती सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। नई कविता की नींव आधुनिकता पर ही टिकी हुई है। हर युग की अपनी–अपनी आधुनिकता होती है परंतु वह प्रत्येक युग की परंपराओं को आत्मसात् करता हुआ आगे बढ़ता है और नई वैज्ञानिक उपलब्धियों के आधार पर नए जीवन–मूल्यों का सृजन करता है। इस संदर्भ में गोविंद रजनीश का विचार है– "आधुनिकता स्वचेतना संपन्न दृष्टि है जो कि व्यक्ति को समकालीन यथार्थ बोध से संपृक्त करके उसके दायित्वपूर्ण सक्रिय, और सृजनात्मक मूल्यों से प्रतिबद्ध बनाती है। वर्तमान के प्रति तीव्रतम सजगता आधुनिकता का केंद्रीय तत्व है। यह आधुनिकता अनिवार्यतः बौद्धिक होती है, जो सहज ज्ञान और संवेदनाओं को भी बौद्धिक स्तर पर स्वीकार करती है।"10

आधुनिक बोध से संबंधित जीवन–मूल्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, स्वतंत्र चिंतन, व्यक्तित्व की गरिमा, मानवतावाद, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा परिवर्तनशीलता प्रमुख हैं। गिरिजाकुमार माथुर रूढ़ियों, अंधविश्वासों और जड़ परंपराओं का विरोध करते हैं तथा नवीन विचारों और प्रगतिशील चेतना का समर्थन करते हैं।

निष्कर्ष

गिरिजाकुमार माथुर का काव्य सामाजिक जीवन–मूल्यों की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध और महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने अपने काव्य में आधुनिक भारतीय समाज की जटिलताओं, संघर्षों, विषमताओं तथा बदलते जीवन–मूल्यों का यथार्थपरक चित्रण किया है। उनकी कविताएँ केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं हैं, बल्कि सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और जीवन–दृष्टि की सशक्त वाहक हैं।

सामाजिक असमानता से उत्पन्न कुंठा, शोषण और वर्ग–विभाजन के चित्रण के माध्यम से कवि ने समानता, न्याय और मानव गरिमा के मूल्यों को प्रतिष्ठित किया है। सामाजिक विघटन और मूल्य–संकट की स्थितियों में उन्होंने प्रेम, विश्वास, सहयोग और सामाजिक एकता जैसे जीवन–मूल्यों की आवश्यकता को रेखांकित किया है। नारी के संदर्भ में उनका दृष्टिकोण प्रगतिशील और मानवीय है, जिसमें नारी–सम्मान, समानता, स्वतंत्रता तथा व्यक्तित्व की गरिमा को विशेष महत्त्व दिया गया है। वस्तुतः गिरिजाकुमार माथुर का काव्य व्यक्ति और समाज के मध्य संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. R-K- Mukerjee, Frontiers of Social Science% Editor B-Singh p- 23
2. हिंदी साहित्य कोश भाग–1, पृ. 65
3. गिरिजाकुमार माथुर, 'धूप के धान' पृ. 23
4. डॉ. धर्मवीर भारती, 'मानव मूल्य और साहित्य' पृ. 137–38
5. गिरिजाकुमार माथुर, 'में वक्त के हूं सामने' पृ. 9
6. गिरिजाकुमार माथुर, 'जो बंध नहीं सका' पृ. 30

7. गिरिजाकुमार माथुर, 'कल्पांतर स्वर्ण देश' पृ. 4
8. जयशंकर प्रसाद, 'कामायनी' पृ. 73
9. गिरिजाकुमार माथुर, 'मंजीर' पृ. 43
10. गोविंद रजनीश बालकृष्ण राव, 'नई कविता परिवेश, प्रवृत्ति एवं अभिव्यक्ति' पृ. 51

संदीप कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
राजकीय नेशनल महाविद्यालय, सिरसा
(हरियाणा) पिन कोड 125055
मोबाइल नः 9996936690
ई मेल - kambojsandeep17@gmail.com

10

शंकर शेष के नाटकों में राजनीतिक चेतना

गगनदीप कौर

सारांश

हिंदी नाट्य साहित्य में शंकर शेष का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से समकालीन समाज, राजनीति, प्रशासनिक व्यवस्था तथा मानवीय मूल्यों से जुड़े विभिन्न प्रश्नों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। यो तो शंकर शेष ने जीवन के सभी पक्षों को लेकर नाट्य–सृजन किया है, किन्तु विषय की सीमाओं के कारण यहाँ उनके 'कालजयी', 'एक और द्रोणाचार्य', 'पोस्टर', 'कोमल गान्धार' एवं 'राक्षस' नाटक की चर्चा अपेक्षित होगी। शंकर शेष के नाटकों में राजनीतिक चेतना लोकतांत्रिक आदर्शों और मानवीय मूल्यों की स्थापना के रूप में दिखाई देती है। वे समाज में व्याप्त राजनीतिक विकृतियों पर प्रहार करते हुए जनता को सचेत और जागरूक बनाने का प्रयास करते हैं।

अशिक्षित ग्रामीण समाज शोषण की व्यापक संभावनाएँ

वर्तमान राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो पाएँगे कि हमारे राजनीतिज्ञों ने भी अपने स्वार्थों एवं आकांक्षाओं की पूर्ति हेतु अशिक्षित समाज को यथावत् रहने दिया। राजनीतिज्ञों के साथ–साथ पूँजीपतियों ने भी आम आदमी को शिक्षा के प्रकाश से वंचित रखने की हर सम्भव कोशिश की है। नाटककार शंकर शेष ने 'पोस्टर' नाटक में आम जनता की इस त्रासदी को बखूबी चित्रित किया है। आलोच्य नाटक का जमींदार छुन्नू पटेल अपने पूर्वजों की भाँति मजूदरों को दोनों हाथों से लूटता है। पटेल खानदान कई पीढ़ियों से गाँव के आसपास के जंगलों का ठेका लेकर वहाँ से प्राप्त होने वाली चिरौंजी, गोंद, आँवला, बहेड़ा, हर्र आदि को महँगे दामों पर शहर में बेचकर, मोटी कमाई कर रहा है। जबकि इस कमाई के वास्तविक अधिकारी मजदूरों को दिनभर खून–पसीना बहाने के बदले केवल मात्र एक रुपया प्रति व्यक्ति मिलता है। मजदूरों में असन्तोष न व्याप्त हो, इसके लिए पटेल समय–समय पर धार्मिक प्रवचनों का आयोजन भी करता है। अखण्डानन्द जैसे ढोंगी धार्मिक पुरुषों को समय–समय पर गाँव में आमन्त्रित करने के पीछे पटेल का लक्ष्य मजदूरों को शिक्षा एवं ज्ञान की बातों से दूर रखना तथा उन्हें धर्मभीः एवं भाग्यवादी बनाना है। स्वामी अखण्डानन्द ग्रामीणों से– "जैसा बोया है, जौन है सो तीन, वैसा ही काटोगे। धतूरा वोय के आम पाने की आशा बिल्कुल अकारण है।"1 ऐसा कहकर उनकी (मजदूरों की) दरिद्रता के लिए उन्हीं को दोषी ठहराकर स्वामी अखण्डानन्द एवं पटेल जैसे लोग उन्हें परोक्षतः भाग्यवादी बना देते है।

व्यभिचारी सत्तावर्ग

राजनीति के क्षेत्र में व्यभिचारिता की चर्चा कोई नयी–सी बात नहीं लगती। वास्तव में कुछ नेतागण सत्ता–प्राप्ति के बाद वैभाव–विलास के पंक में डूब जाते हैं तो कुछ इसे सत्ता–प्राप्ति का एक अधिकार मानकर प्रयोग में लाते हैं। 'कालजयी' नाटक का कालजयी नामक शासक सामन्तकालीन प्रवृत्तियों का जर्जर अवशेष है। वह सुरा एवं सुन्दरी का परम भक्त है। नाटक में एक जगह वह स्वयं स्वीकार करता है कि –"मेरे यहाँ पुरानी मदिरा और नयी सुन्दरी का सदैव स्वागत है।"2 पुरवी को देखकर वह कह उठता है कि – 'आश्चर्य है कि आज तक यह हमारी दृष्टि से बच कैसे गयी। पिछले सौ वर्षों में, मेरे राज्य में एक भी कली मेरी अनुमति के बिना नहीं खिली। तब यह कैसे रह गयी?" कालजयी के उपरोक्त कथन में उसके कामुक चरित्र का रेशा–रेशा खुलकर सामने आ गया। प्रेम के सम्बन्ध में कालजयी की यह सोच सिर्फ कालजयी की नहीं है, अपितु अधिकांश सत्ताधारियों की होती है। कालजयी के वैद्य मृत्युंजय ने नाटक में एक स्थान पर ठीक ही कहा है कि "राजनीतिज्ञों के जीवन में प्रेम जैसी वस्तु शायद कभी आती ही नहीं।"3 नाटककार ने मृत्युंजय के उपरोक्त कथन की सत्यता नाटक में सिद्ध करने की कोशिश भी की है। राजा कालजयी की कहने को तो सात सौ रानियाँ हैं, किन्तु वे सभी कालजयी की पत्नियाँ या तो कालजयी के राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति हेतु बनी हैं या फिर कालजयी की कामुकता के कारण।

शोषणकारी शक्तियों का प्रशासन के साथ तालमेल

व्यवस्था सदैव पूँजीवादी ताकतों के आगे झुककर चली है। 'पोस्टर' नाटक में नाटककार ने व्यवस्था और पूँजीपति वर्ग के इस गठबन्धन पर तीखा व्यंग्य किया है। आलोच्य नाटक में पटेल जंगल से गोंद, हर्रा, बहेड़ा व आँवले आदि को सरकारी निर्देश से ज्यादा तोड़ने की 'एवज' में प्रशासन के अधिकारियों को खुश करने की कोशिश करता है। वह जंगल के अधिकारियों को प्रसन्न रखने के लिए उन्हें शराब की पार्टी देता है, किन्तु वे उससे 'दारू और मुर्गे' से हटकर कुछ पेश करने को कहते हैं। पटेल के "जंगल में और किया ही क्या जा सकता है।'' कहकर अपनी असमर्थता प्रकट करने पर वह अधिकारी बड़ी चालाकी से संकेतपूर्ण शब्दों में कहता है– "जंगली माल तो चखा जा सकता है।"4 पटेल द्वारा अधिकारी से उसकी पत्नी की चर्चा करने पर वह अधिकारी धूर्त्ततापूर्वक कहता है– "वोई–वोई चीज रोज मिलती रहे तो आप बोर नहीं हो जाते

क्या?"5 इस तरह पटेल और जंगल के अधिकारियों में तालमेल हो जाता है। पटेल उनके लिए सुरा और सुन्दरी उपलब्ध कराता है। और अधिकारी जंगल से गोंद, बहेड़ा और आँवले आदि को तोड़ने की खुली छूट। इस प्रकार दोनों की पौ बारह रहती है। पूँजीपति–वर्ग और प्रशासन–वर्ग का यह तालमेल–भ्रष्टाचार की नींव पर आधारित है, जो किसी भी प्रजातान्त्रिक देश के लिए अशुभ है।

आधुनिक शिक्षक : व्यवस्था के हाथों बिकने का अभिशप्त

नाटककार शंकर शेष ने राजनीतिक–सामाजिक एवं आर्थिक दबावों से जूझने की बजाय उनसे हार मान लेने वाले ऐसे सुविधाजीवी शिक्षक–वर्ग पर 'एक और द्रोणाचार्य' नाटक में तीव्र व्यंग्य–संधान करते हुए आम आदमी का इस त्रासद स्थिति की ओर ध्यानाकर्षित किया है। प्रस्तुत नाटक में वर्तमान युग में व्यवस्था के चारण बन जाने वाले अध्यापक की त्रासदी को पौराणिक कथा के माध्यम से समझाया गया है। व्यवस्था द्वारा बिछाए गए सुख–समृद्धि के जाल में फँसकर चंदू जैसे निर्दोष एवं योग्य छात्र को राजनीतिक विरोध के झूठे आरोप में फँसा कर कहीं का नहीं छोड़ता। द्रौपदी के चीरहरण के अवसर पर मूक रहकर अन्याय का समर्थन करने वाले द्रोणाचार्य से अरविन्द की तुलना अनुराधा को न्याय न दिलवा पाने के कारण की जा सकती है। विमलेन्दु, जो कि अरविन्द की आत्मा का ही एक अंश प्रतीत होता है, उसे बार–बार व्यावहारिक बनने के लिए प्रोत्साहित करता है। वह (विमलेन्दु) अरविन्द से प्रश्नात्मक मुद्रा में पूछता है कि "क्या तुम्हारी भी ख्वाहिश है कि तुम्हारी लाश के पास म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन की अध्यक्षता में शोक–सभा हो और प्रस्ताव पास किया जाए।"'6 अरविन्दु विमलेन्दु की तरह काँटों से भरे जीवन की अपेक्षा सुविधा सम्पन्न मार्ग को चुनने का निर्णय लेता है और बहुत जल्दी प्रिन्सिपल की हर गलत बात का विरोध करने वाला अरविन्द स्वयं प्रिन्सिपल का परिष्कृत रूप बन जाता है। कुल मिलाकर उपरोक्त नाटक में, वर्तमान शिक्षक वर्ग में तेजी से पनपी सुविधाजीवी प्रवृत्ति के कारण व्यवस्था से जुड़ने की विसंगति, जिससे जाने–अनजाने देश की भावी पीढ़ी का भविष्य अन्धकारग्रस्त हो जाता है, को उजागर किया गया है।

व्यवस्था के कुचक्र में फँसा छात्र–वर्ग

'एक और द्रोणाचार्य' में नाटककार ने शिक्षक–समुदाय व कॉलेज–प्रबन्धकों की स्वार्थपरता एवं अवसरवादिता की चपेट में आए छात्र–वर्ग के अन्धकारमय भविष्य पर प्रश्नचिह्न अंकित किया है। आलोच्य नाटक में चन्दू नामक योग्य छात्र व्यवस्था के षड्यन्त्र का शिकार इसलिए बनता है, क्योंकि वह कॉलेज प्रेसीडेण्ट के राजनीतिक विरोधी का बेटा है। प्रेसीडेण्ट ने कॉलेज के एक प्राध्यापक मि. मिश्रा के सहयोग से उसे नकल के फ्राड केस में फँसा दिया। चन्दू के शब्दों में– "मेरे पिताजी और प्रेसीडेण्ट का राजनीतिक विरोध है। आने वाले चुनाव में वे प्रेसीडेण्ट के खिलाफ लड़ रहे हैं। मैं उस विरोध की बलि बनाया गया हूँ, सर।"7 और इस तरह अपनी पढ़ाई के प्रति पूरी तरह से प्रतिबद्ध रहने वाला चन्दू पढ़ाई के क्षेत्र से, स्थितियों के कारण राजनीति में जबरन आ जाता है। इस तरह देखते ही देखते चन्दू और उसके साथी हड़ताल, धरने व परीक्षा के बहिष्कार पर उतर आते हैं– "कल से हम धरना देंगे, हड़ताल करेंगे। रिपोर्ट नहीं हुई तो परीक्षा का बहिष्कार करेंगे। नाटककार शंकर शेष ने, इस तरह स्वार्थ और राजनीति के इस खेल में पिसने वाले छात्र–वर्ग का अन्धकार ग्रस्त एवं उद्देश्यहीन जीवन को दर्शा कर इसके लिए दोषी–राजनीतिज्ञों, शिक्षक–वर्ग एवं तटस्थ की भूमिका धारण करने वाले समाज से जवाब माँगा है।

राजनीति में धर्म का दुरुपयोग

राजनीति में धर्म को हथियार बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है। 'कालजयी' नामक नाटक में समकालीन राजनीति में धर्म को हथकण्डे के रूप में इस्तेमाल की जाने वाली इस विसंगति पर शंकर शेष ने ध्यान आकर्षित कराया है। कालजयी अपने राज्य में धर्म के नाम पर अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति करता है। धर्मभीरू जनता सब कुछ देखते हुए भी चुप ही रहती है। कालजयी का सेनापति हस्तिदन्त सेना में युवकों की भर्ती करते समय "धर्म संकट में है तथा 'महादेश के विरुद्ध युद्ध करने से प्रत्येक को स्वर्ग मिलेगा।"8 जैसी धार्मिक अन्धविश्वासों से जुड़ी झूठी अफवाहें फैलाता है। वर्तमान राजनीति में भी धार्मिक साम्प्रदायिकता का सहारा लेकर बड़े–बड़े नेतागण अपने स्वार्थों की सिद्धि करते हैं।

'पोस्टर' नाटक का पटेल मजदूरों से इच्छानुसार काम लेने के लिए धर्म को ही हथकण्डे के रूप में अपनाता है। आलोच्य नाटक में ढोंगी स्वामी अखण्डानन्द ग्रामीण आदिवासी मजदूरों के मन में अपने मिथ्याचारपूर्ण उपदेशों द्वारा यह बात बिठा देता है कि अपने मालिक से विद्रोह करने पर उनको ईश्वरीय प्रकोप सहना पड़ेगा। समग्रतः वर्तमान राजनीति में कालजयी जैसे शासक और पटेल जैसे पूँजीपतियों की कमी नहीं है, जो धर्म को अपनी सत्ता और अर्थ–प्राप्ति के लिए एक राजनीतिक हथियार के रूप में प्रयोग लाने से भी नहीं हिचकिचाते।

सत्तावादी राजनीति

'कालजयी' नाटक में कालजयी की सात सौ रानियाँ और 'कोमल गांधार' की गांधारी इसी कलुषित राजनीति की शिकार है। वस्तुतः अधिनायकवादी शासकों के लिए सत्ता ही सर्वोपरि है। इस सत्ता को बनाए रखने के लिए वे कुछ भी कर सकते हैं। 'कोमल गांधार' के गांधार–नरेश एवं हस्तिनापुर के भीष्म अपने–अपने राजनीतिक स्वार्थों की खातिर गांधारी के स्त्रियोचित आकांक्षाओं एवं स्वप्नों को कुचलकर रख देते हैं। उसे उसके भावी पति धृतराष्ट्र के नेत्रहीन होने की सच्चाई से विवाह के बाद तक दूर रखा जाता है। इस निर्मम सत्य को जानने के पश्चात् वह अनायास ही कह उठती है– "क्यों नकार दिया गया मेरे अस्तित्व को पूरी तरह? राजनीति इतनी क्रूर होती है क्या?"9 राजनीति की यह क्रूरता सत्तागत समीकरणों का खेल है।

राजनीतिक चेतना का प्रसार

शंकर शेष ने आम जनता को राजनीतिक दृष्टि से जागरूक बनाने के उद्देश्य से कुछेक नाटकों यथा–'कालजयी', 'पोस्टर', एवं 'राक्षस' आदि में ऐसे पात्रों का सृजन किया है, जो आम आदमी को उसकी आत्मशक्ति से परिचित कराए वह सामन्तवादी मानसिकता से उबरने के लिए तैयार करे। कालजयी ने अपनी प्रजा पर तरह–तरह से क्रूर एवं निर्मम अत्याचार किए–स्त्रियों के सतीत्व को भंग किया, बच्चों–बूढ़ों और युवाओं को मौत के घाट उतारा, हजारों घरों को नित्य प्रति अग्नि के प्रति समर्पित किया, लेकिन इस सबके बावजूद जनता का लोकतन्त्र के प्रति उत्साह क्षीण न हुआ। कालजयी आशा के विपरीत जनता के इस आचरण को देखकर विचलित हो जाता है। मृत्युंजय जनता की लोकतन्त्र के प्रति अटूट आस्था के सन्दर्भ में कालजयी से कहता है कि "अत्याचारों से प्रतिकार की भावना और बढ़ती है महाराज।"10 जो सही प्रतीत होता है। लोकशक्ति के समक्ष बड़े–बड़े निरंकुश शासक भी निरीह साबित हुए हैं।

शोषणकारी शक्तियों के विरुद्ध संगठित विरोध का समर्थन

राजनीतिक चेतना से सम्पन्न समाज भ्रष्ट–व्यवस्था के विरुद्ध सदैव संगठित रूप से खड़ा होता है। संगठित होकर सत्ता से भिड़ने में सफलता की सम्भावना बनी रहती है। नाटककार शंकर शेष ने 'पोस्टर' नाटक में इस सच्चाई को बड़े स्पष्ट रूप से उजागर किया है। आलोच्य नाटक में मजदूरों की रहस्यमयी चुप्पी को पटेल उनका मूक विरोध समझ बैठता है। यही कारण है कि वह कठोरता की बजाय नरमी का रुख अपनाता है और उनकी मजदूरी पहले पच्चीस पैसे और बाद में पचास पैसे प्रति व्यक्ति बढ़ाने को तैयार हो जाता है। कीर्तनकार और उसकी मण्डली मजदूरों के मौन को भी, विरोध प्रकट करने का एक अस्त्र मानते हुए कहता है–

"कीर्तनकार : ...तो भक्तजनों, मजदूरों की चुप्पी महज घबराहट के कारण थी।

साथी–1 : वह आत्मरक्षा का एक उपाय मात्र था।

साथी–2 : न तो वह सत्याग्रह था।

कीर्तनकार : और न ही साइलेंट प्रोटेस्ट। लेकिन इस चुप्पी, इस साइलेंट को समझ लिया पटेल ने साइलेंट रेजिस्टेंट।"11

गुरुजी द्वारा बनाए गए पाँचों पोस्टरों को फैक्टरी में चिपकाकर कल्लू अपनी पत्नी चैती को हवेली में न भेजने का निर्णय लेकर पटेल से खुलकर टक्कर ले लेता है। पटेल कल्लू को इस उद्दण्डता के लिए कोड़े से निर्ममतापूर्वक पीटता है। कल्लू को पिटता देख मजदूरों की सोई आत्मा जाग जाती है और वह पटेल के इस कृत्य का प्रतिरोध करते है और इस तरह चैती की अस्मिता का सवाल जो कुछ देर पहले तक कल्लू का जाति मामला था–अब सभी मजदूरों का बन जाता है। फलतः पटेल को पुनः मात खानी पड़ती है।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि शंकर शेष के नाटक राजनीतिक चेतना के सशक्त दस्तावेज हैं। उन्होंने अपने नाटकों में स्वतंत्रत–उत्तर भारतीय समाज की राजनीतिक परिस्थितियों, सत्ता–संघर्षों, प्रशासनिक भ्रष्टाचार, अवसरवादिता तथा सामाजिक विषमताओं का यथार्थपरक चित्रण किया है। उनके नाटकों में राजनीतिक व्यवस्था की कमियों और विसंगतियों को उजागर करते हुए जनसामान्य की समस्याओं को केंद्र में रखा गया है। उनके पात्र और कथानक समाज में व्याप्त अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध संघर्ष की प्रेरणा देते हैं। अतः कहा जा सकता है कि शंकर शेष के नाटक भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों को उजागर करने के साथ–साथ एक स्वस्थ, न्यायपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. 'पोस्टर', शंकर शेष, पृ. 33
2. 'कालजयी', शंकर शेष, पृ. 21
3. वही, पृ. 23
4. 'पोस्टर', शंकर शेष, पृ. 54
5. 'पोस्टर', शंकर शेष, पृ. 55

6. 'एक और द्रोणाचार्य', शंकर शेष, पृ. 40
7. 'एक और द्रोणाचार्य', शंकर शेष, पृ. 25
8. 'कालजयी', शंकर शेष, पृ. 19
9. 'कोमल गांधार', शंकर शेष, पृ. 36
10. 'कालजयी', शंकर शेष, पृ.14
11. 'पोस्टर', शंकर शेष, पृ. 43

गगनदीप कौर
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी
चौधरी मनीराम गोदारा राजकीय महिला महाविद्यालय,
भोडिया खेड़ा, फतेहाबाद (हरियाणा) पिन कोड 125050
मोबाइल नः 9729755149
ई मेल – gagandeepपkainth123@gmail-com

11

हिंदी उपन्यास के विकास में लाजपत राय गर्ग का योगदान (भाग– 2)

सविता

सारांश

उपन्यास एक आधुनिक विद्या है, जिसका जन्म यूरोप में औद्योगीकरण के परिणामस्वरुप विकसित मध्यवर्ग के कारण हुआ। भारत में अंग्रेजों के शासन के दौरान विकसित नई प्रशासनिक व्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार तथा नई अर्थव्यवस्था के आरंभ के परिणामस्वरूप उपन्यास का जन्म हुआ। हिंदी उपन्यास का इतिहास मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जाता है।

(क) प्रेमचंदपूर्व उपन्यास

(ख) प्रेमचंदयुगीन उपन्यास

(ग) प्रेमचंदोत्तर उपन्यास

प्रेमचंदपूर्व उपन्यासों में सुधारवादी उपन्यास, मनोरंजनपरक उपन्यास तथा ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की प्रवृत्तियाँ दिखाई देती है। इस समय देवकीनंदन खत्री, श्रद्धाराम फिल्लौरी तथा किशोरीलाल गोस्वामी प्रमुख उपन्यासकार रहे। प्रेमचंदयुगीन उपन्यास परंपरा में प्रेमचंद एक प्रमुख उपन्यासकार है। उन्होंने 'रंगभूमि', 'निर्मला', 'कर्मभूमि' एवं 'गोदान' जैसे प्रसिद्ध उपन्यास लिखे। इस समय जयशंकर प्रसाद, सियारामशरण गुप्त, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, शिवपूजन सहाय आदि अन्य प्रमुख उपन्यासकार रहे। प्रेमचंदोत्तर उपन्यास परंपरा में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में जैनेंद्र, सामाजिक यथार्थ के उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा, आंचलिक उपन्यासों में फणीश्वरनाथ रेणु, ऐतिहासिक–पौराणिक उपन्यास परंपरा में चतुरसेन शास्त्री प्रमुख उपन्यासकार रहे। प्रेमचंदोत्तर युग में 1980 ई. के बाद के सभी उपन्यासों को समकालीन उपन्यास कहा जाता है, जिसमें सूचना क्रांति, भूमंडलीकरण, उत्तर आधुनिकता, स्त्री विमर्श तथा दलित विमर्श से संबंधित उपन्यास लिखे गए।

हरियाणा के सिरसा जिले में जन्मे लाजपत राय गर्ग ने हिंदी उपन्यास परंपरा की समृद्धि में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने छः उपन्यासों की रचना की, जो निम्नलिखित हैः–

(1) कौन दिलों की जाने! ।

(2) पल जो यूँ गुजरे।

(3) पूर्णता की चाहत।

(4) प्यार के इंद्रधनुष।

(5) अनूठी पहल।

(6) अमावस्या में खिला चाँद।

लाजपत राय गर्ग का प्रथम उपन्यास 'कौन दिलों की जाने!' हैं, जिसमें उपन्यासकार ने रानी और रमेश के माध्यम से दांपत्य जीवन की विसंगतियों को उजागर किया है। लाजपत राय गर्ग ने अपने दूसरे उपन्यास 'पल जो यूँ गुजरे' में निर्मल एवं जाह्नवी के माध्यम से आत्मिक प्रेम संबंधों को दर्शाया है, जो मानवीय मूल्यों से युक्त हैं। उन्होंने अपने तीसरे उपन्यास 'पूर्णता की चाहत' में उपन्यास की नायिका मिनाक्षी उर्फ मीनू के माध्यम से मानवीय रिश्तों की महीन पड़ताल करते हुए मनुष्य की आकांक्षा एवं उसकी नियति की कथा का चित्रण किया है।

गर्ग जी का चौथा उपन्यास 'प्यार के इंद्रधनुष' है, जो 2021 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के माध्यम से गर्ग जी ने आधुनिक समाज को प्रेम के वास्तविक स्वरूप से परिचित करवाने का प्रयास किया। वर्तमान समय में प्रेम 'लिव–इन–रिलेशन' जैसी अवधारणाओं से ग्रस्त होता जा रहा है, जिसका आधार केवल शारीरिक प्रेम है। ऐसे समय में गर्ग जी ने इस उपन्यास में वृंदा के माध्यम से प्रेम के वास्तविक स्वरूप का चित्रण किया है, जिसमें केवल समर्पण है तथा यह प्रेम प्रतिदान नहीं माँगता। इस उपन्यास की नायिका वृंदा संपन्न परिवार से संबंध रखती है तथा निम्न वर्गीय परिवार से संबंधित मनमोहन से प्रेम करती है, जोकि उपन्यास का नायक है। मनमोहन वृंदा की जाति से नहीं था। वृंदा के माता–पिता इस रिश्ते को व्यावहारिक स्तर पर उचित न मानते हुए मनमोहन के साथ वृंदा की प्रेम को स्वीकार नहीं करते। परंतु वृंदा का विचार था कि विवाह के लिए दो व्यक्तियों के मन का मिलन होना जरूरी है, न कि एक बिरादरी का होना। अपने माता–पिता की सहमति न मिलने के कारण वृंदा मनमोहन की बहन मंजरी को मनमोहन की शादी किसी अच्छी सी लड़की से करने के लिए कहती है तथा आजीवन विवाह न करने का निर्णय लेती है। इसके पश्चात मनमोहन रेनू से शादी कर लेता है। रेनू की डिलीवरी के समय वृंदा की मुलाकात फिर से मनमोहन से होती है और वृंदा का प्रेम दैविक एवं आत्मिक स्तर पर पहुँच जाता है। वह मनमोहन की बेटी को गोद ले लेती है तथा उसे माँ की तरह प्यार करती है। वह मनमोहन को भी आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करती है और अंत में मनमोहन आई.ए.एस. के रूप में चयनित हो जाता है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने स्पष्ट किया है कि प्रेम सदा रहता है, वह परिस्थितियों के बदलने पर परिवर्तित नहीं होता। इस संदर्भ में वृंदा कहती हैः–'' मेरा मानना है कि जिससे प्रेम हो जाता है, हालात कुछ भी क्यों ना हो, वह सदा रहता है। जैसे शरीर के न रहने पर भी आत्मा का हनन नहीं होता, उसी प्रकार प्रेम सदैव बना रहता है। असल में, प्रेम में इच्छित परिणाम मिले यह

जरूरी नहीं।''[1] इस उपन्यास में वृंदा प्रेम को एक शारीरिक क्रिया नहीं मानती, अपितु दूसरों को खुशियाँ प्रदान करने का माध्यम मानती है। इस उपन्यास में वृंदा का प्रेम स्थूलता से सूक्ष्मता, दैहिक से दैविक की तरफ जाता है तथा अंत में इस प्रेम का विस्तार आत्मा तक होता है, जो स्वार्थ एवं अश्लीलता से दूर उदात्त एवं उदार प्रेम है। इस प्रेम में न जाति का महत्व है, न हीं आर्थिक स्थिति का। वृंदा का प्रेम निस्वार्थ प्रेम ही नहीं, अपितु मर्यादित प्रेम भी है। वृंदा अपने प्रेम में मर्यादा का पूरी तरह निर्वाह करती है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने अपने रीति–रिवाजो को महत्त्व देते हुए बताया है कि रीति–रिवाजों से जुड़े रहने पर ही हम अपनी संस्कृति को जान पाते हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में विभिन्न त्योहारों की भी जानकारी प्रदान की है। गर्ग जी ने इस उपन्यास में लैंगिक समानता पर बल देते हुए मनमोहन की बेटी गुड्डू की लड़की होने के बावजूद भी छठी पूजा का आयोजन करवाया। गर्ग जी ने उपन्यास में भ्रष्टाचार पर भी कटाक्ष किया है तथा पराली जलाने की घटना के माध्यम से बढ़ते प्रदूषण की समस्या पर प्रकाश डाला है। उन्होंने उपन्यास में रासायनिक खाद के स्थान पर गोबर खाद के प्रयोग को प्रोत्साहित किया। इस उपन्यास में गर्ग जी ने मिसेज थॉमस के माध्यम से घरेलू हिंसा, स्त्रियों पर होने वाले अत्याचार एवं शोषण को भी उजागर किया है। इस उपन्यास में मिसेज थॉमस अपने पति की क्रूरता का शिकार बनती है। उसके पति उसे शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित करते हैं। इसके अतिरिक्त गर्ग जी ने उपन्यास में गणेश की बड़ी बेटी के माध्यम से बाल विवाह का मुद्दा भी उठाया है। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने उपन्यास में नशाखोरी की समस्या को उठाया है तथा सड़क सुरक्षा के प्रति भी समाज को जागरूक किया है।

'अनूठी पहल' गर्ग जी का पाँचवा उपन्यास है, जो 2022 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में गर्ग जी ने देहदान जैसे ज्वलंत मुद्दे को उठाया तथा अपने उपन्यास के माध्यम से देहदान के प्रति समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया। हमारी हिंदू संस्कृति में किसी भी व्यक्ति की मृत्यु के पश्चात उसका अंतिम संस्कार किया जाता है। यही कारण है कि हमारे समाज में देहदान के प्रति लोगों को ज्यादा जानकारी नहीं है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने प्रभुदास के माध्यम देहदान के मुद्दे को उठाया। प्रभुदास एक गांधीवादी विचारधारा के व्यक्ति है, जो अपनी माता की मृत्यु के पश्चात न केवल उनकी देह का दान करते हैं, बल्कि मरणोपरांत अपनी देहदान का संकल्प भी लेते हैं। उन्होंने उपन्यास में अपने कुछ साथी एवं कार्यकर्ताओं के माध्यम से समाज को देहदान के प्रति जागरुक किया। इसके लिए उन्होंने अस्पताल, मंदिर गुरुद्वारा तथा अन्य सार्वजनिक स्थलों पर देहदान को प्रोत्साहित करने के लिए बैनर लगवाए। उनके प्रयासों के परिणामस्वरूप समाज में जागरूकता आने लगती है तथा कुछ लोग आगे बढ़कर इस मिशन में प्रभुदास का साथ देते हैं। प्रभुदास के इस योगदान के कारण सरकार मरणोपरांत उनको पदम श्री पुरस्कार से सम्मानित करती हैं। इस उपन्यास में गर्ग जी ने स्त्री शिक्षा को समाज के विकास का आधार माना है तथा स्त्री शिक्षा के प्रति समाज को जागरूक किया है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने विभाजन की त्रासदी पर भी प्रकाश डाला है। इसके अतिरिक्त गर्ग जी ने इस उपन्यास में प्रीति के माध्यम से दहेज प्रथा की समस्या को उजागर किया। इस उपन्यास में प्रीति के ससुराल वाले उसे दहेज के लिए प्रताड़ित करते हैं और अंत में घर से निकाल देते हैं। इस उपन्यास में गर्ग जी ने अपनी संस्कृति से जुड़ाव व्यक्त करते हुए गौ माता की सेवा करने का संदेश दिया। उपन्यास में रामरतन एवं जमना प्रतिदिन गायों की सेवा करते हैं। गर्ग जी ने वृक्षारोपण के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए वृक्षारोपण को भी बढ़ावा दिया है। आज भी समाज में स्त्रियाँ घरेलू हिंसा का दंश सह रही है। गर्ग जी ने प्रीति के माध्यम से घरेलू हिंसा का शिकार नारियों की दुर्दशा का चित्रण किया है। उपन्यास में प्रीति की दुर्दशा का वर्णन करते हुए उसकी बहन कृष्णा कहती हैंः– ''भगवान तो पता नहीं, कब सजा देगा! प्रीति और हमारा जीवन तो उन जालिमों ने नरक बना दिया है।.... प्रीति बेचारी की आँखों का पानी भी रो–रोकर सूख गया है।''[2] इस उपन्यास में गर्ग जी ने आतंकवाद के मुद्दे को उठाते हुए पंजाब में भिंडरावाले के समय में फैले आतंकवाद का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त गर्ग जी ने इस उपन्यास में रासायनिक खाद की जगह पशु खाद के प्रयोग को प्रोत्साहित किया है, तो साथ ही जैविक खेती के प्रति भी समाज को जागरूक किया है। इसके अतिरिक्त गर्ग जी ने उपन्यास में राजीव के माध्यम से जहाँ नशे का शिकार होती युवा पीढ़ी का वर्णन किया है, वहीं विद्या के माध्यम से हिंदी भाषा के महत्व को स्थापित करने का प्रयास भी किया है। गर्ग जी ने उपन्यास में प्रीति के माध्यम से राजनीति में नारी के प्रतिनिधित्व का समर्थन किया है। इसके अतिरिक्त गर्ग जी ने इस उपन्यास में रामरतन–जमना, प्रीति–दीपक, सुशीला–प्रभुदास के माध्यम से जहाँ एक तरफ सुखद दांपत्य जीवन का चित्रण किया है, वहीं दूसरी तरफ दांपत्य जीवन में स्त्री–पुरुष समानता पर बल देते हुए दांपत्य जीवन में सर्वाधिक महत्त्व प्रेम भाव को दिया है।

गर्ग जी का छठा उपन्यास 'अमावस्या खिला चाँद' 2023 ई. में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में गर्ग जी ने दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा एवं बेमेल विवाह जैसे मुद्दों को उठाया है। इस उपन्यास की नायिका शीतल का वैवाहिक जीवन दहेज प्रथा के कारण तबाह हो जाता है। वह विवाह के बाद दहेज न लाने के कारण न केवल शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रताड़ित की जाती है, बल्कि घरेलू हिंसा का भी शिकार बनती है। उसके पति तथा सास–ससुर उसके साथ मारपीट करके उसे घर से बाहर निकाल देते हैं। शीतल प्रवीर को बताती है, ''मदन के मम्मी पापा दहेज को लेकर रोज मेरे पापा को बुरा भला कहते रहते थे।''[3] दहेज की माँग एवं घरेलू हिंसा से परेशान होकर अंत में शीतल अपने पति से तलाक ले लेती है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने प्रवीर एवं शीतल के माध्यम से मित्रता को सही अर्थों में प्रस्तुत किया है। गर्ग जी ने इस उपन्यास में स्पष्ट किया है कि मित्रता एक ऐसा मानवीय रिश्ता है, जिसमें व्यक्ति कोई अपेक्षा नहीं करता तथा सुख–दुख में एक–दूसरे का साथ भी देता है। मित्रता, आयु, जाति, धर्म, लिंग आदि के भेद से ऊपर है। सच तो यह है कि आज भी भारतीय समाज में पुरुष एवं स्त्री की मित्रता को सहज रूप से नहीं स्वीकार किया जाता, बल्कि संदेह की नजर से देखा जाता है। गर्ग जी ने इस उपन्यास के नायक मानवेंद्र की पहली पत्नी के माध्यम से विवाहेत्तर संबंधों की समस्या को भी उठाया है। मानवेंद्र की पहली पत्नी अत्याधिक महत्वाकांक्षी होती है तथा अपने कॅरियर में आगे बढ़ने के लिए अपने ही क्लीग के साथ 'लिव–इन–रिलेशन' में रहती है। जब मानवेंद्र को इस बात का पता चलता है, तो वह उससे तलाक ले लेता है। उपन्यास के अंत में मानवेंद्र एवं शीतल विवाह कर लेते हैं। इन दोनों चरित्रों के माध्यम से गर्ग जी ने पुनर्विवाह को बढ़ावा दिया है। गर्ग जी ने इस उपन्यास में शिक्षा एवं लैंगिक समानता के माध्यम से नारी सशक्तिकरण का चित्रण किया है। शीतल के छोटे भाई कान्हा के माध्यम से गर्ग जी ने असामान्य चरित्र को समावेशी शिक्षा में शामिल करने का संदेश दिया है तथा ऐसा न करने पर इसके दुष्परिणामों पर भी प्रकाश डाला है। इस उपन्यास में गर्ग जी ने जलियाँवाला बाग, गोबिंदगढ़ फोर्ट, बकाला कस्बा आदि ऐतिहासिक पौराणिक एवं सामाजिक महत्त्व के स्थानों का भी चित्रण किया है। गर्ग जी ने इस उपन्यास के माध्यम से सड़क सुरक्षा, रक्तदान के प्रति समाज में जागरूकता फैलाने का प्रयास किया है, तो साथ ही भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुंबकम' के भाव को भी प्रकट किया है।

निष्कर्ष – इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि लाजपत राय गर्ग हिंदी उपन्यास परंपरा में एक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार थे, जिन्होंने अपनी लेखनी से हिंदी उपन्यास परंपरा को समृद्ध किया। इन्होंने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से न केवल वर्तमान समय के प्रासंगिक मुद्दों को उठाया, अपितु विभिन्न वर्तमान समस्याओं का समाधान भी प्रस्तुत किया।

संदर्भ

1. गर्ग, लाजपत राय : प्यार के इंद्रधनुष, पृष्ठ– 111
2. गर्ग, लाजपत राय : अनूठी पहल, पृष्ठ– 91
3. गर्ग, लाजपत राय : अमावस्या में खिला चाँद, पृष्ठ– 24

अन्य संदर्भ ग्रंथ सूची

1. गर्ग, लाजपत राय : प्यार के इंद्रधनुष : नोएडा, इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2021 ई.(प्रथम संस्करण)
2. गर्ग, लाजपत राय : अनूठी पहल : नोएडा, इंडिया नेटबुक्स प्राइवेट लिमिटेड, 2022 ई .(प्रथम संस्करण)
3. गर्ग, लाजपत राय : अमावस्या में खिला चाँद : जयपुर, बोधि प्रकाशन, 2023 ई.
4. गर्ग, लाजपत राय : कौन दिलों की जाने! : कुरुक्षेत्र, निर्मल पब्लिशिंग हाउस, 2018 ई.
5. गर्ग, लाजपत राय : पल जो यूँ गुजरे : दिल्ली, दिशा प्रकाशन, 2019 ई.
6. गर्ग, लाजपत राय : पूर्णता की चाहत, दिल्ली, दिशा प्रकाशन, 2021 ई.
7. चंद्रगुप्त, गणपति : हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (द्वितीय खंड), इलाहाबाद, लोक भारतीय प्रकाशन, बारहवाँ संस्करण, 2018 ई.
8. सिंह, बच्चन : आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयागराज, लोक भारती प्रकाशन,2019 ई.
9. सिंह, बच्चन : हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पंद्रहवाँ संस्करण, 2018 ई.
10. पांडेय, डॉ. रामसजन : हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली, संजय प्रकाशन, 2016 ई.
11. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र : हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली, विश्वभारती पब्लिकेशंस, 2020 ई.
12. शर्मा, डॉ. शिवकुमार : हिंदी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, मिनर्वा पब्लिकेशन, जोधपुर, 2015 ई.

सविता

सहायक प्रवक्ता

(राजकीय महिला महाविद्यालय सोनीपत।)

पता– सविता पुत्री श्री जयपाल सिंह, मकान नंबर–573, गाँव एवं डाकखाना – खेवड़ा, जिला – सोनीपत, हरियाणा।

पिन कोड–131021

मोबाइल नंबर– 8059651497

12

युवा पीढ़ी पर नशे का प्रभाव का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Dr. Nibha Rani

भूमिका

समाज के बदलते परिवेश में कुछ अलग करने की इच्छा अनंत शौक मानसिक तनाव आदि ऐसे कारण हैं जो नशे के प्रचलन को बढ़ावा दे रहे हैं। वर्तमान समय में नशा एक फैशन बन गया है जिसमें न सिर्फ युवक बल्कि युवतियां भी इसकी आदी हो चुकी हैं जो काफी चिंता का विषय है। हमारे देश में 37 करोड़ से ज्यादा लोग नशा करते हैं। नशा के कारण देश में प्रतिवर्ष 30 लाख लोगों की मौत होती है। नशे की लत युवाओं के लिए जानलेवा बनते जा रही रही है। मादक पेय का सेवन व्यक्तिगत स्वास्थ्य को गंभीर रूप से नुकसान पहुंचाता है जिससे पुरानी बीमारियों की स्थितियों का जोखिम बढ़ता हैष और दुखद रूप से हर साल लाखों की मृत्यु होती है। मरने वालों में 30 से 45 आयु वर्ग के लोगों की संख्या सबसे ज्यादा है। उचित मार्गदर्शन का अभाव और नैतिक शिक्षा की कमी युवा वर्ग में नशे के प्रचलन को बढ़ा रहा है। नशा एक ऐसी नशा है जिसकी पूर्ति के लिए इंसान किसी हद तक गिर सकता है। नशे के सौदागर नशीली पदार्थ बेचते हैं और मासूमों की जिंदगी बर्बाद करते हैं जिसके परिणाम स्वरूप नशे के लत में डूबे हुए लोगों के परिवार को बहुत कुछ खोना पड़ता है सपना साकार होने से पहले उनका सपना चकनाचूर हो जाता है। नशे की बढ़ती लत जिसने न केवल समाज की जड़ों को कमजोर किया है बल्कि यह नई पीढ़ी के भविष्य को अंधकारमय बना दिया है। युवा किसी भी राष्ट्र के रीड होते हैं उनकी ऊर्जा किसी भी देश की प्रगति और विकास में की दिशा तय करती है। भारत विश्व का सबसे युवा देश है जहां 65 फ़ीसदी से अधिक लोग 35 वर्ष से कम उम्र के लोग हैं लेकिन दुख की बात यह है कि देश आज नशे की समस्या से जूझ रहा है जिस समय युवाओं की उम्र पढ़ने की होती है उनके भविष्य के निर्माण का समय होता है या उनकी जिंदगी का सबसे सुनहरा समय होता है। लेकिन उस बेशकीमती समय को वे नशे की वजह से तबाह कर रहे होते है।

प्रस्तावना

किसी भी राष्ट्र की शक्ति एवं विकास का आधार उस देश के युवा होते हैं । युवा पीढ़ी में ऊर्जा उत्साह और नवीन सोच होती है। जो राष्ट्र के इतिहास की धरा को नया मोड़ देते हैं। जो राष्ट्र के निर्माण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। महात्मा गांधी के अनुसार युवक राष्ट्रीय व्यंजन के नमक के समान है। युवा वर्ग का अभिप्राय उन विद्यार्थियों से है जो विद्यालय महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में विभिन्न तरह की शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। यह अप्रिय सत्य है कि युवा ही भविष्य के कर्णधार हैं उन्हें ही देश और राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रवेश करके उन्हें संभालना सजाना संवारना और विकसित करते हुए उन्नति की चरम सीमा तक पहुंचना है। युवा वर्ग का जो (काल) समय होता है वह युवाओं और विद्यार्थियों के जीवन काल का शुभारंभ का समय होता है क्योंकि यह निर्माण एवं सर्जन का समय होता है। इस उम्र में युवाओं को हमेशा सजगता से काम लेना चाहिए ताकि भविष्य में वे अपने उत्तरदायित्व को ईमानदारी पूर्वक निभा सके। आधुनिक युग में नशा एक फैशन बन गया है जिसमें युवा हंसना जा रहा है इसका एक कारण यह है कि आज युवाओं में सहनशक्ति नहीं है जिसका परिणाम यह होता है कि वह धीरे–धीरे नशे की गिरफ्त में फंस जाते हैं। माता–पिता को चाहिए कि वह अपने बच्चों को हर हालत में लड़ना सीखने और उन्हें शारीरिक और मानसिक रूप से मजबूत बनाएं।

युवा वर्ग और नशे की पारस्परिक संबंध वर्षों के जनमानस को उद्वेलित और आंदोलन कर रखा है आज हमारी सभ्यता जितनी आगे बढ़ी है नशा पुरी और अपराध की घटनाएं भी उतनी ही तेजी से आगे बढ़ी है। बलात्कार चोरी हिंसा आदि अनेक अपराध हूं और घटनाओं के पीछे नशा एक बहुत बड़ा कारण है।

हमारा देश भारत अपनी सभ्यता संस्कृति और संस्कारों के लिए विश्व प्रसिद्ध है। ऐसा कहा जाता है कि जितने संस्कार एक भारतीय में होता है उतने संस्कार विश्व के किसी देश में नहीं है। जैसा कि इस बात को हम सभी जानते हैं कि मानो एक परिवर्तनशील प्राणी है। यह समय समय पर कुछ परिवर्तन लाने का प्रयास करते रहते हैं लेकिन वर्तमान समय में परिवर्तन ने अपनी सभ्यता रूपी जंजीरों को तोड़ दिया है। भारत एक ऐसा देश है। भारत एक ऐसा देश है जहां युवाओं की संख्या सबसे ज्यादा है। यह एक युवा देश है जहां युवाओं की संख्या सबसे ज्यादा है। किसी भी देश की तरक्की एवं विकास का माध्यम उसे देश के युवा युवा होते हैं लेकिन आज यह युवा वर्ग नशा रूपी तालाब में डूबकी लग रहे हैं जो कि परिवार एवं समाज को बर्बाद करने का एक माध्यम है जो स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है और अनेक तरह की बीमारियों को जन्म देता है यह मनुष्य के तन और मन का नाश करता है।

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही मद्यपान और नशीले पदार्थ विद्यमान रहे हैं। नशीले पदार्थों के साधन के रूप में एफ एक गांजा चरस भांग शराब आदि हमारे समाज की प्रचलन में रहे हैं। इनके साथ साथ चिकित्सा जगत के विकास ने हमारे समाज को नशीली दवाएं उपहार स्वरूप दिया है। व्यक्तियों के लिए जीवनदायी औषधियों के अत्यधिक प्रयोग से सारा विश्व जूझ रहा

है। नशा एक ऐसी भयंकर समस्या है जो गांव से लेकर शहर तक अपना पैर पसार लिए हैं जो की समाज में धुएं की तरह फैल रही है।

नशीले पदार्थों का सेवन हमारे समाज और देश के लिए युद्ध की युद्ध की विभीषिका से कई गुना अधिक खतरनाक है। वर्तमान समय में युवा पीढ़ी दिशा निर्देशन के अभाव में प्रति पल लक्ष्य विहीन हो रही है। आता है आज ऐसे शैक्षिक कार्य की आवश्यकता है जिससे युवकों को नशीले पदार्थों से रोका जा सके आज नशीले पदार्थ का सेवन संपूर्ण विश्व और समस्त आयु वर्ग के लोगों को प्रभावित कर रहा है

नशा एक ऐसी बुराई है जो की सुरसा की भांति युवा वर्ग की क्षमता नैतिकता और उनके उज्जवल भविष्य को निकल रही है। यह समस्या सिर्फ व्यक्तिगत स्तर तक ही सीमित नहीं है बल्कि इससे समाज और राष्ट्र की प्रभावी है। जी युवा के हाथों में देश की तस्वीर और तस्वीर बदलने की जिम्मेदारी है आज भी देवास और लाचार हो गए हैं वह अपनी जिंदगी को बर्बाद कर रहे हैं जो कई शारीरिक और मानसीक बीमारियों का कारण बन रही है। नशे की लत में फंसे युवा तनाव और अवसाद से निपटने के लिए वह ज्यादा मात्रा में ड्रग्स लेते हैं और नशे की गिरा में बुरी तरह हंस जाते हैं जिससे निकालना मुश्किल होता है वे अपना नियंत्रण खो देते हैं और आपराधिक गतिविधि में शामिल हो जाते हैं नशे की नशा व्यक्ति के आचरण को बदल देती है यह बदलाव उसके सामाजिक प्रतिष्ठा और रिश्तो को प्रभावित करता है।

नशेड़ी व्यक्ति अपनी लत को पूरा करने के लिए नशे की तस्करी के साथ–साथ समाज में अराजकता और असुरक्षा फैलात हैं। मादक पदार्थों की तस्करी आतंकवादी गतिविधियों को फंड करने का जरिया बनती है। इससे देश की आंतरिक व्यवस्था को खतरा होता है। नशे की लत से उत्पन्न समस्याएं एक पीढ़ी तक सीमित नहीं रहती है बल्कि बल्कि यह आने वाली पीढ़ी को भी प्रभावित करती है। गर्भवती महिला द्वारा नशा करने से नवजात शिशु पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है।

आज नशे की सौदागर स्कूल और कॉलेज के छात्रों को अपना निशाना बना रहे हैं। अग्नि राक्षसी प्रवृत्ति के कारण देश के होनहार बच्चों को नशे की गिरफ्त मे फंसा लेते हैं। आज महानगरों से लेकर गांव तक नशा पर पसेट जा रहा है इसके नियमित सेवन से लोग इसके आदि बनते जा रहे हैं जिसके कारण धीरे–धीरे वह अपना मानसिक संतुलन होते जा रहे हैं।
शहरी क्षेत्र से लेकर ग्रामीण क्षेत्र तक नशे के सौदागरों के निशाने पर है जहां नकली दवाई शराब गांजा अफीम ब्राउन शुगर जैसे घातक दवाओं और पदार्थों का उपयोग किया जाता है। इन नशीले पदार्थों के सेवन से व्यक्ति के शारीरिक मानसिक और आर्थिक हानि होती है। सामाजिक वातावरण प्रदूषित होता है। यह व्यक्तित्व के विनाश निर्धनता में वृद्धि और मृत्यु के द्वारा को खोलना है।

नशा एक ऐसी समस्या है जो व्यक्ति के जीवन को खोखला कर देता है जिसका असर नशा करने वाले व्यक्ति तक ही सीमित नहीं रहता है बल्कि नशे की लत का दायरा बहुत व्यापक होता है जो परिवार समाज और यहां तक की पूरे राष्ट्र को अपनी चपेट में ले लेता है। नशा करने वाला व्यक्ति शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर कमजोर होने लगता है लगातार नशा करने से ह्रदय रोग फेफड़ों की समस्या और कैंसर जैसे घातक बीमारियां हो सकते हैं। इसके अलावा व्यक्ति की प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर हो जाती है जिससे वह दूसरे बीमारी का भी शिकार बनता जाता है। नशे पर होने वाला खर्च परिवार की आर्थिक स्थिति को कमजोर कर देता है। सीमित संसाधन ऑन के बावजूद नशे की लत को पूरा करने के लिए परिवार के अन्य सदस्यों की जरूर की अनदेखी की जाती है नशा करने वाले व्यक्ति का स्वभाव आक्रामक हो जाता है जिससे घरेलू हिंसा की घटनाएं बढ़ती हैं महिलाएं और बच्चे इसके शिकार होते हैं। नशे की लत में दुबे पिता के बच्चे शिक्षा में बिछड़ने लगते हैं क्योंकि घर के नकारात्मक माहौल के कारण उनका मानसिक और भावनात्मक विकास बाधित होता है कई बार बच्चे भी नशा की ओर आकर्षित होते हैं। समाज एक जुट और सामान जैसे से चलता है लेकिन नशे की समस्या इसे गंभीर रूप से प्रभावित करती है।

समाज एकजुटता और सामंजस्य से चलता है लेकिन नशे की समस्या इसे गंभीर रूप से प्रभावित करती हैं।

नशे की समस्या एक ऐसी समस्या है जो राष्ट्र की प्रगति और विकास को बाधित करती है और युवा पीढ़ी नशे के कारण कमजोर हो रहे हैं इससे देश की उत्पादकता और विकासशील क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है जिसके कारण होने वाले अपराध और दुर्घटनाएं देश की अर्थव्यवस्था पर बोझ डालती है। मादक पदार्थों की तस्करी आतंकवादी गतिविधियों को खंड करने का जरिया बनती है। देश की आंतरिक सुरक्षा को भी खतरा होता है। नशे की लत से उपजी हुई समस्या केवल एक पीढ़ी तक सीमित नहीं रहती है बल्कि यह अगली पीढ़ी को भी प्रभावित करती है। गर्भवती महिलाओं द्वारा नशा करने से नवजात शिशु पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है ऐसी परिस्थितियों में शारीरिक विकृतियों और मानसिक समस्याएं आम बात है। इसका समाधान केवल कानून और सजा नहीं है। इसके लिए समाज को एक जुट होकर होकर काम करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति को यह

समझना होगा कि नशा एक मीठा जहर है जो न केवल उसे बल्कि उसके आसपास के प्रत्येक इंसान को प्रभावित करता है। जब तक इसके दश परिणाम को समझ कर इसे जड़ से खत्म करने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक की स्वस्थ और समृद्ध भारत का सपना अधूरा रहेगा।

भारत को नशा मुक्त बनाने की जिम्मेदारी हर व्यक्ति की है। नशा मुक्त भारत अभियान को सफल बनाने के लिए सभी नागरिकों को व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से महत्वपूर्ण कदम उठाना जरूरी है । विद्यालय महाविद्यालय और विश्वविद्यालय में नशे के दुष्प्रभावों पर आधारित विशेष कार्यक्रम चलाई जाने चाहिए। सोशल मीडिया के माध्यम से युवाओं को जागरूक किया जाना चाहिए उन्हें यह बताना चाहिए की नशा एक झूठा सहारा है यह उनके जीवन को बर्बाद करने का एक माध्यम है। गांव से लेकर शहर और मोहल्ले तक जागरूकता अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है।

युवाओं को नशे की चीजें सुलभ न हो इसके लिए प्रशासन को सटक रहना चाहिए। माफिया और अवैध नशीले पदार्थो के नेटवर्क को खत्म करना आवश्यक है। नशे के शिकार लोगों के लिए प्रशिक्षित मनोचिकित्सकों और काउंसलरों की नियुक्ति होनी चाहिए ताकि। नशा करने वाले को ना करना नहीं चाहिए बल्कि उन्हें सुधारने की कोशिश करनी चाहिएं। युवाओं को खेल संगीत कल और अन्य रचनात्मक गतिविधियों की ओर प्रेरित करना चाहिए।

नशा एक ऐसी बीमारी है जो केवल एक व्यक्ति को नहीं बल्कि यह समाज को और पूरे देश को कमजोर कर देती है अगर भारत को विश्व गुरु बनने की दिशा में आगे बढ़ाना है तो पहले नशे जैसी बुराई को खत्म करना होगा यह तभी संभव है जब हम सब मिलकर इस जानलेवा बीमारी को खत्म करने का प्रयास करें। नशा मुकनशाखोरी भारतीय समाज के लिए अभिशाप है जिससे मनुष्य का अनमोल जीवन समाप्त होता जा रहा है। वर्तमान युवा पीढ़ी दिशा निर्देश अभाव में लक्ष्य विहीन होती जा रही है। हमारे सभ्यता जितनी आगे बढ़ी है नशाखोरी और अपराध की समस्याएं भी उतनी ही तीव्र गति से आगे बढ़ी है।

किसी विद्वान में सच कहा है की मदिरापान सभी बुराइयों की जड़ है। हमारे शास्त्रों में भी मत मदिरापान को पाप की संज्ञा दी गई है लेकिन आधुनिक युग में पाश्चात्य संस्कृति नशे को एक नए रूप में मिले हैं इसमें चरस अफीम जैसे ड्रग्स सम्मिलित है। कितनी दुर्भाग्य की बात है कि लोग पाश्चात्य संस्कृति से नए रूप को ग्रहण कर रहेहै और अपनी अनमोल जीवन को समय से पहले समाप्त करले रहे हैं। आज भारत ही ऐसा देश है जहां के लोग नशीली पदार्थों के सेवन से अपनी जान गवा देते हैं आज देश का युवा वर्ग मादक पदार्थों के सेवन करना अपनी प्रतिष्ठा समझते हैं जिसका प्रभाव उनके भविष्य परिवार समाज और राष्ट्र पर पड़ता है।

युवकों को नशे से बचने के लिए जिला तहसील ब्लॉक एवं ग्राम स्तर पर निशुल्क सुधार गिरी है स्थापित करना चाहिए तथा सरकारी कर्मचारी को ट्रेनिंग देकर प्रारंभिक स्तर पर युवकों को पहचान कर उन्हें नशे से संबंधित अवगुणों को लेकर काउंसलिंग कर दी चाहिए और उन्हें जागरूक करना चाहिए

स्वास्थ्य शिविर लगाकर युवकों को नशे से मुक्ति दिलाने वाले मेडिटेशन का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए दसवीं की लत को धीरे–धीरे करके छोड़ने के बजाय एक बार में ही निर्णय करके छोड़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए।

आवश्यक एवं नवीन सोच युवकों को देश की धरोहर मानकर उनकी सुरक्षा एवं उचित मार्गदर्शन दिए जाने का मार्ग प्रशांत करना प्रशस्त करना चाहिए केंद्र सरकार नशा मुक्त भारत के उद्देश्य से एक आयोग का गठन करें और उसके सदस्यों में टीवी सिनेमा खिलाड़ी वैज्ञानिक मनोवैज्ञानिक समाजशास्त्री बुद्धिजीवी वर्ग समाज सुधारक एवं अच्छा कार्य करने वाली संस्था संस्था में लोगों को शामिल करना चाहिए एवं हरि युवा वर्ग के आकर्षण केंद्र फेसबुक ट्यूटर ब्लॉग व्हाट्सएप आदि के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर तक एक चौन बनाकर एक दूसरे से जुड़ने के लिए आमंत्रित करना चाहिए। उन्हें सदस्य बनाते समय अन्य को जोड़ने को प्रेरित करें इस आयोग गठित सदस्यों का एवं एक चीन के माध्यम से जुड़ने वाले प्रत्येक सदस्य का कार्य नशे के दुष्परिणाम की सही जानकारी देकर उसके दुष्परिणामों से लोगों से अवगत करा कर लघु फिल्म बनाकर एवं इस दिशा में अच्छा कार्य करने वाली संस्था को पुरस्कृत एवं सम्मानित करके भारत की एक–एक व्यक्ति तक व्यक्तिगत रूप से संदेश पहुंचाना है एवं भारत को पूर्ण नशा मुक्त भारत बनाना है। जब युवा वर्ग स्वयं नशे के विरोध में इस अभियान में शामिल हो जाएंगे तो इससे कोई प्रेरित नहीं होगा यह बहुत ही सार्थक प्रयास है इन प्रयासों के माध्यम से हर युवा शक्ति नशा मुक्ति अभियान से जुड़ने के लिए प्रेरित होंगं। यह प्रयास बहुत सार्थक प्रयास है इन प्रयासों के माध्यम से हरि युवा शक्ति नशा मुक्ति अभियान से जुड़ने के लिए प्रेरित होंगे।

आज के युवाओं पर नशे के प्रभाव निष्कर्ष (ब्वदबसनेपवद) दृ (मानक भाषा में):

आज के युवाओं पर नशे का प्रभाव अत्यंत गंभीर और चिंताजनक है। नशा न केवल उनके शारीरिक और मानसिक

स्वास्थ्य को क्षति पहुंचाता है, बल्कि उनके व्यक्तिगत, पारिवारिक, और सामाजिक जीवन को भी प्रभावित करता है। नशे की लत युवाओं को शिक्षा, कैरियर, और नैतिक मूल्यों से दूर ले जाकर अपराध, अवसाद, और आत्महत्या जैसे खतरनाक रास्तों की ओर धकेल सकती है।

इस समस्या से निपटने के लिए परिवार, विद्यालय, समाज और सरकार कृ सभी को मिलकर कार्य करना होगा। नशा–मुक्त जागरूकता अभियानों, मानसिक स्वास्थ्य सहायता, और सकारात्मक जीवन मूल्यों को बढ़ावा देकर ही हम युवाओं को इस विनाशकारी प्रवृत्ति से बचा सकते हैं। एक स्वस्थ, जागरूक और जिम्मेदार युवा वर्ग ही किसी राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य की नींव होता है।

अगर आप इसे किसी भाषण, लेख, या निबंध में प्रयोग करना चाहें तो मैं उसका पूरा प्रारूप भी दे सकता हूँ।

संदर्भ

Gyanshauryam& International scientific refereed Research Journal –रामम कुमार सिंह

शोधार्थी

Shrinkhla Ek Shodhpark

vaicharik patrika & ज्योत्सना कटियार

Laksh Nashamukti

International Journal and Humanities and social science research-

जानकी यादव

Facebook & Rooma Devi

DD News

दैनिक भास्कर

जागरण

जनसत्ता

Dr. Nibha Rani

Associate Professor

Deptt. of Sociology / Social work

RKDF University Ranchi–834004

Mob: 91&9431792513

Email: pandeynibha468@gmail.com

13

लीलाधर जगूडी के काव्य–संग्रह जितने लोग उतने प्रेम में मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ

सुनीता

भूमिका

समकालीन हिंदी कविता में लीलाधर जगूड़ी का विशिष्ट स्थान है। उनका काव्य–संग्रह जितने लोग उतने प्रेम आधुनिक जीवन की जटिलताओं, मानवीय संबंधों, सामाजिक विसंगतियों तथा प्रेम की व्यापक अवधारणा को अभिव्यक्त करता है। यह संग्रह केवल भावनात्मक अनुभूतियों का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि वर्तमान समाज की विडंबनाओं और मनुष्य की आंतरिक संवेदना का सशक्त काव्यात्मक चित्रण भी है। कवि ने प्रेम को मानवीय सह–अस्तित्व, करुणा और सामाजिक समरसता का आधार माना है। प्रस्तुत शोध–पत्र में इस काव्य–संग्रह में निहित मानवीय संवेदना तथा सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण किया गया है।

प्रस्तावना

लीलाधर जगूड़ी समकालीन हिंदी कविता के ऐसे सशक्त कवि हैं जिन्होंने अपने काव्य में व्यक्ति और समाज के संबंधों को अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। उनका काव्य–संग्रह शजितने लोग उतने प्रेमश उनके दीर्घ काव्य–अनुभव का परिपक्व परिणाम है। यह संग्रह 2017 में प्रकाशित हुआ और अपनी विशिष्ट काव्य–दृष्टि के कारण अत्यधिक चर्चित रहा। इसमें प्रेम को केवल निजी अनुभव न मानकर सामाजिक और मानवीय मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि का विश्वास है कि प्रत्येक मनुष्य का प्रेम अलग है, इसलिए प्रेम के भी उतने ही रूप हैं जितने लोग हैं। यही विचार इस संग्रह का केंद्रीय भाव है। यह संग्रह लीलाधर जगूड़ी की रचनात्मक परिपक्वता का प्रमाण माना जाता है।मानवीय संवेदना किसी भी साहित्यिक कृति का मूल आधार होती है। जगूड़ी की कविताओं में मनुष्य के सुख–दुःख, संघर्ष, अकेलेपन, आशा, विश्वास और करुणा का अत्यंत प्रभावशाली चित्रण मिलता है। वे साधारण मनुष्य के जीवन को असाधारण संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं।

'सन्तानों, ईश्वरों और युद्धों के अटूट माहौल में फैला
विद्वतापूर्ण मूर्खताओं और मूर्खतापूर्ण विद्वताओं से भरा यह संसार
अद्वितीय और महान है जो खुशहाली के लिए युद्ध लड़ता है'

इसी तरह रेगिस्तान कविता में रेगिस्तान केवल भौगोलिक क्षेत्र नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर की संवेदनहीनता और सामाजिक शुष्कता का प्रतीक है। कवि लिखता है कि इस संसार में अनेक ऐसे रेगिस्तान हैं जहाँ केवल ऊँट ही नहीं, बल्कि मनुष्य भी प्यासा है।कवि के अनुसार आज मनुष्य की सबसे बड़ी प्यास केवल पानी की नहीं बल्कि प्रेम, अपनत्व और संवेदना की है। आधुनिक समाज में रिश्तों का क्षरण हो रहा है और मनुष्य अकेलेपन का शिकार होता जा रहा है।कविता का संदेश है कि यदि जीवन में प्रेम और संवेदना समाप्त हो जाए तो पूरा समाज एक रेगिस्तान बन जाता है। यह कविता सामाजिक यथार्थ पर गहरा प्रहार करती है। कवि का मानना है कि आधुनिक समय में मनुष्य तकनीकी रूप से जितना आगे बढ़ा है, उतना ही भावनात्मक रूप से अकेला होता गया है। इसलिए उनकी कविताएँ मनुष्य को पुनः मनुष्य बनने की प्रेरणा देती हैं। प्रेम, सहानुभूति और विश्वास उनके काव्य के मूल तत्व हैं।

'ऐसे बरतने के लिए कहा गया था
कि स्वार्थ भी निस्वार्थ लगने लगे
ऐसे करना था प्रेम कि बराबर तुले रहें

इस संग्रह में प्रेम केवल स्त्री–पुरुष के बीच का आकर्षण नहीं है, बल्कि परिवार, समाज, प्रकृति और सम्पूर्ण मानवता के प्रति अपनत्व की भावना है। कवि बार–बार यह संकेत करते हैं कि मनुष्य का अस्तित्व उसकी संवेदनशीलता से ही सुरक्षित रह सकता है।

देखो, फूल नए का बीज होने को मुरझाते हैं
बीज खोते हैं दुबारा पैदा होने को
जितना हमने लड़ा उससे कहीं ज्यादा जीवन जड़ा है
स्मृतियों में मेरी तरह मोक्ष नहीं फिर से जन्म चाहती होओगी तुम ओ मेरी वृद्ध प्रिये !

जगूड़ी की कविताएँ समकालीन समाज का यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत करती हैं। वे सामाजिक असमानता, आर्थिक विषमता, उपभोक्तावादी संस्कृति, नैतिक मूल्यों के ह्रास और बदलते मानवीय संबंधों को गहरी दृष्टि से देखते हैं।नए जूतेश कविता आधुनिक उपभोक्तावादी समाज पर तीखा व्यंग्य करती है। कवि बताता है कि आज मनुष्य वस्तुओं को अधिक महत्व देता है, जबकि मानवीय संबंध पीछे छूटते जा रहे हैं।नए जूतों का प्रतीक आधुनिक जीवन की बदलती मानसिकता को दर्शाता है। लोग नई वस्तुओं को अपनाने में उत्साहित हैं, लेकिन पुराने संबंधों और मूल्यों को भूलते जा रहे हैं।कवि यह भी संकेत करता है कि बाहरी चमक–दमक मनुष्य की वास्तविक पहचान नहीं हो सकती। सच्ची सुंदरता मनुष्य के विचारों, व्यवहार और संवेदनाओं में होती है।

'बहुत हिले–मिले जो अनजाने बने फिरते थे
सबके बीच जैसे अनजान भीड़ में हिला मैं
किसी को नहीं जानता यह विश्वास दिला मैं

सबको जिस तरह जानता था उस क्रूरता में
चला कुछ करुणा अपनी दिखाने
बहुत से ऐसे स्थिर थे जहाँ सबको खला मैं'

आज का मनुष्य भीड़ में रहकर भी अकेला है। रिश्ते औपचारिक होते जा रहे हैं और स्वार्थ ने मानवीय मूल्यों को कमजोर किया है। कवि इन परिस्थितियों पर चिंता व्यक्त करते हुए समाज में प्रेम और विश्वास की पुनर्स्थापना की आवश्यकता पर बल देते हैं।उनकी कविताओं में सामाजिक यथार्थ किसी नारे या प्रत्यक्ष विरोध के रूप में नहीं, बल्कि अनुभव और संवेदना के माध्यम से व्यक्त होता है। यही कारण है कि उनकी कविता पाठक को आत्मचिंतन के लिए प्रेरित करती है।

अपूर्ण विस्मय और अधूरे आश्चर्य का
कोई विकल्प, कोई पूरक नहीं
अँधेरा भी उतना ही है जितनी कि चकाचौंध
कैसे कोई दिख या रह सकता है स्वाभाविक
चकित होते हैं लोग किसी को स्वाभाविक देखकर।

मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ का अंतर्संबंध

इस काव्य–संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं। कवि समाज की समस्याओं का केवल चित्रण नहीं करते, बल्कि उनके समाधान के रूप में प्रेम, करुणा, सह–अस्तित्व और मानवीय मूल्यों का प्रस्ताव रखते हैं।कवि के अनुसार यदि मनुष्य अपनी संवेदनशीलता खो देगा तो समाज भी अमानवीय बन जाएगा। इसलिए वे प्रेम को सामाजिक परिवर्तन का आधार मानते हैं। उनकी कविता पाठक को केवल सोचने के लिए नहीं, बल्कि अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए भी प्रेरित करती है।प्रेम की स्थानीयताश कविता में कवि ने प्रेम, मानवीय संबंधों और स्थानीय सांस्कृतिक चेतना के महत्व को अत्यंत संवेदनशील ढंग से प्रस्तुत किया है। कविता का मूल भाव यह है कि वैश्वीकरण और आधुनिक जीवन की भागदौड़ के बीच भी मनुष्य अंततः अपनी जड़ों, अपने समाज और अपनी स्थानीय पहचान की ओर लौटता है। कवि के अनुसार प्रेम की वास्तविक शक्ति सीमाओं को तोड़ती है, परंतु उसकी गहरी अनुभूति अपनी मिट्टी, अपनी संस्कृति और अपने लोगों से जुड़े रहने में निहित है।

'किसी खास विचारधारा के आग्रह के बावजूद
स्थानीय होता हुआ भी
बहुराष्ट्रीय हो गया मैं
इतना क्षेत्रीयता से बाहर ले गया मुझे वह प्रेम
देश, धर्म, जाति सहित उसने मुझे समुद्रों में नहलाया'

कवि प्रेम को भेदभाव मिटाने वाली शक्ति मानते हैं। उनके अनुसार प्रेम मनुष्य को जाति, वर्ग, धर्म और आर्थिक विभाजन से ऊपर उठने की प्रेरणा देता है।जगूड़ी की कविता में करुणा निष्क्रिय भावना नहीं है, बल्कि सक्रिय सामाजिक चेतना है। संवेदनशील व्यक्ति केवल दूसरों का दुःख महसूस नहीं करता, बल्कि उसे कम करने का प्रयास भी करता है।श्फफूँदश कविता में कवि ने श्फफूँदश को एक सशक्त प्रतीक के रूप में प्रयोग करते हुए आधुनिक समाज में फैल रही धार्मिक कट्टरता, हिंसा और अमानवीय प्रवृत्तियों पर तीखा व्यंग्य किया है। कविता का आरंभ इस विचार से होता है कि भगवान ने फफूँद की रचना की, किंतु आज मनुष्य स्वयं ऐसी मानसिकता विकसित कर चुका है जो फफूँद से भी अधिक विनाशकारी सिद्ध हो रही है। इस प्रकार श्फफूँदश केवल प्राकृतिक जीव नहीं रह जाती, बल्कि समाज में फैलती घृणा, कट्टरता और वैमनस्य का प्रतीक बन जाती है।कवि यह स्पष्ट करता है कि धर्म का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य को प्रेम, करुणा और सह–अस्तित्व का मार्ग दिखाना है, लेकिन जब धर्म का उपयोग हिंसा और आतंक फैलाने के लिए किया जाता है, तब वह मानवता के लिए संकट बन जाता है। कविता में आतंकवाद और धार्मिक उन्माद की ओर संकेत करते हुए कवि बताता है कि विज्ञान और आधुनिक तकनीक का दुरुपयोग करके मनुष्य स्वयं अपने विनाश का मार्ग तैयार कर रहा है। यह स्थिति केवल किसी एक समाज या देश की नहीं, बल्कि पूरी मानवता के लिए चिंता का विषय है।

'भगवान खुश होकर मुझे वैसा न बना
कि अपने धर्म के लिए सबकी जान ले लूँ
मैं तुम्हारी हर नाराजगी सह लूँगा
तुम्हारे न चाहते हुए भी कोशिश करूँगा
अपने नजदीक आए हर दुख का चेहरा बदल दूं'

संग्रह आधुनिक जीवन की उस त्रासदी को भी सामने लाता है जिसमें मनुष्य संचार के अनेक साधनों के बावजूद भावनात्मक रूप से अकेला पड़ता जा रहा है। कवि इसे सामाजिक संकट के रूप में देखते है।यद्यपि कवि समाज की विसंगतियों को स्वीकार करते हैं, फिर भी वे निराश नहीं होते। उनकी कविता में प्रेम, विश्वास और मानवीय संवेदना के माध्यम से बेहतर समाज की संभावना बनी रहती है।

निष्कर्षः

जितने लोग उतने प्रेम समकालीन हिंदी कविता का एक महत्वपूर्ण काव्य–संग्रह है। इसमें मानवीय संवेदना और सामाजिक यथार्थ का अत्यंत प्रभावशाली समन्वय देखने को मिलता है। कवि ने प्रेम को मानव जीवन की सबसे बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित किया है तथा यह संदेश दिया है कि सामाजिक विसंगतियों का समाधान केवल मानवीय संवेदना, करुणा और सह–अस्तित्व में निहित है। वर्तमान समय में जब मनुष्य संबंधों के संकट और सामाजिक विघटन का सामना कर रहा है, तब यह काव्य–संग्रह अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः–

- लीलाधर जगूड़ी, ' जितने लोग उतने प्रेम, काव्य–संग्रह, राजकमल प्रकाशन, वर्ष 2013
- रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
- हमारा पीछा, पृष्ठ 15
- प्रेम और समय प्रबंधन, पृष्ठ 30
- ओ मेरी वृद्ध प्रिये!, पृष्ठ 31
- चला मैं, पृष्ठ 42
- अक्सर लोग, पृष्ठ 52
- फफूंद, पृष्ठ 144
- प्रेम की स्थानीयता, पृष्ठ 18

नामः सुनीता

पदः सहायक प्रोफेसर

संस्था का नामः राजकीय महिला महाविद्यालय,

हिसार

फोन नंबर रू8813082856

14

युवा पीढ़ी के कालजयी मार्गदर्शकः स्वामी विवेकानंद

डॉ0 पूनम कुमारी

सारांशः–

युवा शक्ति किसी भी राष्ट्र के विकास एवं निर्माण का मूल आधार होती है। उत्साह व ओजस्व से भरा युवा सम्पूर्ण राष्ट्र को तेजमय करने का सामर्थ्य रखता है। युवा शक्ति की चारित्रिक दृढ़ता व उच्च कोटि के नैतिक मूल्य उस राष्ट्र के सम्मान व शौर्य को वैसे ही तेजवान बना देता है, जैसे अन्य तारों के समक्ष सूर्य। अतः स्वस्थ युवा ही स्वस्थ एवं सुदृढ़ राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। विश्वगुरू कहलाने वाले भारत को सालों की गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने एवं ज्ञान की गंगा बहाने में युवा शक्ति का अतुलनीय योगदान रहा है। किन्तु भारतीय युवाओं के कालजयी महान मार्गदर्शक बने– महापुरूश स्वामी विवेकानंद। स्वामी विवेकानंद एक ऐसी महान शख्सियत थे जो केवल भारतीय युवाओं के लिए ही नहीं बल्कि पूरे संसार के युवाओं को एक उदात्त चरित्र और औदात्मय वैचारिक चेतना देने का प्रकाश रखते थे। भारतीय वेदान्त दर्शन का विश्व–पटल पर डंका बजाकर, अपने राष्ट्र को दुनियाभर में गौरवान्वित करने वाले स्वामी विवेकानंद युगों–2 तक भारतीय युवाओं के लिए अथाह प्रेरणा स्त्रोत रहेंगे। आदर्श एवं अध्यात्म से पूर्ण उनका व्यक्तित्व युवा जगत् को आलोकमय करने का सामर्थ्य रखता है। निःसंदेह ही विवेकानंद भटकती युवा पीढ़ी के लिए कालजयी मार्गदर्शक हैं।

मुख्य शब्दः– कालजयी, औदात्य, परिकल्पना, समर्पण, आत्मोत्सर्ग, मेधावी, नक्षत्रखचित, अन्तर्द्वन्द्व।

प्रस्तावनाः–

भारत युवा शक्ति से परिपूर्ण देश है। विकासशील भारत से विकसित भारत की यात्रा में देश के युवाओं की भूमिका आज उतनी नहीं दिखाई देती, जितनी वास्तव में होनी चाहिए। समाज, राजनीति, सांस्कृतिक व आर्थिक संदर्भों में युवाओं की भूमिका नगण्य है। आध्यात्म से अछूती युवाओं की मानसिकता रूग्ण हो चुकी है। अतः आदर्श व विकसित भारत की परिकल्पना भी छलावा–सा प्रतीत होता है। युवा शक्ति ही किसी देश का भविष्य निर्धारित करती है किन्तु जिस देश की युवा पीढ़ी ही भटकाव के व्यूह में फँसी हो, उसका भविष्य उज्ज्वल हो, यह सोचनीय विषय है। यह वास्तविकता है कि अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत वर्श की स्थिति ज्यादा अच्छी है। पीछे के कुछ दशकों में विकासशील देशों की तुलना में हमारा देश अग्रणी रहा है। सीमित संसाधनों से देश की विकास दर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। किन्तु जिस देश की आबादी का एक बड़ा हिस्सा युवा हो और सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक कार्यों में भागीदारी का प्रतिशत निम्न हो, वहाँ स्थिति विचारणीय है। सोशल मीडिया में फँसा युवा, समाज से दूर और अपने अस्तित्व से विलग होता जा रहा है। समाज और कर्त्तव्यों की चेतना तो दूर सोशल साईटों पर व्यस्त युवा स्वयं से भी अनभिज्ञ होता जा रहा है। अपने स्वास्थ्य और चेतना से खेलता युवा के लिए राष्ट्र–प्रेम, समर्पण, त्याग, दया, सहयोग 'किस खेत की मूली है' कहावत के समान है। बेरोज़गारी, महँगाई, गुणवत्ता रहित शिक्षा ने युवाओं को असंतोश से भरकर भटकाव की ओर धकेल दिया है। फलस्वरूप युवा वर्ग संसाधनों, अवसरों के अभाव में अपनी राह से भटककर सोशल मीडिया और नशाखोरी के जाल में फँसा जा रहा है। शिक्षा ज्ञान का विशय न रहकर मात्र डिग्री प्राप्त करने का माध्यम बनकर रहा गया है जिसके कारण देश में भ्रष्टाचार और घूसखोरी को भी बढ़ावा मिला है। अपने ही निराशा के अंधकार में भटकता युवा अपने भीतर के संतोष को खो बैठा है। अतः राष्ट्र के युवाओं के चरित्र को सुदृढ़ और सुन्दर बनाने के लिए एक ऐसे कालजयी चरित्र की आवश्यकता है जिससे युवा भटकाव और असंताष की आँधी से बाहर निकलकर राष्ट्र के विकास में अभूतपूर्व भागीदारी निभा सके।

स्वामी जी का जीवन, उनके विचार भारतीय युवाओं के लिए संजीवनी के समान है। निराशा, भटकाव, संघर्ष व असंतोष की आँधी आज के युवाओं के सामने ही नहीं है अपितु यह समस्याएँ हर युग में विद्यमान रही हैं। स्वामी विवेकानंद जिस युग से संबंधित थे वहाँ सुविधाएँ अवसर और संसाधन वर्तमान युग की अपेक्षा न के बराबर थे और संघर्ष कई गुना। स्वामी जी का धैर्य, साहस, विश्वास, अध्यात्म इतनी उच्च कोटि का था कि उनका व्यक्तित्व सदा–सदा के लिए युवा पीढ़ी के लिए कालजयी आदर्श बन गया।

उनका वक्तव्य आज भी युवाओं के लिए ओज से भरे जादुई चिराग के समान है। युवाओं को सम्बोधित करते हुए स्वामी विवेकानंद जी कहते हैं–''वेदों में कहा गया है–युवक, बलशाली, स्वस्थ, दिव्य मेधावाले और उत्साह युक्त मनुश्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं। तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीण–शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा... ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो। जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अजर–अमर और अनंत है और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ अपने आगे एक महान आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें।''[1]

स्वामी जी राष्ट्रोत्थान में युवा शक्ति का महत्त्व सर्वाधिक मानते थे। अतः उनका मानना था कि प्रत्येक युवक को अपने जीवन में उच्च आदर्शों का चयन करना चाहिए और राश्ट्र की आराधना करते हुए आत्मोत्सर्ग हेतु सदा प्रस्तुत रहना चाहिए। विवेकानंद जी कहते हैं–''समस्त शक्ति तुम्हारे भीतर है, तुम कुछ भी कर सकते हो और सब कुछ कर सकते हो, यह विश्वास करो। मत विश्वास करो कि तुम दुर्बल हो...तुम कुछ भी और हर एक काम बिना किसी सहायता के ही कर सकते हो, तुममे सब शक्ति है, तत्पर हो जाओ। तुम में जो देवत्व छिपा है, उसे प्रकट करो।''[2]

स्वामी विवेकानंद सदा यथार्थ में विश्वास रखते थे। उनका विश्वास ध्रुव तारे के समान अटल और अड़िग था। उन्होंने जो सोचा, विचारा उसे प्रत्यक्ष करके ही दम लिया। कठिन परिस्थितियाँ उनके अदम्य साहस के समक्ष नतमस्तक थी। उनका मानना था युवा शक्ति को सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए और जब तक अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर ले, तब तक नहीं ठहरना चाहिए। आज का युवक जहाँ एक–दो बार असफल होने पर प्रयास छोड़कर निराशावादी बनने को तत्पर रहते हैं। स्वामी विवेकानंद ने संघर्ष से कभी मुँह नहीं मोड़ा–''पिछले दस वर्षों से मैंने अपना मूल मन्त्र बना रखा है–संघर्ष करते रहो, और अब भी कहता हूँ कि अविराम संघर्ष करते चलो। जब चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा दिखता है, तब भी मैं कहता हूँ कि संघर्ष करते चलो। डरो मत मेरे बच्चों, अनन्त नक्षत्रखचित आकाश की ओर भयभीत दृष्टि से ऐसे मत ताको, जैसे कि वह हमें कुचल ही डालेगा। धैर्य रखो, देखोगे कि कुछ ही घण्टों में वह सब–का–सब तुम्हारे पाँवों तले आ गया है। धैर्य रखो, न धन से काम होता है, न नाम से, न यश काम आता है और न विद्या, प्रेम से ही सब कुछ होता है। चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोड़कर अपना रास्ता बना सकता है।''[3]

उत्कृष्ट समाज और राष्ट्र के लिए आवश्यक है–उत्कृष्ट युवा शक्ति। त्याग, सहानुभूति, समर्पण, एक–दूसरे के प्रति प्रेम और सहयोग ही वह भाव है जो मानवीयता की भावभूमि को तैयार करते हैं। स्वार्थपरता से घिरा आज का नवयुवक उपरोक्त भावों से कोई सरोकार नहीं रखता है। 'मैं' और 'मेरा परिवार' भाव भी आज के युवा के लिए बोझ बन रहा है, देश और समाज तो दूर की बात है। प्रत्येक माता–पिता का यह मौलिक कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे अपने बच्चों में विवेकानंद जैसे बनने का बीज बाल्यावस्था में ही डाले ताकि युवा अवस्था तक यह बीज घना वृक्ष बन समाज और देश की सेवा कर सके। विवेकानंद के विचार ही हमारी युवा पीढ़ी को परोपकार और त्याग के नैतिक मूल्यों से अवगत करवा सकती है। स्वामी जी का व्यक्तित्व उनके विचारों का पूर्ण प्रतिबिंब था, जो चरित्र–दृढ़ता के लिए अति अनिवार्य सूत्र है। इस संदर्भ में वे लिखते हैं–''वर्तमान युग को एक ऐसे ही मनुष्य और ऐसे ही त्याग की आवश्यकता है।...अपना जीवन समर्पित कर दो। स्वयं को मानवता की सेवा में झोंक दो। उपदेशों की साकार प्रतिमूर्ति बन जाओ। यही त्याग है, केवल बातों से काम नहीं होता। उठो और काम पर लग जाओ। तब, तुम्हें देखते ही संसारी तथा लोभी व्यक्ति के मन में भय का संचार होगा।...''[4]

स्वामी विवेकानंद का जीवन दुःख, पीड़ा, वेदना और अंतर्द्वन्द्वों का गहरा समंदर था। दुःखों के पहाड़, आलोचनाओं के घेरे उनके लक्ष्य को भेदने से रोक न सके। काम–कंचन–कीर्ति का उन्हें तिल भर भी लोभ नहीं था। कर्मक्षेत्र को ही वे जगत् उद्धार का मूल मानते थे–''यदि तुम काम तथा कंचन का पूरे तौर से त्याग कर सको, तो तुम्हें कुछ बोलने की जरूरत ही नहीं होगी। तब, तुम्हारे चरित्र का कमल खिल जाएगा और तुम्हारे भाव की सुरभि फैल जाएगी, जो कोई भी तुम्हारे पास आएगा, वह तुम्हारी अध्यात्मिकता की ज्योति से प्रज्वलित हो उठेगा।''[5] पद, पैसा और यश के लालच में जकड़ा युवा अगर विवेकानंद जी के चरित्र की दिव्यता और मन एकाग्रता को अपने जीवन में उतार ले तो निश्चित ही वर्तमान नवयुवक भी 'मैं' और 'मेरा' तुच्छ लालसा से निकल कर जीवन को मानव सेवा में लगा सकता है जो वर्तमान चूहा दौड़ में नितान्त आवश्यक है। 39–40 वर्श की छोटी–सी जीवन यात्रा में विवेकानंद ने संसार के अनेक देशों का भ्रमण किया। वेदान्त और हिन्दू धर्म की सार्वभौमिकता, विश्व बन्धुत्व एवं कल्याण की उदार धार्मिक भावनाओं को इस अकेले महान युवा ने वैश्विक स्तर पर निर्विवाद सत्य सिद्ध किया था। शिकागो, 2 नवम्बर, 1893 में छह–सात हजार स्त्री–पुरूषों, जो इस देश की सर्वोत्कृष्ट संस्कृति के प्रबल पक्षधर थे तथा संसार की सभी जातियों के विद्वान इकटठे थे। ये भाशण विवेकानंद सादगी और सहृदयता की उच्छल भावों का वह झरना था जिसमें सभी तृप्त और आनंदित हो उठे –''उस दिन से मैं विख्यात हो गया और जिस दिन मैंने अपना हिन्दू धर्म पर निबन्ध पढ़ा उस दिन तो हाल में इतनी अधिक भीड़ थी, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। एक समाचार–पत्र का कुछ अंश उद्धृत करता हूँ –''केवल महिलाएँ ही महिलाएँ कोने–कोने में जहाँ देखो वहीं, ठसाठस भरी हुई दिखाई देती थी। अन्य सब वक्तृताओं के समाप्त होने तक वे किसी प्रकार धैर्य रखकर विवेकानंद की वक्तृता की बाट जोहती रही –''आदि, आदि। तुम्हारे पास यदि मैं समाचार–पत्रों की कतरने भेजूँ, तो तुम आश्चर्यचकित रह

जाओगे। परन्तु तुम जानते हो कि मैं नाम–यश से घृणा करता हूँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जब कभी मैं मंच पर आया, तो कर्णभेदी तालियों की आवाज के साथ मेरा स्वागत किया गया। प्रायः सभी पत्रों में मेरी प्रशंसा के पुल बाँधे और उसमें जो बड़े कट्टर थे, उन्हें भी यह स्वीकार करना पड़ा कि 'यह मनुष्य अपनी आकृति, आकर्षण, व्यक्तित्व तथा आश्चर्यजनक वक्तृता के कारण सम्मेलन में सबसे प्रमुख व्यक्ति हैं' आदि–आदि। तुम्हारे लिए इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि इससे पूर्व किसी प्राच्य व्यक्ति ने अमेरिकी समाज पर कभी इतना गहरा प्रभाव नहीं डाला था।''[6] इतनी प्रसिद्धि, इतनी लोकप्रियता, इतनी गहरी छाप तथा एक भाषण मात्र से सबको सम्मोहित करने वाले विवेकानंद इतिहास में एकमात्र युवक दिखाई देते हैं, जो किसी विदेशी भूमि पर जाकर भारतीय संस्कृति व धर्म का झंड़ा फहरा दिया था। किन्तु यश और प्रसिद्धि की लालसा उन्हें तनिक भी स्पर्श नहीं कर पाई थी–''जो मनुश्य जाति की सहायता करना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि वे अपने सुख–दुःख, नाम–यश और अन्य सभी स्वार्थों की पोटली बनाकर समुद्र में फेंक दें... ।''[7] स्वामी विवेकानंद का एक–एक शब्द, संवाद एवं विचार आज भी जीवन्त ओज से भरे हैं और वर्तमान के निश्क्रिय और संवेदनहीन युवाओं को जागृति का प्याला देने में पूर्ण सक्षम हैं–''(उठो, जागो! प्रभु! प्रभु! वे अपने पीछे हैं। मैं और लिख नहीं सकता–व्दूंतक (आगे बढ़ो) केवल इतना ही कहता हूँ कि जो–जो मेरा यह पत्र पढेंगे, उन सब में मेरा भाव भर जाएगा, विश्वास करो। व्दूंतक (आगे बढ़ो)...हम तारों को अपने दाँतों से पीस सकते हैं, बलपूर्वक तीनों लोकों को उखाड़ सकते हैं। क्या तुम हमें नहीं जानते? हम श्रीरामकृश्ण के दास हैं।...मेरे बच्चों संघर्ष में कूदना होगा, संसार त्यागना होगा, तब ही दृढ नींव पड़ेगी।...मृत्युपर्यन्त काम करो–मैं तुम्हारे साथ हूँ और जब मैं नहीं रहूँगा, तब मेरी आत्मा तुम्हारे साथ काम करेगी। यह जीवन आता है और जाता है – नाम, यश, भोग, ये सब थोड़े दिन के हैं। संसारी कीड़े की तरह मरने से कहीं अधिक अच्छा है–कर्त्तव्य क्षेत्र में सत्य का उपदेश देते हुए मरना। आगे बढ़ो।''[8]

निष्कर्षः–

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि स्वामी विवेकानंद जी की जीवन यात्रा, उनके विचार, उनके कार्य, उनका अध्यात्म, चारित्रिक दृढ़ता, नाम–यश से विलगता, राष्ट्र प्रेम और वैश्विक मानव कल्याण की भावना वर्तमान युग के लिए ऐसा पथ–प्रदर्शक है, जो उनके जीवन को निराशा, असंतोष और स्वार्थपरकता से निकालकर ओज, उत्साह, प्रेम से भर देगा।

संदर्भ सूची

1. विवेकानन्द साहित्य, भाग–5, पृष्ठ संख्या–197
2. विवेकानन्द साहित्य, भाग–5, पृष्ठ संख्या–178
3. स्वामी विवेकानन्द, मेरी जीवनकथा, विवेकानन्द की आत्मकथा, पुनित बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–138
4. स्वामी विवेकानन्द, मेरी जीवनकथा, विवेकानन्द की आत्मकथा, पुनित बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–56
5. वहीं, पृष्ठ संख्या–56
6. वहीं, पृष्ठ संख्या–99
7. वहीं, पृष्ठ संख्या–220
8. स्वामी विवेकानन्द, मेरी जीवनकथा, विवेकानन्द की आत्मकथा, पुनित बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या–189

डॉ0 पूनम कुमारी
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी)
राजकीय महाविद्यालय रिठौज, गुरूग्राम
Email:- anujdgrt1987@gmail.com

15

सरिया प्रखण्ड के अंतर्गत अमनारी गाँव के बिरहोर जनजाति की आर्थिक अध्ययन

मोहम्मद अंसारी

सारांशः–

आदिम जनजाति बिरहोर का अपना एक विशेष स्थान है क्योंकि इनकी अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ विशेष रूप से उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण है।

झारखण्ड में इस जनजाति का मुख्य निवास हाजारीबाग, गिरिडीह, बोकारो, कोडरमा, चतरा, गुमला जिला है।

मानव वैज्ञानिकों द्वारा वर्गीकृत किए गए अध्ययनों में पाया जाता है कि झारखण्ड तथा अन्य राज्यों में निवास करने वाली जनजातियाँ खाद्य संग्रह एवं शिकार करने वाली है। उद्विकासवादियों मानवशास्त्रियों के अनुसार मानव शुरू से ही जंगल का निवासी था और खाध्य संग्रह तथा शिकार करना अर्थव्यवस्था की प्रथम अवस्था है। इसके लिए मानवों की एक स्थान से दूसरे स्थान पर भ्रमण करता था। उनका जीवन कितना कष्टदायक रहा होगा। परंतु यह कटु सत्य है कि आज भी बिरहोर जनजाति और जंगल के बीच पारस्पारिक सम्बंध तथा आपसी निर्भर बनी हुई है। दोनों एक दूसरे के पूरक है। तथा दोनों के बीच अन्योन्याश्रय सम्बंध पाया जाता है। जंगल है तभी बिरहोर और उनकी संस्कृति है। बिरहोर पारंपरिक रूप से वनों पर आधारित है जिसमें वनोपज संग्रह, रस्सी बनाना, शिकार करना और छोटी मोटी बुनाई करना प्रमुख है। इस अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बिरहोर समुदाय की आय के चुनौति श्रोतों आर्थिकयों और सरकारी योजनों के प्रभावों का आकलन करना है। पूर्व के अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि बिरहोरों की औसत आय अत्यंत कम है जिससे वे शिक्षा, स्वस्थ्य, आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित रह जाते है। यद्यपि मुफ्त राशन वितरण, प्रधानमंत्री आवास, अबुआ आवास योजना जैसी सरकारी योजनाऐं कुछ राहत प्रदान करती है। लेकिन इनके क्रियान्वयन में कमियाँ बनी हुई है।

बिरहोर जनजाति की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए दीर्घकालिक और समग्र प्रयासों की आवश्यकता है। इसमें कौशल विकास, स्थानीय संसाधनों का स्थायी और प्रभावी उपयोग तथा बाजारों तक पहुँच सुनिश्चित करना प्रमुख उपाय हो सकते है। इसके साथ ही जनजातीय समुदाय की भागीदारी के साथ नीतियों को क्रियान्वयन करना आवश्यक है ताकि उनकी पारंपरिक आजीविका को आधुनिक अर्थव्यवस्था से जोड़ा जा सके तभी बिरहोर की अर्थव्यवस्था तथा जीवन यापन में सुधार हो सकता है।

कुंजी शब्दः– सरिया प्रखंड के अमनारी पंचायत के अंतर्गत अमनारी गांव के बिरहोर की आर्थिकी–

झारखण्ड में कुल 32 जनजातियाँ है जिसकी जनसंख्या लगभग 8645042 है जो राज्य की कुल आबादी का 26.2 प्रतिशत है (जनगणना–2011) इन जनजातियों 8 आदिम जनजाति भी शामिल है जिनकी जनसंख्या 192425 है जो कुल जनजाति का जनसंख्या का 0.72 प्रतिशत है। इस आदिम जनजाति में बिरहोर एक प्रमुख जनजाति समुदाय है। जिनकी जनसंख्या झारखण्ड में लगभग 10,000 से 11,000 हजार के बीच है यह राज्य की एक विशेष रूप से कमजोर आदिम जनजाति (PVTG) है। भारत के कुल बिरहोरों की आबादी का लगभग 62 प्रतिशत हिस्सा अकेले झारखण्ड में निवास करता है। बिरहोर का अर्थ होता है जंगल का आदमी जहाँ बिर का मतलब जंगल तथा होर का मतलब आदमी है। बिरहोर जनजाति के लोग आमतौर पर छोटे कद के होते है इनके सिर लंबे बाल घुंघराले और नाक चौड़ी होती है। बिरहोर प्रोटो ऑस्ट्रलॉयड प्रजाति से सम्बंधित है।

अमनारी बिरहोर टंडा सरिया मुख्यालय से 16 कि0मी0 दूर पश्चिम की ओर स्थित है। यहां जाने के लिए सरिया धनवार मुख्य मार्ग से बाघा मोड़ से पश्चिम की ओर जाने पर खेडवा नदी पुल पार करके बसरिया ढाब, केशवारी, नगर केश्वारी होते हुए सोठी नदी पार करके बिरहोर टंडा पहुँचते है। बिरहोर के सभी घर पक्की सड़क से सटे हुए है दाहिने ओर है और बिरहोर बच्चों के लिए खोले गए उटक्रमित मध्यविद्यालय पक्की सड़क के बाऐं ओर है।

सरिया प्रखण्ड के अंतर्गत आने वाला अमनारी टंडा को कुल आबादी 154 (पुरूष –80 तथा महिला 74) यहाँ पर महिलाओं की संख्या पुरूषों से 06 कम है। इस टंडा में बिरहोर लगभग 100 वर्षों से रहते आ रहे है। परिवारों की संख्या लगभग 45 है। यह टंडा तीन टोलों में बटा हुआ (1) नीचली टोला (सोढ़ी नदी की ओर है।) (2) मंझला टोला (बीच वाला भाग) तथा (3) ऊपरी टोला।

भारत में आदिम जनजाति समुदायों की जीवनशैली में समय के साथ कई बदलाव आए है सबसे बड़ी कष्ट उनकी आर्थिक स्थिति है। अमनारी का बिरहोर टंडा इससे अछुता नहीं है, पारंपरिक रूप से वनों पर निर्भर यह समूदाय काफी समृद्ध था बुनियादी संसाधनों एवं आजीविका का कोई संकट नहीं था परंतु शहरीकरण वनों की कटाई और औद्योगिकरण के कारण इनकी परम्परागत अजीविका के श्रोत समाप्त हो गए है। शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी मूलभूत सुविधाओं को पहुँच अब भी सीमित है। (प्रकाश–2022) अधिकांश आदिम जनजातियाँ आज भी गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रही है। सरकारी योजनाएँ जैसे–वनाधिकार अधिनियम,

आवास योजना और राशन वितरण, मौजुद तो है पर उनका लाभ सही रूप से इन समूदायों को नहीं मिल पाता है। संसाधनों की कमी, सामाजिक उपेक्षा और प्रशासनीक उदासीनता के कारण इनकी आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है जिससे वे एक तरफ से आज भी मुख्यधारा से कटे हुए है वहाँ दूसरे तरफ अपनी सांस्कृतिक अस्तित्व को खोते जा रहे है। (लकड़ा एवं कुमार–2017)

उपरोक्त पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए यह लेख पूर्ववती अध्ययनों के गहन विश्लेषण के आधार पर झाखण्ड के सरिया प्रखण्ड अंतर्गत अमनारी गाँव के बिरहोर अमनारी टंडा जनजाति समुदाय की आर्थिक स्थिति का मुल्यांकन प्रस्तुत करता है। यह लेख उन प्रमुख कारको की पहचान करने का प्रया करता है जिसके कारण इस समुदाय की आर्थिक स्थिति पर प्रतिकुल प्रभाव पड़ा है। साथ ही साथस शोध पत्र बिरहोर जनजाति की वर्तमान आर्थिक चुनौतियों को रेखांकित करते हुए उनकी अजीविका और जीवन स्तर में सुधार हेतु व्यवाहारिक एवं नीतिगत सुझाव भी प्रस्तुत करना है जिससे उनके सामाजिक–आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में ठोस पहल की जा सके।

अमनारी गाँव के बिरहोर टंडा की आर्थिक स्थिति

झारखण्ड में बिरहोर समुदाय कमोबेश सभी जिलों में विभाजित है यद्यपि राँची, हजारीबाग, गिरिडीह, चतरा, सिंहभूम, पलामू, इत्यादि कुछ जिलों में इनका संकेद्रण अधिक है। सामाजिक आर्थिक स्थिति के आधार पर यह जाति तीन भागों में विभाजित है– (1) उथलू बिरहोर (2) जांघी बिरहोर (3) एवं बसालू बिरहोर। यह जनजाति अपने घुमंतू जीवन के लिए भी जाना जाता है। जंगल न सिर्फ इनके आश्रय स्थल रहे है बल्कि जीविका का मुख्य साधन भी रहा है। बिरहोर जनजाति की पारंपरिक अर्थव्यवस्था मुख्य रूप से खानाबदोश जीवनशैली वनोपज संग्रह और शिकार पर आधारित रही है। विशेष रूप से बंदरो के शिकार, खरोश और तीतर को फँसाते है तथा जंगलों से शहद इकट्ठा करके बेचतेह ै। वे विशेष प्रकार बेल के रेशों से रस्सियाँ बनाते है जिन्हें आस–पास के कृषक समाज के बाजारों में बेचते है।

अमनारी टंडा के आस–पास घने जंगल है। इन जंगलों में खरहा, वनसुअर तथा विभिन्न प्रकार की पंक्षियाँ मिल जाती है। इसलिए यहां के बुजुर्ग वर्ग के लोग अभी भी शिकार के लिए जाते है। आस–पास के लोगों में खरहा का मांस ज्यादा लोकप्रिय है। खरहा की कीमत इसके छोटे–बड़े साइज के अनुसार मिलता है। इसकी कीमत 700 रूपये से लेकर 1500 रूपये तक की होती है। शिकार करने वालों में सरयु, गुजर, टुपा, मंगरू, कैला, रमेश, गुडरा, धोवन, चुटरा बिरहोर आदि है। इनके बीच तीन तरह के शिकार करने का प्रचलन है– (1) दिशुम सेंदराः– इसके तरत् अगल–बगल के टंडा के लोग साथ मिलकर शिकार करते हैं। (2) पतेल सैंदराः– इसमें एक ही टंडा के लोग होते है तथा जरूरत पड़ने पर एक दो दिन जंगल में ही रह जाते है। (3) झोरा सेंदराः– इसके तहत् कोई व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों के साथ शिकार के लिए निकलते है और जो कुछ भी पकड़ते है उसे बांटना नहीं पड़ता है।

शोध कार्य क्षेत्र के बिरहोर के आर्थिक स्त्रोतों को मुख्य रूप से तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है।

बिरहोर के आर्थिक स्त्रोत

परम्परागत स्त्रोत	आधुनिक स्त्रोत	भदावदा
(1) खाध्य संकलन	(1) कृषि कार्य	(1) मधु एकत्रित करना
(2) रस्सी बनाना	(2) ट्रैक्टर चालक	(2) मछली पालना
(3) शिकार करना	(3)अकुशल श्रमिक	(3) चटाई बनाना
(4) जड़ी बूटी	(4) आमबागवानी	(4) कमिया खटना
		(5) अधबटइया के रूप में

बिरहोर जनजाति का परम्परागत आर्थिक जीवन वनों पर निर्भर है इसलिए आज भी वनोत्पाद इनके आर्थिक जीवन का मेरूदंड बना हुआ है। वन इनके आर्थिक जीवन का केन्द्र बिन्दु है जो इसकी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इनका सम्पूर्ण सामाजिक–आर्थिक–धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन जंगलों के इर्द–गिर्द संचालित होता है।

बिरहोर की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है। 1971 ई0 में एल0आर0एन0 श्रीवास्तव की देख रेख में एन0सी0ई0आर0टी0 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद) नई दिल्ली की ओर से भारत के तीन राज्यों में 18 जनजातियों का आर्थिक, शैक्षणिक एवं रोजगार स्थिति पर तुलनात्मक अध्ययन किया गया और पाया गया कि बिरहोर का स्थान सभी स्तरों में अंतिम है यानि 18वां है। चतुर्भुज साहु ने अपनी पुस्तक बिरहोर ट्राईब–1995 में यह दर्शाया है कि बिरहोर इस स्थिति में भी नही होते है कि गर्भवती महिलाओं का उपयुक्त भोज्य पदार्थ खिला सकें।

कुमार (2017) हाल के वर्षों की आर्थिक नीतियां इन समुदायों के लिए लगभग उदासीन साबित हुई है। वन्य जीवन और जंगलों की रक्षा के नाम पर करोड़ों रूपये खर्च होने के बावजूद न तो जंगल सुरक्षित रहे है और न ही वहाँ के जीव जंतु। आज विकास के नए प्रतिमानों ने जैसे चिंड़ियाघरों में सीमित कर दिया है, उसी तरह बिरहोर संस्कृति को भी संरक्षण की वस्तु बना दिया गया है।

आमनारी गांव के बिरहोर टंडा की प्रमुख आर्थिक समस्या

(बंधो पाध्याय–2015) बिरहोर समुदाय झारखण्ड के अत्यंत निर्धन आदिवासी समूहों में शामिल है। यह जनजाति अब भी मुख्य रूप से जंगलों और प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर है। शिक्षा, रोजगरा और बुनियादी सेवाओं की भरी कमी के कारण यह समूदाय गहरी गरीबी में जीवन व्यतीत कर रहा है। इनके पास न तो स्थायी आमदनी के स्त्रोत है और न ही कृषि योग्य भूमि है। आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण वे अक्सर दैनिक श्रमिक के रूप में अत्यंत कम मजदूरी पर काम करने के लिए विवश है। सरकारी योजनाओं तक इनकी पहुँच सीमित है। पारंपरिक आजीविका जैसे लकड़ी काटना, जड़ी बूटी इकट्ठा करना, रस्सी बनाना, शिकार करना आदि अब घटते जंगलों और सरकारी प्रतिबंधों के कारण संकट में है। नई आर्थिक व्यवस्था में इनके पास आवश्यक कौशल या शिक्षा नहीं होने के कारण ये किसी भी संगठित या अर्द्धसंगठित क्षेत्र में रोजगार प्राप्त नहीं कर पाते है।

अमनारी बिरहोर टंडा के युवाओं में तकनीकी शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण का पूर्णतः अभाव है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे रोजगार गारंटी कार्यक्रम या कौशल विकास योजनाओं की जानकारी और पहुँच दोनों ही इनके बीच दूरी है। इसके साथ नशाखोरी एक बड़ी समस्या है। इस टंडा के अधिकतर युवक ट्रेक्टर चालक है जिससे ट्रेक्टर संस्कृति का प्रचलन हो रहा है जो नदियों से बालु लाने तथा ईट के भट्टों में ट्रेक्टर चलाया तथा कृषि कार्य में जोताई करके अपना जीवन यापन पर रहे है। अमनारी का एक मात्र व्यक्ति बुधन बिरहोर के पास ड्राइविंग लाइसेंस है जिसे गिरिडीह से प्राप्त किया है। बाकी टंडा के सभी ट्रेक्अर चालकों के पास ड्राईविंग लाइसेंस नहीं है। यह बिल्कुल अवैध है। लेकिन परिवार को पालने हेतु अवैध काम होते हुए भी इसे अपनी इच्छा से करने के लिए मजबुर है। इससे हर समय पकड़े जाने का खतरा बना रहता है। 14–15 वर्ष के होते ही ट्रेक्टर चलाना सीख लेता है, जिस उम्र में बच्चे की किताब से दोस्ती करनी चाहिए वे गाड़ी चलाने में व्यस्त हो जाते है।

ड्राईविंग लाइसेन्स नही होने के कारण ट्रेक्टर मालिक इन्हें आधा मजदूरी देते है। लाईसेंसधारी चालक की मजदूरी प्रतिदिन 700 से 800 रू0 होती है। जबकि बगैर लाइसेंसधारी को 300 से 350 रू0 देते हे। इस प्रकार युवा वर्ग मालिकों के गुलाम बनकर शोषित हो रहे है।

सरकारी लाईसेंस प्राप्त करने के लिए न्यूनतम योग्यता मैट्रिक पास हो गई है। इनके पास मैट्रीक के दूर की बात है अधिकांश के पास पांचवी तक की डिग्री नहीं है। जब इन्हें एहसास होने लगता है कि पढ़ाई करनी चाहिए तब तक काफी उम्र हो जाता है और आर्थिक स्थिति दयनीय रहती है। इसके साथ–साथ लाईसेंस नहीं रहने के कारण प्रशासन के द्वारा या तो केस किया जाता है या तो जुर्माना लेकर छोड़ दिया जाता है। जिससे बिरहोरों की बीच में आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है।

भोजन को असुरक्षा बिरहोर समुदाय के लिए एक बड़ी चुनौतियां है। जंगलों से मिलने वाला खाद्य संसाधन अब पहले जैसे उपलब्ध नहीं है और खेती करने के लिए न तो इसके पास पर्याप्त जमीन है और न ही संसाधन है जिसके वजह से यह मजदूर बनकर रह गया है। अमनारी बिरहोर टंडा को सरकार के द्वारा आमबागवानी योजना दिया गया है परंतु आमबागवानी का सही से देख रेख नहीं होने के करण आम का उपज सही से नहीं होता है और दूसरे लोग भी आम को तोड़कर ले जाता है। अगर आम बागवानी का ढंग से देख रेख होता तो आम का उत्पादन अधिक होता उससे आम का कीमत अच्छा होता जिससे बिरहोर आर्थिक रूप से मजबूत होता।

भारती एवं झा – 2019 इस प्रकार शैक्षिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक रूप से बिरहोर समुदाय आज भी समाज की मुख्यधारा से कोसों दूर है। इनका सामाजिक पिछड़ापन इस कदर है कि ये अपनी जरूरतें और अधिकारों की मांग भी नहीं उठा पाते। समाज में इन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है और इन्हें निर्णय प्रक्रिया से दूर रखा जाता है। सामाजिक भेदभाव, अशिक्षा और प्रशासनिक उदासीनता ने इन्हें पूरी तरह से हाशिए पर ला दिया है। सरकार की योजनाओं का लाभ भी इस तक नहीं पहुँच पाता जिससे यह पिछड़ापन और गहरा होता चला जाता है। बिरहोर जनजाति की स्वास्थ्य स्थिति बेहद चिंताजनक है। उचित स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता, अशुद्ध पेयजल अपर्याप्त पोषण और पारंपरिक चिकित्सा पद्धति पर निर्भरता के कारण इनका रोग प्रतिरोधक क्षमता कमजोर है। गर्भवती महिलाओं, बच्चों और बुजुर्गो में कुपोषण और संक्रमणजन्य बीमारियों की दर अत्याधिक है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की दूरी, भाषा सम्बंधी अवरोध और जागरूकता की कमी भी इन्हें स्वास्थ्य सेवाओं से दूर रखती है। स्वास्थ्य और पोषण की इस उपेक्षा का प्रभाव इनके जीवन प्रत्याशा और सम्पूर्ण जीवन स्तर पर पड़ता है।

अमनारी बिरहोर टंडा के लिए आर्थिक सुझाव

झारखण्ड की जनजाति संस्कृति एवं अलग पहचान यहाँ रहने वाली आदिम जातियों से ही परिलक्षित होती है यह किसी त्रासदी से कम नहीं है कि मानव जाति का एक समुह जो कभी समृद्ध एवं खुशहाल जीवन व्यतीत कर रहा था उन्हें तथाकथित रूप से विकसित बनाने एवं मुख्यधारा से जोड़ने की

कोशिशों नें उन्हें उनके अस्तित्व के साथ ही संकट उत्पन्न कर दिया है। ऐसे में हम सब की जिम्मेवारी है कि इन जनजातियों समुहों की उत्तरजीविता को सुनिश्चित करें। विशेषकर अमनारी बिरहोर टंडा के आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए निम्नलिखित सुझाव :–

1. अमनारी बिरहोर टंडा में उत्क्रमित मध्यविद्यालय के पीछे आम के बगीचे तथा उनके अगल बगल की भूमि विवादास्पद हो गई है। सरकार द्वारा बिरहोर को दी गई 16.40 एकड़ भूमि में से लगभग 3.50 एकड़ जमीन पर राम चंद्र मंडल और एतवारी मंडल ने इसे अपनी पैत्रिक सम्पत्ति बताते है। वर्ष 2018 में ही गिरिडीह के सिविल कोर्ट में केस किये है तब से आज तक केस चल रहा है जिसके वजह बिरहोर की परेशानी बढ़ गई है। इस मामला को सरकार समाधान करें।

2. वर्तमान समय में बिरहोरों खासकर युवा वर्ग के बीच ट्रेक्टर चालक बनकर जीविकोपार्जन करने की संस्कृति पनप गई है। कार्य क्षेत्र के सभी टंडाओं में लगभग 90 प्रतिशत युवक ट्रेक्टर ड्राइवर बनकर अपना जीवन यापन कर रहे है। अमनारी का एकमात्र व्यक्ति बुधन बिरहोर के पास ड्राइविंग लाइसेंस है जिसे गिरिडीह से प्राप्त किया है। सरकार को चाहिए अमनारी के युवाओं को ट्रेक्टर चालक का लाइसेंस निर्गत करना चाहिए ताकि इनके मजदूरी दर बढ़ सके और प्रशासन व अन्य प्रकार की समस्या न हो पाए।

3. अमनारी बिरहोर टंडा के बगल में सरकार ने 16.40 एकड़ भूमि आम बागवानी के लिए दिया गया है। आम बागवानी को सुरक्षित रखने के लिए चारो ओर से घेराबंदी होनी चाहिए ताकि आम तथा पौधे सुरक्षित रहे। बिरहोर ट ।डा के लोग आम को बेचकर उस राशि को सारे बिरहोर आपस में बांटते हैं और अपना जीवकिोपार्जन करते है।

4. बिरहोर समुदायों के जीवन में साकारात्मक परिवर्तन के लिए एक महत्वपूर्ण बात यह है कि सरकारी हस्तक्षेप न केवल योजनाओं तक सीमित हो बल्कि उसका प्रभाव जमीनी स्तर पर दिखें। अमनारी बिरहोर टंडा के लोगों में सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूक नहीं है। उन्हें जागरूक करने के लिए कार्यक्रम चलाया जाय।

5. बिरहोर जनजाति का पारंपरिक जीवन जंगलों से जुड़ा रहता है। इसलिए उनके पुनरूत्थान के लिए उन्हें वन आधारित लघु और मध्यम उद्योगों से जोड़ना चाहिए– जैसे बाँस और लकड़ी से हस्तशिल्प, जड़ी–बुटी आधारित उत्पाद, शहद उत्पादन और प्राकृतिक रस्सी निर्माण। इसके लिए प्रशिक्षण, बाजार उपलब्ध वितीय सहायता और विपणन रणनीति की आवश्यकता है। सरकार और सहकारी संस्थाऐं मिलकर ऐसे मॉडल तैयार कर सकती है जो निर्भर और स्थायी आजीविका प्रदान करें। लेकिन अमनारी बिरहोर टंडा में इस तरह के कार्यक्रमों का अभाव और जागरूकता में नगण्य देखने को मिली।

6. अमनारी बिरहोर टंडा में शिक्षित लोगों का अभाव देखने को मिला वहाँ बिरहोर उत्क्रमित मध्य विद्यालय के बावजूद बिरहोर बच्चे शिक्षा में ड्रोप आउट हो जाते है सरकार को चाहिए उच्च शिक्षा शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करें।

7. बिरहोर समुदायों को मुख्यधारा से जोड़ने के लिए विशेष प्रोत्साहन नीतियाँ बनाना चाहिए। उनके बच्चों को मुफ्त शिक्षा, छात्रवृत्ति, प्रतियोगिता परीक्षा में विशेष आरक्षण, युवाओं को स्किल डेवलपमेंट ट्रेनिंग और महिला समूहों को स्वरोजगरा हेतु द्वितीय सहायता। इसके अलावा पारंपरिक कारीगरों और कलाकारों को मान्यता और बाजार तक पहुँच देने की जरूरत है।

8. अमनारी टंडा के बिरहोर आज भी खाद्य संकलन जंगल में विभिन्न प्रकार के फल फुलों को एकत्रित करना, रस्सी बनाना, शिकार करना, जड़ी–बूटी इकट्ठा करना तथा इससे दवाइयाँ बनाने का काम करते है। बिरहोर अपने परंपरागत जीवन शैली से दूर नहीं हो पा रहे इसके परंपरागत कार्य को बाजार से जोड़ने का काम करना चाहिए।

9. बिरहोर कृषि कार्य भी करते है जिसमें इन्हें जमीन की समस्या होती है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। इस नियम के तहत बिरहोर भी परिवर्तन के दौर से जुझ रही है।

प्रो0 एल0पी0 विद्यार्थी के द्वारा 1976–77 में चलाये गए बिरहोर एक्शन रिर्सच प्रोजेक्ट का व्यापक असर पड़ा है। इसके वजह से बगोदर प्रखण्ड के बुढ़ाचाच बिरहोर टंडा में सरकार के द्वारा बिरहोर को कृषि व फसल कार्य हेतु भूमि का आवंटन कर मुंगफली की खेती कराई गइ। इसके लिए उन्हें बैल एवं कृषि उपकरण देकर उनसे ही खेती का काम करवाया गया। इसके लिए सरकार के द्वारा मजदूरी दी गई। कुछ माह में

मुंगफली की उपज देखकर बिरहोर कृषि कार्य के लिए आकृषित हुए। अमनारी टंडा को भी कृषि कार्य के लिए सरकार को सुविधाऐं देनी चाहिए।

10. बिरहोर जनजाति को उनके पारंपरिक निवास स्थलों से बार–बार विस्थापित किया गया है। अब आवश्यक है कि अमनारी टंडा के बिरहोरों को आवास मिले आज भी इनके पास जर्जर आवास है। शुद्ध पेयजल की व्यवस्था साफ–सफाई, शौचालय का निर्माण की व्यवस्था, कृषि कार्य हेतु, जमीन की व्यवस्था तथा कृषि उपकरण की व्यवस्था, सरकारी योजनाओं के प्रति जागरूक करने के लिए कार्यक्रम की व्यवस्था हो तभी जाकर अमनारी टंडा के बिरहोर मुख्य धारा से जुड़ पायेंगे।

निष्कर्ष

किसी भी समुदाय की आर्थिक स्थिति का आकलन उनकी आय, पेशा, जीवनशैली, संसाधनों तक पहुँच और उनकी आर्थिक स्थिति से किया जाता है। अमनारी टंडा का बिरहोर समुदाय जो एक पारंपरिक और जनजातीय समुह है आज के आर्थिक बदलावों में भी पिछड़ता जा रहा है। कभी यह समुदाय अपने पारंपरिक रोजगरा जैसे– शिकार, वनोपज संग्रहण और हस्तशिल्प से अपनी जीविका चलाता था किंतु अब ये गतिविधियां कम हो गई है इसके जगह आज बिरहोर अस्थाई मजदूरी या दिहाड़ी कार्य तक सीमिति हो गए है जिससे उनकी आर्थिक असुरक्षा बढ़ी है। राज्य और केन्द्र सरकार बिरहोरों के लिए कई प्रकार के कार्यक्रम लाए है फिर भी बिरहोरों की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। कई योजनाएँ चलाई जा रही है लेकिन सबसे बड़ी चुनौती इन योजनाओं का सही ढंग से क्रियान्वयन और धरातल पर उनके सहयोग से उतारना चाहिए। योजनाओं का केवल कागजी क्रियान्वयन अधिकारियों की उदासीनता और जागरूकता की कमी के कारण ये प्रयास अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रहे। इससे विकास को प्रक्रिया में असमानता बनी रहती है। मनरेगा योजना, पेंशन योजना, भूमि पट्टा, आवास योजना, नल–जल योजना, 15वां वित्त योजना आदि योजनाओं के प्रति जागरूकता एवं सही लाभूकों का चयन करना चाहिए। उनके स्थिति को बेहतर करने के लिए वनोपज आधारित उद्योग, कुटीर एवं लघु उद्योग, कौशल विकास प्रशिक्षण और समुदाय आधारित सहकारी समितियाँ। जब तक बिरहोर समुदाय को उनकी पारपंरिक दक्षताओं के साथ नए युग के रोजगार से जोड़ा नहीं जाएगा तब तक उनकी आर्थिक समृद्धि और आत्मनिर्भरता केवल एक सपना ही बनी रहेगी। योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन, निगरानी और समुदाय की सक्रिय भागीदारी भी इनके समग्र विकास की कुंजी हो सकती है।

ग्रंथ सूची –

1. अधिकारी, ए०के० (1984) सोसाइटी एण्ड वर्ल्ड व्यू ऑफ द बिरहोर – अ नोमेडिक एंथापोलोजिकल सर्वे ऑफ हंटिंग एण्ड गेदरिंग कम्युनीटी ऑफ ओड़िसा इण्डिया।
2. बोस, एन०के० (1972) द बिरहोर : इन सम इंडियन ट्राइव : न्यू देलही नेशनल बुक ट्रस्ट।
3. चक्रवर्ती, बी० (1984) रिलेशनशिप बिटविन नेचर एण्ड नोमेड : अ केस स्टडी ऑन द बिरहोर ऑफ वेस्ट बंगाल कलकत्ता गवर्नमेंट ऑफ वेस्ट बंगाल।
4. कुमारी, जे० (2004) बिरहोर इन एथनोग्राफिक एटलस ऑफ इंडियन ट्राइब्स : ईडीएस बाइ मेहता, आर सी न्यू देलही डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस ।
5. मुखर्जी, बी० एम० एम एट आल (1995) बिरहोर एक मोनोग्राफिक अध्ययन : अ प्रोजेक्ट रिपोर्ट स्पोन्सर्ड बाइ इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मानव संग्रहालय, भोपाल (अप्रकाशित)।
6 प्रेमी, जे०के० (2014) बिरहोर : द इनकॉन्सिक्येटल एक्स्ट्रा ऑर्डिनरी प्रीमिटीव ट्राइबल ग्रुप (पी०टी०जी०) ऑफ इन्डिया रिसर्च जनरल ऑफ हुमेनिटीज एण्ड सोसियल साइसेंस ।
7. रॉय, एस०सी० (1925) द बिरहोर : अ लिटिल नोन जंगल ट्राइब ऑफ छोटानागपुर, राँचीरू मेन इन इंडिया ऑफिस ।
8. साहू, सी० (1989) न्यूट्रीशन एण्ड हेल्थ प्राबलम ऑफ द बिरहोर : अ वेनिशिंग ट्राइब ऑफ बिहार, इन डाइटरी हैबिट्स इन ट्राइबल इंडिया, ई०डी०एस० बाई शर्मा ए०एन० सागर मयंक पब्लिकेशन।
9. साहू, सी० (1995) फूड एण्ड हेल्थ कंडीशन ऑफ द बिरहोर : अ वेनिशिंग ट्राइब ऑफ बिहार, इंडियन एंथ्रोपोलोजिस्ट ।
10. सेन, जे० (1965) एथनोग्राफिक नोट्स ऑन द बिरहोर, बुलेटिन ऑफ द एंथ्रोपोलोजिस्ट सर्वे ऑफ इंडिया।

शोधार्थी

मोहम्मद अंसारी

मानव विज्ञान विभाग

राँची विश्वविद्यालय, राँची

आवासीय पता– ग्राम–परसाबेड़ा,

पोस्ट–चालमोबरहमसिया,

थाना–डुमरी, जिला–गिरिडीह,

पिन–825167,

मोबाईल नं0–7004819563

16

भारत की अफ्रीकी नीति में तंजानिया की भूमिका का ग्लोबल साउथ के दौर में एक रणनीतिक साझेदारी का एक शोधपरक अध्ययन ।

आरती कुमारी

सारांशः–

यह शोध कार्य भारत की अफ्रीका आउटरीच पॉलिसी में तंजानिया की भूमिका की खोज करता है। इसमें 1960 के दशक के उपनिवेश–विरोधी एकजुटता से लेकर अक्टूबर 2023 में घोषित व्यापक रणनीतिक साझेदारी तक दोनों देशों के संबंधों के विकास क्रम को दिखाया गया है। पेपर का तर्क है कि भारत की अफ्रीका जुड़ाव रणनीति में तंजानिया की स्थिति संरचनात्मक रूप से अनूठी है यह एक ही समय में पूर्वी अफ्रीका के लिए प्रवेश द्वार, दक्षिण–दक्षिण सहयोग मॉडल के लिए एक परीक्षण स्थल, हिंद महासागर सुरक्षा ढांचे में एक भागीदार और महाद्वीप पर भारत के जन–केंद्रित विकास दर्शन के लिए एक प्रमुख उदाहरण के रूप में कार्य करता है। राजनयिक इतिहास, व्यापार और निवेश प्रवाह, रक्षा सहयोग, डिजिटल कूटनीति, शैक्षिक साझेदारी और प्रवासी नेटवर्क के विश्लेषण के माध्यम से, यह शोध पेपर दिखाता है कि कैसे तंजानिया–भारत संबंध भारत की अफ्रीका में मौजूद सबसे बहुआयामी द्विपक्षीय साझेदारियों में से एक के रूप में विकसित हुए हैं। इसके अलावा, यह पेपर इस द्विपक्षीय संबंध को भारत के अफ्रीका फोरम शिखर सम्मेलन (IAFS) की प्रक्रिया, भारत की श्विज़न महासागरश (Vision MAHASAGAR) समुद्री रणनीति और अफ्रीकी महाद्वीप में भारत–चीन प्रतिद्वंद्विता की प्रतिस्पर्धी गतिशीलता के व्यापक संदर्भ में रखता है। पेपर इस निष्कर्ष के साथ समाप्त होता है कि तंजानिया केवल भारत की अफ्रीका आउटरीच का प्राप्तकर्ता नहीं है, बल्कि एक नए दक्षिण–दक्षिण मॉडल का सक्रिय सह–निर्माता भी है जो आने वाले दशकों में भारत–अफ्रीका संबंधों की दिशा तय कर सकता है।

मुख्य शब्दः

भारत–अफ्रीका संबंध, दक्षिण–दक्षिण सहयोग, IAFS, हिंद महासागर रणनीति, IIT ज़ंजीबार, AIKEYME, रणनीतिक साझेदारी, प्रवासी कूटनीति, डिजिटल सहयोग।

परिचय

आज के अंतरराष्ट्रीय संबंधों में भारत और अफ्रीका के बीच की साझेदारी सबसे अहम है लेकिन कम आंकी गई साझेदारियों में से एक है। जैसे–जैसे–जैसे ग्लोबल साउथ में भू–राजनीतिक गठबंधनों में ऐतिहासिक बदलाव हो रहे हैं, भारत की अफ्रीका तक पहुँचने की नीति और भी ज़्यादा रणनीतिक रूप से ज़रूरी हो गई है। इस पहुँच के केंद्र में तंजानिया के साथ संबंध एक ऐसा है जो शायद किसी भी अन्य अफ्रीकी देश की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है जो कि भारत के लिए भी बहुत अधिक महत्वपूर्ण है भारत के लिए तंजानिया का महत्व बहुत ज़्यादा है। कुछ पैमानों के आधार पर यह पूर्वी अफ्रीका की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है एक लोकतांत्रिक देश है जहाँ की आबादी युवा है और तेज़ी से शहरीकरण हो रहा है, और यह देश हिंद महासागर के ऐसे हिस्से में स्थित है जो समुद्री सुरक्षा के लिहाज़ से बहुत अहम है। इससे भी ज़्यादा ज़रूरी यह है कि तंजानिया में अफ्रीका के सबसे जीवंत भारतीय प्रवासी समुदायों निवास करती है। भारतीय मूल के 50,000 से ज़्यादा लोग जो पीढ़ियों से दोनों देशों के बीच व्यापार, संस्कृति और भरोसे के जीवंत सेतु (living bridges) के तौर पर काम कर रहे हैं। भारत की अफ्रीका आउटरीच पॉलिसी जिसे 2008 में शुरू हुई इंडिया–अफ्रीका फोरम समिट (IAFS) प्रक्रिया के ज़रिए औपचारिक रूप दिया गया और जिसे द्विपक्षीय संबंधों, लाइन ऑफ़ क्रेडिट, इंडियन टेक्निकल एंड इकोनॉमिक कोऑपरेशन (ITEC) प्रोग्राम और हाल ही में 2025 के विज़न महासागर (Vision MAHASAGAR) मैरीटाइम डॉक्ट्रिन के ज़रिए और मज़बूत किया गया जो कि अफ्रीका के पसंदीदा विकास भागीदार के तौर पर भारत को स्थापित करने की एक व्यापक रणनीति को दर्शाती है। इस रणनीति में तंजानिया हर चरण में अहम भूमिका रखता है।जो कि अक्टूबर 2023 में राष्ट्रपति सामिया सुलुहू हसन की भारत यात्रा के परिणामस्वरूप द्विपक्षीय संबंध एक पूर्ण रणनीतिक साझेदारी (Strategic Partnership) के स्तर पर पहुँच गए और ये एक ऐसा अहम पड़ाव था जिसने तंजानिया को उन चुनिंदा अफ्रीकी देशों में शामिल कर दिया जिन्हें भारत की विदेश नीति के ढांचे में सर्वोच्च राजनयिक दर्जा दिया गया है। इसके बाद कई उच्च–स्तरीय आदान–प्रदान, रक्षा सहयोग के अहम पड़ाव और संस्थागत निवेश हुए जिनमें सबसे उल्लेखनीय ज़ांज़ीबार में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी (IIT) के पहले विदेशी कैंपस की स्थापना है ये सभी कारक इनके संबंधों में गुणात्मक बदलाव का संकेत देते हैं। यह शोधपत्र भारत की अफ़्रीका नीति में तंजानिया की भूमिका का ऐतिहासिक, राजनयिक, आर्थिक, सैन्य, डिजिटल, सांस्कृतिक और संस्थागत आयामों के आधार पर विश्लेषण और सैद्धांतिक व्याख्या प्रस्तुत करता है। इसमें तर्क दिया गया है कि तंजानिया न केवल भारत की अफ़्रीका रणनीति का लाभार्थी है, बल्कि दक्षिण–दक्षिण साझेदारी के एक नए मॉडल का सक्रिय सह–निर्माता भी है जो पारस्परिक सम्मान, जन–केंद्रित विकास और साझा संप्रभुता पर बल देता है। यह मॉडल इसे 21वीं सदी में अफ़्रीकी भागीदारी पर हावी रहे संसाधनों के बदले बुनियादी

ढांचे के चीनी मॉडल से मौलिक रूप से अलग करता है।

2. ऐतिहासिक आधारः एकजुटता, गुटनिरपेक्षता और न्येरेरे–नेहरू की विरासत

आधुनिक भारत–तंजानिया संबंध की गहरी ऐतिहासिक जड़ें हैं जो 1961 में औपचारिक राजनयिक संबंधों की स्थापना से भी पहले की हैं। भारतीय व्यापारी, विशेष रूप से गुजरात और कच्छ क्षेत्र के, सदियों से स्वाहिली तट पर बसे हुए थे और प्राचीन नाव व्यापार नेटवर्क में भाग लेते थे जो उन्हे भारतीय उपमहाद्वीप को पूर्वी अफ्रीका से जोड़ता था। औपनिवेशिक काल तक एक भारतीय समुदाय तत्कालीन तंजानिया के आर्थिक और सामाजिक ताने–बाने में मजबूती से समाहित हो गया था और वाणिज्य, खुदरा व्यापार और व्यवसायों में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा था। वही हम देखते है कि 1961 में तंजानिका और 1963 में ज़ांज़ीबार की स्वतंत्रता और 1964 में उनके संयुक्त गणराज्य तंजानिया में विलय के साथ एक नए प्रकार के संबंध की नींव रखी गई यह एक रिश्ता औपनिवेशिक ऊँच–नीच पर नहीं बल्कि उन नए आज़ाद देशों के साझा अनुभवों पर आधारित था जो शीत युद्ध के दौर में दो गुटों में बंटी दुनिया में अपनी राह बना रहे थे। नवंबर 1961 में दार–ए–सलाम में भारत का हाई कमीशन खोला गया जो यह दिखाता है कि नई दिल्ली ने नए तंजानियाई देश को कितनी अहमियत दी थी। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू और तंजानिया के संस्थापक राष्ट्रपति जूलियस न्येरेरे के बीच बौद्धिक और राजनीतिक तालमेल इस द्विपक्षीय रिश्ते की नींव थी। दोनों नेताओं की सोच एक जैसी थी जैसे दोनों ही देश मुख्य रूप से उपनिवेशवाद–विरोध, गुटनिरपेक्ष आंदोलन और तीसरी दुनिया के (विकासशील देशों) की एकजुटता का विज़न, जो पूरब–पश्चिम के बंटवारे से ऊपर था। न्येरेरे की श्उजामाश विचारधारा'' जो सामुदायिक मूल्यों पर आधारित अफ़्रीकी समाजवाद से सबंधित थी जो कि भारत के नेहरूवादी समाजवाद से काफी मिलती–जुलती थी भले ही दोनों देशों ने विकास के लिए अलग–अलग रास्ते अपनाए थे। न्येरेरे के प्रति भारत के सम्मान की गहराई दो बड़े सम्मानों से झलकती है 1974 में अंतर्राष्ट्रीय समझ के लिए जवाहरलाल नेहरू पुरस्कार और 1995 में अंतर्राष्ट्रीय गांधी शांति पुरस्कार। ये सम्मान सिर्फ़ रस्म–अदायगी नहीं थे बल्कि एक जैसी राजनीतिक सोच और सच्ची बौद्धिक एकजुटता वाले रिश्ते की मान्यता थे।

3. भारत की अफ़्रीका संपर्क नीतिरू संरचना और विकास

भारत–अफ़्रीका फोरम शिखर सम्मेलन प्रक्रिया मे भारत की समकालीन अफ़्रीका संपर्क नीति ने 2008 में भारत–अफ़्रीका फोरम शिखर सम्मेलन (ैथ्।ै) की स्थापना के साथ संस्थागत रूप धारण किया। नई दिल्ली में आयोजित उद्घाटन शिखर सम्मेलन में भारत और 14 अफ़्रीकी देशों ने भाग लिया और बढ़ती वस्तुओं की कीमतों और विकास सहयोग पर ध्यान केंद्रित किया। वही 2015 में नई दिल्ली में हुआ तीसरा शिखर सम्मेलन ऐतिहासिक था इसमें सभी 54 अफ़्रीकी देशों ने हिस्सा लिया जिससे यह संकेत मिला कि भारत अफ़्रीका के साथ चुनिंदा नहीं बल्कि व्यापक स्तर पर जुड़ना चाहता है। इस समिट में भारत ने मानव संसाधन विकास के लिए 600 मिलियन अमेरिकी डॉलर और पाँच वर्षों में 10 बिलियन अमेरिकी डॉलर की लाइन ऑफ़ क्रेडिट देने की घोषणा की। मई 2026 में होने वाले चौथे समिट से इसी आधार को और मज़बूत करने की उम्मीद है, जिसमें इनोवेशन, रेज़िलिएंस और समावेशी बदलाव के लिए भारत–अफ़्रीका रणनीतिक साझेदारी (IA–SPIRIT) थीम के तहत व्यापार, ऊर्जा और डिजिटल सहयोग पर ध्यान दिया जाएगा।

4. 2023 की रणनीतिक साझेदारीः एक गुणात्मक बदलाव

इसी प्रकार अक्टूबर 2023 में राष्ट्रपति सामिया सुलुहु हसन की भारत यात्रा भारत–तंजानिया संबंधों में एक अहम पहल के रूप मे साबित हुई। जिसमे दोनों देशों के बीच रणनीतिक साझेदारी की संयुक्त घोषणा ने द्विपक्षीय संबंधों को भारत की विदेश नीति के सबसे ऊँचे औपचारिक स्तर तक पहुँचा दिया जो कि यह दर्जा बहुत कम अफ़्रीकी देशों को ही मिला है। इसी प्रकार वर्तमान मे मई 2025 में राष्ट्रपति सामिया द्वारा तंजानिया की संशोधित राष्ट्रीय विदेश नीति को लॉन्च करने से दोनों देशों के बीच तालमेल और मज़बूत हुआ। इस नीति में श्साउथ–साउथ सहयोगश (विकासशील देशों के बीच आपसी सहयोग) को और गहरा करने के लिए तंजानिया की प्रतिबद्धता पर साफ़ तौर पर ज़ोर दिया गया जिसमें चीन और भारत के साथ साझेदारी को विशेष महत्व दिया गया। भारत और चीन के साथ संबंधों में संतुलन बनाए रखते हुए अपनी स्वतंत्र भूमिका (एजेंसी) को भी कायम रखने की यह दोहरी रणनीति एक परिष्कृत कूटनीतिक तरीका है। भारत ने आम तौर पर इस रणनीति का सम्मान और समर्थन किया है जबकि अन्य जगहों पर वह चीनी प्रभाव का मुकाबला करने का प्रयास करता है।

5. आर्थिक पहलूः व्यापार, निवेश और व्यावसायिक संबंध

द्विपक्षीय व्यापार पिछले दशक में भारत और तंजानिया के बीच आर्थिक संबंध काफी बढ़े हैं। जो कि द्विपक्षीय व्यापार सालाना लगभग 8.6 अरब अमेरिकी डॉलर तक पहुँच गया है जिससे भारत तंजानिया के सबसे महत्वपूर्ण व्यापारिक साझेदारों में से एक बन गया है। भारत से तंजानिया को होने वाले निर्यात में

दवाएं, मशीनरी, बिजली के उपकरण, कपड़ा और रसायन शामिल हैं ये ऐसी चीजें हैं जो तंजानिया के विकास के एजेंडे के लिए बहुत ज़रूरी हैं। तंजानिया से भारत को होने वाले निर्यात में काजू, सोना, रत्न और बागवानी उत्पाद शामिल हैं। दोनों देशों के बीच व्यापार में फ़ार्मास्युटिकल (दवाओं से जुड़े) क्षेत्र पर खास ध्यान देने की ज़रूरत है। भारत का जेनेरिक फ़ार्मास्युटिकल उद्योग जिसे विकासशील दुनिया की फ़ार्मेसी कहा जाता है यह तंजानिया की सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणाली के लिए सस्ती दवाओं का एक बड़ा स्रोत रहा है। भारत में बनी एंटीरेट्रोवायरल, एंटीमलेरियल और जेनेरिक एंटीबायोटिक दवाओं ने पूरे अफ़्रीका में लाखों लोगों की जान बचाई है और तंजानिया को इसका बहुत फ़ायदा मिला है। दवाओं से जुड़ा यह रिश्ता सिर्फ़ व्यापारिक नहीं है यह लोगों पर केंद्रित विकास की उस सोच को दिखाता है जो अफ़्रीका के साथ भारत के जुड़ाव को अलग बनाती है।2025 में भारत और अफ्रीका के बीच कुल व्यापार 100 अरब अमेरिकी डॉलर से अधिक हो गया, जिसमें तंजानिया का अहम योगदान रहा।

6. रक्षा और समुद्री सहयोगः भारत के लिए हिंद–प्रशांत क्षेत्र का प्रवेश–द्वार तंजानिया

भारत की सुरक्षा व्यवस्था के लिए तंजानिया का रणनीतिक महत्व उसकी भौगोलिक स्थिति पर निर्भर करता है। पूर्वी अफ़्रीकी तट पर स्थित होने और हिंद महासागर तक पहुँच होने के साथ–साथ, बेहद अहम मोज़ाम्बिक चौनल पर नियंत्रण रखने के कारण, तंजानिया समुद्री भूगोल में एक अहम स्थान रखता है; यह क्षेत्र दक्षिण एशिया, दक्षिण–पूर्व एशिया, मध्य पूर्व और अफ़्रीका को आपस में जोड़ता है। इस भौगोलिक स्थिति के बारे में भारत की बढ़ती समझ जो श्विज़न महासागरश (क्षेत्रों में सुरक्षा और विकास के लिए आपसी और समग्र प्रगति) फ़्रेमवर्क में झलकती है ने तंजानिया को भारत की व्यापक हिंद–प्रशांत सुरक्षा रणनीति में एक ज़रूरी साझेदार बना दिया है।समुद्री अभ्यास और नौसेना सहयोग भारत–तंजानिया रक्षा सहयोग का सबसे प्रमुख पहलू समुद्री सहयोग है। भारत और तंजानिया ने जुलाई 2023 में अपना पहला संयुक्त श्एक्सक्लूसिव इकोनॉमिक ज़ोनश (र्म्) निगरानी अभ्यास किया, जब प्छै त्रिशूल ने ज़ांज़ीबार और दार–ए–सलाम का दौरा किया यह दोनों नौसेनाओं के लिए एक ऐतिहासिक घटना थी। इसके बाद, भारत–मोज़ाम्बिक–तंजानिया त्रिपक्षीय अभ्यास के हिस्से के तौर पर 2022 और 2024 में द्विपक्षीय समुद्री अभ्यास हुए। साथ ही, भारतीय नौसेना के जहाजों कृ जैसे प्छै तरकश, प्छै तीर, प्ळै सारथी और प्छै सुवर्णा ने भी नियमित रूप से बंदरगाहों का दौरा किया।

7. IIT ज़ंजीबारः भारत की अफ़्रीका रणनीति के लिए एक अहम संस्थान

अफ़्रीका के साथ अपने संबंधों को बढ़ाने के लिए भारत ने जितने भी संस्थागत निवेश किए हैं उनमें से ज़ंजीबार में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ टेक्नोलॉजी मद्रास (IITM) का विदेशी कैंपस खोलना सबसे ज़्यादा प्रतीकात्मक और व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण है। प्प्ज मद्रास का ज़ंजीबार कैंपस जो भारत के बाहर पहला IIT कैंपस है भारत के विदेश मंत्री एस. जयशंकर की तंज़ानिया यात्रा के दौरान उनके और ज़ंजीबार के राष्ट्रपति हुसैन अली म्विनी की मौजूदगी में हस्ताक्षर कर MoU (समझौता ज्ञापन) के ज़रिए स्थापित किया गया था। इसी प्रकार भारत ने युगांडा में भी नेशनल फॉरेंसिक साइंसेज यूनिवर्सिटी का कैंपस और कई अफ़्रीकी देशों में श्इंफॉर्मेशन टेक्नोलॉजीश के श्सेंटर्स ऑफ़ एक्सीलेंसश भी स्थापित किए हैं। जो कि अफ़्रीका में भारत के शैक्षिक सहयोग की सबसे बड़ी उपलब्धि है। जो कि श्प्प्ज ज़ांज़ीबारश मे है यह एक ऐसा अनूठा संस्थान है जो भारत के सबसे प्रतिष्ठित इंजीनियरिंग संस्थानों की साख और गहरे द्विपक्षीय संबंधों की सद्भावना को आगे बढ़ाता है।

8. लोगों के बीच संबंधरू प्रवासी भारतीय, संस्कृति और पब्लिक डिप्लोमेसी

तंजानिया में भारतीय प्रवासी समुदाय जिसकी आबादी का अनुमान 50,000 से ज़्यादा लोगों का है अफ्रीका में सबसे पुराने और सबसे गहरे तौर पर बसे भारतीय समुदायों में से एक है। मुख्य रूप से गुजराती और इस्माइली मूल का यह समुदाय पूर्वी अफ्रीका में अपनी मौजूदगी को औपनिवेशिक दौर से पहले के श्धाऊश (कीवू) व्यापार नेटवर्क, ब्रिटिश शासन के दौरान रेलवे बनाने के लिए भारतीय मज़दूरों की भर्ती, और 20वीं सदी के दौरान व्यापारियों और पेशेवरों के अपनी मर्ज़ी से वहाँ जाकर बसने से जोड़ता है। इसी प्रकार सांस्कृतिक कूटनीति तंजानिया में भारत की सांस्कृतिक कूटनीति मुख्य रूप से दार–ए–सलाम में स्थित इंडियन कल्चरल सेंटर (प्ब्) के ज़रिए चलाई जाती है जिसे इंडियन काउंसिल फॉर कल्चरल रिलेशंस (प्ब्त्) संचालित करता है। दिसंबर 2010 में स्थापित प्ब् भाषा की शिक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रम, योग कक्षाएं और भारतीय कला व परंपराओं को मनाने वाले आयोजन करता है। अंतरराष्ट्रीय योग दिवस समारोह में तंजानिया की उत्साहपूर्ण भागीदारी, कुरुक्षेत्र में आयोजित अंतरराष्ट्रीय गीता महोत्सव 2024 में इसे भागीदार देश का दर्जा मिलना और इन कार्यक्रमों में तंजानिया के वरिष्ठ मंत्रियों की मौजूदगी, कूटनीतिक प्रोटोकॉल से परे सच्चे सांस्कृतिक लगाव

का संकेत देती है।

9. स्वास्थ्य, कृषि और विकास सहयोग

स्वास्थ्य सहयोग भारत–तंजानिया विकास सहयोग में स्वास्थ्य सेवा हमेशा से प्राथमिकता रही है। भारत ने तंजानिया में स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार में योगदान दिया है, जिसमें श्जकाया किकवेते कार्डियक इंस्टीट्यूटश (जो तंजानिया के प्रमुख स्पेशलाइज़्ड अस्पतालों में से एक है) को मदद देना भी शामिल है। भारतीय दवा कंपनियों ने किफायती कीमतों पर ज़रूरी दवाएं उपलब्ध कराई हैं, जिससे पूरे तंजानिया में स्वास्थ्य सेवाओं के नतीजों में साफ़ सुधार आया है। कोविड–19 महामारी ने भारत–तंजानिया स्वास्थ्य सहयोग को एक नया आयाम दिया क्योंकि भारत ने ब्व्ट।ग मैकेनिज़्म और द्विपक्षीय दान के ज़रिए टीके उपलब्ध कराए। इस श्वैक्सीन डिप्लोमेसीश ने एक उदार विकास साझेदार के तौर पर भारत की साख को और मज़बूत किया और एक ऐसा साझेदार जो विकासशील देशों के फ़ायदे के लिए अपनी दवा और बायोटेक्नोलॉजी से जुड़ी क्षमताओं को साझा करने के लिए तैयार है। भारत ने (म–विद्याभारती और म–आरोग्यभारती) प्रोग्राम के ज़रिए तंजानिया को टेलीमेडिसिन में भी सहयोग दिया है। यह प्रोग्राम डिजिटल प्लेटफ़ॉर्म के ज़रिए अफ़्रीका में मरीज़ों और हेल्थकेयर प्रोफ़ेशनल्स को भारतीय डॉक्टरों और विशेषज्ञों से जोड़ता है। यह पहल लोगों पर केंद्रित और टेक्नोलॉजी–आधारित विकास मॉडल का एक बेहतरीन उदाहरण है, जो कि अफ़्रीका के साथ भारत के जुड़ाव को महत्वपूर्ण बनाता है।

10. अफ्रीका में भारत–चीन प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में तंजानिया

अफ्रीका में भारत की पहुंच बढ़ाने की कोशिशों में तंजानिया की भूमिका का कोई भी विश्लेषण तब तक पूरा नहीं माना जा सकता, जब तक कि इसे अफ्रीकी महाद्वीप पर भारत और चीन के बीच चल रही प्रतिस्पर्धा के संदर्भ में न देखा जाए। पूरे अफ्रीका में चीन के बड़े पैमाने पर बुनियादी ढांचे में निवेश जिसका सबसे बड़ा उदाहरण श्बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिवश (ठत्ै) है ने अफ्रीकी विकास के लिए फंड जुटाने के तौर–तरीकों को पूरी तरह से बदल दिया है और भारत की अफ्रीका रणनीति के लिए अवसर और जोखिम दोनों ही पैदा किए हैं।तंजानिया में चीन के बढ़ते असर का जवाब देने के लिए भारत ने चीन के बराबर निवेश करने की कोशिश नहीं की है क्योंकि भारत के पास सीमित वित्तीय संसाधन हैं इसलिए ऐसा करना मुश्किल होता बल्कि भारत ने अपने कामकाज में क्वालिटी, गवर्नेंस और मानवीय पहलू पर ध्यान देकर खुद को अलग साबित किया है। भारतीय प्रोजेक्ट्स आमतौर पर, इसी तरह के चीनी प्रोजेक्ट्स की तुलना में ये ज़्यादा स्थानीय कर्मचारियों को काम पर रखते हैं ज़्यादा टेक्नोलॉजी ट्रांसफर करते हैं और ज़्यादा टिकाऊ संस्थागत विकास पर बल देते हैं। इसमे IIT ज़ंजीबार, AIKEYME और इंडिया स्टैक MoU इसी अंतर–आधारित रणनीति के हिस्से हैं।

11. **निष्कर्ष**

भारत की अफ्रीका आउटरीच पॉलिसी में तंजानिया की भूमिका ऐतिहासिक रूप से बुनियादी और रणनीतिक रूप से अहम है। 1960 के दशक में नेहरू–न्येरेरे की एकजुटता से लेकर 2023 की अहम रणनीतिक साझेदारी और 2025 के पहले ।प्ज्ञम्ल्डम् समुद्री अभ्यास तक, भारत–तंजानिया संबंधों ने खुद को नए सिरे से ढालने और गहरा करने की शानदार क्षमता दिखाई है। भारत की अफ्रीका आउटरीच पॉलिसी की सफलता या विफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या वह शिखर सम्मेलन कूटनीति से आगे बढ़कर ऐसे टिकाऊ संस्थागत, व्यावसायिक और मानवीय संबंध बना सकती है जो अलग–अलग सरकारों और राजनीतिक चक्रों से परे बने रहें। तंजानिया, अपनी रणनीतिक स्थिति, लोकतांत्रिक स्थिरता, ऐतिहासिक गहराई और प्रवासी जुड़ाव के अनूठे मेल के साथ, भारत को इस विजन को साकार करने के लिए सबसे अच्छा मंच देता है। अब दोनों देशों के लिए चुनौती यह है कि वे मिलकर बनाई गई चीज़ की पूरी क्षमता का एहसास करें कृ एक ऐसी साझेदारी जो न्येरेरे–नेहरू की उस विरासत के योग्य हो जिसने इसे प्रेरित किया था।

References and Bibliography

1. Government of India] Ministry of EÛternal Affairs- (2023). India &Tanzania Joint Statement on the Establishment of a Strategic Partnership- New Delhi: MEA-
2. High Commission of India] Dar es Salaam- (2025). India&Tanzania Bilateral Relations- Retrieved from hcindiatz-gov.in
3. Tanzania Investment and Consultant Group (TICGL). (2026). Tanzania & India Relations: A Structural Transformation- Dar es Salaam: TICGL-
4. Government of Tanzania- (2024). National Foreign Policy 2021 (2024 Edition). Dar es Salaam: Ministry of Foreign Affairs and East African Cooperation-
5. India&Africa Forum Summit Secretariat- (2026). India &Africa Forum Summit IV: Background Documents- New Delhi: Ministry of EÛternal Affairs-

6. Indian News Network. (2024). India &Tanzania Defence Relations: Gradually Heading Towards Meaningful Engagement for Long &Term Security and Strategic Interests in Indian Ocean Region- New Delhi-
7. The Secretariat- (2026). India &Africa Summit: A Historic Opportunity to Unlock Untapped Potential- Retrieved from these cretariat-in
8. Insights on India- (2026). India&Africa Forum Summit (IAFS): Background and Analysis- Retrieved from insightsonindia-com
9. The New Times- (2026). India &Africa Forum Summit IV: A Defining Moment for the Global South- Kigali-
10. Capital FM Kenya- (2026). India&Africa Summit Signals Strategic Reset in Trade] Energy and Global South Partnerships- Nairobi-
11. Universal Group of Institutions- (2023). India& Tanzania Relations- Retrieved from universal institutions.com
12. News on Air (All India Radio). (2022). First&Ever IIT Campus Outside India

आरती कुमारी
(शोधार्थी)
अफ्रीकीकन अध्ययन विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालया.
kumariaarti2017@gmail.com

17

समाज में नारी अस्मिता से जुड़े प्रश्न

नमिता

सारांशः–

'अस्मिता' शब्द अस्मि के अस+मिन से बना है, अस्मि अर्थात 'मैं हूं'। अस्मि की भाववाचक संज्ञा अस्मिता है और इस शब्द से स्वत्व का बोध होता है। अस्मिता शब्द जहां सत्य का बोध करवाती है वही दूसरी ओर जीवन के अन्य पहलू से भी इसका संबंध रहा है जो समय–समय पर अपना रूप बदलते रहते हैं। व्यक्ति एवं समुदाय अस्मिता को प्राप्त करने के लिए सदैव संघर्षरत रहते हैं और यह जागरूकता इन्हें दिशाहीन होने से बचाती है। हम देखते हैं कि सदियों से समाज में नारी की स्थिति हमेशा दूसरे स्थान पर रही है। पुरुष प्रधान समाज में नारी को पुरुषों के सामने नगण्य माना गया है। केवल घर और परिवार की देखभाल करना ही नारी का कर्तव्य बताया गया। नारी के प्रति इसी दृष्टिकोण के कारण उन्हें कभी आगे बढ़ने की प्रेरणा मिल ही नहीं पायी। नारी को कभी यह समझने का मौका ही नहीं दिया गया कि सदियों से चली आ रही परंपरा से हटकर भी वे कुछ कर सकती हैं। "संपूर्ण नारी समाज की स्थिति यही रही है परंतु देखा जाए तो फिर भी उच्च वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा मध्यम वर्ग की महिलाओं की समस्या अधिक रही, क्योंकि वह सदियों से दोहरा संताप उठाती रही हैं। घर–परिवार की जिम्मेदारी निभाते हुए अपने पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर, कठोर परिश्रम करने वाली महिला समाज में कभी पुरुषों के समान अधिकार पा ही नहीं सकी।"1

बीज शब्दः महिला, अस्मिता, विषमता, जागरूकता, मानसिकता, प्रतिबिंब, परिवर्तन, जीवन, जागृति,

अनुसरण, संघर्ष, व्यक्तित्व इत्यादि

मूल आलेख :

समाज में समय–समय पर परिवर्तन तो आया लेकिन इस परिवर्तन का प्रभाव महिलाओं को प्राप्त नहीं हो पाया। अपनी स्वार्थ–भावना से उच्च वर्ण ने इन्हें शिक्षा और जागृति से दूर रखा। मात्र सहानुभूति और दया की भावना रखते हुए उन्हें अपने हित को कभी समझने ही नहीं दिया। अतः इस बार इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि "नारी के प्रति पुरुषों की ओर से संपूर्ण समाज की मानसिकता बदली जाए तभी महिलाओं के प्रश्न और समस्याओं का समाधान हो सकेगा। परिवार की संपूर्ण जिम्मेदारी होने के कारण उनके सामने यह प्रश्न बार–बार उठता है कि, वह अपना सामाजिक विकास कैसे करें? घर की, बच्चों की, पारिवारिक व्यवस्था– इन प्रश्नों ने उन्हें पूरी तरह बंधनों में जकड़ा हुआ है। घर–परिवार के प्रति अपने कर्तव्य पूरे करते हुए, जिम्मेदारी संभालते हुए, सब की सेवा करते हुए वह इतना व्यस्त हो जाती है कि उन्हें स्वयं के बारे में भी सोचने का समय नहीं मिल पाता। ऐसी स्थिति में वह अपने विकास सामाजिक सरोकार के बारे में सोचने में स्वयं को अक्षम मानती हैं और परिवार के अन्य जन भी उन्हें प्रोत्साहन देने की बजाय हतोत्साहित कर देते हैं और यह कहकर उन्हें चुप करवा देते हैं कि 'तुम घर का काम संभालो, मैं बाहर का देख लूंगा'।"2

फिर किस प्रकार समाज में महिलाओं के प्रति पुरुष प्रधान मानसिकता में कैसे बदलाव लाया जाए, क्योंकि "समाज में उत्पन्न इसी मानसिकता के कारण संपूर्ण महिलाएं न कभी नारी मुक्ति आंदोलन से जुड़ पायी और न ही कभी सामाजिक सुधार हेतु विचारों का लाभ ले पायीं। जो उनके सामाजिक उत्थान के लिए जरूरी है।"3 परंतु आज की वर्तमान स्थिति देखी जाए तो परिवर्तन सभी के लिए आवश्यक है, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। पुरुषों को चाहिए कि वह स्त्रियों को शिक्षा से संबंधी और सामाजिक उत्थान हेतु प्रोत्साहित करें ताकि वह अपनी प्रगति के मार्ग पर प्रशस्त हो और इससे हमारे देश का भी विकास हो। वर्तमान समय में सबसे बड़ा प्रश्न सामने आता है मानसिकता का और मानसिकता में बदलाव के लिए सबसे आवश्यक है शिक्षा। बिना शिक्षा के हम अपना बौद्धिक विकास नहीं कर सकते। आज हमें आवश्यकता है कि किसी भी निर्णय को लेने में अपने विवेक, तर्क और ज्ञान का प्रयोग करें।

साथ ही हम देखें तो महिलाओं के सामने नए संपर्कों से संबंधित समस्याएं भी सामने आती हैं उन्हें हमेशा अपने मान–मर्यादा और प्रतिष्ठा का भी भय बना रहता है क्योंकि परिवार या समाज के आक्षेप और चरित्र के प्रति हनन संबंधी हीन भावनाओं ने उन्हें हमेशा मानसिक कष्ट दिया है और जिससे हताश होकर वह घर में बैठने को मजबूर हो जाती हैं। शिवमूर्ति के कहानी 'कसाईबाड़ा' और उपन्यास 'तर्पण' में हमें देखने को मिलता है। तर्पण उपन्यास में इस कहानी का संदर्भ मिलता है कि धरमू पंडित के बेटे चन्दर का रजपत्ती के प्रति व्यवहार बहुत घृणित दिखाई देता है क्योंकि रजपत्ती का विवाह होने के पश्चात भी चन्दर उस पर गलत दृष्टि डालता है और पकड़े जाने पर उल्टा ही रजपत्ती पर दोषारोपण करता है परंतु यह किसी भी अन्य पुरुष को शोभा नहीं देता कि वह किसी विवाहिता स्त्री पर ऐसे कुदृष्टि डाले और उसके साथ किसी भी प्रकार का दुष्कर्म करें। इसी संदर्भ में यह देखा गया कि, "इस साल धान की लगवाही से ही पीछा करता आ रहा है रजपत्ती का। पिछले साल का पीछा करना बेकार गया था। अगले साल तक अपने ससुराल चली जाएगी। कितनी जल्दी रहती है इन लोगों को अपनी

बेटियां ससुराल भेजने की। साल–दो साल भी गांव में "खेलने खाने" के लिए नहीं छोड़ते।"4 प्रत्येक काल में विरोध के बाद परिवर्तन को स्वीकार किया गया है, फिर नारी की स्थिति में परिवर्तन क्यों नहीं? या ये परिवर्तन सिर्फ दिखावे मात्र है। व्यक्ति और समाज के आपसी संबंध तथा स्त्री–पुरुष की सामाजिक भूमिका पर गंभीर विचार हुए हैं जिस प्रकार व्यक्ति समाज का निर्माण करता है, वैसे ही समाज भी व्यक्ति को जन्म देता है इसलिए मनुष्य का विकास ऐसा होना चाहिए कि एक ओर समाज के मूल सिद्धांत सुरक्षित रहें और दूसरी ओर समय के अनुसार परिवर्तन भी संभव हो। स्त्री और पुरुष दोनों समाज, कुटुंब, नगर और राष्ट्र के समान रूप से महत्वपूर्ण सदस्य होते हैं। स्त्री की प्रत्येक क्रिया समाज के विकास को या तो आगे बढ़ा सकती है या बाधित कर सकती है। इसलिए उसके जीवन मार्ग का खुला और व्यापक होना आवश्यक है। स्त्री के भीतर निहित भावना होने के बावजूद भी जब उसके अंदर किसी मनोभाव को दबाया जाता है तो न तो वह अपने कुटुंब से बाहर की दुनिया को समझ पाती है और न ही अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को पूरी तरह पहचान पाती है और ऐसा न होने के कारण ही वह अपने जीवन को निष्क्रिय बना देती है, जिससे उसकी स्वाभाविक उन्नति रुक जाती है और वह सिर्फ अपने कर्तव्य तक सिमट का रह जाती है। अपनी भावी उन्नति की ओर ध्यान देना भूल ही जाती है।

वर्तमान समय में हम देखें तो "हमारे समाज में दो प्रकार की स्त्रियां दिखाई देती हैं पहली प्रकार की स्त्रियां वे हैं जिन्हें यह पता ही नहीं होता कि वे भी पूरे मानव समाज के समान सदस्य हैं। वे यह नहीं समझती कि उनका भी एक स्वतंत्र व्यक्तित्व है। जिसके विकास से समाज का उत्थान हो सकता है और उनके अविकास से समाज का पतन भी संभव है इसलिए उन्हें इस दिशा में विचार करना आवश्यक है। दूसरी प्रकार की स्त्रियां वे हैं जो पुरुषों के समान बनने के लिए उन्ही की दृष्टि से संसार को देखने लगती हैं। वे पुरुषों के गुणों–अवगुणों का अनुकरण करने लगती है। इस प्रकार वे जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूल जाती हैं। माना जाता है अनुकरण मनुष्य की प्रकृति है परंतु क्या हर चीज का अनुकरण सही है? जैसे–बालक प्राय् आरंभ में सब कुछ अनुकरण से ही सीखता है, तत्पश्चात अपने अनुभव के सांचे में ढ़लकर उससे अधिक से अधिक पूर्ण करने का प्रयास करता है। परंतु अनुभव के आधार से ही अनुकरण सिखाए हुए पशु के अंधानुकरण के समान है, जो जीवन के गौरव को समूल नष्ट कर और मनुष्य को दयनीय बनाकर पशु की श्रेणी में बैठने के लिए बाध्य कर देता है।"5 हम देखते हैं जिस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों की प्रकृति और गुण अलग–अलग होते हैं और यही भिन्नता समाज को संतुलित और पूर्ण बनाती है जैसे दर्पण तभी उपयोगी होता है, जब तक सामने वाले की सही छवि दिखाएं। इस तरह यदि स्त्री को केवल पुरुष की नकल (प्रतिबिंब) बनाकर देखा जाए तो उसका अपना व्यक्तित्व समाप्त हो जाएगा और समाज भी अधूरा रह जाएगा। समाज की बहुत–सी समस्याओं का कारण यह है कि स्त्री अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और विवेक को भूलकर केवल तय किए गए कर्तव्य में बंध जाती है जब तक वह अपने सोचने समझने की शक्ति को नहीं अपनाएगी तब तक उसका और समाज का सही विकास संभव नहीं है।

अग्नि चाहे चंदन की हो, चाहे दूसरी लकड़ी की उसकी शिखा एक ही सी होती है, इसी भांति मनुष्य चाहे किसी जाति का हो यदि उसमें पांचो आत्मिक गुण विद्यमान है, तो वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होने का अधिकारी है। – गौतम बुद्ध 6

"जो जाग चुका है वह अधिक समय तक सोए होने का नाटक नहीं कर सकता। समाज की जागृत स्त्रियां अन्याय और शोषण के विरुद्ध विद्रोह का आरंभ कर चुकी हैं तथा कुछ उसके लिए अनुकूल अवसरों की खोज में है। स्त्री को देश के भावी नागरिकों की विधाता मानता है। वह उन्हें प्रथम और परम गुरु के रूप में प्रतिष्ठित करता है जो अपने जीवन में स्वयं को मिटाकर दूसरों का निर्माण करती रहती है।"7 अब तक स्त्रियां आदरहीन, महत्वहीन और अधिकार शून्य जीवन को इसलिए स्वीकार करती रहीं क्योंकि उन्हें अपनी शक्तियों का बोध नहीं था परंतु जैसे ही उन्हें अपने भीतर की शक्ति का ज्ञान हुआ उन्होनें फिर सभी बंधनकारी बेड़ियों को तोड़ फेका। इस परिवर्तन की अवस्था में अशांति और संघर्ष अनिवार्य है क्योंकि समाज को सुव्यवस्थित बनाने के लिए यह संघर्ष आवश्यक है।

डॉ0 गोपीराम शर्मा कहते हैं कि मीराबाई जिसने उस काल में भी स्त्री स्वर को बुलंद किया। जब धर्म व समाज व शासन सब नारी के प्रतिकूल थे और वह लिखते हैं कि–

"लड़ सकती है
आज भी
वह तो
प्रत्यक्ष काल से ।
पर
बाधित हो जाती है,
परिस्थितियों की
चाल से
बंधी वह
नियमों में,

रिवाज से,
बनाती है
जो परिवारों को
हार जाती
वह समाज से"8

अर्थात् देखा जाए तो नारी हर क्षेत्र में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल सकती हैं सिर्फ आवश्यकता है तो सही दिशा और मार्गदर्शन की। परिवर्तन जीवन का नियम है। हजारों साल का इतिहास देखने पर हम पाते हैं कि देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक स्थिति बदलने पर उनके जीवन मूल्य भी बदल जाते हैं। नारी जिस दिन अपनी पूरी शक्ति और आत्मविश्वास को पहचान लेगी, उस दिन उसकी उन्नति को कोई नहीं रोक सकता। उसके अधिकार उसे दान में नहीं मिले, बल्कि वह उन्हें अपने कर्म योग्यता तथा समाज में योगदान से प्राप्त करती हैं। समाज में व्यक्ति के अधिकार उसके सहयोग शक्ति और समझ पर निर्भर करते हैं। यह बात सुनने में साधारण लगती है लेकिन व्यवहार में यह पूरी तरह सच है कि कई बार महिलाएं बाहरी परिस्थितियों पर ध्यान दिए बिना अपनी अंदरूनी शक्ति को जगा कर कठिन परिस्थितियों से सफलतापूर्वक तालमेल बिठा लेती हैं। किसी भी समस्या का समाधान उसके सही ज्ञान और समझ पर निर्भर करता है। इसलिए जो व्यक्ति अधिकार चाहता है, उसमें जिम्मेदारी निभाने की क्षमता भी होनी आवश्यक है।

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते हैं कि स्वतंत्रता के बाद में शिक्षा के प्रभाव से और सामाजिक कार्यकर्ताओं और सुधारकों के प्रयत्नों से समाज में नारी के प्रति बदलते दृष्टिकोण से समाज में नारी के प्रति लोगों की मानसिकता में बदलाव आया है। और इसी बदलते सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, नैतिक और राजनीतिक परिस्थितियों ने भी नारी के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण बदलने में सहयोग दिया। हमेशा अज्ञान के अंधकार में रखी गई नारी शिक्षा प्राप्त करने लगी। नई शिक्षा ने पुराने धार्मिक बंधनों और मान्यताओं को कमजोर कर दिया। इसका अधिक लाभ स्त्रियों को मिला। क्योंकि नारी को बंधनों में जकड़ कर रखने वाला धर्म ही था जो कि उसे जरा भी स्वतंत्रता और अधिकार देने के पक्ष में नहीं था। बाबा साहब अंबेडकर ने कहा था कि संपूर्ण दलित समाज और नारी उत्थान की जागृति के लिए एकजुट होकर कार्य करना आवश्यक है।

संदर्भ सूची

1. दलित साहित्य 1999 संपादक– जयप्रकाश कर्दम 'दलित आंदोलन से जुड़ी स्त्रियों के प्रश्न'– सुशीला टाकभौरे पृष्ठ संख्या –112
2. वही, पृष्ठ संख्या– 114
3. वही, पृष्ठ संख्या– 117
4. 'तर्पण' दृशिवमूर्ति, राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण – 2010
5. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या–14
6. संपादक – नंदकिशोर तिवारी 1927 (चांद का अछूत अंक), राधा कृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ संख्या–69
7. श्रृंखला की कड़ियां, महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या–22
8. स्त्री चिंतन सामाजिक साहित्यिक दृष्टि संपादक – डॉ० गोपीराम शर्मा, डॉ० घनश्याम बैरवा

नमिता
शोधार्थी
दिगंबर जैन कॉलेज, बड़ौत (बागपत)
गुप्ता कॉलोनी
खिड़की एक्सटेंशन, मालवीय नगर,
नई दिल्ली–110017
ईमेल– namita2595@gmail.com
मो० नं०– 9654661464

18

साक्षी का स्वरूप – स्मृति ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में

श्री आशीष आर्य

सारांशः–

स्मृतिकारों ने निष्पक्ष न्याय की प्राप्ति के लिए साक्षी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है, क्योंकि साक्षी ही विवादित विषय का एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी होता है, साथ ही यह लिखित प्रमाण एवं भुक्ति दोनों के लिए ही आवश्यक होता था। इसलिए स्मृतिकारों ने विशेष रूप से साक्षी की विशिष्ट योग्यताओं एवं अयोग्यताओं का निर्धारण कर उसके परीक्षण का विधान किया। स्मृतिकालीन न्यायिक धरातल पर साक्षी को महत्वपूर्ण प्रमाण माना जाता था।

साक्षी का स्वरूप –

वादी–प्रतिवादी दोनों पक्षों की सत्य व तथ्यात्मक स्थिति साक्षी के द्वारा हो प्रकाश में आती थी । प्रत्यक्षदर्शी या श्रोता ही साक्षी के भार को उठा सकता था । विवाद सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान रखने वाला व्यक्ति भी साक्षी हो सकता था। इस प्रकार के साक्षी संदेह प्रतिरोध को समाप्त करने में सक्ष्म व प्रामाणिक माने जाते थे।

साक्षी यदि मृत्युगमन या विदेशगमन कर जाये या असाध्य या गम्भीर– रूप में रुग्ण हो जाये तो ऐसे साक्षियों के स्थान पर वह व्यक्ति साक्ष्य दे सकता था जिसने उक्त साक्षियों से विवाद के सम्बन्ध में सुना हो; परन्तु प्रतिबन्ध यह था कि यह साक्ष्य तीन वेदज्ञ ब्राह्मणों के सामने प्रामाणित किया जाये। अर्थात् मूल साक्षी अपना प्रतिनिधि साक्षी देने हेतु नियुक्त करें और विवादसम्बन्धी बातें अपने प्रतिनिधि से करे तो उस समय तीन वेदज्ञ ब्राह्मणों का उपस्थित रहना अनिवार्य होता था।

साक्षी के अभाव में न्यायपरीक्षण कि प्रक्रिया तब तक के लिए रोक दी जाती थी जब तक योग्य साक्षी नहीं मिलता था । साक्षी के न्यायालय में उपस्थित होने पर उसकी प्रामाणिकता के सम्बन्ध में परीक्षण होता था । परीक्षण के उपरान्त, साक्षी के सम्बन्ध में सभ्यों द्वारा आश्वस्त हो जाने पर, साक्षी के कथनों को सुनकर निर्णय किया जाता था। विवाद के सम्बन्ध में उनसे तर्क वितर्क किया जाता था। साक्षी के अभाव में अभियोग की वास्तविकता का अनुसन्धान गुप्तचर विभाग द्वारा कराया जाता था।

साक्षी – संख्या

साक्षियों की संख्या पर स्मृतिकार प्रायः एकमत नहीं रहे हैं। तीन से लेकर नौ व्यक्ति तक एक अभियोगे में पूर्वपक्ष या उत्तरपक्ष की ओर से साक्षी हो सकते थे। परन्तु विद्वान् ब्राह्मण दो भी साक्ष्य में सक्षम होते थे। परन्तु एक साक्षी कभी स्वीकार नहीं था। यदि ऐसा व्यक्ति जिसे दोनों पक्ष स्वीकार करते हों तथा वह व्यक्ति धार्मिककृत्य करता रहा है तथा अभियोग के सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान रखता हो, साथ–साथ अपने में शुचि, सत्यावादी रहा हो तो अकेला व्यक्ति ही साक्षी के रूप में प्रमाणित माना जाता था।

अपील में मुख्य न्यायधीश, लिपिक, सभ्य भी साक्षी होते थे। साक्षी शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख श्वेताश्वतरोपनिषद् में दृष्टिगोचर होता है। वहां यह अखिल विश्व में एकमात्र दृष्टा के लिए प्रयुक्त हुआ है। पाणिनि ने साक्षी की व्युत्पत्ति के विषय में लिखा है– साक्षात् द्रष्टरि संज्ञायाम अर्थात् उक्त सूत्र के अनुसार साक्षात् अव्यय से दृष्टा का कथन करने पर इनि प्रत्यय से साक्षी शब्द की व्युत्पत्ति होती है तथा दूसरी तरफ संज्ञा शब्द का अर्थ है गम्यमान होने पर। इस प्रकार साक्षी शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति जिसने साक्षात् देखा हो। अतः उक्त सूत्र के अन्तर्गत संज्ञायाम् शब्द का प्रयोग ग्रहणदाता और ग्रहीता का निराकरण करने के लिए किया गया है क्योंकि देखने वाले तीन व्यक्ति होते हैं– 1. दाता (ऋण देने वाला), 2. ग्रहीता (ऋण लेने वाला), 3. उपदृष्टा (दोनों को देखने वाला) । अतः यहां पर उपदृष्टा के लिए ही साक्षी शब्द का प्रयोग हुआ है। धर्मशास्त्रकारों के अनुसार, साक्षी वह है जिसने या तो विवादित विषय को प्रत्यक्ष देखा हो या स्वयं सुना हो या फिर विवाद के मामले में अनुभव प्राप्त किया हो। अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि साक्षात् दृष्टा एवं साक्षात् श्रोता व्यक्ति ही वास्तविक साक्षी माने जाते थे, लेकिन गम्भीर विवादों में केवल साक्षात् दृष्टा को ही विश्वसनीय माना जाता था।

साक्षी का महत्त्व – स्मृतिकारों ने निष्पक्ष न्याय की प्राप्ति के लिए साक्षी को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि साक्षी ही विवादित विषय का एकमात्र प्रत्यक्षदर्शी होता है, साथ ही यह लिखित प्रमाण एवं भुक्ति दोनों के लिए ही आवश्यक होता था इसलिए स्मृतिकारों ने विशेष रूप से साक्षी की विशिष्ट योग्यताओं एवं अयोग्यताओं का निर्धारण कर उसके परीक्षण का विधान किया है। परीक्षण के पश्चात् साक्षी के सम्बन्ध में सभ्यों द्वारा आश्वस्त हो जाने पर ही साक्षी के कथनों को सुनकर निर्णय किया जाता था। साक्षियों से प्रश्न पूछे जाते थे एवं उनसे तर्क–वितर्क किया जाता था। साक्षी का महत्त्व इसी बात से भी स्पष्ट होता है कि साक्षी के अभाव में न्याय परीक्षण की प्रक्रिया तब तक के लिए रोक दी जाती थी जब तक योग्य साक्षी नहीं मिलता था। इसका मुख्य कारण यह था कि साक्षी के अभाव में निष्पक्ष न्याय की सम्भावना कम रहती थी, साथ ही राजा निर्दोष को दण्ड देने के पाप का भागी नहीं बनना चाहता था। अतः अपने को इस पाप से बचाने के लिए न्यायालय में उपस्थित साक्षी की जांच करके ही उसे साक्षी स्वीकारते थे और यदि किसी विवाद में वास्तविक साक्षी के विषय में सन्देह उत्पन्न हो जाता

था तो कुछ समय पश्चात् जब वास्तविक साक्ष्य मिल जाय तभी न्याय प्रक्रिया आगे बढ़ायी जाती थी। साक्षी के अभाव में अभियोग की वास्तविकता का अनुसंधान गुप्तचर विभाग द्वारा कराया जाता था। परन्तु वर्तमान समय में साक्षी के अभाव में न्याय की प्रक्रिया रोकी नहीं जाती बल्कि अन्य साक्ष्य जिसके पक्ष में होते हैं उसे दण्ड से मुक्त कर दिया जाता है और जिसके पास साक्ष्य का अभाव होता है वह दण्ड का भागी होता है। अतः स्पष्ट है कि साक्षी को न्याय प्रक्रिया का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र बिन्दु माना गया, क्योंकि समस्त न्याय प्रक्रिया का भार साक्षी पर ही रहता था।

साक्षी के गुण –

उसी व्यक्ति को साक्षी के निमित्त योग्य ठहराया जाता था जिन में निम्न गुण विद्यमान हों । प्रतिष्ठित परिवार में जन्म, वंश परम्परा से स्वराष्ट्र का नागरिक, धनी, सन्तानयुक्त, धर्मज्ञ, विश्वासी और चरित्रवान, लोभ रहित, दोनों दलों द्वारा स्वीकृत, समीप का निवासी हो, स्व पक्ष और स्व वर्ण का हो । स्त्रियों के विवाद में स्त्रियां, ब्राह्मणों के विवाद में ब्राह्मण, क्षत्रियों के विवाद में क्षत्रीय तथा शूद्रों के विवाद में शूद्र ही साक्षी होते थे। हत्या और फौजदारी के मामले में यह आवश्यक नहीं था कि घटनास्थल पर गुणी वेदज्ञ, ब्राह्मण, चरित्रवान, धनी या राष्ट्र का नागरिक ही उपस्थित हो । ऐसे घटनास्थलों पर उपस्थित प्रत्येक पुरुष व नारी की साक्षी प्रमाणित मानी जाती थी । इसी आधार पर प्रत्येक दुःखी और अव्यवस्थित व्यक्ति को न्याय मिल सकता था । यदि ऐसा विकल्प न दिया जाता तो यह सम्भव था कि देश में आन्तरिक स्थिति विस्फोटक और नरसंहारक हो जाती । नारद ने साक्षी से सर्वप्रथम यह अपेक्षा की है – उसे जन्म, कर्म तथा अर्थ से शुद्ध होना चाहिए, वह उच्च कुलोत्पन्न हो, ऋतु अर्थात् अवक्र बुद्धि हो। इसके अतिरिक्त उसकी शरीर से रचना में भी किसी प्रकार की न्यूनता या अधिकता नहीं होनी चाहिए। साक्षी को किसी भी अवस्था में असत्य भाषण नहीं करना चाहिए जो साक्ष्य देते समय ऐसा करता है वह वरुण के पाशों में सैकडों जन्मों तक जकड़ा रहता है तथा जो साक्ष्य में सत्य बोलता है वह ब्रह्मादि इष्ट लोकों को प्राप्त करके अननुत्तम कीर्ति को अर्जित कर लेता है । साक्षी सत्य से ही पवित्र होता है और सत्य से धर्म बढ़ता है । साक्षी कभी यह समझ कर असत्य न बोले कि मुझे कोई नहीं देख रहा है" अपितु उसे सभी देव और ह्रदयस्थ देवों का देव परमात्मा देख रहे है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी मनु को उद्धृत करते हुए "सब वर्णो धार्मिक, विद्वान, निष्कपटी, सब प्रकार से धर्म को जानने वाले, लोभ रहित सत्यवादियों को ही न्यायव्यवस्था में साक्षी स्वीकार किया है।

साक्षी की योग्यता–

सम्भवतः स्मृतिकारों के समय में भी न्यायालय में असत्य वक्तव्य देने वालों की कमी नहीं रही होगीं यही कारण है कि जिन लोगों की सत्यवादिता के सम्बन्ध में समाज को सन्देह नहीं होता था, उन्हीं को साक्षी बनाने के योग्य माना जाता था। इस सन्देह को दूर करने के लिए ही धर्मशास्त्रकारों ने साक्षी के लिए अनेक योग्यताओं का निर्धारण किया। गौतम के अनुसार, अपने कर्म में प्रतिष्ठा, राजाओं के विश्वासपात्र, अर्थी और प्रत्यर्थी दोनों पक्षों में से किसी के प्रति पक्षपात या द्वेष न रखने वाले साक्षी होने चाहिए। वहीं दूसरी तरफ मनु का मत है कि गृहस्थ, पुत्रवाले, पहले से वहां निवास करने वाले (देशवासी), क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र जाति के व्यक्ति साक्षी हो सकते हैं। याज्ञवल्क्य भी मनु के इस विचार से सहमत हैं। इसके अतिरिक्त नारद चारों वर्णों में अनिन्दित, योग्य एवं शुद्धबुद्धि को साक्षी बनाने का उल्लेख करते हैं। कुछ स्मृतिकारों के कथानुसार साक्षी को अपने वर्ण और जाति का ही होना चाहिए, जैसे– स्त्रियों के विवाद में स्त्रियों को, द्विजों के विवाद में द्विजों को, शूद्रों के विवाद में शूद्रों को, परन्तु साहस के अपराधों में सभी वर्गों का सबके लिए साक्षी होने का भी उल्लेख मिलता है। यहां तक कि शूद्र भी ब्राह्मण के विषय में साक्षी हो सकते थे। साहस, डाका, हत्या आदि जैसे फौजदारी के विवादों में सभी प्रकार के साक्षी लिये जा सकते हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि साक्षात् दृष्टा कोई भी हो सकता है गुणी और गुणहीन भी,लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं था कि मत्त और मूर्ख का साक्ष्य प्रस्तुत किया जा सकता था। अतः स्पष्ट है कि इन्हीं सब सन्देहों को दूर करने के लिए ही धर्मशास्त्रकारों ने साक्षी की योग्यताओं का निर्धारण किया होगा। इस प्रकार साक्षी सामाजिक एवं राज्यविधि उल्लंघन करने वाला न हो अर्थात् अनुशासित हो, वैदिक धर्म का अनुयायी हो, क्योंकि साक्षी के जितने भी गुण बतलाये गये हैं वे सभी वैदिक परम्परा में ही उपलब्ध होते हैं।

साक्षी की अयोग्यता –

धर्मशास्त्रकारों ने साक्षी पद के लिए कुछ अयोग्यताएं भी निश्चित की थी, जिनमें अधोलिखित अयोग्यताएं विद्यमान रहती थी वे साक्षी पद के लिए योग्य नहीं समझे जाते थे, जैसे– धन के कार्यों में लिप्त रहने वाला, आप्त (अर्थी प्रत्यर्थी का मित्र), सहायक (नौकर), शत्रु, रोग से पीड़ित, वृद्ध (80 वर्ष से अधिक), महापातक, राजा, कारीगर (पाचक, बढ़ई, लोहार आदि), नट–भाट, वेदज्ञ ब्राह्मण, ब्रह्मचारी, सन्यासी, अत्यन्त अधीन (गर्भदास या क्रीतदास), लोकनिन्दित, चोर, क्रूर कर्म करने वाला (चाण्डाल आदि), बालक, स्त्री, अकेला, विकलेन्द्रिय (बहरा एवं गूंगा), दुःखी (विनाशादि के कारण), मत्त, पागल, भूख, प्यास से

पीड़ित, थका, कामी, क्रोधी, जुआरी, अभिशस्त (जिस पर कोई दोषारोपण हो), पाखण्डी, झूठे लेख लिखने वाला, साहसी (बलपूर्वक किसी वस्तु का अपहरण करने वाला), बन्धुओं द्वारा प्रतिव्यक्त आदि। ऐसा प्रतीत होता है कि इन सभी को असत्य साक्षी घोषित करने के पीछे अनेक कारण निहित थे, जैसे– धन के कार्यों में लिप्त व्यक्ति लालची प्रवृत्ति होने के कारण, आप्त या नौकर स्नेह के कारण, शत्रु प्रतिशोध की भावना के कारण, रोग से पीड़ित एवं वृद्ध व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रूप से दुर्बल होने के कारण, राजा को उसके पद की प्रतिष्ठा के कारण, कारीगर को निम्न व्यवसायी में गिने जाने के कारण, नट–भाट अभिनय में कुशल होने के कारण, वेदज्ञ ब्राह्मण को उसके कार्य में बाधा उपस्थित न हों इस कारण, ब्रह्मचारी एवं सन्यासी सांसारिक कार्यों से दूर रहने के कारण, लोकनिन्दित, चोर, क्रूर कर्म करने वालों को उनके दुश्चरित्र के कारण, बालक को अल्पव्यस्क अबोधता के कारण, स्त्री को मानसिक रूप से दुर्बल, अविश्वसनीय एवं पुरुष की अपेक्षा उन्हें अधिक भावुक तथा कम विचारणीय बताते हुए मनु कहते हैं कि स्त्रियों में सही तर्क तथा उचित निर्णय कर पाने की क्षमता नहीं होती, वे इन्द्रिय ज्ञान रहित एवं दयाहीन होती है, कामी, क्रोधी, जुआरी, पाखण्डी, साहसी, बुरे कार्यों में लिप्त रहने के कारण झूठ का सहारा ले सकते थे या सत्य वादन में असमर्थ होते थे और इसी कारण उसकी बातों को भी अविश्वसनीय समझा जाता था। इस प्रकार प्रतिष्ठित, दुर्बल, अपने कार्यों में व्यस्त तथा वे व्यक्ति जिनके कार्यों को समाज में निम्न दृष्टि से देखा जाता था, अयोग्य साक्षी में आते थे। दूसरी कोटि में, चोर, लुटेरे, भयानक लोग जुआरी, हत्यारे अयोग्य माने गये थे. क्योंकि उनमें असत्य भाषण का दोष पाया जाता था इसलिए वह अयोग्य साक्षी माने गये थे। अतः जो भी जैसे भी गवाह हो उन्हीं की सहायता से सत्य का निर्णय करना चाहिए।

निष्कर्ष– इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि साक्षियों की नियुक्ति सम्बन्धि नियम बड़े जटिल थे। उनकी भलीभांति जांच करके ही उनको योग्य एवं अयोग्य साक्षी ठहराया जाता था, क्योंकि विवाद के निर्णय का विशेष आधार साक्षी पर ही निर्भर करता था ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1.पाणिनि ५.२६१ साक्षाद.द्रष्टरि संज्ञायाम। मनुस्मृति,सम्पा. एवं व्याख्याः पं. हरगोविन्द शास्त्री। वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2018, अध्याय 8, श्लोक 3, पृ. 284

2. मनुस्मृति। पं. हरगोविन्द शास्त्री (व्याख्याकार एवं अनुवादक), चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2018, अध्याय 8, श्लोक 74, पृ. 676

3.गौतम धर्मसूत्र। हिन्दी अनुवादः प्रमोदवर्धन कौण्डिन्यायन। चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 2015। अध्याय 2, खण्ड 4, सूत्र 31. सर्वेधर्मेभ्योगरीयः प्राङ् विवाकेसत्यवचनं सत्यवचनम् ॥

4. महाभारत (शान्ति पर्व), सम्पा. हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर, नवीन संस्करण। शान्ति पर्व, अध्याय 85, श्लोक 19

5.मनुस्मृति। सम्पा./व्याख्याः डॉ. गंगासागर राय। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 8, श्लोक 60, पृ. 487. याज्ञवल्कय स्मृति. 2.69

6.स्मृतिचन्द्रिका. भाग–2, सम्पादकः एल. श्रीनिवासाचार्य, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1988, पृ. 76

7. वसिष्ठ धर्मसूत्र. सम्पा. एवं अनुवादः डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015, पृ. 53. अध्याय 8, सूत्र 5

8. याज्ञवल्क्य स्मृति. सम्पा. एवं व्याख्याः डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015, अध्याय 2, श्लोक 72, पृ. 176

9. स्मृतिचन्द्रिका (भाग 2). चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, पृ. 76

10.श्वेताश्वतरोपनिषद्। ईशादि नौ उपनिषद्। सम्पा. एवं व्याख्याः हरिकृष्णदास गोयनका, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 6, मन्त्र 11, पृ. 325. एको देवः सर्वभूतेषु गूढः..... साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च

11. अष्टाध्यायी। सम्पा. एवं व्याख्याः श्रीनारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2017, अध्याय 5, पाद 2, सूत्र 91, पृ. 321

12. मनुस्मृति। सम्पा. हरगोविन्द शास्त्री। वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, 2015, अध्याय 2, श्लोक 74, मनुस्मृति, 2/74, याज्ञवल्क्यस्मृति, 2/68,

13.मनुस्मृति, 8/61–63,याज्ञवल्क्य स्मृति। सम्पा. पं. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 2, श्लोक 68–69, पृ. 123.

14. प्रमोदवर्धन (सम्पा. एवं हिन्दी अनुवादक). गौतमधर्मसूत्रम् (संस्कृत एवं हिन्दी अनुवाद). चौखम्बा विद्याभवन, 2015, अध्याय 2, खण्ड 4, सूत्र 31, पृ. 61. सर्वेधर्मेभ्योगरीयः प्राड्विवाकेसत्यवचनं सत्यवचनम।

15. स्मृतिचन्द्रिका, भाग–2। सम्पा. (या अनुवादक) हरिप्रसाद शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी, 2015,

पृ. 92

16. महाभारत। शान्ति पर्व, अध्याय 85, श्लोक 19 सम्पा. पं. रामनारायणदत्त शास्त्री। गीता प्रेस, गोरखपुर, नवीन संस्करण 2015
17. मनुस्मृति। हिन्दी व्याख्या सहित, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 8, श्लोक 62–63
18. नारद स्मृति। सम्पा. एवं व्याख्याः डॉ. ब्रजकिशोर स्वाई। चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2023, अध्याय 1, श्लोक 130,
19. मनुस्मृति। कुल्लूकभट्ट–टीका सहित, सम्पा. पं. हरगोविन्द शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, पुनर्मुद्रण 2015, अध्याय 8, श्लोक 81–83
20. दयानन्द सरस्वती. सत्यार्थ प्रकाश. आर्य साहित्य प्रचार ट्रस्ट, 26वाँ संस्करण, 1981, पृ. 164
21. गौतम धर्मसूत्रम् (हिन्दी व्याख्यासहित)। व्याख्याकारः प्रमोदवर्धन कौण्डिन्यायन। वाराणसीः चौखम्बा विद्या भवन, 2015
22. मनुस्मृति (कुल्लूकभट्ट–टीका सहित)। सम्पा. पं. हरगोविन्द शास्त्री। वाराणसीः चौखंबा संस्कृत संस्थान, 2015, अध्याय 8, श्लोक 62, पृ. 633
23. याज्ञवल्क्य स्मृति। हिन्दी व्याख्यासहित, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 2, श्लोक 68, पृ. 283.
24. नारदस्मृति (हिन्दी व्याख्या सहित),चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2015, अध्याय 4, श्लोक 153
25. मनुस्मृति। सम्पा. रमेश्वर भट्ट। वाराणसीरू चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2015, अध्याय 8, श्लोक 68, पृ. 269
26. मनुस्मृति, 8/69, याज्ञवल्क्य स्मृति। मिताक्षरा–टीका सहित याज्ञवल्क्यस्मृति। सम्पा. वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर। वाराणसीरू चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2015। अध्याय 2, श्लोक 69
27. स्मृतिचन्द्रिका, भाग 2, पृ0 79, मेधातिथि पर टीका, 8 / 68,
28. भट्ट, रमेश्वर (सम्पा. एवं व्याख्याकार). मनुस्मृति. वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2015, अध्याय 8, श्लोक 118–122, पृ. 250–251
29. रमेश्वर (सम्पा.). मनुस्मृति। वाराणसीरू चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2015, अध्याय 8, श्लोक 64–67, पृ. 29
30. भट्ट, रामेश्वर, सम्पा. मनुस्मृति. चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2015. अध्याय 9, श्लोक 17
31. स्वाईं, ब्रजकिशोर, संपा. एवं हिन्दी व्याख्याकार. नारदस्मृति. चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2015, अध्याय 4, श्लोक 159
32. ठाकुर, लक्ष्मी दत्त. प्रमुख स्मृतियों का अध्ययन. वाराणसीः चौखम्बा विद्या भवन, 2015, पृ. 321

श्री आशीष आर्य
सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
माँ शाकम्भरी विश्वविद्यालय,पुंवारका,
सहारनपुर,
ग्राम पोस्ट– हरपाल, तहसील– नकुड,
जनपद–सहारनपुर,
उत्तर प्रदेश,
पिन– 247001,
मोबाइल– 9690943056

19

संत निश्चलदास और गुरु ब्रह्मानंद सरस्वती के काव्य में भक्ति

डॉ. मनजीत

सारांशः–

हमारी भारतीय संस्कृति संपूर्ण विश्व में एक अनोखी पहचान रखती है। भारतीय संस्कृति और संस्कारों ने संपूर्ण विश्व को अपनी ओर आकृष्ट किया है । इसमें निहित संस्कारों में एक संस्कार भक्ति भी है जिसने इसके सौंदर्य में चार चांद लगा दिए हैं। भक्ति हमारी भारतीय संस्कृति का वह अमूल्य आभूषण है जिसने न केवल हमारे अपितु संपूर्ण विश्व के प्राचीनतम वेदों ग्रंथों को मूल स्वर प्रदान किया है। भक्ति की यह अमृतमयी धारा वेदों से निकलकर उपनिषदों, पुराणों, बौद्ध, जैन साहित्य को स्पर्श करती हुई हिंदी काव्य में प्रवाहित हो गई और आज प्रत्येक वाणी के अंतःकरण में व्याप्त है। जब भी कोई व्यक्ति असंतुष्ट या दुखी महसूस करता है तो वह भक्ति के माध्यम से अपने अंतःकरण को एक विशेष प्रकार की आत्मिक संतुष्टि प्रदान कर लेता है। इस नश्वर संसार में विचरण करते हुए मनुष्य को जब इसकी क्षणभंगुरता व नश्वरता का ज्ञान होता है तो वह एक विशिष्ट प्रकार की संतुष्टि प्राप्त करना चाहता है , जहां मन चंचल न रहकर स्थिर बना रहे। मानव मन की यह खोज भक्ति भाव पर जाकर खत्म हो जाती है आध्यात्मिकता के क्षेत्र में मोक्ष के सोपान तक पहुंचना मानव जीवन का परम लक्ष्य माना जाता है। मोक्ष प्राप्ति के चार मार्गो में भक्ति मार्ग सबसे सरल और सहज है जिसके लिए न तो कर्मकांड अपेक्षित है और न ही तत्व–चिंतन।

भक्ति की यह परंपरा भारतवर्ष में दीर्घकाल से चली आ रही है। प्रारंभ से ही मानव ने अपने ऊपर आए संकटों को दूर करने के लिए सच्चे मन से ईश्वर की स्तुति व आराधना की है । लेकिन मध्यकाल राजनीतिक सामाजिक व धार्मिक दृष्टि से ऐसा संक्रमण का कल रहा है जिसने भक्ति को एक आंदोलन के रूप में स्थापित किया है । लगातार हो रहे बाहरी आक्रमणों ने भारतीय सनातनी संस्कृति के भवन की नींव को हिला डाला था। त्रस्त, निराश व हताश हो चुकी जनता नैतिकता को छोड़कर पतन की ओर उन्मुख हो रही थी। ऐसे विषम समय और भयंकर परिस्थितियों में अनेक संत महात्माओं ने भारतीय धरा पर अवतरित होकर अपनी वाणी व अपने कर्मों से चारों तरफ से त्रस्त हो चुकी जनता और ध्वस्त हो चुकी भारतीय संस्कृति को एक नया जीवन प्रदान किया। ऐसे कालजयी व महान संतों में संत निश्चलदास व गुरु ब्रह्मानंद सरस्वती को बड़े ही आदर और श्रद्धा के साथ याद किया जाता है।

भक्ति : अर्थ,परिभाषा और स्वरूप –

भक्ति शब्द भज् धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से बना है जिसका अर्थ अनुराग, श्रद्धा सम्मान या सेवा पूजन से लिया जाता है।[1] धर्म के क्षेत्र में अपने आराध्य, ईश्वर के प्रति भक्त का वह श्रद्धा पूर्ण अनुराग जिसके परिणामस्वरुप वह सदैव उसका अनुयायी बना रहता है और स्वयं को उसका वशवर्ती मानता है, भक्ति कहलाता है।[2] मनुष्य स्वयं और अपने आराध्य के मध्य एक घनिष्ठ संबंध बना लेता है। वह एकाग्रचित व ध्यान के माध्यम से उसी में लीन होकर एक नैसर्गिक आनंद का अनुभव करता है। साधक और ईश्वर के इसी स्नेहमय बंधन को रामानुजाचार्य जी भक्ति कहकर संबोधित करते हैं –

"स्नेहापूर्वकमनुध्यानं भक्तिरित्युच्यते।।"[3]

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने इसी स्नेहमय बंधन को कुछ इस प्रकार से भक्ति के रूप में परिभाषित किया है –

"माहात्म्य भावपूर्व सुदृढ़ सर्वतोऽधिकः ।
स्नेहोभक्तिरीति प्रोक्तस्तयानुक्तिर्नचान्यथा।"[4]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी भक्ति को इस प्रकार परिभाषित करते हैं – "भक्ति में किसी ऐसे सानिध्य की प्रवृत्ति होती है जिसके द्वारा हमारे महत्व के अनुकूल गति का प्रसार और प्रतिकूल गति का संकोच होता है।"[5]

आराध्य का अपने भक्त के प्रति प्रेम, अनुराग व सानिध्य ही भक्ति को एक विशेष स्थान देता है । भक्ति ईश्वर को प्राप्त करने की एक ज्वलंत वसना है और प्रेम ही इसका आधार है जो आराध्य और आराधक के बीच एक सुदृढ़ संबंध स्थापित करता है। भक्ति शब्द का प्रयोग केवल ईश्वर के प्रति गूढ़ प्रेम के संदर्भ में ही लिया जाता है। भक्ति वह भाव है जो मनुष्य को अहंकार से मुक्त करता है व संवेदनशील बना देता है। कबीरदास ने भी कहा है कि अगर हम ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं तो अपने अहंकार को अवश्य त्यागना होगा–

"कबीर यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहीं।
सीस उतारि हाथि करि, सो पैठो हो घर माहिं।।"[6]

संत निश्चलदास की भक्ति भावना –

भक्ति वह विशिष्ट भाव है जो मनुष्य को मानव बना देने की क्षमता रखता है। मनुष्य ऐसा जीव है जिसकी इच्छाएं और मनोवृत्तियां कभी भी तुष्ट नहीं हो सकती। मनुष्य सांसारिक

आकर्षणों ,मोह–माया व भौतिक साधनों के पीछे इस प्रकार दौड़ता रहता है जैसे सूअर गांव के मल की तरफ दौड़ता है और उसी में आनंद का अनुभव करता है। मनुष्य की इन्हीं प्रवृत्तियों को देखते हुए ऐसे महान संतों ने इस धरा पर जन्म लिया जिन्होंने ईश्वर के महत्व को लोगों को समझने का प्रयास किया। भक्ति की जिस धारा को नामदेव , मलिक मोहम्मद जायसी आदि संत कवियों ने शुरू किया था उसको कबीर, सूरदास, मीरा रविदास आदि संत कवियों ने एक विशाल सागर का रूप दे दिया। इन्हीं में से एक संत थे निश्चलदास जिन्होंने शंकराचार्य के अद्वैतवाद को अपनी वाणी और अपनी रचनाओं के माध्यम से मानव जाति के निकट लाने का भरपूर प्रयास किया।

संत निश्चल दास जी शंकराचार्य के अद्वैतवाद से काफी प्रभावित थे जिसमें जीव और ब्रह्म की एकता को प्रतिस्थापित किया गया है। इन्होंने संत कवियों की भांति ब्रह्म के महत्व को लोगों को समझाते हुए बताया कि मनुष्य को अपने जीवन का उपयोग केवल ईश्वर भक्ति के लिए ही करना चाहिए और उसका अंतिम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति होना चाहिए। उन्होंने अपनी भक्ति में अवतारवाद से लेकर नवधा भक्ति और सबसे सर्वश्रेष्ठ गुरु की भक्ति पर बल दिया है। संत निश्चलदास ने अपनी रचना विचार सागर में श्री राम और श्री कृष्ण के अवतारी रूप के माध्यम से शंका का समाधान करने का प्रयत्न किया है ।

संत निश्चलदास ने अपने कृति विचार सागर में एक कथा के माध्यम से विष्णु की भक्ति को प्रमुख माना है। जब भी मनुष्य इस सांसारिकता और इसकी नश्वरता को छोड़कर निर्वाण या मोक्ष प्राप्ति की और अग्रसर होता है तो सबसे पहले वह अपने आराध्य के रूप में ईश्वर का स्मरण करता है। यही कारण है कि संत निश्चल दास विष्णु की भक्ति को महत्व देते हैं। संत निश्चल दास लिखते हैं जब राजा शुभ संतति को उसके तीनों पुत्र छोड़कर वैराग्य के लिए निकल जाते हैं तो राजा विकृत हो जाता है। उसके मन में अभी तीव्र वैराग्य नहीं था इसलिए वह सूने राज्य को भी नहीं त्यागना चाहते थे। अंत में हुए प्रश्न करते हैं–

"शुभ संतति पितु सो बड भागा, भयो प्रथम तिहिमन्द विरागा।
जिज्ञासा उपजी यह ताकुं देव ध्येय को ध्याऊं जाकूं।।"[7]

राजा शुभ संतति के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि ध्यान का विषय कौन सा है जिसका वह एकाग्रचित होकर ध्यान कर सकते हैं संत निश्चल दास जी कथा के माध्यम से उनकी शंका का समाधान करने का प्रयास करते हैं–

"सनी राजा तुही कहूं सुदेवा, शिव विरंची लागे जिहि सेवा।
शंकर चक्रधारी हितकारी, पद्म–गदा–धर पर उपकारी।।"[8]

निश्चल दास जी ने कथा के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि भगवान विष्णु कई रूपों में अवतार लेते हैं और संकट आने पर सभी देवताओं की सहायता भी करते हैं। संत निश्चलदास ने लिखा है कि महाभारत आदि सभी इतिहास ग्रंथों में और पुराणों में विष्णु की ही प्रशंसा की गई है –

"भारत सकल ग्रंथ यह भाखै,पद्मपुराण तापिनी आखै ।
विष्णु रूपतै उपजी सबही, परै भीर जांचे तिहीं तबही।।"[9]

संत निश्चलदास ने गुरु के लक्षण और गुरु भक्ति पर भी विशेष बल दिया है। उनका मानना है कि एक सच्चे गुरु के ज्ञान और भक्ति में इतनी क्षमता है कि वह साधारण मनुष्य को मोक्ष के द्वारा तक ले जा सकता है और इसे इस नश्वर संसार से मुक्त कर सकता है। मनुष्य एक चेतनायुक्त प्राणी है । वह इस संसार में रहता हुआ विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा रखता है। ज्ञान प्राप्ति के अनेक मार्ग हो सकते हैं लेकिन जो ज्ञान एक सच्चे गुरु द्वारा दिया गया हो वह इस संसार में सर्वश्रेष्ठ ज्ञान है। संत निश्चलदास मानते हैं कि वही सच्चा गुरु है जो वेद के अर्थ को भली प्रकार से जानता है, जिसे आत्मा और ब्रह्म के रूप की पहचान है–

"वेद अर्थकूं भले पिछानै, आतम ब्रह्म रूप इक जानें।
भेद पंच की बुद्धि नशावै, अदृश्य अमल बृह्म दरशावै।।"[10]

संत निश्चल दास जी कहते हैं कि एक सच्चा गुरु अपने उपदेश रूपी तलवार से शिष्य को संसार रूपी मगर से छुड़ा लेता है। संसार केवल दंड, कमंडल धारण करने वाले को गुरु का दर्जा नहीं देता। निश्चलदास जी ने गुरु को ईश्वर के समान बताया है। एक मनुष्य चाहे कितना भी ज्ञानी हो और सब शास्त्रों में प्रवीण क्यों न हो लेकिन वह भी गुरु की भक्ति के बिना आत्मज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता–

"ईश्वरतें गुरु मैं अधिक, धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीणहूं लहे न आत्मज्ञान।।"[11]

भक्ति की परंपरा और इतिहास अत्यंत प्राचीन रहा है । भक्ति वह मनोभाव है जिसमें डूबकर मनुष्य एक अनूठी आत्मिक

शांति का अनुभव करता है। भक्ति ज्ञान का वह दूसरा नाम है जिसमें परमानंद के समान प्रिय परमात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई भी लक्ष्य नहीं है और जिसमें संसार के अन्य सभी विषयों से वितृष्णा या वैराग्य रहता है। सगुण भक्ति के अंतर्गत नवधा अर्थात नौ प्रकार की भक्ति का वर्णन किया गया है। संत निश्चलदास जी की रचनाओं में भी नवधा भक्ति का सांकेतिक वर्णन देखने को मिलता है । उन्होंने कहीं ना कहीं संकेत भी किया है कि अगर नव प्रकार से भगवत् कर्म करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव होता है तो शुभ कर्म करते हुए जीवन यापन करना चाहिए और मनुष्य को कर्म फल की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए। इस भावना से मनुष्य का अंतःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अंतःकरण से ईश्वर जीव की एकता का आभास होता है और मनुष्य मोक्ष के सोपान तक पहुंच जाता है। अपनी रचना श्विचार सागरश में श्रवण के महत्व को दर्शाते हुए संत निश्चलदास जी ने लिखा है–

"ये चव साधन ज्ञान के, श्रवणादिक त्रय मेलि ।
तत्पद त्वंपद अर्थ को, सोधन अष्टम भेलि।।"[12]

ईश्वर के गुणों का स्मरण करना नवधा भक्ति का एक महत्वपूर्ण अंग माना गया है। ईश्वर के नाम, रूप, गुण आदि की अनवरत स्मृति ही स्मरण कहलाती है। संत निश्चलदास ने कृति विचार सागर में कथा के माध्यम से ईश्वर के नाम स्मरण को महत्व दिया है–

"करण ब्रह्म उपासना, वारी बहुत चित्त लाय।
तर्क–दृष्टि निज लखि गुरु, राज–समाज–चढ़ाय।।"[13]

संत निश्चलदास ने अपने काव्य में अर्चन,वंदन, पाद–सेवन आदि को भी स्थान दिया है। संत निश्चलदास जी अद्वैतवाद के समर्थक थे जिसमें ईश्वर और जीव के बीच कोई अंतर नहीं रहता और जीव सच्चे मन से की गई आराधना से मोक्ष का अधिकारी बनता है, लेकिन मनुष्य को ईश्वर तक पहुंचाने का मार्ग केवल एक सच्चा गुरु ही बता सकता है इसलिए उनके काव्य में गुरु की वंदना और अर्चना पर विशेष प्रकाश डाला गया है ।

संत ब्रह्मानंद सरस्वती की भक्ति भावना –

भक्ति का जो भाव हमें वेदों, पुराणों व ग्रंथों में देखने को मिलता है गुरु ब्रह्मानंद सरस्वती उसी परंपरागत भक्ति के पोषक रहे हैं। वेदों, पुराणों व धार्मिक ग्रंथो से भक्ति की जो धारा निकलकर आधुनिक युग में एक सागर के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी उस भक्ति को उन्होंने संजोकर रखा हुआ है। वेदों में हमें इंद्र, अग्नि, वरुण, सोम आदि देवताओं की उपासना का वर्णन देखने को मिलता है ठीक उसी प्रकार गुरु ब्रह्मानंद जी ने भी अपनी वाणी में इनका वर्णन कुछ इस प्रकार किया है –

"मार्गशीर्ष का देवता सोम जिताया।
आद्रा का देवता रूद्र गिनाया।।"[14]

कर्म करना मनुष्य का पुरुषार्थ है और अपने इसी पुरुषार्थ के बल पर वह अपने भाग्य को बदल सकता है। हमारे धर्म ग्रंथों में मनुष्य के इसी कर्म करने की भक्ति पर बल दिया गया है क्योंकि भक्ति केवल ईश्वर का स्मरण करना नहीं है अपितु जो भी कार्य मनुष्य जितनी तल्लीनता और आत्मीयता से करता है वह भक्ति के अंतर्गत ही आता है। ब्रह्मानंद जी ने भी मनुष्य के जीवन में कर्म की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है –

"कर्मवीर कर्म करो कर्म से भाव पार है।
कर्म में कलाकार तेरा कर्म ने किया तो शरीर बेकार है।।"[15]

गुरु ब्रह्मानंद जी परंपरागत भक्ति भावना के पोषक रहे हैं। भक्ति की जो धारा वेदों से निकलकर आधुनिक युग तक अमृत बन चुकी थी उसके पवित्र जल का छिड़काव सरस्वती जी ने अपनी वाणी के माध्यम से कर दिया है। उनकी वाणी भक्ति के पावन भाव से सिक्त है। उनका मानना है कि ईश्वर को साधारण आंखों से नहीं देखा जा सकता और ने ही वाणी उसका बखान कर सकती है –

"चक्षु उसको नहीं देखी वाणी कर न बयान।
मन उसको जाने नहीं किसका धरे है ध्यान।।"[16]

गुरु ब्रह्मानंद जी ने अपनी भक्ति में ओंकार की महिमा को व्यक्त किया है। इसका जाप करने से संसार के सभी कार्य सिद्ध हो जाते हैं। स्वामी जी ओंकार को अपना गुरु मानते हैं और इसे सबसे उत्तम स्वीकार करते हैं –

"ओंकार सबसे उत्तम, सबसे बड़ा है नाम।
ओऽम् नाम जब से शुद्ध होवे आत्मा, पूर्ण होंगे काम।।"[17]

ब्रह्मानंद जी ने अपनी वाणी में गुरु की भक्ति का भी वर्णन किया

है। उनका मानना है कि मनुष्य का शरीर एक विष की बेल के समान है जबकि एक सच्चा गुरु अमृत की खान है। अगर मनुष्य अपना सर्वस्व त्याग देता है फिर भी गुरु कृपा का मोल नहीं चुका सकता–

"यह तन विष की बेल है गुरु अमृत की खान।
तन, मन, धन दिए गुरु मिले फिर भी सस्ता जान।।"[18]

गुरु ब्रह्मानंद जी उन सभी संत महात्माओं व गुरुजनों की महिमा को जानकर उनके आगे नतमस्तक होना चाहते हैं जिन्होंने एक साधारण मनुष्य को सन्मार्ग पर लाने का पवित्र कार्य किया है –

"संत महात्मा गुरु लोगों को करता हूं प्रणाम।
सतमार्ग दिखलाने वाले तब जनता शरणाम।।[19]

ब्रह्मानंद सरस्वती जी ने माता–पिता को भी गुरु के सम्मान दर्जा दिया है। उनका मानना है कि एक व्यक्ति के पहले गुरु उसके माता–पिता ही होते हैं। जो मनुष्य इनका अनादर करता है वे जीवन पर्यंत भटकते रहते हैं –

"माता–पिता–गुरु, इन तीनों से विद्या शुरू।
इन तीनों को जो फटकारे, वे फिरते हैं मारे–मारे।।
ब्रह्मानंद जी करें विचार, उनके बिना न नैया पार।।"[20]

संत ब्रह्मानंद सरस्वती के काव्य में हमें नवधा भक्ति का भी संकेत मिलता है। वे मनुष्य को समझाते हुए कहते हैं कि जितना श्रद्धा भाव से हम ईश्वर का नाम जपते हैं उतना ही हमारा अंतःकरण निर्मल होता है –

"हे भोले भाले जीव !
तू तो ब्रह्म स्वरुप है।
इतना जीवे सुमरण कर।"[21]

ब्रह्मानंद जी ने अपनी वाणी के माध्यम से श्रवण, मनन और निदिध्यासन का भी उल्लेख किया है और मनुष्य को इनका अभ्यास करने की प्रेरणा दी है –

"श्रवण, मनन, निदिध्यासन, सत पथ का शोध।
मल, विक्षेप, आवरण मिटे तब हो पूर्ण बोध।।"[22]

ब्रह्मानंद जी इस संसार को दुःखों से परिपूर्ण मानते हैं। उनका कहना है कि केवल ज्ञानी व्यक्ति ही इस संसार में सुखी रह सकता है। हमारी भारतीय संस्कृति में गुरु को ईश्वर से भी बढ़कर माना गया है। एक सच्चा गुरु ही अपने ज्ञान रूपी दीपक से शिष्य के जीवन में छाए हुए अज्ञान रूपी अंधकार को दूर करके उसे इस नश्वर संसार की क्षणभंगुरता का बोध करा सकता है और ईश्वरीय मार्ग की ओर अग्रसर करता है। ब्रह्मानंद जी ने भी ओऽम् को ही गुरु मानते हुए कहा है –

ॐ गुरु जी ॐ गुरु जी ॐ गुरु जी ॐ तीन ताप तीन दोष।"[23]

ब्रह्मानंद जी ने अपने काव्य में प्राणायाम की साधना को आत्म सत्ता और ब्रह्म सत्ता का बोध कराने में सहायक माना है। योग के आठ अंगों का वर्णन करते हुए स्वामी जी ने कहा है –

"यम, नियम, आसन, प्राणायम। करना चाहिए सुबह शाम।।
प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। अष्टांग योग से सब मिटे उपाधि ।।"[24]

ब्रह्मानंद जी जन्मजात दार्शनिक थे जो जमाने की रफ्तार को भली–भांति जानते थे। उन्होंने वेद, उपनिषद् और श्रीमद्भागवत गीता का गहन अध्ययन किया था जिसके कारण वे ब्रह्मवृत्ति को प्राप्त थे। उनका कहना है कि ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप एवं निर्गुण निराकार है और सर्वज्ञ एवं सर्वव्यापक है। उन्होंने अपने काव्य में नवधा भक्ति, गुरु भक्ति एवं को न केवल वर्णित किया बल्कि अपने जीवन एवं साधना में भी प्रत्यक्ष रूप से प्रकट किया है।

निष्कर्ष

रूप में कहा जा सकता है कि दोनों ही संत परंपरागत भक्ति भावना के पोषक रहे हैं और दोनों संतों की वाणी में जीव, जगत, माया, मोक्ष आदि को वर्णित होते हुए देखा जा सकता है। दोनों ही संतों ने अपने उपदेशों के माध्यम से मनुष्य को सदाचार को अपने वह पांच विकारों से दूर रहने की प्रेरणा दी है। दोनों ही संतों ने अपनी वाणी में भक्ति के साथ–साथ ज्ञान पर भी प्रकाश डाला है। जिस प्रकार प्रकृति उदार होती है वह मनुष्य से कुछ ग्रहण नहीं करती बल्कि उसको निःस्वार्थ भाव से सर्वस्व प्रदान करती है और मनुष्य की हर आवश्यकता की पूर्ति करती है। ठीक

इसी प्रकार संत भी प्रकृति की भांति उदार होते हैं और अपने ज्ञान से समाज में रोशनी की ऐसी किरण फैलाते हैं जिसके प्रकाश से मानव का जीवन सदैव आलोकित रहता है। संत निश्चलदास और गुरु ब्रह्मानंद जी ऐसे ही परोपकारी और उद्धारक महापुरुष थे जिन्होंने अपनी दिव्य वाणी एवं कार्यों से हताश हो चुकी जनता के हृदय को शीतल करने का प्रयास किया। दोनों संतों की भक्ति भावना का प्रमुख उद्देश्य दुःखी और पीडित मानव के मुख पर मुस्कान लाना और जीव का ईश्वर के साथ तादात्म्य स्थापित करना था। उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानव कल्याण ही था।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

1. संपा० द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, संस्कृत शब्दार्थ–कौस्तुभ, पृष्ठ 816
2. धीरेंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, द्वितीय खंड, पृष्ठ 188
3. सर्वदर्शन संग्रह, रामानुजदर्शन, पृष्ठ 74
4. तत्त्वदीप निबन्ध, शास्त्रार्थ प्रकरण, ज्ञानसागर बम्बई, श्लोक 46
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग–1, पृष्ठ 27
6. संपा० श्यामसुंदर दास, कबीर ग्रंथावली, पृष्ठ 69
7. संपा० एवं रूपान्तरकार आचार्य डॉ० किशोरदास स्वामी विद्यावारिधि श्रीस्वामी निश्चलदास प्रणीत विचार सागर, पृष्ठ 317
8. संपा० एवं रूपान्तरकार आचार्य डॉ० किशोरदास स्वामी विद्यावारिधि श्रीस्वामी निश्चलदास प्रणीत विचार सागर, पृष्ठ 317
9. संपा० एवं रूपान्तरकार आचार्य डॉ० किशोरदास स्वामी शविद्यावारिधि श्रीस्वामी निश्चलदास प्रणीत विचार सागर, पृष्ठ 317
10. विचार सागर– तृतीय तरंग, दोहा–3 पृष्ठ 75
11. वही, दोहा–5, पृष्ठ 77
12. विचार सागर, प्रथम तरंग, दोहा 22, पृष्ठ 6
13. वही, पृष्ठ 336
14. संपा० डॉ बाबुराम, संत ब्रह्मानंद सरस्वती ग्रंथावली, पृष्ठ 132
15. वही, पृष्ठ 144
16. वही, पृष्ठ 138
17. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पृष्ठ 111
18. संपा० डॉ० बाबुराम, संत ब्रह्मानंद सरस्वती ग्रंथावली, पृष्ठ 146
19 श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद– 530, पृष्ठ 53
20 श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद 64–65, पृष्ठ 13
21. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद–374, पृष्ठ 40
22. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पृष्ठ 117
23. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पृष्ठ 50
24. श्री सतगुरु ब्रह्मानंद पचासा, पद–69–70, पृष्ठ–14

डॉ0 मनजीत

सहायक प्रवक्ता हिंदी,

(राजकीय महिला महाविद्यालय,

सोनीपत, 131001, हरियाणा)

मो. न. – 9992324246

म. नं. 748.–20 ओल्ड डी.सी. रोड़,

शंकर कॉलोनी,अरिस्टो अस्पताल के पास,

सोनीपत। 131001

20

स्मृति आधारित न्यायपालिका की कार्यप्रणाली

श्री आशीष आर्य

सारांशः–

शासन की हर व्यवस्था धर्म द्वारा संचालित होने के कारण न्यायालय की कार्य प्रणाली में भी हम प्रत्येक पग पर इस धर्म की अप्रत्यक्ष उपस्थिति पाते हैं । यह निर्विवाद है कि वातावरण का प्रभाव व्यक्ति पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों से पड़ता है । समाज के प्राथमिक समूहों में पारस्परिक विवादों को हल करने के लिए कतिपय स्थानीय न्यायालय थे जिनकी अधिकारिता यथावत सीमित थी। राज–न्यायालय अधिक व्यवस्थित था जिसमें मध्यस्थ के रूप में नहीं वरन् धर्म शास्त्रानुसार अर्थी–प्रत्यर्थी के कथनों को सुनने के बाद विचार कर निर्णय किया जाता था।

प्राचीन मनीषियों ने भावनात्मक पहलू की महत्ता को दृष्टि में रखते हुए ही न्यायालय की कार्य प्रणाली में यह निर्देश दिया है कि राजा को भली प्रकार वस्त्राभूषण से सज्जित होकर शान्त एवं स्थिर चित्त से ही सभा भवन में बैठना चाहिये और लोकपालों को प्रणाम करना चाहिये। सभाकक्ष भी सुसज्जित होना चाहिए जहां धार्मिक मूर्तियां, अग्नि, जल व चित्र आदि हों। जैसे अग्नि से सात ज्वालाएं प्रज्जवलित होती हैं उसी प्रकार जो राजा भली प्रकार न्याय करता है उसमें सात गुण निहित होते हैं यथा – धार्मिकगुण, उपलब्धि, यश, जन सम्मान, प्रजा का आदरणीय, विजेता, ऐश्वर्यवान। अतः राजा को न्याय के आसन पर आरूढ़ होकर सबके प्रति समान दृष्टि रखते हुए स्वार्थों का त्याग कर स्वयं को यम अंग मानकर कार्य करना चाहिए। न्यायकार्य के चार भाग नारद ने इस प्रकार बताये हैं– प्रथमतः वाद की सूचना प्राप्त करना, द्वितीय उसे फिर व्यवहार पदों में से जिसके अन्तर्गत आये उसमें रखना, तृतीय दोनों पक्षों की बातें सुनना और साक्ष्य पर विचार करना, एवं अन्तिम निर्णय। इस सम्पूर्ण न्याय प्रक्रिया में वादी प्रतिवादी और साक्ष्य की पूरी सुनवाई, उनका लिपिवद्ध होना व उस पर विचार कर अन्ततः निर्णय देना सम्मिलित है । कुछ लोगों को न्यायालय में उपस्थित होने से छूट प्राप्त थी, यथा–– रोगी नाबालिग, अत्यधिक वृद्ध, विपत्तिग्रस्त, धार्मिक कृत्य में संलग्न, जिस व्यक्ति के आने से सम्पत्ति में हानि हो, दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में पड़ा हुआ राजकर्म में लिप्त, नशे में चूर, पागल, नवयुवती, विपत्तिग्रस्त परिवार की स्त्री, उच्चकुलीन स्त्री, नव–प्रसवा, एवं वादी की जाति से ऊंची जाति की स्त्री। इसके अतिरिक्त दूत, जिसका विवाह होने वाला है तथा अध्ययन में व्यस्त व्यक्ति को भी छूट प्राप्त थी । नारद के अनुसार गाय चराने की ऋतु में गोरक्षकों, बीज बोने के समय कृषकों, कार्य में संलग्न शिल्पकारों, युद्धरत योद्धाओं के स्थान पर उनके प्रतिनिधियों को बुलाकर काम चला लेना चाहिये। ऊपर वर्णित व्यक्तियों के अतिरिक्त जो न्यायालय में आ सकते थे उनका उपस्थित होना अनिवार्य था और न आने की स्थिति में वे दण्डनीय थे। राजा द्वारा बुलाये जाने पर जो व्यक्ति न्यायालय में नहीं उपस्थित होते थे उन्हें दण्डित किया जाता था । अनुपस्थिति के लिए दण्ड मिलने के बाद भी यानि एक माह तक प्रतिवादी उपस्थित नहीं होता था तो वादी के पक्ष में निर्णय की घोषणा कर दी जाती थी। इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रतिवादी उपस्थित होकर यदि नया साक्ष्य जो पहले न आया हो, प्रस्तुत करे तो मुकदमे को पुनः आरम्भ किया जा सकता था । प्राकृतिक प्रकोपों यथा – महामारी, दुर्भिक्ष एवं शत्रु के आक्रमण की स्थिति में अनुपस्थिति पर व्यक्ति को दण्डित नहीं किया जाता था वरन् उसे दुबारा बुलाने का समय दिया जाता था । नदी पार करने में कठिनाई पर या दुर्गम जंगल पर या उपद्रव के कारण असमर्थ व्यक्ति के न आने पर भी दण्ड नहीं दिया जाता था। जो लोग आने में असमर्थ होते थे उनके लिए वाहन भेजने का निर्देश था। न्याय कार्य के लिए प्रातः काल का समय उपयुक्त माना जाता था । अवकाश के दिनों में न्याय कार्य बन्द रहता था। अवकाश के दिनों में पर्व, त्योहार, उत्सव, अष्टमी, चतुर्दशी, अमावश्या, पूर्णिमा को सम्मिलित किया जाता था। नृप की अनुपस्थिति में प्रमुख न्यायाधीश अभियोग की कार्यवाही सुनाता था ।

प्रत्येक प्रकार के अभियोग को प्रमुखतः ४ पाद या चरणों में विभक्त किया जाता था ।

(१) पूर्व–वादी का पक्ष, जब कोई व्यक्ति अपनी जटिलता के निर्णयार्थ न्यायालय में उपस्थित होकर आवेदन पत्र प्रस्तुत करता था ।

(२) उत्तर – प्रतिवादी पक्ष जब प्रतिवादी जिसके विरुद्ध वादी ने अभि– योग प्रारम्भ किया है, अपने पर लगे आरोपों का प्रत्युत्तर स्वीकारात्मक या नकारात्मक रूप में न देने के निमित्त न्यायालय में उपस्थित होता था ।

(३) क्रिया–वह कार्यविधि जिसके द्वारा अभियोग का रहस्य और कारण जानकर नियन्त्रित करने का उपाय खोजा जाता था। इसमें वादी प्रतिवादी का कथन, साक्ष्य इत्यादि सम्मिलित रहते थे ।

(४) निर्णय – अभियोग की वास्तविकता को अनुरत कर वादी प्रतिवादी के हित में सुरक्षा व शान्ति सन्तुलन बनाए रखने के निमित्त दिया गया उपदेश या दण्ड निर्णय कहलाता था ।

अभियोग आवेदन कि क्रिया

कोई मनुष्य अपने किसी भी प्रकार के विवाद का निर्णय पाने के लिए राजा के न्यायालय में अपना आवेदन पत्र प्रस्तुत कर सकता था। आवेदन पत्र की स्वीकृति या अस्वीकृति का पता आवेदन पत्र प्रस्तुत करने के कुछ देर बाद ही लग जाता था । प्रार्थी के आवेदन पत्र पर न्यायाधीश विचार कर देखता था कि यह आवेदन अभियोग की श्रेणी में आता है या नहीं । जो आवेदन अभियोग की श्रेणी में ठीक बैठ जाते थे उनको स्वीकार कर लेता था । अभियोग की परिधि में ठीक न बैठने वाले आवेदन पत्रों को अस्वीकृति कर दिया जाता था। आवेदन पत्र की स्वीकृति या अस्वीकृति से पूर्व न्यायाधीश अभियुक्त से भी निम्न प्रकार पूछताछ करता था कि क्या कार्य है, तुम्हें किस प्रकार का कष्ट दिया गया है, भयभीत व शंकित मत हो, सत्य बोलो कि तुम्हें कष्ट कब, क्यों, किसने दिया, निवेदक द्वारा शब्दों पर न्यायाधीश अपने सहयोगी सभ्यों से परामर्श करता था। सर्व सम्मत निर्णय के अनुसार ही आवेदन पत्र पर विचार प्रारम्भ होता था।इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आवेदन पत्र को अभियोग की पंक्ति में रखने से पूर्व यह देख लेना आवश्यक था कि आवेदन पत्र उपयुक्त है या नहीं जिससे व्यर्थ में ही न्यायालय का समय नष्ट न हो सम्पूर्ण स्वीकृत आवेदन पत्रों को, प्रति दिवस के अनुसार, क्रमानुसार स्थिर कर दिया जाता था । विवादों को गौण और गुरु समझकर पृथक–पृथक् कर वर्णमाला के अनुसार फाइल कर लिया जाता था । वे विवाद जो गुरु समझे जाते या जिनसे शान्ति का सन्तुलन नष्ट होने का भय बना रहता था, जैसे पशु सम्बन्ध के अभियोग, क्रय–विक्रय, स्तेय, साहस, व्यभिचार के मामलों पर सुनवाई तुरन्त प्रारम्भ हो जाती थी । शान्ति भंग न हो इस हेतु प्रत्येक प्रकार के अभियोग की सुनवाई शीघ्रता और सतर्कता के साथ प्रारम्भ होती थी क्योंकि ठीक न्याय न देना न्यायपालिका का दोष माना जाता था । न्याय में विलम्ब करने वाले नृप को पापी माना जाता था। वादी को अपना विवाद निबटाने के निमित्त विवाद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए प्रमाण प्रस्तुत करने पड़ते थे । प्रमाणों के अभाव में वादी को पराजित घोषित कर दिया जाता था । इसी प्रकार प्रतिवादी को भी प्रमाण सहित उत्तर देने में कुछ समय दिया जाता था। प्रमाण प्रस्तुत न करने पर प्रतिवादी पराजित तो हो ही जाता था, साथ–साथ इसे अपराध भी मान लिया जाता था। सम्पत्ति विवाद निबटाने के सम्बन्ध में एक वर्ष का समय निर्धारित था । परन्तु गुरु अभियोगों को तुरन्त १ सप्ताह से एक मास तक निबटाने की व्यवस्था थी।

अभियोग की कार्यवाही प्रारम्भ होते ही प्रतिवादी को राजमुद्रा से अंकित पत्र द्वारा सूचित कर बुलाया जाता था । सूचना मिलने पर उपस्थित न होने वाले प्रतिवादी की अनुपस्थिति, अवज्ञा और अपराध मान लिया जाता था । और उसे दण्डित किया जाता था। गौण अपराधों में प्रतिवादी के स्थान पर प्रतिनिधि से कार्य चल जाता था । परन्तु मृत्यु, डाका–चोरी, गर्भपात, जाली मुद्रा, निषिद्धाहार जैसे गंभीर अपराधों में प्रतिवादी को स्वयं उपस्थित होना पड़ता था । परन्तु यदि देश, अकाल, महामारी व विदेशी आक्रमण जैसी संकट कालीन स्थिति में फंस जाता था तो प्रतिवादी को पुनः राजमुद्रायुक्त पुरुष के द्वारा बुलाया जाता था । इस पर होने वाला सम्पूर्ण व्यय वादी को वहन करना पड़ता था।

न्यायालय का शुल्क

प्राचीन समय में न्यायालय शुल्क नहीं लिया जाता था। किसी भी धर्म– शास्त्र या स्मृति व नीतिशास्त्र में इस प्रकार शुल्क से सम्बन्धित उल्लेख प्राप्त नहीं हैं । शुल्क के न होने के कारण अमीर व गरीब सर्व जन–समुदाय कम व्यय कर न्याय प्राप्त कर सकते थे । यह तत्कालीन नृपों की न्याय–प्रियता का प्रमाण है । अभियोग के बाद में कुछ धन प्रतिशत के रूप में लिया जाता था । जैसे ऋण लेकर न्यायालय में स्वीकार करने वाले को ५ प्रतिशत से १० प्रति– शत ऋण का देना पड़ता था। यदि ऋण लेने वाला अस्वीकार करे और बाद में ऋण प्रमाणित हो जाये तो ऋण राशि के बराबर धन न्यायालय में जमा कराना पड़ता था। यदि आवेदक हार जाय तो उसे सम्पत्ति का दुगुना दण्ड भरना पड़ता था। ऋणदाता न्यायालय में ऋण अदा न होने का अभियोग ऋण लेने वाले पर लगा देता था । यदि शुल्क की व्यवस्था होती तो आवेदक को प्रार्थना पत्र के साथ जमा करनी पड़ती। दूसरे यदि ऋण लेने वाला प्रतिवादी न्यायालय में एकदम ऋण स्वीकार कर लेता था तो ऋण का ५ प्रतिशत यदि कुछ घुमाफिरा कर स्वीकार करता तो ऋण का १० प्रतिशत यदि स्वीकार न करता और ऋण प्रमाणित हो जाता तो ऋणराशि का दुगुना अर्थात् २०० : अदा करना पड़ता था । इस प्रकार तीन विभिन्न अवस्थाओं में दिया जाने वाला शुल्क नहीं दण्ड था। अतएव यह सिद्ध है कि प्राचीन भारत में अभियोग के अवसर पर अपराध की गुरुता को दृष्टि में रख कर न्यायाधीश द्वारा निश्चित धनराशि दण्ड ही होती थी।

अधिवक्ता(वकील)

न्याय व्यवस्था का अध्ययन करते समय एक प्रश्न स्वाभाविक रूप से उभरता है कि प्राचीन न्यायविधि में क्या ऐसे भी किसी व्यक्ति की व्यवस्था थी जिसे वर्तमान अधिवक्ता या वकील के समकक्ष रखा जा सके। यद्यपि स्मृतियां इस प्रकार का अलग से निर्देश नहीं देती किंतु यह असंभव नहीं कि ऐसा विधान रहा हो। काणे महोदय ने लिखा है, नारद, बृहस्पति एवं कात्यायन

द्वारा उपस्थापित विधान इतना नियमबद्ध था कि बिना दक्ष अथवा स्मृति पारंगत लोगों की सहायता के मुकदमे का कार्य चल ही नहीं सकता था। शुक्र नीति तो इसे वहां और अधिक स्पष्ट कर देती है जहां इस बात का उल्लेख है कि दोनों में से किसी एक पक्ष की पैरवी करने वाले नियोजित की भूति (फीस) मुकदमे के अनुसार सोलहवें, बीसवें, दसवें, पांचवें अथवा ढाइवें हिस्से के बराबर होनी चाहिए। यदि नियोजित पुरुष एक से अधिक हों तो जितना धन हो उनका आनुपातिक करके भृत्ति दें, यदि भृत्ति देने में असमर्थ हो तो उसका पालन पोषण करें । धर्म एवं व्यवहार को जानने वाले व्यक्ति को ही नियोगी नियुक्त करें अन्यथा नहीं । नारद द्वारा उल्लिखित नियुक्त एवं अनियुक्त व्यक्तियों का उल्लेख जो धर्मशास्त्री होने की स्थिति में विचार देने के लिये स्वतंत्र थे एवं उनका कथन देवताओं के कथन के समकक्ष माना जाता था, जिसके विचार न्याय में सहायता देते थे, सम्भवतः ऐसे ही प्रतिनिधि थे जिनका विकास कालान्तर में वकील पद के रूप में हो गया । कात्यायन ने प्रतिनिधिः प्रकरण में जो कुछ लिखा है वह भी ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति का प्रमाण है जिसे वकील के समान ही माना जा सकता है । यथा प्रतिवादी यदि अपने स्थान पर किसी अन्य योग्य व्यक्ति को उत्तर देने के लिये प्रस्तुत करे और वादी उसे स्वीकार करे तो वह प्रतिनिधि प्रतिवादी का प्रतिनिधित्व करने का अधिकारी है। नारद के अनुसार न्यायालय द्वारा दिया निर्णय वादी अथवा प्रतिवादी पर ही लागू होता था उनके द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि पर नहीं। इतना ही नहीं अगर कोई व्यक्ति जो वादी प्रतिवादी का भाई, पिता बेटा या नियुक्त प्रतिनिधि नहीं है फिर भी वह स्वेच्छा से वादी अथवा प्रतिवादी की ओर से न्यायालय में बोलता है तो वह दण्ड का भागी है । किन्हीं स्थितियों में प्रतिनिधि नियुक्ति वर्जित भी थी । यथा – ब्राह्मण की हत्या, सुरापान, चोरी, परस्त्रीगमन, आदि महापातकों में, कन्या– हरण व बलात्कार में, जाली मुद्रा व सिक्के बनाने में, नशीली वस्तुएं बनाने में। तत्कालीन नियमों से स्पष्ट होता है कि गम्भीर अपराधों में अपराधी बच न सके अतः प्रतिनिधि को अनेक प्रतिबंधों के साथ हल्के विवादों में ही मान्यता प्राप्त थी । आज ऐसा नहीं है, स्पष्ट है कि उक्त प्रतिनिधि को वकील की वर्तमान परिभाषा से नहीं आंका जा सकता किन्तु इतना स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों एवं मान्यताओं की आवश्यकतानुसार ऐसे व्यक्तियों की व्यवस्था थी जो व्यवहार में वादी प्रतिवादी का साथ देते थे । इस प्रकार तत्कालीन प्रतिनिधि व वर्तमान वकील का कार्य पर्याप्त समानता रखता है तथापि जहां वर्तमान वकील के लिए विधि में स्नातक की उपाधि व प्रशासन की मान्यता प्राप्त होना अनिवार्य है वहां प्राचीन प्रतिनिधि से सम्बन्धित ऐसे नियम नहीं मिलते – स्पष्ट है कि वकील ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता जटिलताओं के बढ़ने पर ही, शनैः शनैः बलवती हुई ।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त शोध से निम्न दो बातें स्पष्ट होती हैं। प्रथम राज–न्यायालय अधिक व्यवस्थित था जिसमें मध्यस्थ के रूप में नहीं वरन् धर्म शास्त्रानुसार अर्थी–प्रत्यर्थी के कथनों को सुनने के बाद विचार कर निर्णय किया जाता था । राज–न्यायालय होने के कारण उसकी अधिकारिता सम्पूर्ण राज्य में थी । द्वितीय यह कि राज – न्यायालय का रूप परिष्कृत होता गया । एतदर्थ न्यायाधीश (प्राड्विवाक्) के कर्त्तव्यों तथा उनकी अर्हताओं की स्थापना की गई, न्यायालय के लिए आवश्यक कर्मचारियों एवं अन्य सामग्रियों का निर्धारण किया गया। इसी के साथ न्याय प्रक्रिया को सुनियोजित किया गया । जिन्हें आज हम अधिवक्ता या वकील कहते हैं ऐसे किसी का उल्लेख स्मृतियो मे न मिलते हुए भी परिस्थितियो व सन्दर्भो के आधार पर यह कल्पना करना निराधार नही है कि अधिवक्ता का सा कार्य कोई करता रहा होगा। जिसके कारण स्मृति काल में न्याय तर्कसंगत एवं पक्षपात रहित होता था।

स्मृति आधारित न्यायपालिका की कार्य प्रणाली –

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. अनुवादक– द्विवेदि पं0 गिरिजाप्रसाद,मनुस्मृति 8.23,मुंशी नवलकिशोर सी0 आई0 ई0 का छापाखाना, 1917, पृ0– 250
2. लेखक– महर्षि नारद, संपादक–मैक्स मुलर, शीर्षक–दॉ मिनर लॉ बुक्स, प्रकाशक–ओक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, प्रकाशन वर्ष–1889 श्लोक सं0 32, 33, पृष्ठ0 –14
3. लेखक– महर्षि नारद, संपादक– संपादक–मैक्स मुलर, शीर्षक– दॉ मिनर लॉ बुक्स, प्रकाशक– ओक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, प्रकाशन वर्ष–1889, श्लोक–34 पृष्ठ0 –14
4. लेखक– महर्षि नारद, संपादक– मैक्स मुलर, शीर्षक– दॉ मिनर लॉ बुक्स, प्रकाशक– ओक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, प्रकाशन वर्ष–1889, श्लोक 36 पृष्ठ0 –14
5. लेखक– महर्षि नारद, संपादक– मैक्स मुलर, शीर्षक– दॉ मिनर लॉ बुक्सप्रकाशक–ओक्सफॉर्ड यूनिवर्सिटि प्रेस, प्रकाशन वर्ष–1889 श्लोक 52–54 पृष्ठ0 –16
6. कात्यायन स्मृति, श्लोक 100–101,अनुवादक पी0 वी0 काणे
7. शुक्रनीति, सम्पादक–डा0 जगदीशचन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन 2026 श्लोक–4.5.105–107
8. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग २, अनुवादक–अर्जुन चौबे काश्यप,हिन्दी समिति,सुचना विभाग,उत्तर प्रदेश, पृ० ७२५
9. किं कार्यं का च ते पीडा मा मैषीब्रूहिमानवः ।

केन कस्मिन्कदाकस्मात् पृच्छेदेवं समागतम्।।
कात्यायन, उद्धृत हरिहरनाथ त्रिपाठी, प्राचीन भारत में न्यायपालिका

10.महाभारतः क्रिटिकल एडिशन सम्पादक पी. एल. वैद्य, खण्ड17, अनुशासनपर्व भाग–1, अध्याय 6 श्लोक 38। पुणेः भाण्डारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, 1966

11.श्रीमद् वाल्मीकि रामायण. उत्तरकाण्ड, सर्ग 53, श्लोक 16–18. गोरखपुररू गीता प्रेस, 2014.

12.गौतम धर्मसूत्र,अनुवाद एवं संपादनरू पैट्रिक ओलिवेल, मोतीलाल बनारसीदास, 2000। अध्याय 13, सूत्र 26–30

13.कात्यायनस्मृतिसारोद्धारः(व्यवहारकाण्ड),संपादितएवं अनूदितः पांडुरंग वामन काणे, हिंदू लॉ क्वार्टरली, बम्बई, 1933,अध्याय 1, श्लोक 100–101

14. प्राचीन भारत में राज्य और न्यायपालिका,हरिहरनाथ त्रिपाठी, पृ० २७२–२७३

15. याज्ञवल्क्य स्मृति–सम्पा. डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2019. अध्याय 2, श्लोक 33.

16. अनुवादक– द्विवेदि पं0 गिरिजाप्रसाद,मुंशी नवलकिशोर सी0 आई0 ई0 का छापाखाना, 1917, पृ0– 250 मनुस्मृति, ८.५६, पृष्ठ 255

17. पांडुरंग वामन काणे धर्म शास्त्र का इतिहास भाग 2

18. शुक्राचार्य. शुक्रनीति. सम्पा. एवं व्याख्यारू डॉ. जगदीशचन्द्र मिश्र. वाराणसीः चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 2026. अध्याय 4, खण्ड 5, श्लोक 111–112

19. शुक्राचार्य, शुक्रनीति, हिन्दी अनुवादः ब्रह्मशंकर मिश्र (वाराणसीः चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2015), अध्याय 4, खंड 5, श्लोक 119–120, पृ. 204

श्री आशीष आर्य
सहायक प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
माँ शाकम्भरी विश्वविद्यालय, पुंवारका,
सहारनपुर,
ग्राम पोस्ट– हरपाल,
तहसील– नकुड, जनपद–सहारनपुर,
उत्तर प्रदेश,पिन– 247001,
मोबाइल– 9690943056

21

भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम मेधा के परिप्रेक्ष्य में डॉ0 जंग बहादुर पाण्डेय की साहित्य–साधना

श्री मृत्युंजय कुमार ओझा

सारांश

किसी सरस्वती पुत्र की सारस्वत साधना का आकलन या मूल्यांकन करना आसान काम नहीं है, विशेषतः उस सरस्वती पुत्र की सारस्वत साधना का आकलन या मूल्यांकन करना तो और भी कठिन कार्य है,जिसका व्यक्तित्व और कृतित्व बहु आयामी हो,जिसके चिंतन का आकाश विस्तृत एवं व्यापक हो तथा जो एक साथ कई भाषाओं और विधाओं में निष्णात हो। ऐसे वाणी साधक का बहिरंग जितना व्यापक एवं विस्तृत होता है, अंतरंग कहीं उससे अधिक गहरा। बिहार के भोजपुर जिला के तरारी प्रखंड के पटखौली ग्राम में जन्मे (5.1.1955) और झारखण्ड में कार्यरत डा जंग बहादुर पाण्डेय एक ऐसे ही वाणी साधक और सरस्वती के वरद् पुत्र हैं।इनके पिता का नाम स्व. यमुना पाण्डेय और माता का नाम स्वा धनराजो देवी है।इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के पाठशाला में संपन्न हुई। 7वीं बोर्ड की परीक्षा आदर्श मध्य विद्यालय सिकरौल से 1967 में प्रथम श्रेणी से पास की और मैट्रिक की परीक्षा 1971 में श्रीमती तेतरा उच्च विद्यालय रन्नी डुमरिया से। आई. ए. और बी ए.हिंदी आनर्स की परीक्षा एच डी जैन कालेज आरा से क्रमशः 1973 एवं 1975 में पास की। एम. ए. हिंदी की परीक्षा रांची विश्वविद्यालय रांची से 1977 में प्रथम श्रेणी में पास की और एम. ए. के दौरान ही उन्होंने सांध्यकालीन छोटानागपुर कालेज रांची से एल–एल. बी. की डिग्री भी 1979 में प्राप्त की।रांची विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में पीएच. डी. उपाधि के लिए तुलसी साहित्य के नदीष्ण विद्वान् डा वचनदेव कुमार के निर्देशन में पंजीकृत हो गये। ईश्वर की असीम अनुकम्पा से डा जंग बहादुर पाण्डेय अपने जीवन के पहले साक्षात्कार में व्याख्याता के लिए चयनित हो गये और 23.11.1981 को रांची विश्वविद्यालय की सेवा के रूप में अपनी शैक्षणिक अध्यापन यात्रा का श्रीगणेश किया।

बिहार निवासी एवं झारखण्ड प्रवासी देश के चर्चित शिक्षाविदों में एक प्रो (डॉ.) जंग बहादुर पांडेय ने अपनी शैक्षणिक यात्रा 23.11.1981 से रांची विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शुरु की थी और व्याख्याता, उपाचार्य, आचार्य के रूप में कार्य करते हुए 31.1. 2021 को सेवा निवृत हुए। वे रांची विश्वविद्यालय में दो वर्षों तक हिंदी विभाग के अध्यक्ष रहे और 2011 से 2015 तक लगभग 5 वर्षों तक कमीशंड कालेज निरीक्षक (कला एवं वाणिज्य)के पद पर कुशलता पूर्वक कार्य किया और प्रभूत यश भी पाया। डा पाण्डेय ने अपने कार्यकाल में 30 निजी बी एड कालेजों को मान्यता दिलावाई और कालेजों के शासी निकाय द्वारा प्रशंसा पाई। हिंदी विभागाध्यक्ष एवं कालेज निरीक्षक के रूप में सफलता पूर्वक कार्य करने के लिए डा जे बी पाण्डेय समय समय पर अपने कुलपतियों द्वारा सम्मानित भी किये। डा जे बी पाण्डेय ने एक सत्र के लिए नेहू (NEHU)शिलांग तथा कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में अतिथि प्राध्यापक के रूप में सफलता पूर्वक कार्य किया। डा पाण्डेय 2013 में भारतीय सांस्कृतिक संबध परिषद् नई दिल्ली के सौजन्य से जर्मनी के जोहांस गुटेन वर्ग विश्वविद्यालय, माइंस में एक सत्र के लिए विजिटिंग प्रोफेसर रहे। सेवा निवृति के बाद डा जे बी पाण्डेय 2023 में एक सत्र के लिए उडिसा केंद्रीय विश्वविद्यालय कोरापुट के हिंदी विभाग में विजिटिंग प्रोफेसर रहे, जहाँ उन्होंने 16,17,18 मार्च 2023 में एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी कराकर इतिहास रच दिया।डा पाण्डेय ने अनेक देशों की शैक्षणिक यात्राएं की हैं, उनमें मारीशस, ताशकंद,रूस, सिंगापुर, थाईलैंड, दुबई, जर्मनी, फ्रांस, इटली, बेलजियम, वियाना,स्वीटजरलैंड, हालैंड और फिनलैंड आदि प्रमुख हैं। उन्होंने विदेशो में हिंदी भाषा और साहित्य का केवल प्रचार प्रसार ही नहीं किया अपितु हिंदी भाषा एवं साहित्य का पताका भी फहरा दिया। विश्व हिंदी सम्मेलनों में भाग लेने के लिए डा पाण्डेय भारत सरकार के प्रतिनिधि के रूप में 2018 में मारीशस और 2023 में फिजी गये।डा जे बी पाण्डेय के जीवन का मोटो हैरू–

अपनी बोली अपना वेष,
अपनी संस्कृति अपना देश।
सारे सहज सुखों का सार
सादा जीवन उच्च विचार।

शैक्षणिक और शोध क्षेत्र में अप्रतिम योगदानः –

डा जे बी पाण्डेय उपाधि को व्याधि मानते हैं फिर भी उन्होंने हिंदी एवं संस्कृत में प्रथम श्रेणी की उपाधि प्राप्त की हैं। उन्होंने एल–एल. बी. की भी डिग्री प्राप्त की है।डॉ. पांडेय ने रांची विश्वविद्यालय रांची से राम चरित मानस में रस योजना विषय पर शोध कार्य कर पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की है।डा पाण्डेय की शैक्षणिक उपलब्धियों एवं हिंदी सेवा के मद्दे नजर रखते हुए विक्रमशिला विश्वविद्यालय, भागलपुर और थावे विद्यापीठ गोपाल गंज बिहार ने विद्यासागर (डी. लिट्.) एवं मानस मार्तण्ड की मानद् उपाधि प्रदान कर सम्मानित किया है।डा पाण्डेय के कुशल निर्देशन में अब तक कुल दो दर्जन से अधिक शोधार्थियों ने शोध कर पीएच.डी की उपाधि प्राप्त की है। डा पाण्डेय ने अब तक देश भर के विभिन्न विश्वविद्यालयों से आये 100

से अधिक शोध प्रबंधों का परीक्षण एवं मौखिकी कार्य कर संपन्न कर पीएच.डी. एवं डी लिट् की उपाधियां प्रदान की हैं। वे भारतीय ज्ञान परंपरा के गहन अध्ययन में वर्षों से सक्रिय हैं। उनका शोध मुख्य रूप से भारतीय दर्शन, सांस्कृतिक मूल्यों और आधुनिक विकास के सिद्धांतों के समन्वय पर केंद्रित है। वे षविकसित भारत/2047ष जैसे राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों के जरिए युवाओं को सशक्त बनाने और भारत को 2047 तक एक विकसित राष्ट्र बनाने की दिशा में सक्रिय योगदान दे रहे हैं।आये दिन देश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम मेधा तथा विकसित भारत का सपना कैसे होगा अपना जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर अपने सार गर्भित व्याख्यानों से देश के युवाओं को जागृत कर रहे हैं।जर्मनी प्रवास के दौरान उन्होंने तीन शब्दकोशों का निर्माण किया–हिंदी हिंदी शब्दकोश, हिंदी अंग्रेजी शब्दकोश और अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश।

रचना संसार –डॉ0 पाण्डेय की अब तक कुल 36 पुस्तकें प्रकाशित हैं। कक्षा एक से लेकर एम ए तक के विद्यार्थियों के लिए डा जे बी पाण्डेय की लेखनी चली है।मानस में रस योजना, वस्तुनिष्ठ हिंदी साहित्य, हिंदी हिंदी शब्दकोष, हिंदी अंग्रेजी शब्दकोष, अंग्रेजी हिंदी शब्दकोष, काव्य शास्त्र निरूपण,पृथ्वी राज रासोः सौंदर्य और समीक्षा, कथा यात्रा,कथा भारती, निबंध भारती, निबंध यात्रा,निबंध –कुंज, एकांकी यात्रा, प्रेमचंद की उत्कृष्ट कहानियाँ, प्रेमचंद की दलित चेतना की कहानियाँ, बोधिसत्व से बुद्ध तक,भारत दुर्दशा रूनया मूल्यांकन, हिंदी सृजन प्रक्रिया, संस्कृत अनुवाद संग्रह,व्याकरण बोध, संस्कृत साहित्य का इतिहास, तिनका उडा आकाश एवं जिंदगी का सफर (उपन्यास) पर्यावरण प्रदूषण, साहित्य, समाज और संस्कृति, हिंदी राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ,हिंदी दशा एवं दिशा,आदि पुस्तकें यदि स्नातक, स्नातकोत्तर एवं प्रबुद्ध पाठकों के लिए लिखी हैं, तो प्रतीक सरस भारती और वारिधि आदि पुस्तकें बालकों को ध्यान में रखकर रची गई हैं।उन्होंने सभी वर्ग के पाठको के लिए साहित्य का सृजन किया है–यह डा पाण्डेय का परम वैशिष्ट्य है।अभी राष्ट्रीय शिक्षानीति 2020 के आलोक में कक्षा एक से पांच तक के विद्यार्थियों के लिए वारिधि पाठ्य पुस्तक मेगा माइंड प्रकाशन रांची से प्रकाशित हुई है और बिहार एवं झारखंड के प्रायः सभी पब्लिक स्कूलों में पाठ्य पुस्तक के रूप मे स्वीकृत है–यह हम सबके लिए गौरव का संदर्भ है।कहा जाता है कि प्रत्येक सफल पुरुष के पीछे एक नारी का हाथ होता है। बातचीत के क्रम में डा पाण्डेय ने कहा कि हमारे दादा –(स्व. कुलदीप पाण्डेय) जी ने पिता श्री से स्वर्ग जाने की इच्छा प्रकट की। पिता श्री ने कहा कि मैं क्या करू कि आप स्वर्ग जायें। पोते की शादी कर दीजिये, मैं स्वर्ग चला जाऊंगा। बाबा का इतना कहना था कि उनको स्वर्ग भेजने के लिए बचपन में उनकी शादी बरीसवन निवासी श्री राम हृदय तिवारी की ज्येष्ठ पुत्री तारा मणि के साथ 11.6.1973 हो गई, जब उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की थी और जैन कालेज आरा में आई ए में नाम लिखाया था।डा पाण्डेय इसे शुभ ही मानते हैं क्योंकि माता– पिता द्वारा की गई शादी मुक्कमल होती है। डा पाण्डेय की इस अद्भुत सफलता के पीछे उनकी धर्मपत्नी डा तारामणि पाण्डेय का शत प्रतिशत हाथ है, जो महारानी प्रेम मंजरी प्रोजेक्ट बालिका उच्च विद्यालय की कृतकार्य वरीय हिंदी शिक्षिका रही हैं।उनकी दो पुत्रियां–ज्योत्स्ना पाण्डेय (दिल्ली)और अर्चना पाण्डेय (फिनलैंड) में अभियंता हैं और दोनो जामाता –देवेश रंजन और अमित कुमार भी उनके साथ वरीय अभियंता के रूप में उच्च पदों पर पद स्थापित हैं, जबकि एकलौता पुत्र मानस कुमार पाण्डेय दुबई में एक बहुत बडे कंपनी में महाप्रबधक हैं और बहू सुमन शिक्षिका है।इन उपलब्धियों को डा पाण्डेय ईश्वर की कृपा मानते हैं।डा जे बी पाण्डेय बराबर कहा करते हैं कि साधना से सिद्धि और सिद्धि से प्रसिद्धि मिलती है।उनका मानना है कि आजकल के विद्यार्थी साधना नहीं करते हैं,मगर सिद्धि और प्रसिद्धि चाहते हैं, लेकिन आमतौर पर ऐसा होता नहीं है। अतः विद्यार्थियों को केवल साधना करनी चाहिए सिद्धि और प्रसिद्धि तो उसका आनुषांगिक फलाफल है।

डॉ0 पाण्डेय तुलसी साहित्य और मानस के अप्रतिम वक्ता हैं और एतदर्थ न केवल देश में अपितु विदेशो में भी वे बुलाये जाते रहे हैं। उनकी मधुर वाणी में सरस्वती का वास है, जो एक बार उनको मंच से बोलते हुए सुन लेता है, वह उनका मुरीद हुए बिना नहीं रहता। यह ईश्वरीय वरदान उन्हें प्राप्त है।वे सबका मंगल चाहते हैः–

सर्वे भवंतु सुखिनः,
सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु,
मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत।

उन्होंने अपने शैक्षणिक करियर के दौरान अनेक राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेकर भारतीय ज्ञान परंपरा के महत्व को वैश्विक मंच पर प्रस्तुत किया है। उनकी लेखनी और शोध कार्य शिक्षा, समाज और संस्कृति के क्षेत्र में नई सोंच और दृष्टिकोण प्रदान करते हैं।

डॉ. पांडेय के रांची विश्वविद्यालय में शामिल होने के बाद विद्यार्थियों और फैकल्टी के बीच शिक्षा और शोध का नया

उत्साह देखने को मिला है। उन्होंने विद्यार्थियों को न केवल शैक्षणिक ज्ञान प्रदान किया, बल्कि उन्हें भारतीय सांस्कृतिक और दार्शनिक मूल्यों के महत्व को समझने और अपनाने की प्रेरणा भी दी।

विश्वविद्यालय प्रशासन ने कहा कि प्रो. पांडेय के अनुभव और विशेषज्ञता से विश्वविद्यालय में अनुसंधान और नवाचार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हो रही है और भविष्य में होगी–ऐसा विश्वास है।उनका उद्देश्य युवाओं को आधुनिक शिक्षा के साथ–साथ भारतीय ज्ञान परंपरा के मूल्यों से भी जोड़ना है, ताकि वे समाज और राष्ट्र के निर्माण में सकारात्मक योगदान दे सकें और 2047 में भारत के माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के विकसित भारत के सपने को अपना बना सकें।

समाज और युवाओं के लिए प्रेरणाः–

डॉ. पांडेय भारत के माननीय प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र दामोदर दास मोदी के इस विचार से पूर्णतः सहमत हैं कि भारत युवाओं का देश है। भारत की 65ः आबादी युवा है। युवा शब्द को उलटने से शब्द बनेगा वायु। अर्थात् युवा इस देश के प्राण वायु हैं। 2047 के विकसित भारत का सपना युवाओं के सौजन्य से ही अपना होगा। युवाओं के पास जोश है और बुजुर्गो के पास होश(समझदारी) है। जोशहोश=2047 का विकसित भारत। इसीलिए भारत के प्रधानमंत्री श्री नरेद्र मोदी जी युवाओ के एक हाथ में वेद, कुरान एवं उपनिषद् (जो भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रतीक हैं) और दूसरे हाथ में कंप्यूटर एवं चलभाष (जो कृत्रिम मेधा के संवाहक हैं) देकर 2047 में विकसित भारत के सपने को साकार करना चाहते हैं।डा पाण्डेय का मानना है कि मोदी जी का ऐसा करना विकसित भारत के लिए परमावश्यक है। डा पाण्डेय मानते हैं कि भारत की सांस्कृतिक और दार्शनिक विरासत को आधुनिक शिक्षा और राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़कर ही देश को 2047 तक विकसित राष्ट्र के रूप में देखा जा सकता है। उनकी यह दृष्टि न केवल विद्यार्थियों के लिए मार्गदर्शक है, बल्कि पूरे समाज में ज्ञान और जागरूकता फैलाने का काम करती है।

विश्वविद्यालय और शिक्षा विशेषज्ञों का मानना है कि प्रो. पांडेय की उपस्थिति और उनके शोध कार्यों से रांची विश्वविद्यालय एक महत्वपूर्ण शिक्षा और अनुसंधान केंद्र के रूप में उभर कर सामने आया है।

विश्वसनीय सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि विगत 45 वर्षों से डा पाण्डेय अपने निजी आवास पर हिंदी आनर्स,एम ए तथा नेट के विद्यार्थियों को निरूशुल्क पढा रहे हैं और प्रत्येक वर्ष दर्जनों विद्यार्थी नेट उतीर्ण कर शोध कार्य कर विभिन्न कालेजों में प्राध्यपक के रूप में उनकी कीर्ति में चार चांद लगा रहे हैं। पीएच. डी. शोधार्थियों को भी वे निरूशुल्क निर्देशन प्रदान करते हैं। यह निरूशुल्कता उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रो. डॉ. जंग बहादुर पांडेय की यह यात्रा न केवल शैक्षणिक उपलब्धियों से भरी है, बल्कि उन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा और कृत्रिम मेधा के साथ साथ राष्ट्रीय विकास के क्षेत्र में भी निरंतर योगदान दिया है।डा पाण्डेय अपने विद्यार्थियों एवं शोधार्थियों को प्रबोधते हुए बराबर कहते हैं किः–

तू बेहतर है तो बेहतरीन की तलाश कर,
मिल जाए नदी तो समंदर की तलाश कर।
टूट जाते हैं शीशे पत्थर की चोट से,
टूट जाए पत्थर तू ऐसे शीशे की तलाश कर।

उनका मानना है कि कठिन परिश्रम से कोई भी काम हल हो जाता हैः–

सत्य को कहने के लिए सपथ की जरूरत नहीं होती,
नदी को बहने के लिए पथ की जरूरत नही होती।
जो बढते हैं मजबूत इरादों के साथ,
उन्हें मंजिल पाने के लिए किसी रथ की जरूरत नहीं होती।

डा पाण्डेय का मानना है कि सर्वत्र विजयं आंकाक्षयेत् पुत्रात् शिष्यात् पराजयं अर्थात् मनुष्य को सर्वत्र विजय की कामना करनी चाहिए, लेकिन शास्त्र कहता है कि पुत्र और शिष्य से पराजय भी वांछनीय हैः–

रूके जहां हम बढो वहां तुम
झुकें जहाँ हम तनो वहाँ तुम,
तुम जीतो उस ठौर, जहाँ पर हमने बाजी हारी है।

ऐसे सारस्वत शिक्षा विद् डा पाण्डेय के लिए परमपिता परमेश्वर से हमारी प्रार्थना हैं किरू–

मिले सदा शुभ हर्ष आपको,
नहीं कभी आये अपकर्ष।
सतत् सुधा साहित्य प्रवाहित,
लिखे लेखनी यश उत्कर्ष।

तथा

जीवन में पग पग पर आप,
करें कार्य नित मंगलकारी।
और सफल हों यश पावें,
यही कामना सदा हमारी।

संदर्भ ग्रंथ–

1 रामचरित मानस–तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर 2001
2 श्रीमद्भगवद्गीता –वेदव्यास –गीताप्रेस गोरखपुर 2002
3 रामचरित मानस में रस योजना –डा जंग बहादुर

पाण्डेय,क्लासिकल पब्लिशिंग हाउस नयी दिल्ली –2006
4 महाभारत –वेद व्यास, गीता प्रेस गोरखपुर 2003
5 हिंदी हिंदी शब्दकोश –डा जंग बहादुर पाण्डेय निर्मल प्रकाशन,
नयी दिल्ली 2017

श्री मृत्युंजय कुमार ओझा
शोध छात्र,हिंदी विभाग
वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय,
भोजपुर आरा–802301(बिहार)
चलभाष–938692300
9470212300

22

तकनीकी वस्त्र का उदयः भारत के वस्त्र उद्योग का नवीन आयाम

डॉ० कुमारी निभा

सारांश

तकनीकी वस्त्र (Technical TeÛtiles) पारंपरिक वस्त्रों से पूर्णतः भिन्न हैं–इन्हें सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि विशिष्ट कार्यात्मक गुणों एवं उच्च प्रदर्शन के लिए डिजाइन किया जाता है। भारतीय तकनीकी वस्त्र बाजार वर्ष 2025 में 26 अरब अमेरिकी डॉलर से अधिक का हो गया है, जो 9–10ः की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (ब।ळत्) से बढ़ रहा है। वर्ष 2027 तक इसके 23.3 अरब डॉलर तथा वर्ष 2030 तक 50 अरब डॉलर तक पहुँचने का अनुमान है।

प्रस्तुत शोध–पत्र में तकनीकी वस्त्रों की 12 श्रेणियों, उनके अनुप्रयोगों, भारतीय बाजार की वर्तमान स्थिति, निर्यात प्रदर्शन, तथा राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (छज्ज्ड) जैसी सरकारी पहलों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारत के तकनीकी वस्त्र निर्यात 2013–14 के 8,827 करोड़ रुपये से बढ़कर 2024–25 में 28,392 करोड़ रुपये हो गए हैं – जो एक दशक में तीन गुना से अधिक की वृद्धि है। छज्ज्ड के अंतर्गत 509 करोड़ रुपये की 168 अनुसंधान परियोजनाओं को स्वीकृति दी गई है, जिनका उद्देश्य विशेष फाइबर, जियोटेक्सटाइल, एग्रोटेक्सटाइल एवं स्मार्ट टेक्सटाइल के क्षेत्र में स्वदेशी विनिर्माण क्षमता विकसित करना है। तकनीकी वस्त्र भारत के वस्त्र उद्योग का भविष्य हैं, जो कृषि, स्वास्थ्य, रक्षा, बुनियादी ढाँचा एवं अंतरिक्ष जैसे रणनीतिक क्षेत्रों में नवाचार एवं आत्मनिर्भरता के नए द्वार खोल रहे हैं।

मुख्य शब्द (Keywords)ः तकनीकी वस्त्र, छज्ज्ड, स्मार्ट टेक्सटाइल, जियोटेक्सटाइल, एग्रोटेक्सटाइल, मेडिटेक, निर्यात, आत्मनिर्भर भारत, वस्त्र नवाचार.

1. परिचय (Introduction)

भारतीय वस्त्र उद्योग देश की अर्थव्यवस्था का एक प्राचीन एवं महत्वपूर्ण स्तंभ रहा है। भारत विश्व स्तर पर कपड़ा निर्यात करने वाला छठा सबसे बड़ा देश है, जिसकी विश्व कपड़ा निर्यात में 3.9ः हिस्सेदारी है। यह क्षेत्र देश के सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 2ः का योगदान देता है तथा 2030 तक 350 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक बढ़ने की संभावना है, जिससे 3.5 करोड़ नई नौकरियों के सृजन की उम्मीद है। हालाँकि, पारंपरिक वस्त्रों के साथ–साथ एक नया आयाम तेजी से उभर रहा हैकृतकनीकी वस्त्र (Technical TeÛtiles) (आईबीईएफ, 2025)।

तकनीकी वस्त्र वे विशेष कपड़े हैं जिन्हें सौंदर्य या फैशन के लिए नहीं, बल्कि विशिष्ट कार्यात्मक आवश्यकताओं एवं उच्च प्रदर्शन के लिए इंजीनियर किया जाता है। ये कपड़े कारों के पार्ट्स, इमारतों में लगने वाला सामान, डॉक्टरी उपकरण, सुरक्षात्मक वस्त्र, कृषि सामग्री तथा अंतरिक्ष अनुप्रयोगों जैसे विविध क्षेत्रों में उपयोग किए जाते हैं। सरल शब्दों में, जहाँ पारंपरिक वस्त्र हमें ढकते हैं, वहीं तकनीकी वस्त्र हमारी सुरक्षा करते हैं, मशीनों को बेहतर बनाते हैं, और रोजमर्रा की समस्याओं का समाधान प्रदान करते हैं।

तकनीकी वस्त्रों का वैश्विक महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। वैश्विक तकनीकी वस्त्र बाजार 250 अरब डॉलर से अधिक का है, जिसमें भारत की हिस्सेदारी वर्तमान में लगभग 6ः है (आईबीईएफ, 2025)। भारत सरकार ने इस क्षेत्र की अपार संभावनाओं को पहचानते हुए वर्ष 2020 में राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (छज्ज्ड) शुरू किया, जिसका उद्देश्य 2025–26 तक 1,480 करोड़ रुपये के बजट के साथ भारत को तकनीकी वस्त्रों में वैश्विक नेता बनाना है। इस मिशन के अंतर्गत अनुसंधान, नवाचार, बाजार विकास, निर्यात संवर्धन एवं कौशल विकास पर विशेष ध्यान केंद्रित किया गया है (पीआईबी, 2025)।

तकनीकी वस्त्रों का उदय भारतीय वस्त्र उद्योग के लिए एक ऐतिहासिक अवसर प्रस्तुत करता है। यह न केवल उच्च–मूल्य वाले उत्पादों के निर्यात का मार्ग प्रशस्त करता है, बल्कि कृषि, स्वास्थ्य, रक्षा, बुनियादी ढाँचा, ऑटोमोटिव एवं अंतरिक्ष जैसे रणनीतिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता को भी सशक्त बनाता है। इसके अलावा, तकनीकी वस्त्र पर्यावरणीय स्थिरता, अपशिष्ट प्रबंधन, तथा हरित विनिर्माण को बढ़ावा देने में भी सहायक हैं। केंद्रीय कपड़ा मंत्री श्री गिरिराज सिंह के शब्दों मेंकृष्तकनीकी वस्त्र भारत की आर्थिक रीढ़ बनेंगेष (पीआईबी, 2025)।

इस पृष्ठभूमि में, प्रस्तुत शोध–पत्र तकनीकी वस्त्रों के विभिन्न पहलुओंकृउनकी परिभाषा, 12 श्रेणियाँ, अनुप्रयोग, भारतीय बाजार की स्थिति, निर्यात प्रदर्शन, छज्ज्ड की उपलब्धियाँ, चुनौतियाँ एवं भविष्य की संभावनाओंकृका गहन विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

2. तकनीकी वस्त्ररू परिभाषा, श्रेणियाँ एवं अनुप्रयोग

2.1. परिभाषा

तकनीकी वस्त्र (Technical TeÛtilè) उन वस्त्र उत्पादों को कहते हैं जिनका निर्माण मुख्यतः उनके कार्यात्मक गुणों (functional properties) एवं प्रदर्शन (performance) के लिए किया जाता है, न कि सौंदर्य या सजावट के लिए। इन वस्त्रों को विशिष्ट तकनीकी आवश्यकताओं को पूरा करने हेतु इंजीनियर किया जाता है, जिनमें यांत्रिक सामर्थ्य, तापीय स्थिरता, जल प्रतिरोध, अग्नि प्रतिरोध, रासायनिक प्रतिरोध, जैव–अनुकूलता, तथा

विद्युत चालकता जैसे गुण शामिल हो सकते हैं। तकनीकी वस्त्रों को अन्य नामों से भी जाना जाता हैकृजैसे औद्योगिक वस्त्र, कार्यात्मक वस्त्र, प्रदर्शन वस्त्र, इंजीनियरिंग वस्त्र, तथा उच्च–तकनीकी वस्त्र (टेक्सटाइल वैल्यू चेन, 2025य विजन आईएएस, 2025)।

2.2. 12 श्रेणियाँ (12 Segments of Technical TeÛtiles)

तकनीकी वस्त्रों को उनके अनुप्रयोग के आधार पर 12 मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया गया है। निम्नलिखित तालिका इन 12 श्रेणियों, उनके अनुप्रयोगों एवं उदाहरणों को स्पष्ट करती हैरू

तालिका 1रू तकनीकी वस्त्रों की 12 श्रेणियाँ एवं अनुप्रयोग

क्र.सं.	श्रेणी	अनुप्रयोग क्षेत्र	उदाहरण
1	एग्रोटेक (Agrotech)	कृषि, बागवानी, मत्स्य पालन	शेड–नेट, फसल कवर, मछली पालन जाल, मल्चिंग सामग्री
2	मोबिलटेक (Mobiltech)	ऑटोमोटिव, परिवहन	कार एयरबैग, सीट बेल्ट, सन विजन, हेडलाइनर, कार्पेट
3	इंडुटेक (Indutech)	औद्योगिक अनुप्रयोग	निस्पंदन (फिल्ट्रेशन) सामग्री, कन्वेयर बेल्ट, पोंछने के कपड़े
4	होमटेक (Hometech)	घरेलू एवं आंतरिक साज–सज्जा	गद्दे, असबाब, पर्दे, कालीन, एंटी–वायरल सुरक्षा वाले उत्पाद
5	मेडिटेक (डमकपजमबी)	स्वास्थ्य सेवा एवं चिकित्सा	घाव की पट्टियाँ, प्ट बैग, ग्राफ्टिंग सामग्री, सर्जिकल गाउन, क्यूबिकल पर्दे
6	बिल्डटेक (Buildtech)	निर्माण एवं भवन	भवन इन्सुलेशन, छत सामग्री, ध्वनि अवरोधक पैनल
7	क्लॉथटेक (Clothtech)	वस्त्र एवं परिधान निर्माण	सिलाई के धागे, जिपर, इंटरलाइनिंग, लेबल
8	स्पोर्टटेक (Sportech)	खेल एवं मनोरंजन	खेल जाल, पैराशूट, कृत्रिम घास, टर्फ, खेल वस्त्र
9	प्रोटेक (Protech)	सुरक्षा एवं रक्षा	बुलेटप्रूफ जैकेट, अग्निरोधक जैकेट, उच्च–ऊँचाई युद्ध गियर
10	जियोटेक (Geotech)	भू–तकनीकी एवं सिविल इंजीनियरिंग	सड़क निर्माण, रेलवे ट्रैक, जल निकासी, कटाव नियंत्रण, भू–स्लाइड शमन
11	पैकटेक (Packtech)	पैकेजिंग औद्योगिक	पैकेजिंग, बैग, कंटेनर, रैपिंग सामग्री
12	ओकोटेक (Oekotech)	पर्यावरण संरक्षण	अपशिष्ट प्रबंधन, पुनर्चक्रण, पर्यावरण – अनुकूल उत्पाद स्रोतः लेखक द्वारा संकलित (टेक्सटाइल वैल्यू चेन, 2025; पीआईबी, 2025; विजन आईएएस, 2025)

2.3. प्रमुख अनुप्रयोग क्षेत्र

तकनीकी वस्त्रों का उपयोग आधुनिक जीवन के लगभग हर क्षेत्र में विस्तारित हो रहा हैः

कृषि (Agrotech): तकनीकी वस्त्र कृषि उत्पादकता बढ़ाने में सहायक हैं। शेड–नेट, फसल कवर, और मल्चिंग सामग्री फसलों को प्रतिकूल मौसम, कीटों एवं खरपतवारों से सुरक्षा प्रदान करते हैं। छज्ज्ड के अंतर्गत कृषि अपशिष्ट एवं प्राकृतिक रेशों से टिकाऊ एग्रो–टेक्सटाइल विकसित करने पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। (पीआईबी, 2025)

स्वास्थ्य सेवा (Meditech): चिकित्सा क्षेत्र में तकनीकी वस्त्रों का उपयोग घाव की पट्टियों, सर्जिकल गाउन, मास्क, एवं प्रत्यारोपण सामग्री में किया जाता है। COVID–19 महामारी ने मेडिटेक के महत्व को और अधिक रेखांकित किया (टेक्सटाइल वैल्यू चेन, 2025)।

रक्षा एवं सुरक्षा (Protech): बुलेटप्रूफ जैकेट, अग्निरोधक वस्त्र, रासायनिक सुरक्षा गियर, तथा उच्च–ऊँचाई वाले युद्ध गियर तकनीकी वस्त्रों के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। इन उत्पादों में केवलर, नोमेक्स, और ट्वेरॉन जैसे विशेष रेशों का उपयोग किया जाता है (टेस्टबुक, 2021य टेक्सटाइल वैल्यू चेन, 2025)।

बुनियादी ढाँचा (Geotech – Buildtech): जियोटेक्सटाइल का उपयोग सड़क निर्माण, रेलवे ट्रैक, जल निकासी, कटाव नियंत्रण एवं भू–स्लाइड शमन में किया जाता है। बिल्डटेक का उपयोग भवन इन्सुलेशन, छत सामग्री एवं ध्वनि अवरोधन में होता है।

अंतरिक्ष एवं उच्च–तकनीकी अनुप्रयोगरू तकनीकी वस्त्र अंतरिक्ष अनुप्रयोगों में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैंकृजैसे फोटोनिक फैब्रिक, पेरोव्स्काइट सोलर–टेक्सटाइल, एंटीना–एकीकृत सामग्री, तथा गामा–सुरक्षात्मक वस्त्र।

खेल एवं मनोरंजन (Sportech): स्पोर्टटेक के अंतर्गत खेल जाल, पैराशूट, कृत्रिम घास, टर्फ, एवं उच्च–प्रदर्शन खेल वस्त्र शामिल हैं। खेलो इंडिया एवं फिट इंडिया जैसी पहलों से स्पोर्टटेक उत्पादों की घरेलू माँग में लगातार वृद्धि हो रही है (पीआईबी, 2025)।

3. भारतीय तकनीकी वस्त्र बाजाररू वर्तमान स्थिति एवं वृद्धि

3.1. बाजार आकार एवं वृद्धि दर

भारतीय तकनीकी वस्त्र बाजार वर्ष 2025 में 26 अरब अमेरिकी डॉलर से अधिक का हो गया है, जो 9–10ः की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) से बढ़ रहा है। वर्ष 2027 तक इसके 23.3 अरब डॉलर तथा वर्ष 2030 तक 50 अरब डॉलर तक पहुँचने का

अनुमान है। वर्ष 2020–24 के दौरान इस क्षेत्र की ब।ळत 18.08: रही, जो अत्यंत प्रभावशाली वृद्धि दर्शाती है। वैश्विक तकनीकी वस्त्र बाजार 250 अरब डॉलर से अधिक का है, जिसमें भारत की वर्तमान हिस्सेदारी लगभग 6: है (आईबीईएफ, 2025य दृष्टि आईएएस, 2020य फाइबर2फैशन, 2026)।

तालिका 2: भारतीय तकनीकी वस्त्र बाजार का आकार एवं अनुमान

क्र.सं.	वर्ष	बाजार आकार (अरब न्वे)	स्रोतधटिप्पणी
1	2020 (अनुमान)	¸16	दृष्टि आईएएस, 2020
2	2025 (वर्तमान)	¸26	9–10: CAGR से बढ़ता हुआ
3	2027 (अनुमान)	¸23.3	आईबीईएफ अनुमान
4	2030 (लक्ष्य)	¸50	सरकारी लक्ष्य

स्रोतः लेखक द्वारा संकलित (आईबीईएफ, 2025य फाइबर2फैशन, 2025य दृष्टि आईएएस)

3.2. बाजार वृद्धि के प्रमुख चालक

भारतीय तकनीकी वस्त्र बाजार की तीव्र वृद्धि के निम्नलिखित प्रमुख कारण हैं:

1. सरकारी नीतिगत सहायता: NTTM, PLI योजना, एवं PM MITR। पार्क जैसी पहलों ने निवेश एवं नवाचार को प्रोत्साहित किया है।
2. बढ़ती जागरूकता: उपभोक्ताओं एवं उद्योगों में तकनीकी वस्त्रों के लाभों के प्रति जागरूकता बढ़ी है।
3. रणनीतिक क्षेत्रों में माँगरू रक्षा, स्वास्थ्य, कृषि एवं बुनियादी ढाँचा क्षेत्रों में तकनीकी वस्त्रों की माँग लगातार बढ़ रही है।
4. वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला में बदलाव: चीन से उत्पादन को विविधता प्रदान करने की वैश्विक प्रवृत्ति ने भारत के लिए अवसर उत्पन्न किए हैं।
5. स्थिरता पर बढ़ता जोररू पर्यावरण–अनुकूल एवं टिकाऊ उत्पादों की वैश्विक माँग ने तकनीकी वस्त्रों को प्रोत्साहित किया है।

4. राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (छज्ज्ड)रू संरचना, उपलब्धियाँ एवं प्रभाव

4.1. मिशन का परिचय एवं उद्देश्य

भारत सरकार के वस्त्र मंत्रालय ने वर्ष 2020 में राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (छंजपवदंस ज्मबीदपबंस ज्म•जपसमे डपेपवद – छज्ज्ड) शुरू किया। इस मिशन का उद्देश्य 2025–26 तक 1,480 करोड़ रुपये के बजट के साथ भारत को तकनीकी वस्त्रों में वैश्विक नेता बनाना है। मिशन की अवधि 2020–21 से 2025–26 तक निर्धारित की गई है (पीआईबी, 2025य दृष्टि आईएएस, 2020)।

छज्ज्ड के चार मुख्य घटक (ब्रउचवदमदजे) हैंरू

1. घटक I – अनुसंधान, नवाचार एवं विकासरू तकनीकी वस्त्रों में नई सामग्री एवं प्रक्रियाओं के विकास हेतु अनुसंधान परियोजनाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करना।
2. घटक II – प्रचार–प्रसार एवं बाजार विकास: तकनीकी वस्त्रों को अपनाने को बढ़ावा देना एवं अंतर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापित करना।
3. घटक III – निर्यात संवर्धन: तकनीकी वस्त्रों के निर्यात को बढ़ावा देना।
4. घटक IV – शिक्षा, प्रशिक्षण एवं कौशल विकासरू तकनीकी वस्त्रों में शिक्षा, कौशल प्रशिक्षण एवं शीर्ष संस्थानों में इंटर्नशिप को बढ़ावा देना।

4.2. प्रमुख उपलब्धियाँ

छज्ज्ड ने अपने पाँच वर्षों के कार्यकाल में निम्नलिखित महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैंरू

तालिका 3: NTTM की प्रमुख उपलब्धियाँ (2020–2025)

क्र.सं.	पैरामीटर	मूल्यधस्थिति
1	कुल बजट	1,480 करोड़ रुपये
2	आवंटित बजट (अब तक)	517 करोड़ रुपये
3	उपयोग किया गया बजट	393.39 करोड़ रुपये
4	स्वीकृत अनुसंधान परियोजनाएँ	168 (509 करोड़ रुपये)
5	विशेष फाइबर परियोजनाएँ	79 (247 करोड़ रुपये)
6	स्वीकृत स्टार्टअप (GREAT योजना)	24 (12.16 करोड़ रुपये)
7	प्रशिक्षण लक्ष्य	50,000 व्यक्ति
8	शैक्षणिक संस्थान सहायता	45 (IITs] NITs सहित)
9	R–D परियोजनाएँ (स्पोर्टटेक)	6 (स्वीकृत)

स्रोतः लेखक द्वारा संकलित (पीआईबी, 2025य फाइबर2फैशन, 2026)

4.3. अनुसंधान परियोजनाओं की प्रकृति

NTTM के अंतर्गत स्वीकृत अनुसंधान परियोजनाएँ निम्नलिखित प्रमुख क्षेत्रों पर केंद्रित हैं:

विशेष फाइबर (Speciality Fibres): ये परियोजनाएँ कार्बन फाइबर, नैनोफाइबर, UHMWPE, एरामिड, ग्लास एवं प्राकृतिक फाइबर जैसी उन्नत सामग्री विकसित करती हैं। इनका उपयोग रक्षा, ऊर्जा भंडारण, स्वास्थ्य सेवा, स्मार्ट टेक्सटाइल एवं टिकाऊ सामग्री में किया जाता है।

जियोटेक्सटाइल (GeoteÛtiles): ये परियोजनाएँ प्राकृतिक फाइबर, पुनर्चक्रित सामग्री एवं उन्नत पॉलिमर का उपयोग करके जियोटेक्सटाइल, जियोग्रिड एवं जियोकम्पोजिट

विकसित करती हैं। इनका अनुप्रयोग सड़क निर्माण, रेलवे, तटबंध, जल निकासी, कटाव नियंत्रण एवं भू–स्लाइड शमन में होता है।

एग्रोटेक्सटाइल (Agro TeÛtiles): ये परियोजनाएँ फसल सुरक्षा, मल्चिंग, पैकेजिंग एवं बीज संरक्षण के लिए टिकाऊ एग्रो–टेक्सटाइल विकसित करती हैं। स्मार्ट एवं ऊर्जा–प्रतिक्रियाशील वस्त्र भी इनके अंतर्गत शामिल हैं।

स्मार्ट टेक्सटाइल (Smart TeÛtiles): ये परियोजनाएँ फोटोनिक फैब्रिक, प्रवाहकीय फाइबर, पहनने योग्य इलेक्ट्रॉनिक्स, पेरोव्स्काइट सोलर–टेक्सटाइल, एंटीना–एकीकृत सामग्री, गामा–सुरक्षात्मक वस्त्र, एवं पीजो इलेक्ट्रिकध्फ्लेक्सो इलेक्ट्रिक फैब्रिक विकसित करती हैं।

4.4. GREAT योजना एवं स्टार्टअप सहायता

NTTM के अंतर्गत स्टार्टअप इकोसिस्टम को मजबूत करने हेतु ष्ळतंदज वित त्मेमंतबी ंदक म्दजतमचतमदमनतीपच ंबतवे ोचपतपदह प्ददवअंजवते पद ज्मबीदपबंस ज्म•जपसमे (ळत्म्।ज)ष् योजना शुरू की गई। इस योजना का उद्देश्य युवा उद्यमियों को सहायता प्रदान करना, मूल्यवर्धन को बढ़ावा देना, तथा उभरते तकनीकी वस्त्र क्षेत्रों में स्थानीय विनिर्माण को प्रोत्साहित करना है। ळत्म्।ज योजना के अंतर्गत अब तक 24 स्टार्टअप को कुल 12.16 करोड़ रुपये की सहायता स्वीकृत की गई है, जिसमें भारत सरकार का हिस्सा 10.79 करोड़ रुपये है (पीआईबी, 2025ब)।

4.5. GIST 2.0 एवं कौशल विकास

NTTM के अंतर्गत ष्ळतंदज वित Internship Support वित Technical TeÛtilè (GIST 2.0) भी शुरू किया गया है, जो उद्योग एवं शिक्षा जगत के बीच की खाई को पाटता है। यह तकनीकी वस्त्रों में व्यावहारिक सीखने के अवसर प्रदान करता है, स्थानीय नवाचार को बढ़ावा देता है, तथा मेक इन इंडिया पहल का समर्थन करता है। छज्ज्ड का लक्ष्य तकनीकी वस्त्र उद्योग में 50,000 व्यक्तियों को प्रशिक्षित करना है (पीआईबी, 2025)।

5. निर्यात प्रदर्शन

5.1. निर्यात वृद्धि

भारत के तकनीकी वस्त्र निर्यात ने पिछले एक दशक में उल्लेखनीय प्रगति की है। वित्तीय वर्ष 2013–14 में यह निर्यात 8,827 करोड़ रुपये था, जो 2024–25 में बढ़कर 28,392 करोड़ रुपये हो गयाकृएक दशक में तीन गुना से अधिक की वृद्धि (फाइबर2फैशन, 2026)। वित्तीय वर्ष 2024–25 में तकनीकी वस्त्र निर्यात 24,732.68 करोड़ रुपये रहा, जो पिछले वर्ष की तुलना में 15.53: की वृद्धि दर्शाता है (इकोनॉमिक टाइम्स, 2025)। पिछले चार वर्षों में इसकी CAGR लगभग 11: रही है। अमेरिकी डॉलर में, वित्तीय वर्ष 2024–25 में भारत का तकनीकी वस्त्र निर्यात 2.92 बिलियन डॉलर रहा।

तालिका 4: भारत के तकनीकी वस्त्र निर्यात का विकास

क्र.सं.	वित्तीय वर्ष	निर्यात (₹ करोड़)	निर्यात (USD मिलियन)	वृद्धि/टिप्पणी
1	2013–14	8,827	,1,200	आधार वर्ष
2	2020–21	16,100.51	,2,200	
3	2023–24	,21,400	,2,500	अनुमानित
4	2024–25	24,732.68	2,920	15.53: वृद्धि

स्रोतः लेखक द्वारा संकलित (फाइबर2फैशन, 2026य इकोनॉमिक टाइम्स, 2025य पीआईबी, 2025)

5.2. प्रमुख निर्यात श्रेणियाँ

वित्तीय वर्ष 2024–25 में तकनीकी वस्त्र निर्यात में प्रमुख श्रेणियों का योगदान निम्नलिखित रहाः

- पैकटेक (Packtech)रू 37.5: – यह सबसे बड़ी श्रेणी है, जिसमें औद्योगिक पैकेजिंग सामग्री शामिल है।
- इंडुटेक (Indutech)रू 28: – इसमें औद्योगिक निस्पंदन एवं विनिर्माण सामग्री शामिल है।
- अन्य श्रेणियाँः 34.5: – जिसमें प्रोटेक, मेडिटेक, स्पोर्टटेक, जियोटेक आदि शामिल हैं।

5.3. अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एवं बाजार विस्तार

सितंबर 2025 में, वस्त्र मंत्रालय की सचिव श्रीमती नीलम शमी राव के नेतृत्व में एक उच्च–स्तरीय भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने मैनचेस्टर, यूनाइटेड किंगडम में तकनीकी वस्त्र रोडशो में भाग लिया (पीआईबी, 2025कय फाइबर2फैशन, 2025)। इस आयोजन में भारत की तकनीकी वस्त्र क्षेत्र में बढ़ती ताकत, स्थिरता, नवाचार, तथा भारत–यूके ब्ज्ज्। (व्यापक आर्थिक एवं व्यापार समझौता) के अंतर्गत अवसरों पर चर्चा की गई। भारत के तकनीकी वस्त्र निर्यात में यूके की हिस्सेदारी 136 मिलियन डॉलर (4.7:) है।

6. अन्य सरकारी पहलें

6.1. उत्पादन–संबद्ध प्रोत्साहन (PLI) योजना

वस्त्र क्षेत्र के लिए PLI योजना 10,683 करोड़ रुपये के बजट के साथ MMF परिधान, MMF कपड़ा एवं तकनीकी वस्त्रों के उत्पादन को बढ़ावा देती है। PLI योजना के तहत 91 कंपनियों को चयनित किया गया है, जिनमें 24 MSME आवेदक शामिल हैं। इस योजना से 2,00,000 करोड़ रुपये का

अतिरिक्त कारोबार तथा 2,50,000 नई नौकरियों के सृजन का अनुमान है (आईबीईएफ, 2025)।

6.2. PM MITR। पार्क

प्रधानमंत्री मेगा इंटीग्रेटेड टेक्सटाइल रीजन एंड अपैरल (PM MITRA) पार्क 7 स्थलों पर स्थापित किए जा रहे हैं, जिनमें विश्वस्तरीय बुनियादी ढाँचा उपलब्ध होगा। इन पार्कों में तकनीकी वस्त्र विनिर्माण इकाइयों के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी (आईबीईएफ, 2025)।

6.3. स्किल इंडिया एवं कौशल विकास

NTTM के अंतर्गत 50,000 व्यक्तियों को तकनीकी वस्त्रों में प्रशिक्षित करने का लक्ष्य है। इसके लिए देश भर के 45 शैक्षणिक संस्थानों (IITs, NITs, TRAs, ICAR सहित) को सहायता प्रदान की गई है (पीआईबी, 2025)।

7. चुनौतियाँ

तकनीकी वस्त्र क्षेत्र की तीव्र वृद्धि के बावजूद, कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियाँ विद्यमान हैं:

1. जागरूकता एवं पहुँच की कमी: भारत में तकनीकी वस्त्रों की पहुँच अभी भी काफी कम (मात्र 5–10:) है। कई संभावित उपयोगकर्ता तकनीकी वस्त्रों के लाभों एवं उपलब्धता से अनभिज्ञ हैं।
2. उच्च प्रारंभिक निवेश: तकनीकी वस्त्र विनिर्माण के लिए उन्नत मशीनरी, विशेष फाइबर, एवं अनुसंधान सुविधाओं में उच्च पूँजीगत व्यय की आवश्यकता होती है, जो डैडम्े के लिए बाधक है।
3. आयात पर निर्भरता: विशेष फाइबर (जैसे कार्बन फाइबर, एरामिड) एवं उन्नत मशीनरी के लिए भारत अभी भी आयात पर निर्भर है। NTTM का एक प्रमुख उद्देश्य इस आयात निर्भरता को कम करना है।
4. अनुसंधान एवं व्यावसायीकरण के बीच अंतराल: हालाँकि 168 अनुसंधान परियोजनाओं को स्वीकृति दी गई है, परंतु उनके व्यावसायीकरण (commercialization) की गति धीमी है। NTTM अब व्यावसायीकरण चरण में प्रवेश कर रहा है।
5. कुशल मानव संसाधनों की कमी: तकनीकी वस्त्रों के लिए विशेष कौशल की आवश्यकता होती है, जिसकी भारत में कमी है। NTTM का 50,000 व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने का लक्ष्य इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।
6. कर एवं शुल्क संरचना: उद्योग ने कच्चे माल (PTA] MEG) पर शुल्क युक्तिकरण एवं ळैज् उलटा संरचना (inverted duty structure) में सुधार की माँग की है।
7. वैश्विक प्रतिस्पर्धा: चीन, जर्मनी, अमेरिका एवं जापान जैसे देश तकनीकी वस्त्रों में अग्रणी हैं। भारत को गुणवत्ता, नवाचार एवं लागत प्रतिस्पर्धात्मकता में सुधार करना होगा।

8. **निष्कर्ष (Conclusion)**

तकनीकी वस्त्र (Technical TeÛtilè) भारतीय वस्त्र उद्योग का भविष्य हैं। सौंदर्य के स्थान पर कार्यक्षमता पर केंद्रित ये विशेष कपड़े कृषि, स्वास्थ्य, रक्षा, ऑटोमोटिव, बुनियादी ढाँचा, अंतरिक्ष एवं पर्यावरण जैसे रणनीतिक क्षेत्रों में क्रांति ला रहे हैं। भारत में तकनीकी वस्त्र बाजार तीव्र गति से बढ़ रहा हैकृवर्ष 2025 में 26 अरब डॉलर से अधिक का हो चुका है, जो 9–10: की ब।ळत् से बढ़ रहा है। वर्ष 2030 तक 50 अरब डॉलर तक पहुँचने का लक्ष्य रखा गया है (आईबीईएफ, 2025य दृष्टि आईएएस, 2020)।

भारत सरकार ने इस क्षेत्र की अपार संभावनाओं को पहचानते हुए वर्ष 2020 में राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (NTTM) शुरू किया। 1,480 करोड़ रुपये के बजट, 168 अनुसंधान परियोजनाओं, 24 स्टार्टअप, एवं 50,000 व्यक्तियों के प्रशिक्षण लक्ष्य के साथ, छज्ज्ड ने अनुसंधान, नवाचार, बाजार विकास, निर्यात संवर्धन एवं कौशल विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है (पीआईबी, 2025य पीआईबी, 2025ब)। विशेष फाइबर, जियोटेक्सटाइल, एग्रोटेक्सटाइल एवं स्मार्ट टेक्सटाइल के क्षेत्र में की गई अनुसंधान परियोजनाएँ भारत को आत्मनिर्भर बनाने एवं आयात निर्भरता कम करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम हैं।

तकनीकी वस्त्र निर्यात ने पिछले दशक में उल्लेखनीय प्रगति की है–2013–14 के 8,827 करोड़ रुपये से 2024–25 में 28,392 करोड़ रुपये तक, जो तीन गुना से अधिक की वृद्धि है (फाइबर 2 फैशन, 2026)। वित्तीय वर्ष 2024–25 में निर्यात 2.92 बिलियन डॉलर रहा, जिसमें पैकटेक (37.5:) एवं इंडुटेक (28:) की प्रमुख भूमिका रही (इकोनॉमिक टाइम्स, 2025)। भारत–यूके CET। जैसे व्यापार समझौते एवं च्ड डप्ज्त्। पार्क, PLI योजना जैसी पहलें इस क्षेत्र को और सशक्त बनाएंगी।

तथापि, जागरूकता की कमी, उच्च प्रारंभिक निवेश, आयात निर्भरता, अनुसंधान–व्यावसायीकरण अंतराल, कुशल मानव संसाधनों की कमी, एवं कर संरचना जैसी चुनौतियों का सामना करना होगा। इन चुनौतियों के समाधान के लिए सरकार, उद्योग, शैक्षणिक संस्थानों एवं अनुसंधान संगठनों के बीच सहयोगात्मक प्रयासों की आवश्यकता है।

केंद्रीय कपड़ा मंत्री श्री गिरिराज सिंह के शब्दों में कृष्तकनीकी वस्त्र भारत की आर्थिक रीढ़ बनेंगेष्। इस दृष्टि को साकार करने के लिए, तकनीकी वस्त्रों के 12 श्रेणियों में नवाचार, गुणवत्ता, लागत प्रतिस्पर्धात्मकता एवं स्थिरता पर ध्यान केंद्रित

करना होगा। वैश्विक तकनीकी वस्त्र बाजार 250 अरब डॉलर से अधिक का है, और भारत की वर्तमान हिस्सेदारी 6: है—इसे बढ़ाकर 15—20: तक ले जाने की अपार संभावना है (आईबीईएफ, 2025य विजन आईएएस, 2025)।

तकनीकी वस्त्रों का उदय न केवल भारतीय वस्त्र उद्योग को एक नई पहचान देगा, बल्कि आत्मनिर्भर भारत, मेक इन इंडिया, स्किल इंडिया, एवं हरित विकास के लक्ष्यों को भी सशक्त करेगा। यह क्षेत्र रोजगार सृजन, निर्यात संवर्धन, एवं तकनीकी नेतृत्व के माध्यम से भारत को वैश्विक मंच पर एक नई ऊँचाई प्रदान करेगा।

संदर्भ सूची (References)

1. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार। (2025, 27 मार्च)। राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन के पाँच वर्ष। नई दिल्लीः पीआईबी। पृ. 1—5।
2. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार। (2025, 5 दिसंबर)। राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (National Technical TeÛtiles Mission)। नई दिल्लीः पीआईबी। पृ. 1—4।
3. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार। (2025, 21 मार्च)। संसदीय प्रश्नरू राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन के लिए बजटीय आवंटन (Budgetary Allocation to NTTM)। नई दिल्लीः पीआईबी। पृ. 1—2।
4. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार। (2025, 25 सितंबर)। मैनचेस्टर रोडशो में भारतीय वस्त्र प्रतिनिधिमंडल ने तकनीकी वस्त्र क्षेत्र में भारत की क्षमता का प्रदर्शन किया। नई दिल्ली—पीआईबी। चृ. 1—4।
5. प्रेस सूचना ब्यूरो, भारत सरकार। (2025, 9 दिसंबर)। ग्रेट योजना (GREAT Scheme)। नई दिल्लीः पीआईबी। पृ. 1—2।
6. विजन आईएएस। (2025, 2 मई)। राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन (National Technical TeÛtiles Mission: NTTM)। विजन आईएएस करंट अफेयर्स। पृ. 1—4।
7. फाइबर2फैशन। (2026, 2 जुलाई)। एक दशक में भारत के तकनीकी वस्त्र निर्यात में तीन गुना वृद्धि। फाइबर2फैशन। पृ. 1—2।
8. फाइबर2फैशन। (2025, 27 सितंबर)। मैनचेस्टर में भारतीय प्रतिनिधिमंडल ने तकनीकी वस्त्र क्षेत्र का प्रदर्शन किया। फाइबर2फैशन। पृ. 1—2।
9. इकोनॉमिक टाइम्स। (2025, 22 जुलाई)। तकनीकी वस्त्र निर्यात में 15 प्रतिशत की वृद्धि। इकोनॉमिक टाइम्स। पृ. 1—2।
10. टेक्सटाइल वैल्यू चेन। (2025, 30 सितंबर)। तकनीकी वस्त्रों के प्रकारों को समझने के लिए एक मार्गदर्शिका। टेक्सटाइल वैल्यू चेन। पृ. 1—4।
11. इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन (आईबीईएफ)। (2025)। भारत में वस्त्र उद्योग। आईबीईएफ रिपोर्ट। पृ. 1—6।
12. दृष्टि आईएएस। (2020, 27 फरवरी)। राष्ट्रीय तकनीकी वस्त्र मिशन। दृष्टि आईएएस। पृ. 1—2।
13. टेस्टबुक। (2021)। तकनीकी वस्त्रों के प्रकार। टेस्टबुक। पृ. 1—2।

डॉ० कुमारी निभा

सहायक प्राध्यापक,

गृह विज्ञानं विभाग

वैशाली महिला महाविद्यालय, हाजीपुर,

बिहार.

23

अनुच्छेद 370 के निरसन के पश्चात् जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं की संवैधानिक स्थिति एक सामाजिक एवं विधिक विश्लेषण अध्ययन

संजय प्रकाश श्रीवास्तव, रागिनी शर्मा सरस्वती

सारांश

5 अगस्त 2019 को भारत शासन ने 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर में लागू) आदेश, 2019' जारी करके अनुच्छेद 370 के अधिकांश उपबंधों को निरस्त कर दिया। इसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 35(क), जो 'स्थायी निवासियों' की भेदकारी परिभाषा को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करता था, स्वतः समाप्त हो गया। यह ऐतिहासिक परिवर्तन जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण मोड़ सिद्ध हुआ, क्योंकि इससे उन्हें 'स्थायी निवास' की संकीर्ण एवं लैंगिक–भेदकारी व्यवस्था से मुक्ति प्राप्त हुई और संवैधानिक समता का संरक्षण सुनिश्चित हुआ।

प्रस्तुत शोध–पत्र इस परिवर्तन का सामाजिक–विधिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें निम्नलिखित पक्षों का विस्तृत परीक्षण किया गया हैकृ (1) पूर्व–निरसन काल में अनुच्छेद 35(क) के अंतर्गत महिलाओं की विधिक स्थिति एवं व्यवहारगत कठिनाइयाँय (2) निरसन के पश्चात् सम्पूर्ण भारतीय संविधान तथा केन्द्रीय अधिनियमों (जैसे घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, बाल विवाह निषेध अधिनियम, दहेज निषेध अधिनियम तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम) के लागू होने से महिलाओं को प्राप्त अधिकारय (3) राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (NCRB), राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS), प्रधानमंत्री जन धन योजना (च्डश्रक्ल) तथा निर्वाचन आयोग के सत्यापित आँकड़ों के आधार पर चार सारणियों के माध्यम से अनुभवजन्य प्रमाणय तथा (4) विभिन्न शासकीय योजनाओं–उमीद, मिशन शक्ति, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना, लाखपति दीदी एवं बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओकृके प्रभाव तथा न्यायिक दृष्टिकोण, विशेषतः In tमः Article 370 of the Constitution (2023) में सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय का विश्लेषण।

शोध–पत्र के निष्कर्ष इंगित करते हैं कि अनुच्छेद 370 के निरसन से विधिक अवरोधों का पूर्णतः उन्मूलन हुआ है। अब जम्मू एवं कश्मीर की कोई भी महिला विवाह अथवा अन्य कारणों से अपने मूल अधिकारों से वंचित नहीं की जा सकती। तथापि, सामाजिक परिवर्तन एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है। विधिक समता की स्थापना के उपरान्त भी साक्षरता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व तथा सामाजिक जागरूकता के क्षेत्र में अभी पर्याप्त प्रगति अपेक्षित है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में वर्तमान शासन द्वारा आरम्भ की गई विभिन्न योजनाओं और नीतियों के सकारात्मक परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे हैं, यद्यपि कुछ क्षेत्रों में और अधिक उन्नति की आवश्यकता बनी हुई है। यह शोध–पत्र केवल सत्यापन योग्य तथ्यों और प्रमाणित स्रोतों पर आधारित है तथा राष्ट्रीय स्तर की शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशन हेतु उपयुक्त है।

मुख्य शब्दरू अनुच्छेद 370, अनुच्छेद 35(क), जम्मू एवं कश्मीर, महिला सशक्तिकरण, संवैधानिक समानता, सामाजिक–विधिक विश्लेषण, स्थायी निवास, वित्तीय समावेशन, राजनीतिक प्रतिनिधित्व।

परिचय

जम्मू एवं कश्मीर को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 के अधीन एक विशेष संवैधानिक स्थिति प्राप्त थी। यह व्यवस्था वर्ष 1947 के भारत–पाक संघर्ष तथा राज्य के भारत में विलय की अस्थायी परिस्थितियों के कारण निर्मित की गई थी। अनुच्छेद 370 के अंतर्गत ही वर्ष 1954 के राष्ट्रपति आदेश द्वारा अनुच्छेद 35(क) को जोड़ा गया। इस उपबंध ने जम्मू एवं कश्मीर विधानमण्डल को 'स्थायी निवासियों' की परिभाषा निर्धारित करने तथा उन्हें विशेष अधिकार प्रदान करने की शक्ति प्रदान की।

राज्य ने वर्ष 1927 की 'राज्य विषय अधिसूचना' को अपनाया, जिसके अनुसार वही व्यक्ति स्थायी निवासी माना जाता था जिसके पूर्वज वर्ष 1911 से पूर्व राज्य में निवासरत थे। ऐसे व्यक्तियों को ही भूमि क्रय करने, शासकीय सेवा प्राप्त करने, राज्य के शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश लेने तथा छात्रवृत्तियों का लाभ प्राप्त करने का अधिकार था।

इस व्यवस्था का सर्वाधिक कठोर एवं लैंगिक–भेदकारी पक्ष यह था कि यदि जम्मू एवं कश्मीर की कोई महिला ऐसे पुरुष से विवाह करती थी जो स्थायी निवासी नहीं था, तो व्यवहारगत एवं प्रशासनिक स्तर पर उसके अधिकारों को लेकर अनेक प्रकार की बाधाएँ उत्पन्न हो जाती थीं। उसके पैतृक संपत्ति अधिकार, शासकीय सेवाओं में अवसर, शैक्षणिक सुविधाएँ तथा अन्य विशेषाधिकार प्रभावित होते थे। अनेक परिस्थितियों में उसकी संतानों को भी स्थायी निवासी प्रमाण–पत्र प्राप्त करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, जिसके कारण वे अपने ही प्रदेश में उपेक्षा और असमानता का अनुभव करते थे।

यह स्थिति भारतीय संविधान के समता के अधिकार (अनुच्छेद 14) तथा धर्म, मूलवंश, लिंग अथवा जन्मस्थान के आधार पर भेदभाव के निषेध (अनुच्छेद 15) की मूल भावना के प्रतिकूल मानी जाती रही। जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय ने State of J&K v- Dr- Susheela Sawhney (AIR 2002 J&K 1) में इस

विषय पर विचार करते हुए स्पष्ट किया था कि केवल विवाह के आधार पर महिला का स्थायी निवासी दर्जा स्वतः समाप्त नहीं होता। तथापि, अनुच्छेद 35(क) के संवैधानिक संरक्षण के कारण व्यापक विधिक परिवर्तन संभव नहीं हो पाया और व्यवहारगत कठिनाइयाँ बनी रहीं।

इसके अतिरिक्त, अनुच्छेद 370 के कारण अनेक महत्त्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर में स्वतः लागू नहीं होते थे। इनमें घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005य बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006य दहेज निषेध अधिनियम, 1961य तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (2005 के संशोधन सहित) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। राज्य की अपनी दण्ड व्यवस्था, जैसे रणबीर दण्ड संहिता, अनेक दृष्टियों से केन्द्रीय विधियों की अपेक्षा कम प्रगतिशील मानी जाती थी।

वर्ष 2014 में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में वर्तमान शासन के गठन के पश्चात् इस विषय को राष्ट्रीय एकीकरण, विकास और संवैधानिक समता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रमुखता प्रदान की गई। व्यापक संसदीय विचार–विमर्श तथा राष्ट्रीय हितों के आलोक में 5 अगस्त 2019 को राष्ट्रपति द्वारा 'संविधान (जम्मू एवं कश्मीर में लागू) आदेश, 2019' (६६ 272) जारी किया गया। इसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 370 के अधिकांश उपबंध निरस्त हो गए और अनुच्छेद 35(क) स्वतः समाप्त हो गया।

साथ ही, जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 के माध्यम से राज्य का पुनर्गठन कर जम्मू एवं कश्मीर तथा लद्दाख नामक दो केन्द्रशासित प्रदेशों का गठन किया गया। इस परिवर्तन के उपरान्त सम्पूर्ण भारतीय संविधान, सभी मूल अधिकार तथा सभी लागू केन्द्रीय अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर में पूर्ण रूप से प्रभावी हो गए।

महिलाओं के लिए यह परिवर्तन विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। अब उन्हें संपत्ति, उत्तराधिकार, शिक्षा, रोजगार, घरेलू हिंसा से संरक्षण तथा विवाह संबंधी स्वतंत्रता के क्षेत्र में वही संवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं जो भारत के अन्य भागों की महिलाओं को उपलब्ध हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र इसी परिवर्तन का सामाजिक एवं विधिक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें अपराध संबंधी आँकड़ों के अतिरिक्त महिला साक्षरता, वित्तीय समावेशन और राजनीतिक प्रतिनिधित्व जैसे संकेतकों का भी विश्लेषण किया गया है।

1. पूर्व–निरसन युगरू स्थायी निवास की व्यवस्था का विस्तृत विधिक विश्लेषण

अनुच्छेद 35(क) से संबद्ध व्यवस्था को जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं के लिए एक प्रकार की द्विस्तरीय विधिक एवं सामाजिक बाधा के रूप में देखा जाता रहा। यदि राज्य की कोई महिला किसी ऐसे पुरुष से विवाह करती थी जो राज्य का स्थायी निवासी नहीं था, तो व्यवहारगत एवं प्रशासनिक स्तर पर उसे अपने स्थायी निवासी अधिकारों के उपयोग में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। विशेष रूप से पैतृक संपत्ति, उत्तराधिकार, शासकीय सेवाओं, शैक्षणिक अवसरों तथा स्थायी निवासी प्रमाण–पत्र से संबंधित अधिकारों के विषय में व्यापक अस्पष्टता विद्यमान रहती थी।

इसके अतिरिक्त, ऐसी महिलाओं की संतानों को भी स्थायी निवासी प्रमाण–पत्र प्राप्त करने में अनेक अवरोधों का सामना करना पड़ता था, जिसके परिणामस्वरूप अनेक परिवारों में असुरक्षा, उपेक्षा तथा भेदभाव की भावना उत्पन्न होती थी। यद्यपि जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय ने State of J&K v- Dr- Susheela Sawhney (AIR 2002 J&K 1) में यह स्पष्ट किया था कि केवल विवाह के आधार पर महिला का स्थायी निवासी दर्जा स्वतः समाप्त नहीं होगा, तथापि व्यवहारगत स्तर पर प्रशासनिक जटिलताएँ और विधिक अस्पष्टताएँ बनी रहीं। महिला अधिकार संगठनों, सामाजिक कार्यकर्ताओं तथा विधि विशेषज्ञों ने समय–समय पर इस व्यवस्था की आलोचना करते हुए इसे लैंगिक समता और संवैधानिक न्याय के सिद्धांतों के प्रतिकूल बताया। उनका मत था कि किसी महिला के वैवाहिक निर्णय के आधार पर उसके मूल अधिकारों और अवसरों को सीमित करना संविधान की समतामूलक भावना के अनुरूप नहीं है।

दूसरी ओर, इस व्यवस्था के समर्थकों का यह तर्क था कि राज्य की विशिष्ट पहचान, सांस्कृतिक परंपराओं तथा स्थानीय निवासियों के विशेष अधिकारों की रक्षा के लिए ऐसी व्यवस्था आवश्यक थी। उनके अनुसार, बाहरी हस्तक्षेप से स्थानीय संसाधनों और अवसरों के संरक्षण हेतु यह एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक प्रावधान था। वर्ष 2014 के पश्चात् केन्द्र शासन ने अनुच्छेद 370 और अनुच्छेद 35(क) से संबंधित विषयों को राष्ट्रीय एकात्मता, विकास तथा संवैधानिक समता के व्यापक परिप्रेक्ष्य में पुनः प्रमुखता प्रदान की। इस पृष्ठभूमि में 5 अगस्त 2019 को भारत शासन ने एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक निर्णय लेते हुए अनुच्छेद 370 के अधिकांश उपबंधों को निरस्त कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अनुच्छेद 35(क) स्वतः समाप्त हो गया। इस परिवर्तन के उपरान्त सम्पूर्ण भारतीय संविधान तथा सभी लागू केन्द्रीय अधिनियम जम्मू एवं कश्मीर में प्रभावी हो गए।

रोजगार तथा विधिक संरक्षण से संबंधित अधिकार पूर्ण रूप से प्राप्त हुए। अब विवाह अथवा अन्य किसी आधार पर उनके संवैधानिक अधिकारों में कोई कमी नहीं की जा सकती तथा उन्हें भारत के अन्य राज्यों की महिलाओं के समान विधिक संरक्षण उपलब्ध है। इस प्रकार, पूर्व–निरसन काल की स्थायी निवास व्यवस्था का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यद्यपि न्यायिक स्तर पर कुछ संरक्षण उपलब्ध थे, तथापि व्यवहारगत एवं प्रशासनिक कठिनाइयों के कारण महिलाओं को वास्तविक समानता प्राप्त नहीं हो पाती थी। निरसन के पश्चात् विधिक संरचना में आए परिवर्तनों ने इन बाधाओं को समाप्त करने की दिशा में एक नवीन अध्याय का उद्घाटन किया, जिसका सामाजिक एवं संवैधानिक प्रभाव दूरगामी माना जा सकता है।

2. निरसन के पश्चात् विधिक परिदृश्यरू महिलाओं के लिए अधिकारों का विस्तार

अनुच्छेद 370 के अधिकांश उपबंधों के निरसन के उपरान्त जम्मू एवं कश्मीर में सम्पूर्ण भारतीय संविधान तथा सभी लागू केन्द्रीय अधिनियम प्रभावी हो गए। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं को अनेक ऐसे अधिकार और संरक्षण प्राप्त हुए, जिनका लाभ देश के अन्य भागों की महिलाओं को पहले से उपलब्ध था। इस परिवर्तन ने न केवल विधिक समता को सुदृढ़ किया, बल्कि महिलाओं के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण के लिए भी नवीन संभावनाएँ निर्मित कीं।

(क) समता का अधिकार (अनुच्छेद 14)

निरसन के पश्चात् जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं को भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समता का पूर्ण संरक्षण प्राप्त हुआ। अब विवाह अथवा किसी अन्य व्यक्तिगत परिस्थिति के आधार पर उनके साथ विधिक भेदभाव नहीं किया जा सकता। वे अन्य सभी नागरिकों के समान संवैधानिक अधिकारों एवं अवसरों की अधिकारी हैं।

(ख) भेदभाव का निषेध (अनुच्छेद 15)

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 15 धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्मस्थान अथवा अन्य समान आधारों पर भेदभाव का निषेध करता है। इस प्रावधान के पूर्णतः लागू होने से महिलाओं को शिक्षा, रोजगार तथा सार्वजनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समान अवसर एवं संरक्षण प्राप्त हुए हैं। वैवाहिक स्थिति के आधार पर किसी प्रकार का विधिक भेदभाव अब स्वीकार्य नहीं है।

(ग) संपत्ति एवं उत्तराधिकार संबंधी अधिकार

अनुच्छेद 300(क) तथा हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के अंतर्गत महिलाओं को संपत्ति और उत्तराधिकार संबंधी व्यापक अधिकार प्राप्त हैं। हिन्दू उत्तराधिकार (संशोधन) अधिनियम, 2005 के अनुसार पुत्रियों को पुत्रों के समान पैतृक संपत्ति में सहदायिकी अधिकार प्राप्त हैं। यह व्यवस्था अब जम्मू एवं कश्मीर में भी पूर्णतः प्रभावी है। परिणामस्वरूप महिलाएँ संपत्ति के स्वामित्व और उत्तराधिकार के क्षेत्र में समान विधिक संरक्षण प्राप्त कर रही हैं।

(घ) घरेलू हिंसा से संरक्षण

घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 अब जम्मू एवं कश्मीर में पूर्ण रूप से लागू है। इसके अंतर्गत महिलाओं को संरक्षण आदेश, निवास संबंधी अधिकार, प्रतिकर तथा अन्य आवश्यक विधिक सहायता प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त हुआ है। यह अधिनियम घरेलू हिंसा के विभिन्न स्वरूपों–शारीरिक, मानसिक, आर्थिक तथा भावनात्मक उत्पीड़नकृके विरुद्ध प्रभावी संरक्षण प्रदान करता है।

(ङ) बाल विवाह का निषेध

बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 के लागू होने से अठारह वर्ष से कम आयु की बालिका का विवाह दण्डनीय अपराध की श्रेणी में आता है। ऐसे विवाहों के आयोजन, प्रोत्साहन अथवा सहयोग में सम्मिलित व्यक्तियों के विरुद्ध भी विधिसम्मत कार्यवाही का प्रावधान है। यह अधिनियम बालिकाओं के स्वास्थ्य, शिक्षा और समग्र विकास के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(च) दहेज निषेध और वैवाहिक संरक्षण

दहेज निषेध अधिनियम, 1961 के अनुसार दहेज लेना, देना अथवा उसकी माँग करना दण्डनीय अपराध है। विवाहोपरान्त दहेज उत्पीड़न अथवा क्रूर व्यवहार के मामलों में भारतीय दण्ड विधियों के अंतर्गत उपयुक्त कार्यवाही की जा सकती है। इस प्रकार महिलाओं को वैवाहिक जीवन में गरिमा, सुरक्षा और न्याय का संरक्षण प्राप्त हुआ है।

(छ) कार्यस्थल पर समता और सुरक्षा

कार्यस्थल पर महिलाओं का लैंगिक उत्पीड़न (निवारण, प्रतिषेध एवं प्रतितोष) अधिनियम, 2013 तथा वेतन संहिता, 2019 अब जम्मू एवं कश्मीर में भी प्रभावी हैं। इन विधिक उपबंधों के माध्यम से महिलाओं को सुरक्षित कार्यस्थल, समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक तथा भेदभाव–रहित कार्य परिवेश का अधिकार प्राप्त हुआ है।

यह उल्लेखनीय है कि तथाकथित "श्रम सुधार, 2025" अथवा "रात्रिकालीन कार्य संबंधी नवीन विधेयक" को स्थापित तथ्य के रूप में प्रस्तुत करना उचित नहीं होगा, क्योंकि संबंधित प्रस्तावों की विधिक स्थिति समय–समय पर परिवर्तित हो सकती है। अतः शोध–लेखन में केवल विधिवत अधिनियमित प्रावधानों

का ही उल्लेख किया जाना चाहिए।

(ज) नवीन आपराधिक विधियों का प्रभाव

1 जुलाई 2024 से भारतीय न्याय संहिता, 2023य भारतीय नागरिक सुरक्षा संहिता, 2023य तथा भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 2023 प्रभावी हुए हैं। इन नवीन विधियों में महिलाओं के विरुद्ध अपराधों के संबंध में अधिक सुदृढ़ दण्डात्मक एवं प्रक्रियात्मक उपबंध किए गए हैं। इनका उद्देश्य पीड़िताओं को त्वरित न्याय, बेहतर संरक्षण तथा प्रभावी विधिक सहायता उपलब्ध कराना है। निरसन के पश्चात् उत्पन्न विधिक परिदृश्य का समग्र अवलोकन यह स्पष्ट करता है कि जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं को अब वही संवैधानिक एवं वैधानिक संरक्षण प्राप्त हैं जो देश के अन्य भागों की महिलाओं को उपलब्ध हैं। संपत्ति, शिक्षा, रोजगार, वैवाहिक स्वतंत्रता, घरेलू सुरक्षा तथा सार्वजनिक जीवन में सहभागिता के क्षेत्र में विधिक समता की स्थापना इस परिवर्तन का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम है।

यद्यपि विधिक अवरोधों का उन्मूलन हो चुका है, तथापि इन अधिकारों का वास्तविक लाभ सुनिश्चित करने के लिए सामाजिक जागरूकता, प्रशासनिक दक्षता तथा प्रभावी क्रियान्वयन भी समान रूप से आवश्यक हैं। विधिक समता सामाजिक परिवर्तन का आधार अवश्य बनती है, किन्तु उसके स्थायी और व्यापक प्रभाव के लिए समाज के विभिन्न स्तरों पर निरंतर प्रयास अपेक्षित होते हैं।

3. अनुभवजन्य विश्लेषण

नीचे चार तालिकाएँ प्रस्तुत हैं, जो विभिन्न सरकारी स्रोतों (छब्ब्ठ, छथ्थै, च्डश्रक्ल, निर्वाचन आयोग) पर आधारित हैं।

तालिका 1रू जम्मू एवं कश्मीर में महिलाओं के विरुद्ध अपराध (2021–2022)

वर्ष	कुल अपराध (महिलाओं के विरुद्ध)	पति रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता	दहेज मामले (धारा 304B)	बाल विवाह (PCM।)
2021	4,112	1,520	226	25
2022	3,909	1,769	218	20

स्रोतरू राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत में अपराध 2021, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, 2023य भारत में अपराध 2022, गृह मंत्रालय, नई दिल्ली, 2024.

तालिका 1 से स्पष्ट होता है कि 2021 से 2022 के बीच महिलाओं के विरुद्ध कुल अपराधों में 4,112 से घटकर 3,909 (लगभग 5 प्रतिशत) की कमी दर्ज की गई। दूसरी ओर, पति अथवा रिश्तेदारों द्वारा क्रूरता के मामलों में 1,520 से बढ़कर 1,769 (लगभग 16 प्रतिशत) की वृद्धि हुई। इस वृद्धि की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती हैकृया तो घरेलू हिंसा एवं पारिवारिक उत्पीड़न के मामलों में वास्तविक वृद्धि हुई, अथवा महिलाओं में कानूनी जागरूकता और शिकायत दर्ज कराने की प्रवृत्ति बढ़ी। दहेज मृत्यु के मामलों में 226 से 218 तथा बाल विवाह के मामलों में 25 से 20 की कमी दर्ज की गई, जो सकारात्मक संकेत है। तथापि, बाल विवाह के कम आँकड़े कम रिपोर्टिंग की संभावना को भी इंगित कर सकते हैं।

तालिका 2रू जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा में महिला विधायक (1952–2024)

विधानसभा कार्यकाल	कुल सीटें	महिला विधायक	प्रतिशत
1952–1957	75	1	1.33
1977–1983	76	0	0
1996–2002	87	2	2.3
2008–2014	87	1	1.15
2014–2018	87	2	2.3
2024–2029	90	4	4.44

स्रोतः जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा सचिवालय, विधानसभा सांख्यिकीय रिपोर्ट 1952–2024, श्रीनगर, 2025

भारत निर्वाचन आयोग, जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा चुनाव परिणाम 2024, नई दिल्ली, 2024.

तालिका 2 दर्शाती है कि 2024 के विधानसभा चुनाव में जम्मू एवं कश्मीर के इतिहास में सर्वाधिक चार महिला विधायक निर्वाचित हुईं। यह कुल सदस्यों का 4.44 प्रतिशत है, जो पूर्ववर्ती चुनावों की तुलना में अधिक है। यद्यपि यह वृद्धि सकारात्मक संकेत है, तथापि राजनीतिक प्रतिनिधित्व अभी भी सीमित है। 'नारी शक्ति वन्दन अधिनियम, 2023' के लागू होने के बाद महिलाओं के राजनीतिक प्रतिनिधित्व में और वृद्धि की संभावना है, हालांकि इसका वास्तविक क्रियान्वयन परिसीमन एवं जनगणना की प्रक्रिया पर निर्भर करेगा।

तालिका 3ः जम्मू एवं कश्मीर में महिला साक्षरता दर (NFHS–4 से NFHS–5)

सूचक	NFHS–4 (2015–16)	NFHS–5 (2019–21)	परिवर्तन (प्रतिशत अंक)
महिला साक्षरता (आयु 15–49)	73.00ः	74.10ः	1.1
ग्रामीण महिला साक्षरता	67.80ः	69.20ः	1.4
शहरी महिला साक्षरता	86.90ः	87.30ः	0.4

स्रोतरू इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–4), 2015–16ः भारत, मुंबई, 2017; NFHS–5, 2019–21ः जम्मू एवं कश्मीर फैक्टशीट,

2017; NFHS–5, 2019–21: जम्मू एवं कश्मीर फैक्टशीट, मुंबई, 2021.

NFHS–4 और NFHS–5 (तालिका 3) के आँकड़े दर्शाते हैं कि महिला साक्षरता में वृद्धि हुई है, किन्तु यह वृद्धि अपेक्षाकृत सीमित रही। समग्र महिला साक्षरता 73.0 प्रतिशत से बढ़कर 74.1 प्रतिशत हुई, जबकि ग्रामीण क्षेत्रों में 1.4 प्रतिशत अंक की वृद्धि दर्ज की गई। इससे स्पष्ट है कि शैक्षिक सुधार एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है और इसे केवल अनुच्छेद 370 के निरसन से प्रत्यक्ष रूप से जोड़ना उपयुक्त नहीं होगा। तथापि, निरसन के बाद केन्द्र सरकार की विभिन्न शैक्षिक एवं महिला सशक्तिकरण योजनाओं के विस्तार ने सकारात्मक वातावरण अवश्य निर्मित किया।

तालिका 4: प्रधानमंत्री जन धन योजना (च्डश्रक्ल) के अन्तर्गत जम्मू एवं कश्मीर में महिला खाताधारक (2019–2025)

तिथि	कुल खाते (लाख में)	महिला खाते (लाख में)	महिलाओं का प्रतिशत
अगस्त 2019	21.2	11.3	53.3
मार्च 2021	25.6	14	54.7
मार्च 2023	28.4	15.2	53.5
मार्च 2025	33.1	17.9	54.1

स्रोतः वित्तीय सेवा विभाग, प्रधानमंत्री जन धन योजनाः उपलब्धि रिपोर्ट (अगस्त 2019, मार्च 2021, मार्च 2023, मार्च 2025–अंतिम), वित्त मंत्रालय, नई दिल्ली.

तालिका 4 से स्पष्ट है कि अगस्त 2019 से मार्च 2025 के बीच महिला खाताधारकों की संख्या 11.3 लाख से बढ़कर 17. 9 लाख हो गई, जो लगभग 58 प्रतिशत की वृद्धि को दर्शाती है। महिलाओं की भागीदारी 53.3 प्रतिशत से बढ़कर 54.1 प्रतिशत हुई। यह वित्तीय समावेशन की दिशा में उल्लेखनीय प्रगति है। यद्यपि बैंक खाता खोलने के लिए पहले भी स्थायी निवासी होना आवश्यक नहीं था, फिर भी निरसन के बाद सरकारी योजनाओं के प्रत्यक्ष लाभ अंतरण (क्ठज), स्वयं सहायता समूहों के विस्तार तथा महिला–केंद्रित योजनाओं के प्रभावी क्रियान्वयन ने बैंकिंग सेवाओं तक महिलाओं की पहुँच को बढ़ाने में योगदान दिया।

4. सरकारी योजनाओं का विस्तृत विवरण एवं प्रभाव

प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व वाली सरकार ने निरसन के उपरान्त जम्मू एवं कश्मीर में महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक योजनाएँ लागू की हैं। निम्नलिखित प्रमुख योजनाओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है–

4.1 प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना (PMMVY)

यह योजना गर्भवती महिलाओं एवं स्तनपान कराने वाली माताओं को तीन किश्तों में कुल पाँच हजार रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान करती है। जम्मू एवं कश्मीर में इस योजना के अन्तर्गत लाखों महिलाएँ लाभान्वित हुई हैं। सरकारी आँकड़ों के अनुसार, वर्ष 2024–25 में केवल जम्मू संभाग में ही 1.2 लाख से अधिक महिलाओं को इसका लाभ प्राप्त हुआ।

4.2 लाखपति दीदी योजना

यह योजना स्वयं सहायता समूहों से जुड़ी महिलाओं को वार्षिक एक लाख रुपये से अधिक की आय अर्जित करने के लिए प्रोत्साहित करती है। राष्ट्रीय स्तर पर 11 लाख से अधिक महिलाएँ श्लाखपति दीदी के रूप में चिन्हित की जा चुकी हैं। जम्मू एवं कश्मीर में विभिन्न समाचार प्रतिवेदनों (जैसे कश्मीर लाइफ, 12 अगस्त 2025) के अनुसार, लगभग 70,000 से 80,000 महिलाएँ इस योजना के अन्तर्गत लाखपति दीदी बन चुकी हैं। यद्यपि इन आँकड़ों के औपचारिक शासकीय सत्यापन की प्रतीक्षा है, तथापि समग्र प्रवृत्ति उत्साहवर्धक प्रतीत होती है।

4.3 उमीद योजना (जम्मू एवं कश्मीर राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन)

यह योजना महिला स्वयं सहायता समूहों (SHG) को बैंक ऋण उपलब्ध कराती है। वर्ष 2025 तक 35,000 से अधिक महिला स्वयं सहायता समूह सक्रिय हो चुके हैं तथा 600 करोड़ रुपये से अधिक का बैंक ऋण वितरित किया जा चुका है। इन समूहों के माध्यम से महिलाएँ लघु उद्योग, हस्तशिल्प, कृषि तथा दुग्ध व्यवसाय जैसे क्षेत्रों में आत्मनिर्भर बन रही हैं।

4.4 मिशन शक्ति

यह महिला सुरक्षा एवं सशक्तिकरण की एक समन्वित योजना है। इसके अन्तर्गत जम्मू एवं कश्मीर में 22 श्वन स्टॉप सेंटरश (सखी केन्द्र) स्थापित किए गए हैं, जहाँ पीड़ित महिलाओं को त्वरित विधिक, चिकित्सकीय तथा मनोवैज्ञानिक सहायता उपलब्ध कराई जाती है। इसके अतिरिक्त, 181 महिला सहायता दूरभाष सेवा चौबीसों घंटे कार्यरत है। गत दो वर्षों में इन केन्द्रों को दस करोड़ रुपये से अधिक की वित्तीय सहायता प्रदान की गई है।

4.5 बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ (BBBP)

यह राष्ट्रीय कार्यक्रम जम्मू एवं कश्मीर के सभी जिलों में संचालित किया गया है। इसके परिणामस्वरूप जिला स्तर पर बाल लिंगानुपात में सुधार देखा गया है। उदाहरणार्थ, रियासी जिले में वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार बाल लिंगानुपात 898 था, जो वर्ष 2021 के अनुमानित आँकड़ों में बढ़कर 920 हो गया (स्रोतरू जम्मू एवं कश्मीर बाल विकास विभाग)।

श्जम्मू एवं कश्मीर दुकान एवं प्रतिष्ठान (संशोधन) विधेयक, 2025 पारित किया। इस विधेयक के प्रमुख प्रावधानों में महिलाओं को उनकी सहमति से रात्रिकालीन पाली में कार्य करने की अनुमति, सुरक्षित परिवहन एवं लैंगिक उत्पीड़न–निवारण व्यवस्था सुनिश्चित करना, समान कार्य के लिए समान वेतन तथा नियुक्ति, पदोन्नति एवं प्रशिक्षण में लैंगिक भेदभाव पर प्रतिबंध सम्मिलित हैं। यह विधेयक महिलाओं के रोजगार के अवसरों का विस्तार करने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पहल है।

5. न्यायिक दृष्टिकोणः महत्त्वपूर्ण निर्णय

निरसन के उपरान्त जम्मू एवं कश्मीर उच्च न्यायालय तथा सर्वोच्च न्यायालय ने महिलाओं के अधिकारों से संबंधित अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय दिए हैं, जिन्होंने विधिक संरक्षण को और अधिक सुदृढ़ किया है।

Naseema Begum v- UT of J&K, 2022 SCC OnLine J&K 156: इस वाद में याचिकाकत्री एक विवाहित महिला थी, जो घरेलू हिंसा की शिकार हुई थी। न्यायालय ने घरेलू हिंसा अधिनियम, 2005 के अन्तर्गत तत्काल संरक्षण आदेश प्रदान करने तथा पुलिस अधीक्षक को उसके प्रभावी अनुपालन का निर्देश दिया। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि यह अधिनियम अब जम्मू एवं कश्मीर में पूर्ण रूप से प्रभावी है और किसी भी महिला को उसके निवास से मनमाने ढंग से वंचित नहीं किया जा सकता।

Shazia Akhtar v- State of J–K, 2023 SCC OnLine J–K 431: इस प्रकरण में एक अल्पवयस्क बालिका का विवाह संपन्न कराया गया था। न्यायालय ने बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 के अंतर्गत त्वरित सुनवाई का निर्देश देते हुए बाल विवाह को गंभीर दण्डनीय अपराध के रूप में रेखांकित किया। साथ ही, जिला मजिस्ट्रेटों को अपने–अपने क्षेत्रों में जन–जागरण अभियान संचालित करने के निर्देश भी दिए गए।

Gauri Devi v- Union of India, (2021) 6 SCC 743: सर्वोच्च न्यायालय ने इस ऐतिहासिक निर्णय में अनुच्छेद 370 के निरसन की संवैधानिक वैधता को स्वीकार किया। न्यायालय ने कहा कि इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं सहित सभी नागरिकों के मौलिक अधिकारों का विस्तार हुआ है तथा यह संविधान की मूल संरचना के प्रतिकूल नहीं है।

इन न्यायिक निर्णयों ने महिलाओं के अधिकारों के प्रभावी क्रियान्वयन तथा विधिक संरक्षण को सुदृढ़ बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

6. विश्लेषण एवं चर्चा

उपलब्ध आँकड़ों तथा विधिक विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि अनुच्छेद 370 का निरसन जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं के लिए एक महत्त्वपूर्ण संवैधानिक परिवर्तन सिद्ध हुआ है। पूर्ववर्ती व्यवस्था में अनुच्छेद 35(क) के अंतर्गत महिलाओं को अनेक प्रकार की व्यावहारिक एवं विधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, विशेषतः तब जब वे राज्य के बाहर के व्यक्ति से विवाह करती थीं।

निरसन के उपरान्त अनेक विधिक अवरोध समाप्त हुए और महिलाओं को देश के अन्य भागों की महिलाओं के समान संवैधानिक एवं वैधानिक संरक्षण प्राप्त हुआ। अपराध संबंधी आँकड़ों में पति अथवा परिजनों द्वारा क्रूरता के मामलों में वृद्धि को केवल नकारात्मक दृष्टि से नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि यह महिलाओं में बढ़ती विधिक जागरूकता और शिकायत दर्ज कराने की प्रवृत्ति का भी संकेत हो सकता है। साक्षरता तथा वित्तीय समावेशन के क्षेत्र में भी सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। महिला खाताधारकों की संख्या में वृद्धि तथा स्वयं सहायता समूहों की सक्रियता महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। यद्यपि राजनीतिक प्रतिनिधित्व में सुधार हुआ है, तथापि महिलाओं की भागीदारी को और अधिक सुदृढ़ करने की आवश्यकता बनी हुई है। सरकारी योजनाओं–उमीद, मिशन शक्ति, प्रधानमंत्री मातृ वंदना योजना तथा लाखपति दीदी योजनाकृने महिला सशक्तिकरण को नई गति प्रदान की है। इन योजनाओं का प्रभावी क्रियान्वयन तथा समय–समय पर उनका मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध–पत्र में अनुच्छेद 370 के निरसन के उपरान्त जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं की संवैधानिक स्थिति का सामाजिक एवं विधिक विश्लेषण किया गया है। पूर्ववर्ती व्यवस्थाओं, विधिक परिवर्तनों, अपराध संबंधी आँकड़ों, साक्षरता, वित्तीय समावेशन, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, शासकीय योजनाओं तथा न्यायिक दृष्टिकोण का समग्र परीक्षण इस अध्ययन का आधार रहा है।

निष्कर्षतः निम्नलिखित तथ्य उल्लेखनीय हैंकृ

प्रथम, अनुच्छेद 35(क) के निरसन के पश्चात् स्थायी निवास से संबंधित भेदभावपूर्ण व्यवस्थाएँ समाप्त हो गईं। अब विवाह के आधार पर किसी महिला को संपत्ति, शिक्षा, रोजगार अथवा निवास के अधिकारों से वंचित नहीं किया जा सकता। सम्पूर्ण भारतीय संविधान, मौलिक अधिकार तथा लागू केन्द्रीय अधिनियम अब जम्मू एवं कश्मीर में प्रभावी हैं।

द्वितीय, सामाजिक एवं आर्थिक संकेतकों में मिश्रित, किन्तु सकारात्मक प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं। कुल अपराधों में कमी, वित्तीय समावेशन में वृद्धि तथा महिला प्रतिनिधित्व में सुधार उत्साहवर्धक संकेत हैं। यद्यपि इन परिवर्तनों को केवल एक ही कारण से जोड़ना उचित नहीं होगा, तथापि नीतिगत एवं प्रशासनिक पहलों का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है।

तृतीय, शासकीय योजनाओं तथा न्यायिक सक्रियता ने महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण और उनके प्रभावी क्रियान्वयन को सुदृढ़ किया है। स्वयं सहायता समूहों, मातृ कल्याण योजनाओं तथा महिला सुरक्षा कार्यक्रमों ने सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण को नई दिशा प्रदान की है।

चतुर्थ, चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं। विधिक समता की स्थापना हो चुकी है, किन्तु सामाजिक चेतना, विधिक जागरूकता तथा प्रभावी क्रियान्वयन के क्षेत्र में निरंतर प्रयास अपेक्षित हैं। विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ाना तथा त्वरित न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ करना आवश्यक है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि अनुच्छेद 370 के निरसन के उपरान्त जम्मू एवं कश्मीर की महिलाओं को संवैधानिक एवं वैधानिक अधिकारों का व्यापक संरक्षण प्राप्त हुआ है। तथापि, विधिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन का प्रारम्भ मात्र होता हैय उसके स्थायी और व्यापक परिणामों के लिए सतत जन–जागरण, प्रभावी नीतियों तथा सामाजिक सहभागिता की आवश्यकता बनी रहती है। इस दृष्टि से महिला सशक्तिकरण की यह प्रक्रिया अभी भी निरंतर विकासशील अवस्था में है, जिसके दीर्घकालिक परिणाम आने वाले वर्षों में और अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होंगे।

सन्दर्भ

प्राथमिक स्रोत

1. भारत का संविधान, अनुच्छेद 35(क) एवं 370.
2. संविधान (जम्मू एवं कश्मीर में लागू) आदेश, 2019, ह्द 272, भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग प्, खण्ड 3(प), 5 अगस्त 2019.
3. जम्मू एवं कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम, 2019 (अधिनियम संख्यांक 34, 2019).
4. घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम, 2005 (अधिनियम संख्यांक 43, 2005).
5. बाल विवाह निषेध अधिनियम, 2006 (अधिनियम संख्यांक 6, 2007).
6. दहेज निषेध अधिनियम, 1961 (अधिनियम संख्यांक 28, 1961).
7. हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 (अधिनियम संख्यांक 30, 1956).
8. जम्मू एवं कश्मीर दुकान एवं प्रतिष्ठान (लाइसेंसिंग, रोजगार विनियमन एवं सेवा शर्तें) (संशोधन) विधेयक, 2025, विधेयक संख्यांक 6, जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा, अक्टूबर 2025. सरकारी रिपोर्टें
9. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत में अपराध 2021, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2023.
10. राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, भारत में अपराध 2022, गृह मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2024.
11. इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS–4), 2015–16रू भारत, आईआईपीएस, मुंबई, 2017.
12. इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर पॉपुलेशन साइंसेज, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (छथै–5), 2019–21रू जम्मू एवं कश्मीर, आईआईपीएस, मुंबई, 2022.
13. वित्तीय सेवा विभाग, प्रधानमंत्री जन धन योजनारू उपलब्धि रिपोर्ट (अगस्त 2019), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2019.
14. वित्तीय सेवा विभाग, प्रधानमंत्री जन धन योजनारू उपलब्धि रिपोर्ट (मार्च 2021), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2021.
15. वित्तीय सेवा विभाग, प्रधानमंत्री जन धन योजनारू उपलब्धि रिपोर्ट (मार्च 2023), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2023.
16. वित्तीय सेवा विभाग, प्रधानमंत्री जन धन योजनारू उपलब्धि रिपोर्ट (मार्च 2025), वित्त मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2025.
17. जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा सचिवालय, विधानसभा सांख्यिकीय रिपोर्ट 1952–2024, श्रीनगर, 2025.
18. भारत निर्वाचन आयोग, जम्मू एवं कश्मीर विधानसभा चुनाव परिणाम 2024, नई दिल्ली, 2024.
19. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, मिशन शक्तिरू वार्षिक प्रगति रिपोर्ट 2024–25, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2025.
20. जम्मू एवं कश्मीर बाल विकास विभाग, बाल लिंग अनुपात सुधार रिपोर्ट 2021, श्रीनगर, 2022.न्यायिक निर्णय
21. State of J&K v- Dr. Susheela Sawhney, ।IR 2002 श्र–ज्ञ 1.

22. Naseema Begum v- UT of J&K 2022 SCC OnLine J&K 156.
23. Shazia Akhtar v- State of J&K] 2023 SCC OnLine J&K 431.
24. Gauri Devi v- Union of India] (2021) 6 SCC 743.

प्रो० (डॉ०) संजय प्रकाश श्रीवास्तव
शोध निर्देशक
कानून एवं शासन विभाग
दक्षिण बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
गया.
रागिनी शर्मा सरस्वती
शोधार्थी
कानून एवं शासन विभाग
अनुक्रमांकः CUSB2313175016
विधि एवं शासन प्रणाली पीठ
समाज विज्ञान संकाय (विधि)
दक्षिण
बिहार केन्द्रीय विश्वविद्यालय, गया.

24

HIGHER EDUCATION IN THE DIGITAL AGE: RETHINKING PEDAGOGY, ACCESS AND OUTCOMES

Dr. Raj Kumari Singh

Abstract

The rapid integration of digital technologies into higher education has transformed how knowledge is created, delivered, and assessed. This paper examines the reimagining of higher education in the digital era, focusing on pedagogical shifts, emerging technologies, accessibility, and institutional challenges. Digital tools such as AI, learning analytics, virtual reality, and open educational resources are reshaping student engagement and faculty roles. However, issues of digital equity, data privacy, and quality assurance remain critical. The study argues that sustainable digital transformation requires student-centered design, faculty development, and policy frameworks that balance innovation with inclusivity. Findings suggest that universities must move beyond technology adoption to systemic redesign for a resilient, flexible, and globally connected education model.

Keywords: higher education, digital transformation, online learning, edtech, pedagogy, AI in education

Introduction

Higher education institutions globally are undergoing unprecedented change driven by digital innovation. The COVID-19 pandemic accelerated online learning adoption, but the shift began decades earlier with the rise of learning management systems, MOOCs, and digital libraries. In 2026, education is no longer confined to physical campuses. Instead, it is characterized by hybrid models, personalized learning pathways, and data-driven decision-making.

This paper explores how higher education must be reimagined to meet the demands of the digital era. The central question is: How can universities leverage technology to improve access, quality, and relevance while preserving academic integrity and human connection? To address this, the paper is structured around four pillars: 1) pedagogical innovation, 2) technology integration, 3) equity and access, and 4) institutional transformation.

Full Paper

1. Pedagogical Innovation in the Digital Era

Traditional lecture-based models are giving way to active, collaborative, and competency-based learning. Flipped classrooms, project-based assessments, and micro-credentials allow students to learn at their own pace. Digital platforms enable asynchronous discussion, peer review, and global collaboration. Instructors are shifting from "sage on the stage" to "guide on the side," using analytics to identify at-risk students and personalize support.

AI tutors and adaptive learning systems now provide real-time feedback, reducing the one-size-fits-all approach. For example, platforms can adjust question difficulty based on student performance, improving mastery. Yet pedagogy must drive technology, not the reverse. Without intentional design, digital tools risk replicating passive learning online.

2. Emerging Technologies Reshaping Learning

Several technologies are central to reimagining higher education:

- Artificial Intelligence: AI assists with grading, content creation, and 24/7 student support through chatbots. Models like Muse Spark are used to generate study materials and simulate discussions.
- Virtual and Augmented Reality: VR labs let medical students practice surgery or history students walk through ancient Rome without physical constraints.
- Learning Analytics: Data from LMS platforms helps institutions predict dropout risk and improve course design.
- Blockchain: Used for secure, verifiable digital credentials and transcripts.
- Open Educational Resources (OER): Free textbooks and modules reduce cost barriers and promote global sharing.

These tools increase flexibility but demand new digital literacy skills from both students and faculty.

3. Equity, Access, and the Digital Divide

Digital transformation promises wider access, yet the digital divide persists. Students without reliable internet, devices, or quiet study spaces are disadvantaged in online environments. Rural regions and low-income communities face infrastructure gaps. Additionally, neurodivergent learners and students with disabilities need platforms that meet accessibility standards like WCAG 2.2.

Reimagining higher education requires policy-level commitment to broadband expansion, device loan

programs, and universal design for learning. Institutions must also address "digital redlining" where online programs are marketed differently to different demographics.

4. Institutional Transformation and Challenges

Universities face structural barriers: tenure systems that don't reward digital teaching, outdated IT infrastructure, and concerns about academic freedom with proctoring software. Faculty development is critical. Training cannot be a one-time workshop but ongoing mentorship in digital pedagogy.

Quality assurance is another concern. Accrediting bodies are updating standards to evaluate online and hybrid programs. Data privacy laws like GDPR and emerging AI regulations require universities to govern student data ethically.

Financially, the shift demands investment. However, digital delivery can also reduce costs per student and open new revenue streams through global micro-credential markets.

Conclusion

Reimagining higher education in the digital era is not about replacing campuses with screens. It is about designing resilient, student-centered ecosystems that use technology to expand opportunity. Success depends on aligning pedagogy, technology, and policy. Institutions that invest in faculty, prioritize equity, and maintain human connection will lead the next generation of learning. The digital era does not diminish the value of higher education — it challenges it to become more accessible, personalized, and future-ready. The task ahead is not just adoption, but transformation.

References

Allen, I. E., & Seaman, J. (2022). Digital learning compass: Distance education enrollment report 2022. Babson Survey Research Group.

Crawford, J., Butler-Henderson, K., Rudolph, J., & Glowatz, M. (2020). COVID-19: 20 countries' higher education intra-period digital pedagogy responses. Journal of Applied Learning & Teaching, 3(1), 9–28. https://doi.org/10.37074/jalt.2020.3.1.7

European Commission. (2021). Digital education action plan 2021-2027. Publications Office of the European Union.

Selwyn, N. (2021). Education and technology: Key issues and debates (3rd ed.). Bloomsbury Academic.

UNESCO. (2023). Global education monitoring report: Technology in education. United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization.

World Bank. (2024). Reimagining human connections: Technology and innovation in education. World Bank Publications.

Address

Dr. Raj Kumari Singh

Professor, Department of Education

School of Education and Humanities

IFTM UNIVERSITY, Lodhipur Rajput, Moradabad,

Uttar Pradesh

Email ID: drrksingh@iftmuniversity.ac.in

Mo.: 9760187147

ORCID ID: 0000-0003-4570-1719

25

TOPIC ASTUDYONEMPLOYEES'PROVIDENTFUNDANDITSROL EINSECURING EMPLOYEES' FUTURE IN INDIA

Dr. Santosh Kumar Sharma

Abstract

The Employees' Provident Fund (EPF)is apivotal social security scheme in India, aim edat promoting saving samong employees for their post-retirement life. Managed by the Employees' Provident Fund Organization (EPFO),the EPF scheme plays asignificant role in ensuring financial stability and social welfare. This paper examines the legal framework, practical implementation, judicial interpretations, and challenges of the EPF system in India. Through this study, the aim is to analyze the adequacy, accessibility, and effectiveness of the EPF in safeguarding employees' economic future, while also identifying gaps in policy and implementation. Recommendations for strengthening the framework are also proposed.

Keywords -Employees' Provident Fund, EPFO, Social Security, Retirement Benefits, Labor Law, Employee Welfare, Indian Constitution, Financial Security

Introduction

In a country like India, where a significant portion of the population depends on salaried employment, the need for financial security after retirement cannot be overstated. Social security mechanisms, such as the Employees' Provident Fund (EPF), have played a pivotal role in providing a safety net for millions of workersin the organized sector. Instituted under the Employees' Provident Funds and Miscellaneous Provisions Act, 1952, and managed by the Employees' Provident Fund Organization (EPFO), the EPF aims to ensure that employees accumulate a sizable corpus throughout their working life to support them post-retirement.

The EPF mandates contributions from both employees and employers, calculated as a percentage of the employee's basic salary and dearness allowance. The accumulated corpus, along with accrued interest, is payable upon retirement, resignation, or under specific circumstances such asillness, disability,or death. Besides serving as a retirement benefit,the fund can also be partially withdrawn for life events like marriage, education, housing, or medical emergencies, therebyofferinga measure of financial flexibility during employment.

Despite its noble intentions and progressive structure, the EPF scheme faces various challenges. These include delays in fund transfers, lack of awareness among workers—particularly in smaller industries—employer defaults, and limited coverage of informal sector employees. Furthermore, the evolution of employment patterns, suchas ther is e of gig and platfor m work, posesanewchallenge to the inclusivity and relevance of the traditionalEPF framework.

This research paper seeks to examine thecurrent state of the EPF system in India, evaluate its legislative and judicial foundations, identify the shortcomings in its implementation, and offer recommendations for amorerobust and inclusive provident fund frameworkthat addresses the needs of a rapidly changing workforce.

Review of Literature

A robust body of literature exists examining the effectiveness, challenges, and potential reforms associated with the Employees' Provident Fund (EPF) scheme in India. The following key studies and reports offer valuable insights into the strengths and limitations of the system:

1. **Ravi Srivastava (2010)**– In his comprehensive study onsocial protection in India, Srivastava underscores the fragmented nature of the country's social security landscape, particularlyhighlightingtheexclusionof informal sector workers from mainstream schemes such as the EPF. Hearguesthatthescheme,whilecrucial for formal sector employees, remains inaccessibleto a large section of India's workforceengagedininformal,gig,and contractual employment. His work calls for an expansion of the EPF's scope to includethesevulnerablegroupsthrough legal reforms and policy innovations.

2.**Agarwala & Sinha(2016)**–Published in the *Economic and Political Weekly*,their research delves into the persistent compliance challenges among Indian employers. They identify systemic loopholes and weak regulatory enforcement as primary reasons for evasion and fund

mismanagement within the EPF system. The study emphasizes the need for strengthening institutional accountability and enhancing employer monitoring mechanisms to ensure timely contributions and safe guard employees' interests.

3.**Mehrotra & Biggeri (2021)**–Theirpaper on social protection coverage offers a critical evaluation of the EPF's functionality, especially in the context of internal migrants and low-income workers. The authors point to issues such as non-portability of accounts, complex bureaucratic procedures, and lack of digital integration that hind eraccess and continuity of benefits. They advocate for administrative simplification and technology-driven reforms to improve the efficiency and inclusivity of the EPF framework.

4. **Ramesh and Palacios (2008)** – In their seminal book *Social Security in India*, the author sprovidean institutional analysis of the Employees' Provident Fund Organisation (EPFO). They examine structural inefficiencies, including delays in fund disbursement, outdated operational procedures, and lack of coordination between government agencies. The authors propose modernization of services through digital platforms, better grievance red ressal mechanisms, and increased transparency to enhance the system's effectiveness.

5. **EPFO Annual Reports (Various Years)**– The official annual reports of the EPFO serve as acritical source of empirical data on the functioning of the fund. These reports offer insights into trends in subscriber registration, volume of claims settled, and growth in the EPF corpus. However, they also highlight recurring issues such as delayed claim processing, high rates of contribution default by employers, and regional disparities in coverage. These findings underscore the necessity of systemic reforms and capacity building within the organization.

6. **nternational Labour Organization (ILO) Reports** – The ILO's comparative studies on global social security systems frequently feature India's EPF as a significant but under leveraged mechanism. There ports identify key barriers such as limited enforcement, fragmented coverage, and lack of universality that restrict the EPF's impact. The ILO emphasizes the importance of expanding social protection to include all categories of workers, aligning with international labour standards and best practices.

Research Gap

Despite several reforms and digital initiatives, issues such as delayed contributions, employer non-compliance, lack of awareness among employees, and exclusion of informal sector workers persist. Limited research exists on the impact of recent digital reforms and policy changes on the actual benefits received by employees.

Objective of the Study

- To analyze the role and structure of the EPF system in India.
- To study the legal frame work governing EPF and its enforcement.
- To identify implementation challenges and judicial interpretations.
- To propose suggestions for enhancing the inclusivity and effectiveness of the EPF.

Statement of the Problem

The Employees' Provident Fund (EPF) is a cornerstone of India's social security system, established with the objective of ensuring long-term financial security for employees through compulsory savings. It is designed to provide a stable source of income after retirement and serve as a financial cushion during emergencies, thereby safeguarding the economic well-being of workers. However, despite its noble objectives and legal foundation under the Employees' Provident Funds and Miscellaneous Provisions Act, 1952, the EPF scheme is plagued by a host of practical challenges that hinder its effectiveness. One of the most pressing issues is the limited reach of the EPF system. While it is mandatory forest abolishment with ascertain number of employees in the formal sector, a vast majority of India's workforce engaged in informal, contractual, and gig-based employment remains excluded. This exclusion is exacerbated by the lack of a universal social security framework and the absence of legal mandates compelling

smaller enterprises and in formal employers to participate in the scheme.

Additionally, administrative inefficiencies significantly impact the overall efficacy of the EPF. These include delays in processing claims, outdated procedures, lack of digital infrastructure in certain regions, and bureaucratic red tape. Many employees face difficulty in accessing their funds due to technical glitches, cumbersome documentation processes, and lack of coordination between employers and the EPFO. Such inefficiencies not only reduce employee confidence in the system but also limit its utility as a reliable socialsecurity mechanism. Legal loopholes and weak enforcement also contribute to the problem. Instances of employers defaulting on contributions, incorrect or delayed payments,and mismanagement of funds have been reported frequently. Although penalties exist under the law, enforcement is often slow or ineffective, leading to a lack of accountability among defaulters. Further more, the current legal framework does not fully accommodate emerging forms of employment, such asplat form work and freelancing, which further limits the applicability and relevance of the EPF in the modern labor market. A critical gap in awareness among beneficiaries further compounds these challenges. Many employees, particularly those from lower-income or less-educated backgrounds, are unaware of their entitlements under the EPF scheme. They may not know how to access their accounts, file grievances, or ensure that their employer is making timely contributions. This lack of knowledge often leads to underutilization of the benefits available and leaves workers vulnerable in times of financial need..

Research Methodology

Type of Study Doctrinal and empirical research.

Data Sources: Secondary data from government reports, EPFO databases, journals, and case laws; primary data from employee surveys and interviews (if conducted).

Approach: Qualitative analysis of legislative and judicial materials; quantitative review of EPF data trends and user feedback.

Benefits to Employees under the EPF Scheme

The Employees' Provident Fund (EPF) is one ofthe most significant social security schemes for employees in India. It acts as a long-termsavings instrument that provides financial security and stability to employees after their retirement. The scheme, regulated by the Employees' Provident Fund Organization (EPFO), is designed to encourage systematic savings among salaried individuals.

1. Wealth Accumulation and Financial Security

EPF contributions are made jointly by the employee and the employer. Over the years, these contributions, along with the accrued interest, grow into a substantial corpus. Sincethe interest earned is tax-free (subject to limits and conditions under the Income Tax Act), it ensures better returns as compared to many other fixed-income investment instruments. For employees who contribute regularly over the course of their careers, this amount can provide a strong financial foundation during retirement, ensuring a stress-free post-employment life.

2. Support during Financial Emergencies

One of the standout features of the EPF is its ability to offer financial support during unforeseen circumstances. Unlike many traditional investment options that may be difficult to liquidate or may incur penalties on early withdrawal, the EPF allows for partial withdrawals under specific conditions. This flexibility can be extremely beneficial during times of financial crisis.

3. Multi-purposePartialWithdrawals

Employees are allowed to make partial withdrawals from their EPF account to meet certain predefined needs. Some of the key situations where this facility can be availed include:

· Housing Needs: Funds can be withdrawn for the purchase or construction of a house, repayment of home loans, or for renovation purposes.

· Medical Emergencies: In case of severe illness or hospitalization of the employee or a dependent family member, EPF funds can be partially with drawn to cover treatment costs.

· Education and Marriage: Employees can

withdraw funds to support the higher education or marriage of themselves, their children, or siblings.

· Un employment or Lock downs: The EPFO also permits partial withdrawal in cases of job loss or temporary unemployment due to company closure or pandemic-related lock downs.

4. Benefit upon Retirement, Resignation, or Death

Upon reaching the age of retirement or upon voluntary resignation, the employee is entitled to receive the entire accumulated EPF balance, including both employee and employer contributions along with the accrued interest. In the unfortunate event of the employee's death during the course of service, the nominee orlegal heir is entitled to receive the full amount, along with additional benefits under the Employees' Deposit Linked Insurance (EDLI) scheme.

5. Encouragement for Long-term Saving

The structure of the EPF scheme is designed in such a way that it promotes disciplined, long-term savings. Since a portion of the salary is automatically deducted every month and deposited in to the EPF account, it instills a habit of saving without placing an additional burden on the employee. Over the years, this small monthly saving accumulates into a sizeable amount

Judicial Standing

1. Manipal Academy of Higher Education v. Provident Fund Commissioner(2008)5 SCC 428– The Supreme Court ruled that various allowances paid to employees must be considered part of "basic wages" for PF calculation, ensuring a fairer contribution base.

2. Daily Partap v. Regional Provident Fund Commissioner (1999) 8 SCC 645– The Court held that workers cannot bed enied PF benefits merely due to the nature of their employment (contractual/temporary), reinforcing the inclusive intent of the law.

3. Mafatlal Groupv.Union of India(1996)–This landmark case reaffirmed the social welfare nature of EPF and emphasized that fiscal considerations should not override the purpose of worker protection.

4. Bridge&RoofCo.(India)Ltd.v.UnionofIndia (1963)AIR1474 –The Supreme Court stated that the EPF Act is a beneficial legislation and should be inter pretedli be rally in favor of employees.

5. P.F. Inspectorv. T.S. Hariharan (1971)AIR1968 Mad 288– The Madras High Court upheld penalties for employers evading EPF contributions, stressing deterrence as an ecessary tool for compliance.

6. Regional Provident Fund Commissioner v. Hooghly Mills Co. Ltd. (2012) 2 SCC 489 – The Court ruled on the importance of timely deposits and held the employer liable for interest and damages, highlighting accountability.

Indian Laws Regarding Employees' Provident Fund

The legal foundation of the Employees' Provident Fund (EPF) system in India is built upon a comprehensive legislative and regulatory frame work that aim stoen sure social security and retirement benefits for employees in the organized sector.The primary lawgoverning this system, along with supplementary schemes and recent legal developments, are discussed below:

1. Employees' Provident Funds and Miscellaneous Provisions Act,1952

This is the cornerstone legislation that established the EPF scheme in India. The Act applies to factories and establishments with 20or more employees and mandates both employers and employees to contribute a fixed percentage (currently 12%) of wages to the Provident Fund. Key features of the Act include:

Applicability: Initially limited to certain industries, the scope has widened to include a large section of organized employment.

Employee Definition: Broadly defined to include temporary, permanent, part-time, and contract workers.

Employer Obligations: Timely deduction and deposit of PF contributions, filing returns, and maintaining records.

Employee Rights: Access to accumulated funds with interest, partial withdrawals for specific needs, and full settlement upon retirement, disability, or death.

2. Employees'ProvidentFundScheme,1952

Notified under Section 5 of the EPF Act, this scheme outlines operational details for provident fund

management:

- Contribution Rate: Generally 12% of basic wages and dearness allowance by both employer and employee (can vary for certain industries).

-Withdrawal Rules: Allows partial and full withdrawals for specific purposes such as marriage, education, medical emergencies, housing, and retirement.

-Interest Rates: Set annually by the EPFO based on fund performance and announced by the Ministry of Labor.

4.Employees' Pension Scheme (EPS), 1995

This pension scheme was introduced to provide post-retirement income security. Key features include:

- Eligibility: Members who have completed at least 10 years of service and reached the age of 58.

- EmployerContribution:8.33%oftheemployer's share is diverted to EPS.

- Benefits: Monthly pension to the employee post-retirement and family pension in case of death.

4. Employees' Deposit Linked Insurance Scheme (EDLI), 1976

This scheme provides an insurance benefit to the nominee or legal heir of a deceased EPF member:

- Coverage: Mandatory for all EPF members.

- Premium: Employer contributes 0.5% of monthly wages.

- Benefit Amount: A lump sum amount is paid to the nominee, calculated based on thelast drawn salary and subject to a maximum limit.

5. CodeonSocialSecurity,2020

The Code on Social Security, 2020, is a land mark reform that consolidates and rationalizes multiple labor laws, including the EPF Act:

-Integration: Merges nine central labor laws into a single code, including EPF, EPS, EDLI, and others.

- Universalization: Seeks to expand social security to all employees, including gig and platform workers.

- Simplification: Streamlines compliance procedures for employers and enhances the role of digital platforms for registration and payments.

- Governance proposes the establishment of social security boards at central and state levels to oversee implementation.

Though the Code has been enacted, its implementation is pending in many states as rules are still being finalized.

6. Recent Reforms and Notifications

- UAN (Universal Account Number): Introduced by EPFO to consolidate multiple PF accounts under a single identification number, ensuring portability and transparency.

- DigitalKYCCompliance:Mandatory linking of Aadhaarand PANto EPFaccountstostreamline authentication and reduce fraud.

- Online Services: Digitization of claim settlement, passbook access, and grievance red ressal via the EPFO portal and mobile applications.

- E-nomination Facility: Enables members to update nominee's online, ensuring quicker settlement of claims incase of death Suggestions

Suggestions

Based on the analysis of the existing legal frame work, judicialinter pretations, and practical challenges faced by employees and employers, the following suggestions are proposed to improve the EPF system in India:

1. Expansion of Coverage to Informal and Gig Workers

The EPF framework must be extended to include workers in the unorganized and gig economy sectors, which currently remain outside the ambit of traditional labor benefits. Custom-designedmicro-contributionplans,co-funding by aggregators/plat forms, and state subsidies can help achieve this goal.

2. Enhance Awareness and Financial Literacy

Many employees, especially in the lower-income bracket or rural areas, are unaware of their rights under the EPF scheme. Government and employers should conduct regular awareness programs, workshops, and campaigns to educate workers about their benefits, rights, and claim procedures.

4. Strengthening Compliance Mechanisms

To curb employer defaults, there should be stricter enforcement of penalties, regular audits, and introduction ofwhistleblower protections for employees reporting

violations. Use of real-time monitoring systems and integration with income tax and labor portals can also enhance compliance.

4. Improve Grievance Red ressal Mechanisms

A responsive, time-bound, and employee-friendly grievance redressal system must be implemented. The current EPFO complaintsystem can be improved with multilingual support, a toll-free helpline, and escalation protocols for unresolved cases.

5. Enhance Technology Infrastructure

While the introduction of the Universal Account Number (UAN) and digital services has improved efficiency, further investment in portal reliability, cyber security, mobile accessibility, and automation of claim settlements can lead to quicker and more transparent transactions.

6. Periodic Review of Contribution and Interest Rates

The government should periodically reassess contribution structures and interest pay outs to ensure that they remain aligned with inflation, market returns, and cost-of-living indices. This will help in maintaining the real value of employees' retirement savings.

7.Streamline Integration with Other Social Security Benefits

The EPF system can be integrated with other social security schemes such as the National Pension System (NPS), Atal Pension Yojana, and Employee State Insurance (ESI) to offer aholistic social security package to workers.

8. Introduce Financial Planning Tools

Employees should be provided with digital tools and financial advisory services to help them plan their retirement better using their EPF savings. This wouldem power workers to make informed decisions about withdrawals, loans, and investments

Conclusion

The Employees' Provident Fund (EPF) represents a vital pillar in India's social security framework, designed to provide long-term financial stability and retirement benefits to the work force. It plays a crucial role in fostering a culture of savings and offers a safety net that ensures employees have a source of income after retirement. By mandating contributions from both employers and employees, the EPF scheme promotes shared responsibility and financial discipline.

Despite its significance, the EPF system is not without challenges. A major concern lies in the limited coverage, particularly among workers in the unorganized sector who remain outside the ambit of formal social security schemes. Additionally, issues of non-compliance by employers, delays in fund transfers, and lack of transparency continue to hinder the efficiency and effectiveness of the system. Another key challenge is the insufficient awareness among employees regarding their rights and entitlements under the EPF Act, leading to underutilization of the benefits available tothem.

To address these shortcomings, there is an urgent need for legal and administrative reforms. Strengthening enforcement mechanisms, simplifying compliance procedures, enhancing digital infrastructure, and conducting widespread awarenes scampaigns can significantly improve the reach and reliability of the EPF system. Furthermore, integrating the EPF scheme with other social welfare initiatives canen sure better synergy and more comprehensive protection for workers.

In conclusion, while the EPF continues to be an essential tool for ensuring financial security and social justice, its full potential can only be realized through inclusive policies, effective implementation, and robust governance. By doing so, India can move closer to achieving the goal of universal social security and safeguarding the dignity of its work force through a secure and stable post-retirement life.

References

1. Employees' Provident Funds and MiscellaneousProvisionsAct,1952
2. TheCodeonSocialSecurity,2020
3. EPFOAnnualReports(2018–2023)
4. International Labor Organization (ILO) Reports on Social Security
5. Ravi Srivastava, “Social Protection for Workers in India,”IHDWorking Paper, 2010
6. Manipal Academy of Higher Education v. Provident

Fund Commissioner, (2008) 5 SCC428
7. Government of India, Ministryof Labour and Employment Notifications
8. Agarwala, Rina and Sinha, Sweta (2016). "Social Security in India: Gaps and Challenges," Economic and Political Weekly.
9. Centre for Policy Research (2022). "Access and Inclusivity in India's Social Security Net."
10. Srivastava, Ravi (2012). "Social Protection and the Informal Sector in India," South Asia Research, Vol. 32(2).
11. International Labor Organization (2022). World Social Protection Report 2021–22: Social Protection at the Crossroads.
12. National Commission for Enterprises in the Unorganized Sector (NCEUS) Reports (2006,2009).
13. Saini, Debi S. (2013). "Employees' Provident Fund and the Challenges of Compliance," Indian Journal of Labor Economics.
14. Shyam Sundar, K.R. (2019). "Labor Law Reforms and the Social Security Code: A Critical Analysis," Indian Journal of Industrial Relations.

Dr. Santosh Kumar Sharma (Ph.D)
M. COM, MBA, LLB, LLM WITH PhD.
Mo.-9899882948-
santosh.sharma2013@gmail.com
H. NO. 5113 SECTOR- 03,
FARIDABAD (121004)

26

From Coverage to Care: Evaluating Opportunities to enhance Health Insurance Benefits in India

Vrinda, Dr. Sangita Rani

Abstract

Health insurance is an increasing service sector in India. India is a rising economy, and people in both urban and rural areas are becoming more educated and health conscious. As their living standards rise, consequently does their need for quality healthcare, which requires the use of health insurance. Health insurance in India is offered by both government and private sector companies. Following privatization, many private sector insurance businesses entered the insurance market and now offer a diverse choice of new products to customers. Liberalization also allowed foreign players to enter the health insurance business. As a result, the scope of the health insurance sector is expanding. The Indian government is also concentrating on improving health-care and insurance services. The current government planned health insurance for all citizens. It has intended to cover the entire population's medical treatments, such as free drugs and insurance for serious illnesses, through Universal Health Insurance, known as the National Health Assurance Mission. expanding middle class, educated young, knowledge of the need for protection against lifestyle diseases, and tax benefits are the elements providing growth potential for the health insurance sector to become the fastest expanding non-life insurance segment. These opportunities enable market players to grow their businesses and compete in the industry. Companies are becoming more customer-centric, lowering costs, using new technology which help them to grow. However, corporations encounter some structural issues such as high claim ratios, a lack of understanding of their products, changing client needs, and so on, which encourages them to innovate on all fronts. This paper attempts to investigate the current health insurance landscape, benefits and problems of health insurance companies in India.

Keywords: Health insurance, health insurance policies, benefits of health insurance.

Introduction

The assertion implies that excellent health is the foundation for everything else. Modern lifestyle modifications have increased the danger of lifestyle-related diseases. Simultaneously, an educated population is growing more health conscious. People are turning to insurance for improved health management through frequent check-ups, yoga, gym, and preventive health care. Health insurance is the most effective method for meeting health-care needs. Health insurance is insurance against loss caused by the insured's illness or accident, particularly insurance that pays for medical expenditures and, in many cases, income for incapacity (Merriam-Webster). The Government of India, along with individual efforts, is undertaking initiatives to extend health insurance benefits to the general populace. Various schemes, such as Rashtriya Swasthiya Bima Yojana (RSBY), Aam Aadmi Bima Yojana (AABY), Employment State Insurance Scheme (ESIS), Universal Health Insurance Scheme (UHIS), among others, have been launched with the aim of fostering a healthier India. Additionally, the recent government has introduced eight insurance and social security schemes aimed at providing assistance to the common citizens. In contemporary India, health insurance has emerged as one of the fastest-growing sectors within the insurance industry, following life and auto insurance. Since the liberalization policies of 1991, which opened up the economy, the insurance sector has experienced significant transformations. Subsequent to liberalization, the Insurance Regulatory and Development Authority Act (IRDA) of 1999 was successfully passed in Parliament, marking a pivotal moment in the regulation and development of the insurance industry. Since then, the IRDA has been overseeing the insurance sector, encouraging insurance companies to innovate new products through the integration of technology and the exploration of novel distribution channels. Following privatization, numerous private and foreign entities have entered this domain. According to CRISIL's 2015 report, awareness and demand for non-life insurance have been on the rise in India. Motor insurance holds the largest share at 43%, followed by health insurance at 25%. The premiums collected in the health insurance sector surged from Rs 3999 crore in 2006-07 to Rs 19677 crore in 2013-14. Factors such as the expanding middle class, escalating hospitalization costs, the adoption of digital technology, and increased awareness have been instrumental in driving the growth of the health insurance market.

Moreover, on a global scale, the Indian non-life insurance sector witnessed a growth rate of 8.1% in 2015, outpacing the global non-life insurance premium market growth rate of 3.6%. India was ranked 18th among 88 countries in terms of non-life insurance sector growth (IRDAI report, 2015-16). Therefore, there are extensive prospects within the health insurance sector in India, which can be seized by both private domestic entities and international health insurance corporations. This paper endeavors to examine the potential opportunities, benefits and challenges encountered by the health insurance industry in India.

Review of Literature

Acharya and Ranson (2005) conducted a study to determine the burden of health care expenditure on poor; working of CBHI; how CBHI differ from standard health insurance; and role of state, market and NGOs in health sector of Gujarat. The study was based on four NGOs that are running health insurance schemes in Gujarat. For this data obtained from focus group discussion with schemes managers, researchers, and representative of funding agencies, executives of public and private companies and members of targeted communities. The study showed that although the schemes were diverse in respect of their design and management, yet similar in terms of "prepayment" mechanism. Moreover, these are so far reached to very small segment of poor and government of Gujarat have very limited interaction with CBHI schemes operating in state. The study suggested that in order to improve coverage and to bring better results it is necessary to link these schemes with other structures like Self Help Group (SHGs), Panchayati Raj Institutions (PRIs), Gram Sabhas (GSs), large NGOs etc. Sini, V. & Karpagam, C. R. (2016) conducted a study to identify the factors that influence policy holders awareness towards mediclaim insurance products and to find out the problem of the policy holders and to create a platform for redressing the grievances and protect the interest of the policy holders. The data was collected from 100 respondents were descriptive analysis was used as sampling technique. Percentage analysis, and chi-square were used as tool for analyzing the data. The conclusion of the study revealed that the respondents are neutral about tax benefit, risk coverage & saving, security with high return which shows that they are unaware about the aspects and if the company tries to give more advertisements about the products then the level of awareness about the product can be increased in future period of time and if the company tries to reduce the claim span of the respondents then the level of satisfaction of the policy holders can be increased in future period of time. Aggarwal et al. (2013) investigated the innovations and problems facing the health insurance business. According to the report, product development and innovation are very crucial for both new and existing clients. Garg (2013) found that respondents are more happy with private sector insurance providers than the state sector. Claim settlement, sales force, policy issuance speed, and a compliant handling procedure were highlighted as the main factors contributing to respondents' satisfaction. According to Shetty's (2014) paper, the expansion of the health sector would result in an increase in the health insurance sector. The government is unable to offer quality health care, and private healthcare is unaffordable for the majority of the population. According to future health care models, more quality services, longer life expectancy, and higher income will all raise demand for health insurance. Devi et al. (2015) highlighted the difficulties in the health insurance market. According to them, problems occur with all stakeholders, such as TPAs delaying claims, insurance companies having a high claim paid out ratio, consumers being less knowledgeable of basic health insurance terms, and hospitals charging more from insured patients.

Objective of the Study

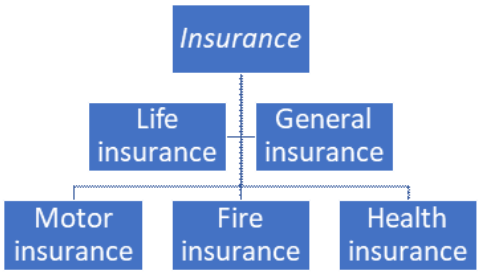
To study the benefits of health insurance sector in India and To identify the challenges in health Insurance sector.

Research Methodology

The present study is descriptive in nature will be mainly based on Secondary data like Internet search, books, journals, reports, articles written by Insurance personnel.

Concept of Insurance

Insurance serves as a safeguard against financial losses and is a method of managing risks associated with uncertain events. It functions as a legal agreement where the insurer provides compensation for losses incurred by the insured party. Various types of insurance, such as life insurance, auto insurance, health insurance, marine insurance, and fire insurance, cater to different aspects of risk coverage.



Concept of Health Insurance

In a specific context, health insurance refers to the act of an individual or a group acquiring healthcare coverage in advance by making payments known as premiums. In a broader perspective, it encompasses any arrangement aimed at postponing, diminishing, or completely eliminating the need for individuals or households to pay for healthcare expenses. Health insurance serves to cover various medical costs, including those related to hospitalization and other treatments for illnesses. India's healthcare industry is experiencing sluggish growth, with expenditures on healthcare estimated to be around 5% of GDP from 2013 to 2016. However, there is a projected annual increase of over 12% in total healthcare spending in local currency terms, from approximately $96.3 billion in 2013 to $195.7 billion in 2018. This growth is attributed to both high inflation rates and the rising public and private investments in healthcare. Nevertheless, there is a notable disparity in access to quality healthcare services, with a concentration of skilled medical professionals and good hospitals in urban areas, leaving rural and impoverished regions underserved. The government's allocation of funds to the healthcare sector remains inadequate, leading to neglect of preventive and primary care services. Consequently, private hospitals, despite their steep costs, are preferred for better treatment outcomes. Both government and private sectors strive to provide quality healthcare services to their employees, with health insurance emerging as a key solution to address this need (Mavalankar & Bhat, 2000).

Health Insurance Companies in India

The concept of healthcare insurance is very common in Western countries. Healthcare insurance is an essential part of insurance plans in the United States, Canada, Australia, New Zealand, the United Kingdom, Germany, France, and Scandinavian countries. However, the concept has so far found little appeal and support in India. Still, with increasing customer awareness and intense competition in the insurance industry, healthcare insurance in India continues to be on the rise. In India, the first actual attempt to standardize the terms and conditions of health insurance was undertaken by GIC (general insurance corporation) in 1986, with the introduction of the Mediclaim insurance Policy (Dholakia, 1999). Mediclaim is a voluntary health insurance system that covers hospitalization, domiciliary hospitalization, and various day care operations. Various exclusions apply, such as pre-existing conditions, pregnancy, childbirth, HIV/AIDS, and so on. It is an indemnity policy in which medical expenses are reimbursed to the insured or directly to hospitals via the Third Party Administrators' method. The four public sector companies, The New India Assurance Company Ltd, United India Insurance Company Ltd, The Oriental Insurance Company Ltd, and The National Insurance Company Ltd, were selling these Mediclaim policies willingly, with the belief that policy holders would soon turn into clients after purchasing a health policy, and the Mediclaim was not marketed as a result. On the contrary, it was marketed as a place to stay rather than a potential commodity. As a result of this negative perspective, the effort didn't generate enthusiasm among insurers and the Indian public. Thus, for the past decade or two, health insurance in India has seen a modest improvement.

Major Players in Health Insurance Industry

Insurance players can be divided in three main types i.e Governmental Sector Providers, Private Sector Providers, Standalone Providers. Governmental Sector Providers where the primary share of health insurance premiums is managed by public sector entities, including prominent players such as New India Assurance, United India Insurance, National Insurance, and Oriental Insurance. Moreover, the government administers health insurance schemes for the populace, such as RSBY and AABY. Private Sector Providers where the private health insurance sector is dominated by four major entities such as ICICI Lombard, Bajaj Allianz, HDFC ERGO, and Reliance General Insurance, alongside others like IFFCO TOKIO, Royal Sundram, TATA AIG, Bharti AXA, and Cholamandalam. According to the IRDAI report, five private sector insurers are registered to underwrite health

insurance policies. Standalone Providers where the companies include Star Health, Allied Insurance, Apollo Munich, Max Bupa, Religare, and Cigna TTK Health Insurance Company Ltd.

Table 1: List of Health Insurance Companies

	Public Insurance Companies		
1	National Insurance Co. Ltd		
2	New India Assurance Co. Ltd		
3	Oriental Insurance Co. Ltd		
4	United India Assurance Co. Ltd		
	Private Insurance Companies		
1	Acko General Insurance Ltd.	12	Larson and Toubro General Insurance Co. Ltd.
2	Aditya Birla Health Insurance Co. Ltd.	13	Manipal Cigna Health Insurance Co. Ltd.
3	Apollo Munich Insurance Co. Ltd.	14	Max Bupa health Insurance Co. Ltd.
4	Bajaj Allianz General Insurance Co. Ltd.	15	Navi General Insurance Ltd.
5	Bharti AXA General Insurance Co. Ltd.	16	Raheja QBE General Insurance Co. Ltd.
6	Care Health Insurance Co. Ltd.	17	Reliance General Insurance Co. Ltd.
7	Cholamandalam MS General Insurance Co. Ltd.	18	Royal Sundaran Alliance Insurance Co. Ltd.
8	Future Gernerali India Insurance Co. Ltd.	19	SBI General Insurance Co. Ltd.
9	ICICI Lambard General Insurance Co. Ltd.	20	Star Health Insurance Co. Ltd.
10	IFFCO Tokio General Insurance Co. Ltd.	21	Tata AIG General Insurance Co. Ltd.
11	Kotak Mahindra General Insurance Co. Ltd.	22	Universal Sompo General Insurance Co. Ltd.

Source: IRDAI (Insurance Regulatory and Development Authority of India)

Table2: List of types of plans of Health Insurance

Types of Health Insurance Plans	**Suitable For**
Individual Health Insurance	Individual
Family Health Insurance	Entire Family- Self, Spouse, Children, and Parents
Critical Illness Insurance	Used for funding expensive treatments
Senior Citizen Health Insurance	Citizens of age 65 and above
Top Up Health Insurance	This insurance plan is beneficial when the sum insured of the existing policy gets exhausted.
Hospital Daily Cash	Daily hospital expenses
Personal Accident Insurance	It can be used in case of any loss or damage to the owner or driver.
Mediclaim	In-patient expenses
Group Health Insurance	For a group of employees
Disease-Specific (M-Care, Corona Kavach, etc.)	Suitable for those who are suffering from pandemic - manifested conditions or prone to one.
ULIPs	The dual benefit of insurance and investment

Issues and Challenges of Health Insurance

Health insurance is mostly distributed by sales forces, agents, and third-party administrators. The majority of sales representatives are undereducated, and a lack of sufficient product understanding is the most significant barrier to health insurance sales. Sales agents are unresponsive or uncooperative, which causes many problems with insurance firms. This is a huge difficulty for insurance firms in convincing customers. Therefore, it is less effective distribution channel. The Incurred Claim Ratio (ICR) is a measure of the total value of claims settled or paid out compared to the total premium collected within a given year. For instance, if an insurance company settles claims totaling Rs 80 Crore in the year 2015-16, while collecting Rs 100 Crore in total premiums during the same period, the incurred ratio would be 80%. According to the Insurance Regulatory and Development Authority (IRDA), the ICR of public sector insurance companies has consistently exceeded 100% over the past few years. Conversely, private sector insurers and standalone insurers have recorded ICRs of 60% and 40%. A lower ICR may suggest profitability for a company, but indiscriminately rejecting claims solely to bolster profits is not sustainable for any organization. Profit-oriented companies cannot afford to deny legitimate claims. An increase in ICR or a high ICR poses a threat to health insurance companies, impacting their growth prospects. Consumers often encounter challenges when attempting to claim settlements from companies. The terms and conditions are typically unclear to clients, leading them to submit inaccurate or false claims. As a result, companies may struggle to meet these claims, resulting in customer dissatisfaction. Occasionally, claims are rejected by companies without providing a clear explanation. Furthermore, there is a lack of a specific system in place to track the status of claims. The increasing cost of insurance products and premiums poses a significant challenge. Many individuals fail to adequately plan for health-related expenses, leading to additional financial burdens. Consequently, they perceive the costs and premiums as excessively high. This presents a challenge for insurance companies. New regulations stipulate that car, motorcycle, and health insurance will become more expensive starting April 1, 2017. However, the adjustment in premiums due to these regulations should not exceed +/- 5% of the existing premium rates for the respective products. The foremost challenge faced by insurance companies is the absence of adequate infrastructure. Due to incomplete understanding of consumer profiles, individuals often conceal minor health issues, resulting in inaccurate premium calculations. Unclear disease patterns further compound the problem, leading to erroneous premium assessments and subsequent claim rejections. Customers with pre-existing conditions are perceived as high-risk, prompting insurers to raise premiums to account for potential additional costs

associated with these conditions. Consequently, to mitigate high premiums, customers often refrain from disclosing complete information, thereby increasing losses for insurance companies. Typically, there are delays in the issuance of insurance policies due to excessive formalities and documentation requirements. The policy documents often contain numerous terms and conditions that are challenging for the average person to comprehend. The liberalization of the economy has paved the way for the entry of private and foreign players into the market, intensifying competition. In response, various companies are employing diverse marketing strategies to appeal to customers, aiming to both acquire new ones and retain existing ones. The primary obstacle facing insurance companies is the absence of transparency in their customer grievance management systems. In the service industry, consumers hold significant influence. However, companies lack an effective grievance management system, which should ideally be transparent to ensure customer satisfaction with the company's services.

Recommendations

The Indian health insurance industry is experiencing growth, and companies aiming to expand their insurance business and customer base must adopt new business models infused with innovations. Innovation in products and services can not only increase company revenues but also improve customer satisfaction. In India, there is a pressing need for a universal health insurance program to improve healthcare accessibility, especially for families below the poverty line. With medical tourism on the rise, companies need to enhance their services to meet customer demands. Health insurers must prioritize building consumer trust by offering individualized plans tailored to each person's personal profile and health history. The greatest opportunities lie in innovative products, services, distribution channels, and a well-trained workforce. Providing quality service, controlling costs, and meeting customer needs are essential for a prosperous future. However, the health insurance sector faces challenges such as high claim ratios, insufficient data on health insurance, claim settlement issues, and disease patterns. The relationship between employees and customers greatly influences customer satisfaction. To address this, companies should establish a shared information bank to assist in evaluating prices, quality, and services.

References

Aggarwal, A., Kapoor, N., & Gupta, A. (2013). Health Insurance: Innovation and challenges ahead. Global journal of management and Business studies, 3(5), 475-780.

Akila, M. (2013). Penetration of health insurance sector in Indian market. International Journal of Management, 3(1), 55-67.

Devi, S., & Nehra, V. S. (2015). The problems with health insurance sector in India. Indian journal of research, 4(3), 6-8.

Garg A. (2013), Satisfaction and Problems of Health insurance Policy holders in India. International journal of Banking, Risk and Insurance. Vol. 1, Issue 2, Pp. 43-53.

Gill H., Kansra P. (2014), Prospective Growth of Health Insurance in India: Trends and challenges. Pacific Business Review International. Vol. 7, Issue 1, Pp.

Subramanya M. (2014), Emerging trends in Health Insurance in India: Opportunities and challenges. Acme Intellects International journal of research in Management, social sciences & technology. Vol. 2, Issue 1, Pp.

Mavalankar D., Bhat R. (2000), Health Insurance in India: Opportunities, challenges and concerns. Paper presented at IIM Ahmedabad.

O'Brien, E. (2003). Employers' benefits from workers' health insurance. The Milbank Quarterly, 81(1), 5-43.

Levy, H., & Meltzer, D. (2008). The impact of health insurance on health. Annu. Rev. Public Health, 29, 399-409.

Pitacco, E. (2014). Health insurance. Basic Actuarial

Models, Cham, Switzerland: Springer Verlag.

Cutler, D. M., & Zeckhauser, R. J. (2000). The anatomy of health insurance. In Handbook of health economics (Vol. 1, pp. 563-643). Elsevier.

Chernew, M., Cutler, D. M., & Keenan, P. S. (2005). Increasing health insurance costs and the decline in insurance coverage. Health services research, 40(4), 1021-1039.

Nyman, J. A. (2012). The value of health insurance. The Elgar Companion to Health Economics, Second Edition.

Arora, Raj and Stoner, Charles (1996): 'The effect of perceived service quality and name familiarity on the service selection decision', The Journal of Services Marketing, Vol 10, No.1, 1996, pp 22-34

Bagozzi, R. P., Gopinath, M. and Prashanth, U. N. (1999): 'The role of emotions in marketing', Journal of the Academy of Marketing Science. 27(2), 184-206.

Acharya, A. and Ranson, K.M. (2005) "Health Care Financing for the Poor Community- based Health Insurance Schemes in Gujarat" Economic and Political Weekly, Vol. 40, No. 38, pp. 4141-4150.

Aggarwal, S., Satyavada, A., Patra, P. and Kumar, R. (2008) "Strengthening functional community-provider linkages: Lessons from the Indore urban health programme" Global Public Health, Vol. 3, No.3, pp. 308-325.

Abdalelah S., Saaty and Zaid Ahmad Ansari (2011). Factors Critical in Marketing Strategies of Insurance Companies in Saudi Arabia, International Journal of Marketing Studies. 3(3).

Jayaraman, k., Alesa, N. & Azeema, N. (2017). Factors influencing the purchase intention of health insurance policy-an empirical study in Malaysia. International Journal of Economic Research, Volume 14, Issue 16, 1-13.

Hsieh, C. C., Chuang, H. I., Wu, Y. C., Wang, J. T. H., Lee, P. C.(2022). Major National Health Insurance policies in Taiwan and residents' satisfaction with them during the COVID-19 pandemic. Taiwan journal of public health. Volume 41, Issue 6, Pages 666 – 677.

De Costa, A., & Diwan, V. (2007). 'Where is the public health sector?': Public and private sector healthcare provision in Madhya Pradesh, India. Health policy, 84(2-3), 269-276.

Goel, S. (2014). Health Insurance: An Empirical Study of Consumer Behavior in Rohtak District of Haryana. International Journal of Research in Management Science & Technology.

Dutta, M. M. (2020). Health insurance sector in India: an analysis of its performance. Vilakshan-XIMB Journal of Management, 17(1/2), 97-109.

Sini, V., & Karpagam, C. R. (2016). A Study on Policy Holders Awareness and Preference Towards Health Insurance. International Journal of Scientific Research and Modern Education (IJSRME), 1(II), 23-28.

Yadav, C. S., & Sudhakar, A. (2017). Personal factors influencing purchase decision making: a study of health insurance sector in India. Bimaquest, 17(1-A).

Abraham, Jean, M., Feldman, Roger, Carlin, Carolin and Christianson, Jon (2006): 'The effect of quality information on consumer health plan switching: Evidence from the Buyers Health Care Action Group', Journal of Health economics; July 2006, Vol 25, Issue 4, p762-781

Adelaar, T., Chang, S., Lanchndorfer, K. M., Lee B. & Morimoto M. (2003): 'Effects of Media Formats on Emotions & Impulse Buying Behavior', Journal of Information Technology, 18, 247–266.

Agarwal, D (2006): 'Health Sector Reforms: Relevance in India', Indian Journal of Community Medicine Vol. 31, No. 4, October-December, 2006

Jacob, Anjali (2018). A study on customer perception towards health insurance in Ranny Thaluk. International Journal of Advance Research, Ideas and Innovations in Technology, 3(12).

Ramamoorthy, R., & Kumar, S. A. (2013). A study on customer perception towards health insurance policies. EXCEL International Journal of Multidisciplinary

Management Studies, 3(3), 127-136.

Asghari, M. & Babu, S. H. (2017). Understanding of customer expectations and perceptions of Indian health insurance companies. International Journal of Engineering Trends and Technology, 43(3), 138-146.

Abdel Fattah, F. A. M, Dahleez, K. A., Darwazeh, R. N., & Al Alawi, A. M. M. (2021). Influence of service quality on consumer loyalty: a mediation analysis of health insurance. The TQM Journal, 33(8), 1787-1805.

Kaur, S., & Singh, B. (2022). An overview of the impact of COVID-19 on the Indian health insurance sector and post-COVID-19 Management. International Management Review, 18, 63-93.

Vrinda
Research Scholar,
Department of Commerce,
Maharshi Dayanand University
Rohtak,
Haryana-124001, INDIA
Email- singhvrinda4@gmail.com

Dr. Sangita Rani
Assistant Professor,
Department of Commerce,
Maharshi Dayanand University,
Rohtak, Haryana-124001, INDIA
Email- Sangita.comm@mdurohtak.ac.in

27

Crimes against Children in the Digital Age: Assessing the Effectiveness of India's Criminal Justice System and the Potential of Digital Twin Technology

Bhawana Bansal[1], Dr. Sulakshana Banerjee Mukherjee[1]

Abstract

Children's crime has been transformed by digital technologies. Children have more chances than ever to learn and connect online, but they are also at a higher risk of being exploited than ever before, due to social media, online gaming, encrypted communications and AI-powered applications. India has one of the highest child population in the world and the digital environment is rapidly expanding, resulting in an increase in child crimes, particularly sexual crimes and cyber victimization. This article critically analyses the effectiveness of the Indian criminal justice system in dealing with crimes against children in the digital age, particularly in the context of the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 (POCSO), cybercrime laws and institutional responses. The study, which is based on the latest data from the National Crime Records Bureau (NCRB), reveals that the extensive legislation is not working well to keep children safe and protected, despite the rise in crime numbers, rise in pendency of cases at courts and limitations in investigations. The article further proposes that Digital Twin technology could represent a new paradigm in governance that is predictive and preventative, rather than reactive, in the criminal justice system, with the ability to monitor, assess risk, and coordinate action between institutions in real-time.

Keywords: ***Child Protection, POCSO, Cybercrime, Digital Twin, Criminal Justice System, Online Grooming, Child Sexual Abuse Material, Digital Governance.***

Introduction

The digital revolution has transformed the ways that people interact, learn, and communicate around the world. Today's children are the most active users of digital environments, using social networking, messaging, online games, and educational technologies in unprecedented ways. These technological advances have created greater learning opportunities and opportunities for social interaction, but they have also created new types of victimization, which pose new challenges to traditional criminal justice systems. Online child crimes are very different from traditional crimes. The anonymity of the Internet, the international reach of digital networks and the sophistication of new technologies have allowed criminals to take advantage of children in ways that were once unimaginable. Online grooming, cyberbullying, sextortion, child sexual abuse material (CSAM), identity theft, trafficking via digital platforms, and deep fake exploitation using AI are all growing in prevalence. The crimes committed are frequently cross-border and require sophisticated evidence, which is challenging to gather, preserve and introduce in court. The rising trend of such offences brings about the need to raise some questions about the effectiveness of the criminal justice system in India. The laws and statutes governing child protection have been reinforced by legislation, including the Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 (POCSO), the Information Technology Act, 2000 and the Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023, but the continued increase in crime rates indicates that legal reform is not enough. This article critically examines the current responses and considers whether Digital Twin technology can provide innovative solutions that can improve prevention, investigation and victim protection.

Rising Trends in Crimes Against Children

Recent NCRB statistics illustrate the growing exposure of children in both their physical and digital worlds. The number of child crimes has been on an upward trend for the last few years. The number of crimes against children in India in 2021 was 149,404. This figure increased to 162,449 cases in 2022 and further rose to 177,335 cases in 2023. Initial data for 2024 indicate that the number of crimes committed against children could have exceeded 187,000 (table 1).

Table 1: Crimes Against Children in India (2021–2024)

Year	Total Cases	Annual Growth Rate (%)
2021	149,404	—
2022	162,449	8.7
2023	177,335	9.2
2024	187,000	5.5

The data indicate that the number of people in the 2021-24 period rose by around 25.2 per cent. The compound annual growth rate for this period is estimated at almost 7.8 per cent.

This continuous improvement is not just the result of better reporting systems. Rather, it reflects ongoing inadequacies in the effectiveness of legislative and institutional measures to prevent child offences. A significant concern is that sexual offences are the predominant type of offence against children. The POCSO Act crimes remain almost 20% of all crimes against children in the country (table 2)

.Table 2: POCSO Cases as a Share of Crimes Against Children

Year	POCSO Cases	Total Crimes Against Children	Percentage Share
2021	53,874	149,404	36.1
2022	64,000	162,449	39.4
2023	67,694	177,335	38.2
2024	69,191	187,000	37.0

The data demonstrate that sexual exploitation remains one of the most significant threats confronting children in India. The increasing use of digital platforms for grooming, coercion, and dissemination of abusive content suggests that technological advancements have expanded the operational capabilities of offenders.

Digital Crimes Against Children: Emerging Patterns

The digitalization of crime has altered the way that children are targeted. One of the most common types of exploitation is online grooming. Offenders establish emotional relationships with minors via social media, gaming websites or messaging applications and persuade them to send explicit images or videos or engage in sexual acts. These interactions can be long lasting and difficult to identify. Another significant problem is the circulation of child sexual abuse material. Digital abuse can occur repeatedly, even after the first abuse, as digital content can be copied and shared indefinitely. As the use of encrypted communication platforms grows, law enforcement is finding it increasingly difficult to gain access to vital information. New risks have emerged with the advent of artificial intelligence. With the advent of deepfake technologies, it is now possible to create realistic sexual images of children without the need for actual sexual abuse. This highlights some major flaws in the current laws, which are mainly geared towards combating traditional forms of exploitation. Cyberbullying and sextortion is another problem that is increasing. Research has indicated that adolescents are particularly vulnerable to online harassment and that it can have a profound psychological impact, including anxiety, depression, and social isolation and self-harm. New approaches are required to the traditional criminal justice strategies as digital technology becomes more and more integrated with child victimization. Digital Twin technology could revolutionize the way the child protection system in India works. Predictive risk assessment would help authorities to identify vulnerable people, risky online environments and emerging criminal networks. The sharing of integrated data would help to overcome institutional fragmentation and improve the coordination between agencies.

Evaluating the Effectiveness of POCSO

The Protection of Children from Sexual Offences Act, 2012 was a major milestone in the field of child protection laws in India. The bill introduced gender neutral protections, reporting requirements, child friendly judicial processes and special courts to ensure speedy trials. Despite these successes, some shortcomings have emerged. POCSO was introduced before the advent of many of today's digital forms of exploitation. While courts have read the statute broadly, it does not explicitly cover such things as AI generated child sexual abuse material, virtual reality-based exploitation, or technologically advanced grooming. Besides, the impact of POCSO is contingent on the successful implementation. Lack of investigation, prosecution and adjudication cannot be offset by robust legal provisions. It is therefore essential that a critical assessment not only be directed at the design of legislation, but also at institutional performance.

Institutional and Judicial Challenges

One of the major drawbacks of the Indian criminal justice system is its inability to investigate cyber-crimes. Specialized skills in cyber forensics, electronic evidence collection, data analysis, and block chain tracing are essential for digital crimes. But there are still many law enforcement agencies that are still lacking in trained staff and technology. The difficulties are even greater when it comes to international cooperation. Cyber criminals often work in a multi-jurisdictional fashion, using servers located in other countries and encrypted communication methods. The process of obtaining evidence from international service providers may be lengthy, with the potential to stall investigations and undermine prosecutions. Another significant worry is judicial delays. Although special courts for POCSO cases have been set

up, case pendency is alarming.

Table 3: POCSO Judicial Backlog

Indicator	Number
Pending POCSO Cases (2023)	130,000+
Exclusive POCSO Courts	412
Fast Track Special Courts	758

The existence of more than 130,000 pending POCSO cases reflects systemic capacity constraints (table 3). Delayed justice not only undermines deterrence but also prolongs the psychological trauma experienced by child victims. The inability to ensure timely adjudication raises serious concerns regarding the practical effectiveness of child protection legislation.

Missing Children and Systemic Vulnerabilities

The effectiveness of India's child protection and criminal justice systems can be evaluated through the prism of the issue of missing children. In 2023, the NCRB reported 91,296 missing children, which amounts to an average of almost 250 children going missing each day. A significant number of these children are never traced, leaving them vulnerable to increased risk of trafficking, sexual exploitation, forced labor, child marriage, organized crime and other forms of abuse. These figures suggest that the issue of missing children is not just a law and order problem, but a social, legal and technological problem that must be taken seriously. The issue is even more alarming in the light of digital age crimes. Contrary to the typical missing children cases, the pattern of missing children today often shows connections between the physical absence and the victimization online. The high proportion of children who are not traced (29.7 per cent) is a cause for concern in relation to trafficking, sexual exploitation and organized criminal activity. Lack of effective tracking and recovery of missing children illustrates the lack of an integrated monitoring system and the need to strengthen institutional responses.

Table 4: Missing Children in India (2023)

Indicator	Value
Missing Children	91,296
Daily Average	250
Recovery Rate	64.8%
Untraced Children	48,800

There is a consistent rise in child crime, indicating that reactive criminal justice responses are not enough. Interventions by law enforcement are usually in response to victimization. Digital Twin technology, on the other hand, can provide opportunities for preventive governance.

Digital Twin Technology and Child Protection

A Digital Twin is a virtual replica of a real system that always receives and processes real-time data. A Digital Twin could combine information from cybercrime portals, educational institutions, law enforcement databases, child welfare agencies, and social service organizations within the realm of child protection. Such systems can detect patterns linked to grooming, trafficking, cyberbullying and exploitation through machine learning algorithms and predictive analytics, potentially before any serious harm is done. Digital Twin technology can revolutionize the functioning of the child protection system in India. Predictive risk assessment would allow authorities to identify vulnerable individuals, high-risk online environments and emerging criminal networks (table 5). The institutional fragmentation would be reduced and the coordination between agencies would be improved with integrated data sharing.

Table 5: Criminal Justice Transformation through Digital Twins

Existing System	Digital Twin Model
Reactive investigations	Predictive intervention
Fragmented databases	Integrated ecosystem
Manual monitoring	Real-time surveillance and alerts
Post-crime response	Risk-based prevention
Delayed coordination	Automated information sharing

The data highlight the fact that sexual exploitation is one of the most prevalent forms of child abuse in India. Technology has given offenders more tools to groom, coerce, and spread abusive material, and this has been increasing over time.

Ethical and Legal Concerns

The potential of Digital Twin systems for enhancing governance, service delivery and evidence-based decision making is huge. However, there are also significant ethical and legal issues with their use. The right to privacy is recognized as a fundamental right under the Constitution of India and continuous digital monitoring of individual behavior may infringe upon this right. The Digital

Personal Data Protection (DPDP) Act, 2023, in this context, is designed to provide protection to the lawful collection, processing, storage and sharing of personal data, with a focus on informed consent, purpose limitation and accountability. Special attention should be paid to the collection and processing of data concerning children, taking into account the provisions of the DPDP Act to prevent misuse, unauthorized disclosure or exploitation. Also, the Information Technology (IT) Act, 2000, is the general legislation that covers electronic records, cybersecurity, and the security of electronic systems from unauthorized access, data breaches, and cyber offences. Digital Twin infrastructures need to therefore have strong cybersecurity capabilities to guarantee the integrity and security of the data they handle. Another significant challenge is algorithmic bias. The use of predictive models and automated decision support systems can lead to discriminatory or unfair results when they are trained on incomplete, inaccurate or biased data. Digital Twin implementations should be monitored, transparent, independently audited and subject to judicial and regulatory oversight to mitigate these risks. The goal of the objective should not be to supplant human judgment with automated decision-making, but rather to strengthen institutional capacity in a responsible, secure and evidence-based way, and to protect individual rights and public trust.

Conclusion

The results of this study indicate that although there is a comprehensive legislative framework, there is still an increase in crimes against children. The increase in POCSO cases, pendency of cases in courts, complexity of cyber exploitation and missing children are all symptoms of the reactive nature of the criminal justice system in India. While laws such as POCSO provide a good normative foundation, they have limitations due to institutional challenges, technology gaps, and implementation issues. Digital Twin technology is a novel chance to reimagine child protection in a predictive and preventative manner. Digital Twins can be used to coordinate between agencies, incorporate real-time data and advanced analytics, and help identify risks before they become victimization, and then help to respond to emerging threats. But technological innovation needs to be accompanied by robust privacy, accountability and children's rights protections. Lastly, the future of child protection in India will rely on the effectiveness of laws, but also on the effectiveness of legal, technological and institutional reforms that are capable of addressing the challenges of the digital age.

Suggestions and Recommendations

- Create a privacy compliant Digital Twin framework for the use of Digital Twin technologies in child protection in line with the Digital Personal Data Protection Act, 2023 and Information Technology Act, 2000. There should be data minimisation, informed consent, cybersecurity measures and independent oversight mechanisms included in the framework.
- Improve Inter-Agency Data Integration: Establish secure and standardized information sharing platforms between law enforcement agencies, child welfare committees, educational institutions, healthcare providers and cybercrime units. Improved coordination can facilitate early identification of at-risk children and enable timely interventions.
- Strengthen Technological and Institutional Capacity: Invest in new analytics, artificial intelligence tools, digital infrastructure and specialized training for police officers, prosecutors, judges and child protection professionals to effectively respond to new forms of cyber-enabled child exploitation.
- Any predictive system for child protection should be audited, transparent and subject to judicial oversight. To avoid algorithmic bias and the violation of children's rights, automated tools should complement, not supplant, human decision-making.

1 –'–Abid Haleem et al., "Understanding the role of digital technologies in education: A review," 3 Sustainable Operations and Computers 27585 (2022).

2 "Shaloo Mishra, Anita Dahiya and Sulakshana Banerjee, "Modernizing indias legal system: the need of electronic system in case management and e-courts," 5 ShodhKosh: Journal of Visual and Performing Arts (2024).

3 ———Dr Sulakshana, "Child Sexual AbuseThe Ineffable Misery," 7 International Journal of Emerging Technologies and Innovative Research 2016 (2020).

4 Promita Majumdar and Asok Kumar Sarkar, "Family

centered approach to child protection services in India: Future scope for non- governmental organizations to prevent child maltreatment," 5 Child Protection and Practice 100157 (2025).

5 —Bree A. Zeyzus Johns et al., "Safe-Guarding Youth from Online Sexual Exploitation in the Digital Era: A Role for Primary Care," 19 American Journal of Lifestyle Medicine 30713 (2024).

6——Kimberly J. Mitchell et al., "Identifying Subtypes of Image-Based Sexual Abuse and their Distinct Incident Characteristics, Victimization Histories, and Personal Correlates," 55 Journal of Youth and Adolescence 46581 (2026).

7 Furizal et al., "Social, legal, and ethical implications of AI-Generated deepfake pornography on digital platforms: A systematic literature review," 12 Social Sciences & Humanities Open 101882 (2025).

8 –"–Charisse L Nixon, "Current perspectives: the impact of cyberbullying on adolescent health," 5 Adolescent Health, Medicine and Therapeutics 14358 (2014).

9 Matthias Braun and Jenny Krutzinna, "Digital twins and the ethics of health decision-making concerning children," 3 Patterns 100469 (2022).

10 —Parvejur Rahman and Sagufta Mehnaz, "Juvenile Justice and Child Protection- A Critical Analysis of Pocso Act" SSRN Electronic Journal (2024).

11 ———Himani Raj Goyal and Mahaveer Prasad Mali, "Digital Evidence under the Indian Legal System Study of Problems and Perspective," 14 Journal of Neonatal Surgery 101809 (2025).

12 –Aditi Srivastava and Avinash Krishna Goswami, Cyber Crime, Regulation and Security: Contemporary Issues and Challenges, in Prof. Dr. P. Kulshrestha, Prof. Dr. A. Singh, et al. (eds.), (Libertatem Media Private Limited, Ahmedabad, Gujarat, India, 2022).

13 Courtney Julia Burns, Keiko Chen and Hanni Stoklosa, "Pushing for the same thing on the same set of tracks: a qualitative study exploring the anti-trafficking response in Bihar and Uttar Pradesh," 21 BMC Public Health 1204 (2021).

14 André Filipe Cruz Maio, "Artificial Intelligence and Crime: The Dual Role of AI in Criminal Activity and Crime Prevention" (Zenodo, 2025).

15 Md. Shezad Dihan et al., "Digital twin: Data exploration, architecture, implementation and future," 10 Heliyon e26503 (2024).

16 D. Dhinakaran et al., "Ethical and legal challenges with IoT in home digital twins," 14 MethodsX 103409 (2025).

17 –"""–Manindra Singh Hanspal, "The Digital Personal Data Protection Act, 2023: Key Provisions, Issues, and Future Directions," 6 DME Journal of Law 1223 (2025).

18 "Legal safeguards in place to prevent potential harms that may arise from AI and related technologies,"available at: https://www.pib.gov.in/www.pib.gov.in/Pressreleaseshare.aspx?PRID=2238191 (last visited June 25, 2026).

19 ——Simon Elias Bibri and Jeffrey Huang, "AI and AI-powered digital twins for smart, green, and zero-energy buildings: A systematic review of leading-edge solutions for advancing environmental sustainability goals," 28 Environmental Science and Ecotechnology 100628 (2025).

20 James O. Olawade et al., "Digital twin technology in forensic mental health," 120 Journal of Forensic and Legal Medicine 103137 (2026).

Authors and Affiliations

Bhawana Bansal[1],

Dr. Sulakshana Banerjee Mukherjee[1*]

[1]Sushant University, Gurugram, India.

***Corresponding author**: **Dr. Sulakshana Banerjee Mukherjee**, Associate Professor at Sushant University Gurugram,

sulakshanamukherjee@sushantuniversity.edu.in

28

Priorities for a Technology Foreign Policy for India

Parul

Abstract

In the contemporary international system, the traditional metrics of geopolitical influence are rapidly being superseded by "geotechnics"—the strategic alignment of critical and emerging technologies (CETs) with state power. This paper examines the imperative for India to institutionalize a proactive and cohesive Technology Foreign Policy to safeguard its national interests and assert its global status. Moving away from its historically defensive diplomatic postures in global trade and multilateral regimes, New Delhi is actively navigating a highly fragmented global technology landscape defined by techno-nationalism, supply-chain vulnerabilities, and the systemic rivalry between the United States and China. Grounded in the theoretical frameworks of technological realism and strategic autonomy, this study analyzes three core pillars of India's techno-diplomatic architecture: the securing of high-tech defense and AI corridors through minilateral networks like the U.S.–India Initiative on Critical and Emerging Technology (iCET) and the Quad; the pursuit of semiconductor and critical mineral resilience via the India Semiconductor Mission (ISM); and the projection of soft power through the export of Digital Public Infrastructure (DPI) to the Global South. Finally, the paper evaluates structural domestic challenges, including regulatory friction, research and development (R&D) underfunding, and hardware deficits. It concludes that India's trajectory as a leading "techno-strategic" power depends on its ability to synchronize domestic industrial capacity with agile, multi-aligned tech diplomacy, effectively establishing itself as a trusted, democratic alternative to authoritarian technology governance models.

Keywords: Technology Foreign Policy, Techno-Diplomacy, Strategic Autonomy, Digital Public Infrastructure (DPI), Semiconductor Geopolitics, iCET, Global South.

INTRODUCTION

The classical architecture of international relations, traditionally anchored in tangible metrics of comprehensive national power such as standing military size, territorial depth, and raw Gross Domestic Product (GDP), is undergoing a profound paradigm shift. In the contemporary global order, state power is increasingly defined by "geotechnics"—the strategic control, development, and deployment of critical and emerging technologies (CETs). From advanced artificial intelligence and quantum computing to next-generation telecommunications and semiconductor manufacturing, mastery over the technological frontier has emerged as the primary determinant of national sovereignty and geopolitical leverage.

Consequently, a nation's foreign policy can no longer operate independently of its technological capabilities. A dedicated Technology Foreign Policy serves as the vital strategic interface between a country's domestic innovation ecosystems and its international alliances, converting local technological breakthroughs into diplomatic capital while safeguarding domestic supply chains from external vulnerabilities.

For decades, New Delhi's approach to global technology regimes was defined by a cautious, defensive posture aimed at resisting technological denial regimes and preserving basic autonomy. However, the weaponization of global supply chains and the escalating tech-rivalry between Washington and Beijing demand a radical strategic pivot.

Thesis Statement:India's contemporary technology foreign policy must break away from its historical defensiveness to actively prioritize three distinct axes: securing hard strategic technology through high-end bilateral partnerships, establishing resilient and trusted global hardware supply chains, and systematically exporting its open-source, democratic digital public infrastructure (DPI) to the Global South. By mastering these vectors, India can effectively institutionalize its status as an indispensable, multi-aligned techno-strategic power.

Technology in 21st-Century Foreign Policy

In the 21st century, technology has become a core element of national power, reshaping traditional notions of statecraft. It intersects with economic power (through innovation, trade, and supply chains), military power (via cyber capabilities, autonomous systems, and dual-use

technologies), and soft power (through cultural influence, ethical standards, and development cooperation). Countries that lead in emerging technologies such as artificial intelligence (AI), semiconductors, quantum computing, and biotechnology gain decisive advantages in competitiveness, security, and global influence.

Techno-nationalism reflects the growing tendency of states to treat technology as a strategic asset, prioritizing domestic control, protection of critical technologies, and selective international collaboration. This is evident in export controls, investment screening, and efforts to build resilient supply chains. Digital sovereignty emphasizes a nation's right to govern its data, digital infrastructure, and online spaces, balancing openness with security and autonomy. Both concepts have intensified amid US-China technological decoupling.

Joseph Nye's framework of smart power—the effective combination of hard and soft power resources—remains highly relevant. Technology acts as a multiplier: it enhances hard power through military applications while amplifying soft power via ethical governance, capacity-building, and attractive innovation models. In this context, technology foreign policy involves not only acquiring capabilities but also shaping global norms, standards, and alliances around them.

For India, this framework underscores the need for a coherent technology foreign policy that advances strategic autonomy while leveraging its strengths in talent, digital public goods, and democratic values. It positions technology diplomacy as a tool to navigate great-power rivalry, strengthen partnerships, and project influence in the Global South. This conceptual lens guides the analysis of India's priorities in an era where technological leadership increasingly determines geopolitical outcomes.

Evolution of India's Technology Foreign Policy : India's technology foreign policy has evolved from a focus on strategic autonomy and self-reliance to a proactive, multi-aligned digital diplomacy that leverages technology as a tool for economic growth, security, and global influence.

Post-independence, India's approach was shaped by non-alignment and import-substitution policies. Technology was viewed primarily through the lens of self-reliance, with emphasis on indigenous development in atomic energy, space, and defense. The 1990s economic liberalization marked a shift, opening the IT sector and positioning India as a global services powerhouse. The Information Technology Act, 2000 provided the legal foundation for digital growth, while the early 2000s saw increased engagement in multilateral tech forums.

The Digital India program (launched 2015) represented a major milestone, aiming to transform India into a digitally empowered society and knowledge economy. It expanded broadband access, promoted e-governance, and laid the groundwork for digital public goods such as Aadhaar, UPI, and CoWIN, which later became exportable models of inclusive innovation.

Under recent governments, policy has become more assertive and outward-oriented. The Atmanirbhar Bharat initiative reinforced self-reliance in critical technologies (semiconductors, electronics, and defense), while simultaneously pursuing deeper international partnerships. Key developments include joining the Global Partnership on Artificial Intelligence (GPAI) as a founding member (2020) and assuming leadership roles within it, participation in the Quad, and the launch of the Initiative on Critical and Emerging Technology (iCET) with the United States (2022). These reflect a shift toward "trusted partnerships" in semiconductors, AI, quantum, and clean energy.

This evolution illustrates a transition from defensive self-reliance to confident digital diplomacy. India now actively shapes global norms (e.g., data governance, ethical AI) while maintaining strategic autonomy. The integration of technology into foreign policy has enabled India to project itself as a bridge between the Global North and South, though challenges in implementation and geopolitical balancing remain.

Key Priorities for India's Technology Foreign Policy

India's technology foreign policy has evolved from a focus on strategic autonomy and self-reliance to a

proactive, multi-aligned digital diplomacy that leverages technology as a tool for economic growth, security, and global influence.

Post-independence, India's approach was shaped by non-alignment and import-substitution policies. Technology was viewed primarily through the lens of self-reliance, with emphasis on indigenous development in atomic energy, space, and defense. The 1990s economic liberalization marked a shift, opening the IT sector and positioning India as a global services powerhouse. The Information Technology Act, 2000 provided the legal foundation for digital growth, while the early 2000s saw increased engagement in multilateral tech forums.

The Digital India program (launched 2015) represented a major milestone, aiming to transform India into a digitally empowered society and knowledge economy. It expanded broadband access, promoted e-governance, and laid the groundwork for digital public goods such as Aadhaar, UPI, and CoWIN, which later became exportable models of inclusive innovation.

Under recent governments, policy has become more assertive and outward-oriented. The Atmanirbhar Bharat initiative reinforced self-reliance in critical technologies (semiconductors, electronics, and defense), while simultaneously pursuing deeper international partnerships. Key developments include joining the Global Partnership on Artificial Intelligence (GPAI) as a founding member (2020) and assuming leadership roles within it, participation in the Quad, and the launch of the Initiative on Critical and Emerging Technology (iCET) with the United States (2022). These reflect a shift toward "trusted partnerships" in semiconductors, AI, quantum, and clean energy.

This evolution illustrates a transition from defensive self-reliance to confident digital diplomacy. India now actively shapes global norms (e.g., data governance, ethical AI) while maintaining strategic autonomy. The integration of technology into foreign policy has enabled India to project itself as a bridge between the Global North and South, though challenges in implementation and geopolitical balancing remain.

CASE STUDIES

1.The Initiative on Critical and Emerging Technology (iCET), launched in 2022, stands as a flagship example of India's technology foreign policy in action. It focuses on deepening cooperation in semiconductors, AI, quantum computing, defense technology, and clean energy. Key outcomes include the establishment of a semiconductor supply chain task force, collaboration on next-generation telecom (Open RAN), and joint innovation funds. iCET exemplifies India's strategy of building "trusted partnerships" with like-minded democracies to enhance resilience against supply chain vulnerabilities while preserving strategic autonomy.

2. AI and Digital Public Goods in the Global South

India has effectively exported its digital public goods model. Platforms such as UPI

(Unified Payments Interface) and Aadhaar-inspired identity systems have been adopted or adapted by several countries in Africa and Southeast Asia. Through the IndiaAI Mission and bilateral programs, India shares AI tools for agriculture (crop monitoring), healthcare diagnostics, and education. Initiatives under GPAI and G20 have facilitated capacity-building workshops and open-source AI models tailored for developing economies, reinforcing India's image as a responsible technology partner focused on sustainable development and inclusion.

3. Semiconductor and Telecom Diversification Efforts

India has pursued diversification through the India Semiconductor Mission and production-linked incentive schemes. Partnerships with the US, Japan, and Taiwan aim to build assembly, testing, and design capabilities. In telecom, support for Open RAN and 5G/6G development seeks to reduce dependence on single suppliers. These efforts not only strengthen domestic manufacturing but also position India as an alternative node in global value chains, enhancing its leverage in technology diplomacy.

These case studies illustrate the practical translation of policy priorities into tangible outcomes, balancing security, economic growth, and soft power objectives.

Key Recommendations and Future Outlook

India's technology foreign policy stands at a critical juncture. To maximize its potential, several priorities should guide future action.

Key Recommendations

- Strengthen Strategic Autonomy with Pragmatic Partnerships: Accelerate domestic capabilities in semiconductors, AI compute, and critical minerals while deepening “trusted” alliances (US, EU, Japan, Quad) to reduce vulnerabilities.

- Lead in Global Tech Governance: Actively shape norms on ethical AI, data flows, and cybersecurity through forums like GPAI, G20, and the UN. Promote India's inclusive model as a global public good.

- Enhance Policy Coherence: Establish a high-level Technology Foreign Policy Coordination mechanism involving MEA, MeitY, Commerce, and Defense ministries.

Conclusion

Technology has become the defining domain of 21st-century international relations, intertwining economic competitiveness, national security, and global influence. For India, crafting a coherent and ambitious technology foreign policy is essential to realizing its aspirations as a leading power.

This paper has outlined how India has evolved from a policy of self-reliance rooted in non-alignment toward a multi-aligned digital diplomacy that leverages its strengths in talent, digital public goods, and democratic values. Key priorities—strategic autonomy, diversified partnerships (exemplified by iCET), ethical AI leadership, and Global South engagement—offer a pragmatic pathway forward. Case studies demonstrate that India is already translating these priorities into tangible outcomes, positioning itself as a bridge between developed and developing worlds.

Nevertheless, significant challenges remain, including geopolitical pressures, domestic capacity gaps, and the need for greater policy coordination. Addressing these through sustained investment, talent retention, and institutional reforms will be critical.

References

Ministry of Electronics and IT, India Stack Overview, Government of India, 2023.

2023https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2178092&reg=48&lang=2

https://www.orfonline.org/english/expert-speak/a-strategic-approach-towards-ai-sovereignty

G20 India Secretariat, New Delhi Leaders' Declaration

Parul

Guest faculty, Punwarka

Maa Shakumbhari University,

Punwarka.

Saharanpur (U.P)

Job Satisfaction and Employee Performance: A Study of Higher Education Institutions of Haryana

Dr. Preety

Introduction

Every organisation, irrespective of sector or nation, endeavors to achieve greater efficiency and superior outcomes. The core concept of organisation theory is the effectiveness of organisations. No manager can consider of an organisational theory that excludes the concept of effectiveness. As a result, academicians and business professionals alike are in complete agreement regarding the significance of effectiveness in organisation. It is a desirable characteristic in organisations. Organisational effectiveness has traditionally been measured by how well organisations achieve their goals through the execution of key strategies. It is possible to define effectiveness as the extent to which an organisation recognizes its objectives. This study seeks to identify the factors that influence employee satisfaction in higher education institutions of Haryana.

Education plays a vital role in both societal advancement and individual growth. It is essential for enhancing the knowledge, skills, and abilities of employees, which in turn drives national prosperity and development. The core area of education is to cultivate human capabilities in a way that increases their competence and knowledge. This, in turn, fosters a superior sense of Job Satisfaction and fulfillment among teachers. If they are satisfied with their workplace they devote their entire energy and efforts to imparting and supplying students with adequate knowledge. The workplace environment plays a vital role in shaping employees' attitudes towards both their jobs and the organisation they work for. If the atmosphere is cheerful, the attitude of the employees within the organisation will also reflect this. An employee's negative attitude towards their work would be a consequence of the negative environment in the workplace. A faculty member's level of job satisfaction in the education sector can be greatly impacted by their outlook on their profession. For the education sector to grow and thrive, it is crucial that faculty members are both satisfied and committed, as they are the organisation's most valuable asset. They play a vital role in shaping students' behavior by instructing, guiding, and supporting their development, which fosters their overall well-being and stability. Additionally, they offer creative and innovative ideas, alongside subject-specific knowledge, that contribute to students' social and economic progress. Educators who are satisfied with their roles tend to show strong dedication to their organisations.

Job Satisfaction

Job Satisfaction refers to the overall subjective assessment that employees have about their job. The factors influencing an employee's Job Satisfaction encompass their coworkers, salary, working circumstances, supervisors, the nature of the task, and the rewards received from it. Job Satisfaction plays a significant role in contemporary organisations. Research findings indicate that employees who have a high level of satisfaction and motivation tend to exhibit improved physical and mental well-being. Job Satisfaction refers to an individual's positive attitude towards their work. This psychological state can affect their engagement in various forms of labor. Employees may experience different levels of satisfaction or dissatisfaction with specific tasks or their profession as a whole, depending on their attitudes towards their employment. Job Satisfaction refers to the positive or negative evaluative attitude employees or workers have regarding various aspects of their job. Therefore, Job Satisfaction depends on the tendency of an individual to regard his work in a positive or negative way within the context of his profession. If employees possess a good attitude towards their work, it will serve as a motivating factor, leading to increased effort and thus higher levels of productivity among the workforce. Various researchers have provided definitions of job satisfaction.

Job Satisfaction According to Locke (1975), “Job Satisfaction is defined as a pleasurable or positive emotional state resulting from the appraisal of one's job or job experience. Keith Davis (1977) stated, “Job Satisfaction is a set of the favorable or unfavorable feelings with which employees view their work." “Victor H. Vroom (1964) said about Job Satisfaction, “Job Satisfaction is generally considered to be an individual's perceptual or emotional reaction to important parts of work." “From the above discussion and definition of some famous authors about Job Satisfaction, we can conclude that Job Satisfaction is the

attitude an employee or worker has regarding his job. It may be positive or negative. The condition totally depends on the person's mind. So, it can be stated as the mental status of a worker too". According to Szymanski and Parker (1996), "Job Satisfaction is usually promoted through intrinsic factors, which include responsibility, opportunities for growth and advancement, recognition, and achievement, whereas extrinsic factors, which prevent job dissatisfaction, include working conditions, pay, supervision, interpersonal relations, policies, and job security".

Job Satisfaction encompasses three facets: intrinsic, extrinsic, and general reinforcement elements (Gunlu et al., 2009). Intrinsic Job Satisfaction includes factors such as job success, the use of one's abilities, and feelings of self-fulfillment, authority, and engagement. Extrinsic satisfaction involves elements like career advancement, company policies, supervisor relationships, salary, and recognition. Overall Job Satisfaction results from the combination of both intrinsic and extrinsic factors (Gunlu et al., 2009). Research indicates a link between Job Satisfaction and employee performance.

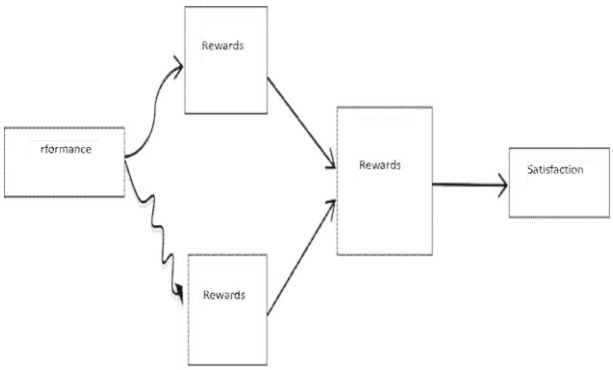


Figure 1: Relationship between Job Satisfaction and employee performance

Job Satisfaction in Higher Educational Institutions

While most research on Job Satisfaction has traditionally concentrated on corporate organisations, there has been an increasing focus on examining this issue within HEIs (Toker, 2011). Toker's (2011) study of academics in HEIs found that these academics generally reported lower satisfaction with aspects such as remuneration, supervision, salary, and fringe benefits. In contrast, they expressed higher satisfaction with their social status, contributions to social service, and the opportunity to utilize their skills. Toker (2011) also identified a significant statistical relationship between Job Satisfaction and factors such as academic titles, age, and length of employment within the HEI.

Hussein and Abdul (2012) investigated Job Satisfaction among university staff and concluded that management behavior acts as an intermediary variable between decision-making style and Job Satisfaction. They found that in Europe, intrinsic factors that are job title and opportunities for professional growth are key indicators of Job Satisfaction. In contrast, in the United States, factors related to the field of education predominantly influence Job Satisfaction. Additionally, Yılmaz et al. (2014) No significant difference was observed in the Job Satisfaction levels between male and female academics, a result that aligns with Toker's (2011) findings.

Effect of Job Satisfaction

The attainment of financial and non-financial objectives within an organisation is contingent upon the significant influence of job satisfaction. The following points clarify the relationship between employee satisfaction and an organisation's productivity and effectiveness.

a) Productivity

When a person has Job Satisfaction, they are more likely to develop a sense of responsibility towards the organisation. According to Halkos and Bousinakis (2010), an individual's long-term performance is likely to improve as a result of experiencing a sense of duty and fulfillment. Achieving organisational objectives depends on enhancing staff productivity.

b) Absenteeism

There exists a negative correlation between Job Satisfaction and absenteeism. Diestel et al. (2014) indicate that employees who are satisfied with their jobs are less likely to be absent, as their positive feelings towards the workplace and fewer concerns about their employment contribute to greater attendance.

c) Turnover

There is a negative correlation between job satisfaction and turnover; employees who are satisfied with their work see themselves as essential to the organisation and experience happiness and fulfillment in their continued association with it. Some employees who are dissatisfied with their current organisation may choose

to remain in that organisation due to a lack of desire to seek employment elsewhere (Nguyen & Tran, 2021)

d) Health

The whole well-being, both mental and physical, of an employee is likely to be positively influenced when they experience job satisfaction. Job satisfaction is known to have a significant impact on reducing stress and tension, which are widely recognized as major contributors to poor health. According to Matarsat et al. (2021), the presence of a stress-free and tension-free environment might lead to enhanced employee diligence, resulting in a decrease in workplace accidents.

e) Acceptance

Rapid implementation of organisational changes can be facilitated by the presence of contented employees who are less likely to exhibit resistance. The individuals in question will readily acquiesce to the decisions made by their superiors. According to Asbari et al. (2021), Job Satisfaction plays a crucial role in enabling organisations to effectively navigate competitive challenges within a dynamic and evolving business landscape.

f) Grievances

An employee who experiences a high level of satisfaction is likely to exhibit a reduced tendency to voice objections regarding the policies and decisions implemented by management. Additionally, fostering harmonious ties between employees and employers will contribute to the establishment of industrial peace (Sharma, 2021).

g) Social Attitude

A happy worker will maintain happiness and strive to cultivate positive relationships with their coworkers. He will assist the other staff members with their requirements (Judge et al., 2017). The environment of cooperation and coordination will be enhanced.

h) Low organisational commitment

Unsatisfied employees are one of the primary factors contributing to a decline in organisational commitment. Their commitment reflects their intention to stay with the organisation for the long term and their enthusiasm to put forth their best effort to achieve the organisation's goals. . An employee's commitment is substantially impacted by job satisfaction (Byars and Rue, 1997).

I) Voluntary retirement

Another key area of concern is the relationship between Job Satisfaction and the decision to retire. Studies indicate that employees are less likely to opt for early retirement if they have a positive attitude towards their work. The previous points outline the impact of Job Satisfaction and the ways in which an organisation can achieve success. ; Therefore, it is crucial to comprehend the variables that can increase employee satisfaction.

Conclusion

Considering the satisfaction of employees, it was found that employees were very much satisfied with their present organisation. The rationale for this is that employees were regularly asked by the management to give their suggestions for deciding their roles and responsibilities. Further, roles, responsibilities, and duties were adequately defined and assigned to the employees. Management used to organize training programmes at regular intervals to update employees' skills and knowledge, due to which they were able to complete their work correctly. It was also found that the relationship of employees with their supervisor and colleagues was cordial. With their help, support, and co-operate, the employees were in a situation of completing their tasks well in time.

Institutes within education sector were also highly concerned about the career of their employees. Along with timely promotions, employees were provided with full support for completing their higher education. Working conditions prevailing in the organisation were good enough to satisfy the employees. A flexible schedule for work and vacation increased the satisfaction level of employees. Employees were also satisfied with the financial, social, and job security provided to them. This sector treats each employee the same irrespective of his/her age and gender. Working conditions in this sector are equally favourable for men and women employees. Flexible working hours provided to employees add to employees' satisfaction irrespective of their age, gender, and sector.

Reference

Locke, E. A. (1976). The nature and cause of job satisfaction In MD Dunnette (Ed), Handbook of industrial and organizational psychology. *Rand Mc Nally, Chicago*.

Szymanski, E. M., & Parker, R. M. (1996).
Work and disability. *Austin, Texas: Pro ed*."

Gunlu, E., Aksarayli, M., & Perçin, N.Ş. (2010). Job

satisfaction and organizational commitment of hotel managers in Turkey. *International Journal of Contemporary Hospitality Management.*

Toker, B. (2011). Job satisfaction of academic staff: an empirical study on Turkey. *Quality Assurance in Education*, *19*(2), 156-169

Mohamed, N., Shahriza Abdul Karim, N., & Hussein, R. (2012). Computer use ethics among university students and staffs: The influence of gender, religious work value and organizational level. *Campus-Wide Information Systems*, *29*(5), 328-343.

Yılmaz, S. M., Çelebi, Ç. D., & Çakmak, E. (2014). Job satisfaction level of academicians in faculty of education. *Procedia-Social and Behavioral Sciences*, *116*, 1021-1025.

Halkos, G., & Bousinakis, D. (2010). The effect of stress and satisfaction on productivity. *International Journal of Productivity and Performance Management*, *59*(5), 415-431.

Diestel, S., Wegge, J., & Schmidt, K. H. (2014). The impact of social context on the relationship between individual job satisfaction and absenteeism: The roles of different foci of job satisfaction and work-unit absenteeism. *Academy of Management Journal*, *57*(2), 353-382.

Nguyen, Q. A., & Tran, A. D. (2021). Job satisfaction and turnover intention of preventive medicine workers in northern Vietnam: Is there any relationship?. *Health Services Insights*, *14*, 1-13

Haji Matarsat, H. M., Rahman, H. A., & Abdul-Mumin, K. (2021). Work-family conflict, health status and job satisfaction among nurses. *British Journal of Nursing*, *30*(1), 54-58.

Asbari, M., Hidayat, D. D., & Purwanto, A. (2021). Managing Employee Performance: From Leadership to Readiness for Change. *International Journal of Social and Management Studies*, *2*(1), 74-85.

Sharma, D. (2021). The Effect of Gender Roles on Job Satisfaction: A Study on the Employees Working in Government Academic Sector in Haryana. *International Journal of Entrepreneurial Research*, *4*(1), 1-3.

Judge, T. A., Weiss, H. M., Kammeyer-Mueller, J. D., & Hulin, C. L. (2017). Job attitudes, job satisfaction, and job affect: A century of continuity and of change. *Journal of Applied Psychology*, *102*(3), 356-374.

Byars, L., & Rue, L. W. (1997). Human Resources and personel Management Illinois: Richard, D. *Irwan Inc*.

Dr. Preety
Assistant Professor
Department of Commerce
P.I.G. Govt. College for Women,
Jind Pin code: 126102
Email ID: preetyjangra2014@gmail.com

30

The New Soft Power Frontier in Indian Foreign Policy : Artificial Intelligence

Parul

Abstract

This research paper examines Artificial Intelligence (AI) as a new soft power frontier in Indian foreign policy. Drawing on Joseph Nye's framework, it analyzes how India is transitioning from traditional cultural and democratic assets to leveraging AI for digital diplomacy and global influence. Through its #AIforAll strategy, IndiaAI Mission, and active multilateral engagement (GPAI, G20, AI summits), India positions itself as a proponent of ethical, inclusive, and development-oriented AI, particularly in the Global South. Case studies highlight capacity-building partnerships and contrast India's democratic model with China's infrastructure-driven approach. While opportunities for norm-shaping and partnerships are significant, challenges such as geopolitical competition, domestic infrastructure gaps, and talent retention persist. The paper argues that AI enhances India's soft power by amplifying its values of pluralism and equity, but realizing its full potential requires overcoming structural limitations and strategic coherence. Ultimately, India's AI diplomacy could strengthen its role as a bridge-builder in a multipolar, technology-driven world order.

Keywords: Soft power, Artificial Intelligence, Indian foreign policy.

Introduction : Soft Power in the Digital Age

Soft power, a concept popularized by Joseph Nye in the early 1990s, refers to the ability of a country to influence others and achieve desired outcomes through attraction and persuasion rather than coercion or economic inducements. Nye identifies three core resources: culture (in places where it appeals to others), political values (when lived up to credibly), and foreign policies (when perceived as legitimate and morally authoritative). Unlike hard power, which relies on military or economic might, soft power co-opts rather than commands, shaping preferences so that others voluntarily align with one's goals.

In the 21st century, soft power has gained heightened relevance amid globalization, multipolarity, and the information revolution. Traditional military dominance is often constrained by economic interdependence and domestic audience costs, making attraction-based influence essential for agenda-setting, coalition-building, and long-term legitimacy

India has long drawn on rich traditional soft power assets—its ancient civilizational culture (yoga, Bollywood, cuisine), vibrant diaspora networks, and identity as the world's largest democracy. These have bolstered its global image as a tolerant, pluralistic rising power. However, in the contemporary geopolitical landscape, artificial intelligence has emerged as a new frontier in Indian diplomacy.

It allows India to project competence, ethical leadership, and inclusive innovation, particularly in the Global South.

This paper examines how India is strategically leveraging AI to augment its soft power. The central research question is: How is India leveraging artificial intelligence to enhance its soft power in foreign policy, and what are the key opportunities and challenges in doing so? By analyzing India's AI initiatives, diplomatic engagements, and comparative positioning against models like China's, the study argues that AI represents both a powerful multiplier of India's democratic values and a domain fraught with infrastructural, geopolitical, and ethical hurdles. Understanding this dynamic is crucial for assessing India's role in shaping the future global order.

Evolution of India's Soft Power and Foreign Policy: India's soft power has deep historical roots, evolving from civilizational and cultural diplomacy to a more structured, digital, and strategic instrument of foreign policy. Traditionally, India's influence stemmed from its ancient heritage—philosophy, spirituality, and cultural exports. Post-independence, cultural diplomacy became a cornerstone. Tools such as the Indian Council for Cultural Relations (ICCR, established 1950) promoted Indian classical dance, music, and literature abroad. Yoga and Ayurveda gained global traction, while Bollywood films and Indian cuisine created widespread popular appeal, particularly in the Global South, Africa, and the Middle East. The Indian diaspora, especially in the US, UK, and Caribbean, served as a vital bridge, projecting India's democratic and entrepreneurial.

During the Cold War and Non-Aligned Movement (NAM) era, India's soft power was closely tied to its foreign

policy of strategic autonomy, anti-colonial solidarity, and moral leadership. Figures like Jawaharlal Nehru emphasized normative power through peaceful coexistence and development assistance. However, economic liberalization in 1991 marked a shift toward pragmatic engagement. The 1990s and 2000s saw greater emphasis on economic diplomacy alongside cultural outreach, with initiatives like the "Look East" (later "Act East") policy strengthening ties in Southeast Asia.

A significant evolution occurred under recent governments, particularly since 2014, with a more proactive and multifaceted approach. Prime Minister Narendra Modi has personally championed cultural soft power—through International Yoga Day (2015), diaspora engagement ("Howdy Modi," "Namaste Trump"), and high-profile cultural events.

India's AI Ecosystem: Capabilities, Strategies, and Initiatives

Duis India's AI Ecosystem: Capabilities, Strategies, and Initiatives India has rapidly built a robust AI ecosystem aimed at leveraging its demographic dividend and digital infrastructure for inclusive growth. The cornerstone is NITI Aayog's National Strategy for Artificial Intelligence (2018), branded as #AIforAll. This document envisions India not merely as a consumer but as a leader in responsible AI, focusing on solving societal challenges while ensuring equitable access. It emphasizes five key pillars: research and development, talent development, data ecosystems, application deployment, and international collaboration.

Building on this, the India AI Mission (approved in 2024) represents a comprehensive national program with a significant budget allocation. It focuses on creating compute infrastructure (targeting thousands of GPUs through public-private partnerships), developing indigenous large language models, and establishing AI innovation centers. The mission also supports dataset creation, application development, and future-ready talent through skilling initiatives. India's vast talent pool—bolstered by premier institutions like IITs, IISc, and a thriving startup culture—positions it strongly. The country ranks among the top globally in AI talent concentration and hosts thousands of AI startups, many focused on vernacular languages, healthcare diagnostics, and agritech.

A defining feature of India's approach is its emphasis on ethical, inclusive, and development-oriented AI. Unlike purely commercial or military-driven models, India prioritizes applications that address core developmental needs. In agriculture,AI-powered tools support precision farming, crop monitoring, and market linkage for smallholders. In healthcare, initiatives leverage AI for affordable diagnostics, telemedicine, and pandemic response. In education, adaptive learning platforms aim to bridge urban-rural divides. These efforts align with Sustainable Development Goals and promote "frugal innovation" suited to resource-constrained environments. India's strategy also stresses ethical governance, data privacy, and human-centric design, as outlined in recent AI Governance Guidelines. By fostering open, accessible AI ecosystems, India seeks to democratize technology and reduce dependence on foreign platforms. This inclusive model not only builds domestic capabilities but also enhances India's appeal as a responsible technology partner internationally.

AI as a Tool in Indian Foreign Policy and Diplomacy:Challenges and limitations

India has strategically integrated artificial intelligence into its foreign policy as a tool for soft power projection, norm-setting, and partnership-building. This approach transforms AI from a domestic capability into a diplomatic asset, emphasizing ethical governance and inclusive growth.

Multilateral engagement forms a central pillar. As a founding member of the Global Partnership on Artificial Intelligence (GPAI), India assumed a prominent leadership role, including chairing the council. This platform allows India to advocate for responsible, human-centric AI frameworks. During its G20 Presidency (2023), India championed digital public goods and inclusive innovation. Subsequent AI summits, notably the 2024 Global India AI Summit and the 2026 AI Impact Summit hosted in New Delhi, have positioned India as a convener. These forums promote democratization of AI resources, ethical standards, and development-focused applications, amplifying India's voice in global technology governance. On the bilateral and regional fronts, India pursues pragmatic partnerships. With the United States, collaboration occurs through initiatives like the Initiative on Critical and Emerging Technology (iCET), focusing on

AI, semiconductors, and defense applications. Ties with the EU emphasize regulatory alignment, data governance, and ethical AI.

Central to this diplomacy is ethical AI leadership. India positions itself as a bridge between developed and developing worlds by advocating for accessible compute, open datasets, and governance models that prioritize equity over pure commercial or surveillance-driven uses. Programs focus on skill development, AI centers of excellence, and tailored solutions for emerging economies. This narrative contrasts with more extractive or authoritarian models, enhancing India's legitimacy and attractiveness as a reliable partner.

Case Studies:

India's AI diplomacy is best illustrated through its engagement with the Global South and contrast with competing strategies, particularly China's.

India's Role in Global South Collaboration and Ethical Frameworks

India actively promotes ethical, inclusive AI as a driver of sustainable development. A prominent example is its leadership in the Global Partnership on Artificial Intelligence (GPAI) and hosting of AI Impact Summits (2024–2026). These platforms facilitate knowledge-sharing and capacity-building for developing countries. India has extended tech partnerships in Africa and Southeast Asia, offering AI solutions for agriculture (crop yield prediction and soil analysis), healthcare (low-cost diagnostics via mobile platforms), and education (vernacular language tools). These initiatives align with the Sustainable Development Goals (SDGs), emphasizing accessibility and local empowerment rather than dependency.

In global AI governance debates, India advocates for democratizing frontier technologies — pushing for equitable access to compute resources and against concentration of power among a few corporations or nations. Its "#AI for All" approach, shared through training programs and open digital public goods (e.g., adaptable AI models), positions India as a bridge-builder between advanced economies and the Global South.

Comparison with China's AI Soft Power Strategy

China's strategy relies heavily on infrastructure export and open-source models. Through extensions of the Belt and Road Initiative, Beijing provides AI-enabled smart city technologies, surveillance systems, and affordable models (e.g., from companies like DeepSeek). This offers rapid modernization and economic benefits, appealing to governments seeking quick deployment. However, it often embeds authoritarian governance norms, data control preferences, and potential vendor lock-in.

India's model differs by prioritizing ethical frameworks, transparency, and human development. While China excels in scale and speed of infrastructure rollout, India focuses on participatory, values-driven partnerships that resonate with democracies and developing nations wary of over-dependence. This contrast enhances India's soft power by offering a credible, democratic alternative—fostering trust and long-term influence, though it faces challenges in matching China's financial muscle.

These case studies demonstrate AI's role as a differentiator in India's foreign policy, blending capability-sharing with normative leadership.

Challenges and Limitations:

While AI offers India significant soft power opportunities, several challenges constrain its effectiveness in foreign policy.

India operates in a contested landscape dominated by the US and China. US export controls on advanced semiconductors and AI technologies limit India's access to frontier compute, slowing indigenous development and forcing reliance on alternative supply chains. China's dominance in AI infrastructure, open models, and cost-effective solutions poses a direct challenge, particularly in the Global South, where Beijing's rapid deployment often outpaces India's more deliberative approach. This intensifies competition for influence and partnerships.

Significant internal constraints persist. Compute infrastructure remains a bottleneck despite ambitious targets under the India AI Mission. Data governance and quality issues hinder model training, while concerns over privacy and ethics require careful navigation to maintain credibility. Talent retention is another challenge, with many skilled professionals migrating to higher-paying opportunities abroad. Bridging the urban-rural and digital divide is essential for truly inclusive AI.

Risks of Over-Reliance and Fragmented

Standards

Over-dependence on foreign technology could undermine strategic autonomy and soft power claims. Additionally, the absence of unified global AI standards risks a fragmented landscape, complicating India's bridge-building role. Balancing national security with open collaboration, while addressing potential misuse of AI (e.g., deepfakes in diplomacy or misinformation), adds complexity.

conclusion

Artificial Intelligence has emerged as a transformative frontier in India's soft power arsenal, complementing its rich cultural heritage, democratic credentials, and diaspora networks. However, success is not guaranteed. Geopolitical constraints, domestic capacity gaps, and the risk of fragmented international standards pose substantial challenges. To fully harness AI's potential, India must accelerate infrastructure development, retain talent, strengthen data governance, and deepen strategic partnerships—particularly with like-minded democracies.

References

Ministry of Electronics and IT, India Stack Overview, Government of India, 2023.

2023https://www.pib.gov.in/PressReleasePage.aspx?PRID=2178092&reg=48&lang=2

https://www.orfonline.org/english/expert-speak/a-strategic-approach-towards-ai-sovereignty

G20 India Secretariat, New Delhi Leaders' Declaration,

Parul

School of Political Science Shakumbhari University,Punwarka

Uttar Pradesh.

31

Sociological Analysis of Rising Crime in Haryana: Causes and Way Out

Dr. Madhusudan

Abstract

Crime is a multidimensional social phenomenon that reflects not only violations of law but also the changing nature of social institutions, economic inequalities, cultural norms, and governance structures. Haryana, one of India's fastest-growing states, has experienced rapid industrialization, urban expansion, demographic transition, and technological transformation during the past two decades. While these developments have accelerated economic growth, they have also generated new forms of social disorganization and criminal behaviour. Official statistics published by the National Crime Records Bureau indicate that Haryana consistently records crime rates above the national average in several categories, particularly crimes against women, cybercrime, property offences, and organized criminal activities. These trends necessitate a sociological understanding that extends beyond conventional legal explanations.

The present study analyses the changing pattern of crime in Haryana through the perspectives of sociological theories and official crime statistics. Using secondary data obtained from government publications, scholarly literature, and peer-reviewed research, the paper examines the structural, economic, cultural, and institutional determinants that contribute to increasing criminality in the state. Particular attention is paid to the influence of urbanization, unemployment, gender inequality, weakening community institutions, digital transformation, and deficiencies in the criminal justice system.

The study argues that crime in Haryana should not be interpreted merely as individual deviance but as an outcome of broader structural transformations that affect opportunities, social control, and community cohesion. It further suggests that effective crime prevention requires an integrated approach combining economic inclusion, educational reforms, gender sensitization, technological modernization of policing, judicial efficiency, and community participation. The findings contribute to sociological discourse on crime by linking empirical evidence with theoretical explanations and offering policy recommendations for sustainable crime reduction.

Keywords: Crime, Haryana, Sociology of Crime, Urbanization, Gender Violence, Social Disorganization, Criminal Justice, NCRB.

1. Introduction

Crime has remained one of the most significant indicators of social change and institutional effectiveness across societies. Sociologists have long argued that criminal behaviour cannot be understood solely through legal definitions because crime emerges within broader social, cultural, political, and economic contexts. The nature and intensity of crime often mirror the quality of social relationships, the distribution of economic opportunities, the effectiveness of governance, and the capacity of communities to regulate behaviour through formal and informal mechanisms. Consequently, the study of crime occupies a central position within sociology because it reveals the interaction between individual behaviour and structural conditions.

The relationship between modernization and crime has attracted considerable scholarly attention. Industrialization, rapid urban growth, globalization, technological innovation, and demographic mobility have transformed traditional patterns of social organization across the world. While these processes have contributed significantly to economic development and improved standards of living, they have simultaneously weakened traditional institutions of social control such as family, neighbour hood networks, kinship relations, and community surveillance. Such transformations often generate conditions in which criminal activities become more frequent, diversified, and technologically sophisticated. Contemporary criminological research increasingly recognizes that rising crime is closely associated with social inequality, unemployment, migration, digitalization, substance abuse, and institutional deficiencies rather than merely individual moral failure.

Within the Indian context, the nature of crime has undergone substantial transformation during the last two decades. The expansion of metropolitan cities, increasing economic disparities, changing occupational structures, and growing dependence on digital technologies have created

new opportunities for both conventional and cyber-enabled crimes. Crimes against women, children, senior citizens, and vulnerable populations have emerged as critical public policy concerns, while organized criminal networks have become increasingly adaptive to technological innovations. Consequently, understanding crime requires an interdisciplinary approach that combines sociological theory with empirical evidence generated through official crime statistics and social research.

Haryana presents a particularly significant case for sociological investigation. Since its formation in 1966, the state has witnessed remarkable economic progress, emerging as one of India's leading contributors to agricultural production, manufacturing, automobile industries, and information technology services. Districts such as Gurugram and Faridabad have become major centres of corporate investment and urban expansion, attracting large-scale migration from different parts of the country. Simultaneously, several districts continue to exhibit strong agrarian traditions, caste-based social structures, patriarchal family systems, and uneven patterns of socio-economic development. This coexistence of rapid modernization and deeply rooted traditional institutions has produced complex social dynamics that influence patterns of crime and deviance.

Official crime statistics indicate that Haryana consistently reports relatively high rates of cognizable offences compared to many other Indian states. Crimes against women, including rape, domestic violence, kidnapping, stalking, and sexual harassment, continue to pose serious challenges despite improvements in legal frameworks and policing mechanisms. Similarly, offences against children, cyber fraud, financial crimes, vehicle theft, organized criminal activities, and drug-related offences have shown notable increases in recent years. Although improved reporting mechanisms partly explain higher crime figures, sociological analysis suggests that these trends also reflect broader structural transformations occurring within the state's social fabric.

Several interrelated factors contribute to the changing crime scenario in Haryana. Rapid urbanization has generated socio-economic inequalities, housing shortages, migration-related challenges, and weakening neighbourhood cohesion. Youth unemployment and the mismatch between educational aspirations and employment opportunities have intensified social frustration among economically vulnerable groups. Patriarchal gender norms continue to influence violence against women despite increasing female educational attainment and workforce participation. The growing penetration of smartphones, digital payment systems, and internet connectivity has simultaneously created opportunities for cyber-enabled crimes that transcend conventional policing methods. Furthermore, delays in criminal investigation, judicial proceedings, and conviction processes often reduce the deterrent effect of law enforcement institutions.

From a sociological perspective, these developments cannot be adequately explained by biological or psychological theories alone. Structural theories such as strain theory, social disorganization theory, social control theory, and routine activity theory provide useful frameworks for understanding how changing social environments influence criminal behaviour. These perspectives emphasize that crime is shaped by unequal access to legitimate opportunities, weakening community institutions, changing patterns of social interaction, and the routine activities of individuals within rapidly transforming societies. Applying these theoretical perspectives to Haryana offers deeper insights into the social roots of criminality and enables more comprehensive policy interventions.

2. Review of Literature

One of the earliest and most influential sociological explanations of crime was provided by Émile Durkheim (1895), who argued that crime is an inevitable feature of every society and performs certain social functions by reaffirming collective values and facilitating social change. According to Durkheim, crime cannot be eliminated completely because societies continuously evolve, generating new norms and forms of deviance. However, rapid social transformation may weaken collective conscience and create a condition of anomie, in which individuals experience uncertainty regarding accepted social norms. Such situations often increase deviant behaviour and social instability.

Building upon Durkheim's concept of anomie, Robert K. Merton (1938) proposed the Strain Theory,

which remains one of the most widely applied sociological explanations of crime. Merton argued that societies encourage individuals to pursue socially approved goals such as wealth, prestige, and success but do not provide equal opportunities to achieve them through legitimate means. When socially disadvantaged groups encounter barriers to education, employment, or economic mobility, they may experience frustration and adopt illegitimate methods to attain desired objectives. This theoretical perspective is particularly relevant for contemporary Haryana, where rapid economic growth has generated increasing aspirations among youth while employment opportunities remain unevenly distributed across regions and social groups.

Another important contribution to criminological theory was made by Clifford Shaw and Henry D. McKay (1942), who developed the Social Disorganization Theory. Their research demonstrated that crime tends to flourish in communities characterized by residential instability, poverty, social heterogeneity, and weakened neighbourhood institutions. They argued that when traditional mechanisms of informal social control, such as family networks, community organizations, and neighbourhood associations, lose their effectiveness, criminal behaviour becomes increasingly common. This framework has considerable relevance for rapidly urbanizing districts of Haryana, where migration, industrial expansion, and demographic mobility have transformed traditional patterns of social interaction.

Further advancing sociological explanations, Travis Hirschi (1969) proposed the Social Control Theory, which shifts attention from the motivations for crime to the factors that restrain individuals from engaging in criminal behaviour. Hirschi argued that strong attachment to family, commitment to education and employment, involvement in socially approved activities, and belief in moral norms reduce the likelihood of criminal behaviour. Conversely, weakening social bonds increase vulnerability to deviance. Recent changes in family structures, declining community participation, and increasing social isolation in urban areas reinforce the relevance of this theory for understanding contemporary crime patterns.

The Routine Activity Theory developed by Lawrence Cohen and Marcus Felson (1979) further expanded criminological analysis by emphasizing situational opportunities rather than offender characteristics. According to this perspective, crime occurs when three elements converge simultaneously: a motivated offender, a suitable target, and the absence of capable guardianship. The expansion of digital technologies, online financial transactions, and urban lifestyles has increased opportunities for cybercrime, financial fraud, identity theft, and property offences, making Routine Activity Theory particularly relevant for understanding recent crime trends in technologically advanced districts such as Gurugram and Faridabad.

Indian sociologists have similarly examined crime as a consequence of broader socio-economic transformations. A. R. Desai emphasized that capitalist development and unequal distribution of resources often generate social conflicts and marginalization, thereby contributing to various forms of deviant behaviour. Likewise, Yogendra Singh argued that modernization in India is characterized by the coexistence of traditional and modern institutions, producing structural contradictions that influence patterns of social behaviour. Haryana exemplifies this duality, where advanced industrialization exists alongside deeply rooted caste hierarchies, patriarchal family structures, and agrarian social relations. Research specifically focusing on crimes against women identifies patriarchal social norms as one of the most persistent structural determinants of gender-based violence. Although significant improvements have occurred through educational expansion and government initiatives such as Beti Bachao, Beti Padhao, challenges relating to women's safety continue to demand sustained institutional attention.

Recent criminological research has also emphasized the emergence of cybercrime as one of the fastest-growing categories of criminal activity in India. Haryana, particularly districts with high digital penetration and corporate activity, has experienced notable increases in cyber-enabled crimes, necessitating updated policing strategies and public digital literacy.

4. Objectives of the Study

The study has been undertaken with the following objectives:

a. To examine the recent pattern and trends of crime in Haryana using official government statistics.

b. To analyse the socio-economic, cultural, and institutional factors responsible for the changing crime scenario in the state.
c. To suggest evidence-based policy measures for reducing crime and strengthening social security in Haryana.

5. Research Methodology

The present study, based entirely on secondary data obtained from authentic government reports, official statistical publications, and scholarly literature, provides a comprehensive sociological understanding of the changing nature of crime in Haryana. The analysis demonstrates that crime is not merely a legal or administrative issue but a reflection of broader socio-economic transformations occurring within the state. Rapid urbanization, industrialization, technological advancement, demographic mobility, and changing social institutions have collectively reshaped both the opportunities for criminal behaviour and the capacity of formal and informal institutions to respond effectively. Thus, the increasing complexity of crime in Haryana must be interpreted within the wider context of social change rather than through individualistic explanations alone.

The study reveals that while Haryana has experienced significant economic growth and infrastructural development, these achievements have also generated new social challenges. The steady increase in registered cognizable crimes after the COVID-19 pandemic reflects not only improved reporting mechanisms and greater public awareness but also the persistence of structural inequalities that continue to influence criminal behaviour. Crimes against women, children, and the growing incidence of cybercrime highlight the emergence of new forms of victimization alongside traditional offences. These patterns indicate that modernization has simultaneously expanded opportunities for development and created conditions that increase social vulnerability.

The sociological perspectives examined in the study provide important insights into the causes of rising crime. Strain Theory explains how disparities between aspirations and legitimate opportunities may encourage deviant behaviour, while Social Disorganization Theory illustrates the consequences of rapid urban growth, migration, and weakening community cohesion. Routine Activity Theory effectively accounts for the rise of cyber-enabled offences resulting from increased digital transactions and technological dependence, whereas Social Control Theory emphasizes the importance of strong family, educational, and community institutions in regulating behaviour. Together, these perspectives demonstrate that crime emerges from the interaction of multiple structural, cultural, and institutional factors rather than any single determinant.

The findings further establish that sustainable crime prevention requires a balanced strategy integrating effective law enforcement with inclusive social development. Strengthening policing, forensic capabilities, cybercrime investigation, and judicial efficiency remains essential, but these measures alone cannot ensure lasting reductions in crime. Long-term prevention depends equally upon reducing unemployment, promoting gender equality, strengthening child protection systems, enhancing digital literacy, addressing substance abuse, and rebuilding community participation. Crime prevention must therefore be viewed as a shared responsibility involving government agencies, educational institutions, families, civil society organizations, and local communities.

Since the present research relies exclusively on secondary sources, it is constrained by the availability and quality of published data and does not capture individual experiences or localized variations in crime across different districts of Haryana. Future research may therefore incorporate primary field investigations, victimization surveys, qualitative interviews, and district-level comparative analyses to generate deeper insights into the socio-cultural dynamics of crime.

In conclusion, the study affirms that the changing crime landscape of Haryana is inseparable from the broader processes of modernization and social transformation. Addressing these challenges requires not only an efficient criminal justice system but also inclusive development, stronger social institutions, and evidence-based public policies that address the structural roots of crime. Such a holistic approach will contribute to a safer, more equitable, and socially cohesive Haryana.

6. Discussion

Crime in Haryana has emerged as a multidimensional

social phenomenon that reflects the complex interaction of rapid economic development, demographic transformation, technological advancement, and persistent structural inequalities. The findings of the present study indicate that the state's changing crime profile cannot be understood solely through legal or individualistic explanations. Instead, crime must be viewed as a product of broader social processes that reshape institutions, community relations, economic opportunities, and patterns of everyday life. The increasing diversity of offences—including conventional crimes, gender-based violence, crimes against children, and cyber-enabled offences—demonstrates that modernization has generated both developmental opportunities and new forms of social vulnerability.

The analysis of crime trends reveals that Haryana has witnessed a steady increase in registered cognizable crimes following the temporary decline during the COVID-19 pandemic. While improved reporting mechanisms, digital FIR registration, women's help desks, and greater public awareness have contributed to higher crime registration, the persistence of serious offences also reflects underlying structural challenges. Rapid urbanization, industrial expansion, migration, and growing population density have weakened traditional systems of informal social control, thereby creating conditions that facilitate criminal behaviour. Simultaneously, technological innovations and widespread digital connectivity have transformed the nature of criminal activity by expanding opportunities for financial fraud, cybers talking, identity theft, phishing, and other online offences that transcend geographical boundaries.

A significant finding of this study is the continued prevalence of crimes against women and children despite considerable improvements in education, legal reforms, and institutional support mechanisms. These offences illustrate that crime is deeply embedded in unequal social relationships rather than being merely the consequence of individual deviance. Patriarchal norms, gender discrimination, unequal access to resources, and rigid cultural expectations continue to reinforce violence against women in various forms, including domestic violence, sexual assault, harassment, and honour-related crimes. Similarly, increasing crimes against children reflect changing family structures, reduced parental supervision, digital exposure, and weakening community cohesion. These trends highlight the need for preventive interventions that extend beyond criminal justice responses and address the underlying social conditions that increase vulnerability.

The sociological theories examined in this study provide valuable insights into the causes of rising crime in Haryana. Strain Theory explains how the gap between rising aspirations and limited economic opportunities may encourage some individuals to adopt illegitimate means of achieving socially accepted goals. Social Disorganization Theory highlights the consequences of rapid urban growth, migration, and declining neighbourhood cohesion in weakening informal mechanisms of social regulation. Routine Activity Theory effectively explains the growth of cybercrime by emphasizing how increasing digital transactions create suitable targets in the absence of effective guardianship. Likewise, Social Control Theory underlines the importance of strong family bonds, educational institutions, and community participation in discouraging deviant behaviour. Collectively, these theoretical perspectives demonstrate that crime results from the interaction of multiple structural, cultural, and institutional factors rather than a single cause.

The study also establishes that effective crime prevention requires a balanced approach that combines efficient law enforcement with comprehensive social development. Strengthening policing, improving forensic capabilities, enhancing cyber crime investigation, increasing conviction rates, and reducing judicial delays remain essential for maintaining public confidence in the criminal justice system. However, these institutional measures alone cannot ensure long-term reductions in crime unless they are accompanied by broader social policies aimed at reducing unemployment, improving educational opportunities, promoting gender equality, addressing substance abuse, strengthening child protection, enhancing digital literacy, and rebuilding community participation. Crime prevention must therefore be recognized as a shared responsibility involving government agencies, educational institutions, families, civil society organizations, the private sector, and local communities.

Furthermore, Haryana's experience

demonstrates that modernization should not be viewed as inherently criminogenic but rather as a process that requires corresponding adaptation of social institutions. Economic growth, technological innovation, and urban expansion have undoubtedly improved living standards and created new opportunities for development. Nevertheless, these transformations also demand stronger governance, inclusive development, and responsive institutions capable of managing emerging social risks. Sustainable public safety depends not only on legal deterrence but also on reducing socio-economic inequalities, strengthening social cohesion, and ensuring equitable access to justice and opportunities.

In short, the rising complexity of crime in Haryana reflects the broader transformation of society in the twenty-first century. Understanding these changing crime patterns requires moving beyond narrow legal interpretations towards a comprehensive sociological perspective that recognizes the interdependence of economic development, social institutions, cultural values, technological change, and human behaviour. A holistic strategy integrating effective criminal justice administration with inclusive social development, community engagement, gender justice, digital preparedness, and preventive social policies offers the most sustainable pathway for reducing crime and strengthening social harmony. Such an integrated approach will not only enhance public security but also contribute to building a more equitable, resilient, and socially cohesive Haryana.

7. Conclusion

Crime in Haryana is a multidimensional social phenomenon shaped by structural transformations rather than individual deviance alone. The study reveals that rapid urbanization, industrialization, socio-economic inequality, demographic mobility, technological advancement, and persistent patriarchal norms have significantly influenced the state's changing crime patterns. Official crime statistics indicate continuing concerns regarding crimes against women, children, cybercrime, and property offences, highlighting the need for comprehensive and evidence-based interventions. Sociological theories such as Strain Theory, Social Disorganization Theory, Social Control Theory, and Routine Activity Theory provide valuable frameworks for understanding how social, economic, and institutional factors contribute to criminal behaviour. The findings suggest that sustainable crime prevention requires an integrated approach combining effective policing with employment generation, gender equality, educational reforms, digital literacy, judicial efficiency, and community participation. Strengthening both formal institutions and informal social control mechanisms is essential for reducing crime. Ultimately, inclusive development, social justice, and accountable governance remain fundamental to creating a safer and more cohesive society in Haryana.

References

Becker, Howard S.. (1963). *Outsiders: Studies in the sociology of deviance*. Free Press.

Cohen, Lawrence E., & Felson, Marcus. (1979). Social change and crime rate trends: A routine activity approach. *American Sociological Review, 44*(4), 588–608.

Census of India. (2011). *Primary Census Abstract*. Government of India.

Durkheim, Émile. (1895/1982). *The Rules of Sociological Method*. Free Press.

Durkheim, Émile. (1897/1951). *Suicide*. Free Press.

Hirschi, Travis. (1969). *Causes of Delinquency*. University of California Press.

Ministry of Home Affairs. (2023). *Annual Report 2022–23*. Government of India.

Merton, Robert K.. (1938). Social structure and anomie. *American Sociological Review, 3*(5), 672–682.

National Crime Records Bureau. (2021). *Crime in India 2020*. Ministry of Home Affairs.

National Crime Records Bureau. (2022). *Crime in India 2021*. Ministry of Home Affairs.

National Crime Records Bureau. (2023). *Crime in India 2022*. Ministry of Home Affairs.

National Crime Records Bureau. (2024). *Crime in India 2023*. Ministry of Home Affairs.

National Family Health Survey. (2022). *National Family Health Survey (NFHS-5), 2019–21*. International Institute for Population Sciences.

National Statistical Office. (2024). *Periodic Labour Force Survey (Annual Report)*. Ministry of Statistics and Programme Implementation.

NITI Aayog. (2023). *SDG India Index and Dashboard*. Government of India.
Sampson, Robert J., & Groves, W. Byron. (1989). Community structure and crime. *American Journal of Sociology, 94*(4), 774–802.
Shaw, Clifford R., & McKay, Henry D.. (1942). *Juvenile Delinquency and Urban Areas*. University of Chicago Press.
United Nations Office on Drugs and Crime. (2023). *Global Study on Homicide*. United Nations.
World Health Organization. (2022). *World Report on Violence and Health*. WHO.
Wilson, James Q., & Kelling, George L.. (1982). Broken windows. *The Atlantic Monthly, 249*(3), 29–38.

Dr. Madhusudan
Assistant Professor
Department of Sociology and Social Work
Chaudhary Bansi Lal University, Bhiwani
(Haryana)
Mobile No.9729747413
Email: madhusudan8787@gmail.com

32

Tracing the Evolution of Translation Studies: An Indian Perspective

Geeta Jain, Prof. J. K. Sharma

Abstract

Translation in India has evolved through a long and complex historical trajectory shaped by linguistic diversity, cultural plurality, and socio-political transformations. From ancient times, when translation functioned as a medium of knowledge transmission, to the post-colonial era, where it has emerged as an independent academic discipline, translation in India has undergone significant conceptual and practical shifts. This paper traces the evolution of translation practices and theories across four major phases: ancient, medieval, colonial, and post-colonial periods. It examines how translation moved from being perceived as a "shadow" of the original text to a creative and interpretative act. The study also highlights the contributions of major Indian thinkers such as Bharatendu Harishchandra, Mahavir Prasad Dwivedi, Acharya Ramchandra Shukla, and Harivansh Rai Bachchan in shaping indigenous translation theory. The paper argues that Indian translation traditions emphasize bhava (sense), cultural context, and reader engagement, thereby offering an alternative framework to Western translation theories.

Keywords

Translation Studies, Cultural Transfer, Colonial Translation, Postcolonial Theory

Introduction

India, with its multilingual and multicultural fabric, has always relied on translation as a vital medium of communication and cultural exchange. Translation in India is not merely a linguistic activity but a socio-cultural practice deeply embedded in the historical evolution of the subcontinent. Unlike Western traditions, where translation theory developed systematically alongside literary criticism, Indian translation thought evolved organically through practice, often articulated in prefaces, commentaries, and literary discourse. The evolution of translation studies in India reflects broader historical transitions—from ancient knowledge systems to colonial encounters and post-colonial identity formation. This paper aims to trace these developments and examine how translation practices and theories have been shaped by changing cultural, political, and intellectual contexts. It also highlights the distinctiveness of Indian translation thought, particularly its emphasis on emotional fidelity rather than literal equivalence.

The roots of translation in India can be traced as early as the fourth century BCE. Initially, translation appeared in the form of recording names of places and individuals across cultures. For instance, the Indian city Takshashila was referred to as Taxila by the Greeks, and Chandragupta Maurya was called Sandruacottos. Kautilya's treatise on statecraft mentions "scribes" rather than translators, indicating an early stage of translation activity. Buddhist teachings were transmitted in Pali and various vernaculars between the first century BCE and the first century CE. These were not exact translations but parallel textual traditions derived from a common source.

During the classical period (c. 100–1000 CE), epics such as The Ramayana, The Gita and The Mahabharata became major sources for translation into regional languages. These translations were often referred to as *chaya*, reflecting the perception of translation as a derivative activity. The Panchatantra played a crucial role in global translation history. It was translated from Sanskrit into Pahlavi, Syriac, Arabic, Persian, Greek, and Latin, eventually spreading across Europe. Institutions such as Nalanda University also contributed significantly to translation, especially in the dissemination of Buddhist texts into Chinese and Tibetan.

The medieval period witnessed extensive translation activity aimed at preserving and disseminating classical knowledge. Sanskrit texts were translated into regional languages such as Hindi, Punjabi, and Gujarati, a process often described as "renewal." Translation also facilitated cross-cultural exchange. Under rulers like Firoz Shah Tughlaq and Zain-ul-Abedin, Sanskrit texts were translated into Persian and Arabic. Dara Shikoh's translation

of the Upanishads into Persian represents a significant attempt to bridge Hindu and Islamic philosophical traditions. The concept of "diffusion" is relevant here, as texts moved across linguistic and cultural boundaries. Translation was not merely linguistic transfer but also cultural reinterpretation, enabling the preservation and transformation of knowledge.

The colonial period marked a turning point in Indian translation history. Translation became both a tool of colonial administration and a means of intellectual engagement. British Orientalists such as Sir William Jones and Max Müller translated Sanskrit texts into English, introducing Indian literature to the West. Simultaneously, Indian scholars translated English works into regional languages. Bharatendu Harishchandra played a pivotal role by advocating translation as a means of national progress and cultural awakening. His translations emphasized cultural adaptation and natural expression rather than literal accuracy.

Mahavir Prasad Dwivedi further developed translation theory by promoting *bhava anuvad* (sense-for-sense translation). Similarly, Shridhar Pathak highlighted the challenges of translating poetry across cultures and supported creative flexibility. Acharya Ramchandra Shukla provided a more systematic approach, arguing that translations should read like original works in the target language. As G. N. Devy observes, while medieval translations aimed at cultural liberation, colonial translations were often reactionary, shaped by colonial pressures.

In the post-colonial era, the situation has been totally changed. With the origination of the modern Indian languages, translation activity became intensified and the concept of 'translation as a shadow of original text' was not strictly followed. In the 20thcentury, the source language of translation was Sanskrit for the early generation writers like Sri Aurobindo, P. Lal etc. but the source language is generally their regional language for the modern bilingual poets like Rabindranath Tagore, Dilip Chitre, A.K. Ramanujan, R Parthasarthy and Arun Kolatkar. Most of these translators have translated 'bhakti' literature Rabindranath Tagore translated Kabir, Sri Aurobindo translated Vidyapati and Dilip Chitre translated Tukaram and Dnyaneshwar. In the recent years, the contacts with western languages like English, French, Spanish, etc and culture also have influenced the theoretical stand point of the translators of India. As a result of these historical changes, new translation theories have been emerged with the developments in the socio-cultural situations and the changing tastes of the new generation.

The tradition of translation thought in India is neither as long nor as developed as in the West. Nevertheless, from time to time, many writers, translators, and translation theorists have expressed their views-either in the prefaces of their translated works or in journals and magazines. A comparative study of English and Hindi reveals that as early as the nineteenth century, some Indian scholars began to reflect on translation theory in the prefaces of their works.

Among them, Bharatendu Harishchandra (1850-1885) holds the most significant place. The modern period of Hindi literature itself began with an emphasis on the importance of translation. Translation played an important role in the background of India's national awakening. Bharatendu and other writers of his era clearly understood the value of translation Bharatendu himself translated extensively from English, Sanskrit, and Bengali and also inspired his contemporaries to do so. Bharatendu translated numerous works-such as Shakespeare's *The Merchant of Venice* (as *Durlabh Bandhu*), Yatindra Mohan Thakur's Bengali play (*Vidya Sundar*), Rajshekhar's Prakrit play (*Karpur Manjari*), and Sanskrit plays like *Mudrarakshasa Dhananjaya Vijay*, and *Ratnavali*.

To achieve this, the translator must imprint their national, social, and cultural identity upon the work. For example, while translating Shakespeare's The Merchant of Venice, Bharatendu Indianized It-making it culturally relatable for Hindi readers. Thus, he favored using natural idioms of the target language rather than literal ones. His

approach to translation was balanced and insightful-valuing both public good and artistic beauty. His vision remains relevant even today.

After Bharatendu, Mahavir Prasad Dwivedi (1864-1938) carried the tradition forward. He translated many works such as *Vairagya Shatak, Geet Govind ShringarShatak, Ritusanhar, Kumarasambhavam, Raghuvansham,* Byron's Bridal Night, and Bacon's Essays-from Sanskrit and English into Hindi. Based on his experience, he formulated certain principles of translation. Dwivedi believed that to translate poetry, one must possess poetic talent: "Before begin translation, the translator must assess his own ability. Only a true poet can translate poetry well." For him, the essence of good translation lies in sense-for-sense rather than word-for-word rendering.

Acharya Ramchandra Shukla (1884-1940) gave Hindi translation thought a firm intellectual base. His translations include *Megasthenes' India* (*The Indica*), *Plain Living and High Thinking (Adarsh Jeevan), The Riddle of the Universe (Vishva Prapanch),* and *The Light of Asia (Buddha Charit).* Based on his experience, he concluded that translations should read like original works. He believed that the target language should not feel dominated by the source language. He often adapted, omitted, or restructured parts to suit Indian readers, stating, "To align with the customs of this country, certain additions and omissions are necessary".

Harivansh Rai Bachchan (1907-2003) brought maturity and permanence to Hindi translation thought. In his writings, he viewed translation as an equally creative act as original writing: "When done with genuine inspiration, translation is no less significant than original creation." He believed that a truly successful translation is one that does not appear as a translation at all-it should feel like an original. Bachchan prioritized emotional translation (bhava-anuvad) over literal translation and supported Fitzgerald's adaptive approach in *The Rubaiyat of Omar Khayyam.* For him, translation was an act of artistic empathy: "The translator must merge emotionally with the original author. Without this connection, the translation becomes lifeless." Translation, he said, offered him the same joy as creation itself.

Dr. Gargi Gupta (1929-1998) further institutionalized translation studies in Hindi, transforming it from a secondary craft into an independent discipline. She considered literary translation a creative process--a recreation based on the original, not a replica. She noted that literary translation is the most difficult due to linguistic artistry, and that cultural and historical gaps increase the challenge. According to her, the search for equivalence is the most complex aspect of translation. The translator must understand the original's literary devices and convey their closest expressive equivalents in the target language. She asserted that emotional translation suits literary texts, while literal translation works best for scientific or informational texts. Gargi Gupta defined a successful translation as one that "though a translation, gives the pleasure of an original work."

Bholanath Tiwari (1923-1989) is another prominent name in the linguistic and translational field. His contributions to translation theory are noteworthy. He authored several works on both the theoretical and practical aspects of translation, such as *Anuvad Vigyan, Kavya Anuvad ki Samasyaen, Anuvad Kala, Anuvad ki VyavaharikSamasyaen*, and others-exploring problems in translating from Indian and foreign languages as well as in journalism. His important books offer numerous insights into translation theory. A brief introduction to these is presented below: Tiwari believes that, "For a literary translator, knowledge of both languages is essential, whereas a translator of scientific literature also requires knowledge of the subject matter." According to him, "In literary translation, one can only achieve maximum proximity rather than perfection." Another important view of his is that, "Only a translator with natural and creative talent can translate creative literature, whereas translations of non-literary subjects can be accomplished through practice, subject knowledge, and vocabulary."

Conclusion

Based on the above discussion, it can be said that while translation studies have a long tradition in world languages, it has also been long established in English and Hindi. However, the Hindi tradition of translation studies has not progressed as far as the English one. In Hindi, independent reflection on this subject has not yet reached the depth seen in English. Still, the current status of Hindi translation studies is promising, and continuous development underway.

Leading theorists in English and Hindi have expressed their views on various aspects of translation. Most scholars and writers emphasize that translations of creative literature should not be literal but focus on conveying meaning or employ free translation. Literal translation risks losing the resonance and expressive beauty inherent in the original words. Scholars agree that translators of creative literature must have the freedom to add or omit elements to achieve faithful yet effective translation. Successful translation should read like original writing rather than a translated text. Translators must possess deep knowledge of both languages and their cultural contexts and immerse themselves in the mindset of the original author to deliver superior translations. Overall, all translation theorists agree that translating creative literature is a process of re-creation, a challenging task that is neither inferior nor less significant than original writing.

Works Cited

Baker, Mona, editor. Routledge Encyclopaedia of Translation Studies. Routledge, 2001.

Devy, G. N. In Another Tongue: Essays on Indian English Literature. Orient Longman, 1993.

Shahane, V. A. "The Role of Translation in Indian Literature." 1983.

Tiwari, Bholanath. Anuvad Kala. Kitab Ghar, 1989.

Gupta, Gargi. Anuvad Siddhant aur Prayog. Delhi Publications, 1990.

Gahlot, Pawan. Shunye Se Shikhar: Prof. Suresh Singhal–Gaurav Granth. Rising Stars, 2025.

Singhal, Suresh. Anuvad: Anubhuti aur Anubhav. Sanjay Prakashan, 2006.

---. Anuvad: Avdharna aur Aayam. Sanjay Prakashan, 200

Geeta Jain,
Research Scholar,
Department of English,
Baba Mastnath University,
Rohtak
(Haryana)

Prof. J. K. Sharma
Research Supervisor,
Department of English,
Baba Mastnath University, Rohtak
(Haryana)

33

Role of Employee Empowerment in Successful Attainment of Organizational Change

Dr. Reetu

1. Introduction

Since the corporate environment is fast-paced, it is imperative that people are empowered to perform at higher levels of dedication, involvement, and performance. Companies that encourage and assist their staff members are likely to attain optimal efficiency across the board and will empower them to adapt more quickly to the ever-evolving business landscape.

Organizational change can only be achieved when employees working with organization accept the change and have full interest to work accordingly. For achieving the desired outcomes managers must focus on talent management, adopt participative leadership style, formulate proper training programs and give importance to proper reward system. This ensures that this strategy is a tool for achieving the success of the Organization and increasing its efficiency and productivity. (Blanchard et al., 1999; Randolph 1995, 2000) viewed empowerment as a group of procedures that include improved employee autonomy, authority delegation, and information exchange. According to Bowen and Lawler (1992), empowerment is a way that facilitates employees to take a decision. It is a personal phenomenon where employees take responsibility for their work (Pastor, 1996)

This study stands out for being innovative in its field because it focuses on idea of empowerment of employees and in what way management must help employees throughout the process of change. It also finds talented leaders and employees and knows how to best support them during this process of change. Considering that the existing business environment is dynamic, the present study is in line with the demands of the existing turbulent environment.

2. Literature Review

Employee Empowerment

Given the immense challenges and the rate of change, many organizations and businesses place a high priority on their human resources in an effort to gain a competitive edge. As a result, the empowerment approach was used to demonstrate the interest in the people working for the organizations. This was done because it has been shown to have a positive outcome on fostering trust and confidence among management and employees working with organization, increasing responsibilities, facilitating the delegation of authority to solve problems, and inspiring people to take part in decision-making in order to successfully apply the decentralization concept.

Factors Influencing Employee Empowerment

Talent Management

The word talent management is more or less related to human capital management, suggesting that businesses are methodical and intentional in their pursuit of finding, attracting, choosing, developing, promoting, and moving individuals up the organizational ladder (Ingham, 2006). Employees with skills, abilities, and capacities that improve the organization's performance and raise its overall capabilities are the key to an organization's success in the cutthroat business world.

Employee Training

Once a new hire has been selected for employment, the line manager begins to mentor them. This process is known as orientation, and it is described as the method of imparting basic background information about the firm to new admitted employees (Dessler, 2015). This process is intended to make the new hire feel appreciated and like a valued member of the company. Additionally it includes coaching and guiding the employees through the fundamentals of the task, and introduces them to the organization's goals and strategies, as well as the laws and rules governing incentives, rewards, and vacation time.

Rewards to Employees

According to Al-Otaibi (2004), in order to guarantee effective empowerment, upper management must pay sufficient attention to incentives and rewards. Furthermore, associating the rewards with the organization's goals and staff performance can help in attaining employee's empowerment. The organization's upper management should work to strengthen and deepen their association with employees and concentrate on providing both monetary and non-monetary benefits to encourage them to increase their output and perform at the best level.

Organizational Change's Success

The goal of change in organizational framework project is to raise performance levels. To ensure that this

stage is successful, it is necessary to assess whether employees are prepared for it and make the workforce aware of its significance. Whether a project succeeds or fails depends on how the workforce responds. Organizational transformation, according to Jones (2013), is the process by which organizations transform from their current state to a desired future one in order to become more effective. Programs and curriculum within an organization must be integrated to handle change, reap its benefits and prevent its negative impacts.

3. Purpose and Objectives of the Study

The main objective of this present research work is to test whether there is an effect of employee empowerment on the success of organizational change. Keeping this thing as view and considering the research model following objectives were framed

1. To check the impact of Talent Management on accomplishment of organizational change
2. To measure whether training has any impact on organizational change
3. To assess the impact of rewards to employee on successful achievement of organizational change
4. To find out the effect of employee empowerment on success of organizational change

4. Research Model and Hypotheses

This study's primary goal is to examine the effects of three important factors i.e. talent management, training, and rewards to employee on the effectiveness of organizational transformation initiatives related to empowerment. The accomplishment of organizational change is taken as dependent variable, and employee empowerment is the independent variable. Key components of employee empowerment include talent management, training, and employee rewarding. Figure 1 depicts the research model.



Following Hypothesis were framed for achieving the objectives of the study

H_1: Employee empowerment puts a considerable impact on success of Organizational change

H_{1a}: Talent management has a significant and important effect on achievement of organizational change

H_{1b}: Training has a positive and considerable impact on achievement of organizational change

H_{1c}: Rewards to employees shows a considerable effect on achievement of organizational change

1. Research Methodology

The present study has used quantitative approach for analyzing the effect of employee empowerment factors i.e. talent management, training and rewards to workforce on accomplishment of organizational change. Data was collected from workforce of IT sector through questionnaire. The study was conducted in IT sector and IT employees working in Delhi and NCR were approached for data collection. 600 questionnaires were distributed to the employees who are working in IT companies situated in Delhi and NCR but only 502 responses were received. Data was analyzed with the help of SPSS and AMOS. Factor analysis and path analysis was used to find out how observed variables contribute in assessing latent variable and testing the hypothesis respectively.

2. Data Analysis

Reliability Test

Cronbach Alpha is generally used by the researchers for assessing the reliability of the instrument. The measure is considered to be reliable if the value of Cronbach Alpha Coefficient equals or exceeds 60% (Cronbach, 2004). Table 1 represents the value of Cronbach Alpha for the variables used in the study. All variables have a value of more than .60 when revealed that data is reliable for further analysis.

Table 1: Reliability Analysis

Variables	Cronbach Alpha
Talent Management	.97
Training	.91
Rewards to employees	.94
Organizational Change	.98
Total	.95

Path analysis for hypothesis testing

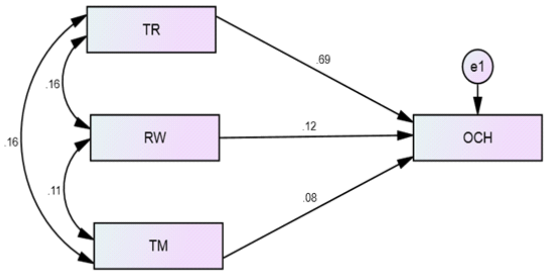


Figure 3: Path Analysis

Figure 3 shows the path model testing the relationship of TR (Training), RW (Rewards), TM (Talent Management) and OCH (Organizational Change). Path model was drawn to check out the impact of training, rewards and talent management on accomplishment of organizational change. Regression estimate for the relationship of TR and OCH was found .69 revealing that when TR increases by 1, OCH increases by .69. Regression estimate for the relationship of RW and OCH was .12 and .08 for the relationship of TM and OCH. All the regression estimates were significant with p value less than .05 which revealed a significant impact of independent variables (TR, RW and TM) on dependent variable OCH.

Table 4: Regression Weights for Path Analysis

	Estimate	S.E.	C.R.	P	Label
OCH ←TR	.69	.029	22.051	***	H_{1b} accepted
OCH ←TM	.08	.025	2.563	.010	H_{1a} accepted
OCH ←RW	.12	.028	3.829	***	H_{1c} accepted

Testing the effect of empowerment on accomplishment of organizational change

Figure 4 depicts the path analysis showing the effect of employee empowerment on achievement of organizational change. The factors i.e. TR, RW and TM were used as indicators measuring employee empowerment. Standardized regression weights for all the three factors measuring empowerment were significant with a p value less than .001. Regression estimate measuring the influence of empowerment on achievement of organizational change was found to be .98 revealing a high influence of employee empowerment on achievement of organizational change (H_1 accepted)

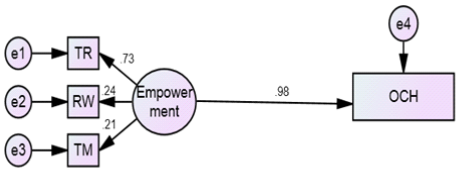


Figure 4: Path analysis for effect of Empowerment on OCH

Table 5: Standardized Regression weights

	Estimate	S.E.	C.R.	P value
TM ← Emp	.21			
RW ← Emp	.24	.292	3.580	***
TR ← Emp	.73	.664	4.620	***
OCH ←Emp	.98	.919	4.095	***

1. Results and Discussion

This study's goal is to find out how employee empowerment affects the effectiveness of organizational change. To that end, it looked into three factors that are representative of employee empowerment i.e. talent management, training, and rewards to employees. Based on the perspectives of leaders and employees, the study was conducted in IT companies situated in Delhi and NCR. Data was collected using a questionnaire that was given to 600 employees, with 83% response rate. Appropriate statistical tools were then applied to the data to produce findings.

Results of the study disclosed that employee empowerment has a major impact on the success of organizational change; this finding is consistent with the research conducted by Sharma and Sahoo (2014) which noted that there are several factors to success of organizational change, such as empowerment. In his study, Ramjee (2007) made a note regarding the importance of training, financial and non-financial rewards, and the positive roles that these factors play in implementing employee empowerment broadly, allowing participation in the decision-making process, and ensuring that employees perform well at work. All of these factors contribute to an increase in work commitment, job satisfaction, and organizational competitiveness.

References

Al-Haddad, S. and Kotnour, T. (2015) "Integrating the

Dr Reetu
Assistant Professor
Department of Commerce
P.I.G. Govt. College for Women,
JindPin code: 126102
Email ID: beniwalreetu22@gmail.com

organizational change literature: a model for successful change", *Journal of Organizational Change Management,* Vol. 28, No. 2, pp. 234 – 262.

Arneson, H. and Ekberg, K. (2006) "Measuring empowerment in working life: a review", *Work,* Vol. 26, No. 1, pp. 37-46.

Hon, A. H. Y., Bloom, M., Crant, J. M. (2011) "Overcoming Resistance to Change and Enhancing Creative Performance", *Journal of Management,* Vol. 40, No. 3, pp. 919–941.

Jones, G. R. (2013) "Organizational Theory, Design and change", 7th Ed, USA: Pearson Prentice Hall.

Lewis, R. E. and Heckman, R. J. (2006) "Talent management: a critical review", *Human Resource Management Review,* Vol. 16, No. 2, pp. 139-154.

Mathew, A. (2015), "Talent Management Practices in Select Organizations in India", *Global Business Review*, 16(1) 137–150.

Melhem, Y. S. (2009) "Empowerment as Administrative Contemporary Concept", Jordan: *The Arab Organization for Administrative Development,* Vol. 1, No. 2.

Nilsson, S. and Ellström, P. (2012) "Employability and talent management: challenges for HRD practices", *European Journal of Training and Development,* Vol. 36, No. 1, pp. 26 – 45.

Ramjee, M. (2007) "An Investigation Into The Impact Of Training and Leadership Programs On Employee Empowerment", Unpublished Master Thesis, NMMU Business School.

Raub, S. and Robert, C. (2010). "Differential effects of empowering leadership on in-role and extra-role employee behaviors: Exploring the role of psychological empowerment and power values", *Human Relations*, Vol. 63, No. 11, pp. 1743–1770.

Roberts, P., Priest, H., and Traynor, M. (2006) "Reliability and validity in research", *Nursing Standard*, Vol. 20, No. 44, pp. 41-45.

Sharma, R. and Sahoo, C. K. (2014), "Education, Empowerment and Communication (EEC) as Drivers of Managing Change", *Management and Labour Studies,* Vol. 39, No. 2, pp. 174–186.

Voegtlin, C., Boehm, S., and Bruch, H. (2015), "How to empower employees: using training to enhance work units collective empowerment", *International Journal of Manpower,* Vol. 36, No. 3, pp. 354 – 373.

34

An Emotion-Aware, Privacy-Preserving Voice-Controlled Virtual Assistant with Deepfake Detection and Continuous Speaker Authentication

Shalini Kush

Abstract

One of the key forms of human-computer interaction that will be examined in this study is the usage of voice-controlled virtual assistants. Even said, there are still certain issues with security, privacy, and human-machine interactions in current systems. In this study, we create a voice-controlled virtual assistant that is emotion-aware and privacy-conscious. To increase the system's dependability, its essential components include continuous speaker verification and defence against voice assaultcounterfeiting. We provide a framework based on deep learning techniques for speaker verification, the transformer model of natural language processing, and automatic voice recognition for this aim. The framework may implement offline processing and continuous identity verification during the interaction process, unlike traditional voice-controlled virtual assistants that rely on one-step authentication. Additionally, various permissions will be defined for several speakers using an adaptive method of role-based access control and speaker modelling.

Keywords: *Offline Speech Processing, Role-Based Access Control, Adaptive Speaker Modelling, Voice-Controlled Virtual Assistant, Speaker Verification, Continuous Authentication, Emotion Recognition, Deepfake Voice Detection, Privacy-Preserving AI*

I. INTRODUCTION

Voice-activated virtual assistants have completely changed how people interact with computer systems using speech interfaces that don't require human intervention. With the development of artificial intelligence.[1] Virtual assistants equipped with intelligence, natural language processing, and automatic speech recognition are now part of many smart devices and personal computers. These assistants, such as Apple Siri, Google Assistant, and Amazon Alexa, allow users to interact through voice commands, making communication easier. However, even with all the technological progress, security and privacy concerns continue to be a major issue. One big problem with today's voice assistants is that they depend on cloud services for processing and initial authentication, which makes them prone to threats like deepfake voice attacks, replay attacks, and unwanted access. Also, most modern gadgets lack features like continuous speaker recognition and emotion-aware interaction.[2] These limitations prevent them from being used in situations where security is a top priority, such as smart homes, healthcare, and personal computers. This study proposes a new voiceactivated virtual assistant that includes voice verification, emotion recognition, and strong privacy protections. The system uses role-based access control, speaker adaptation, deep learning for detecting fake voices, and ongoing speech verification. Unlike existing models, this system includes emotion recognition to improve the assistant's understanding and performance, adapts to changes in the user's voice, and continuously confirms the user's identity during the conversation.

A. Problem Statement

Human-computer interaction has changed a lot because of voice-based virtual assistants, which let people talk to computers. However, even though speech processing technology has advanced quickly, today's voice assistant systems still have several issues, like spoofing, security, privacy, and adaptability.[3] To improve authentication accuracy in voice-based systems, some research papers have looked into speaker verification methods. However, their model didn't include biometric verification or security adaptation features, and instead focused mainly on categorizing emotions.

Even though these studies have made a substantial contribution to the fields of spoof detection, emotion detection, and voice recognition, the majority of current systems still have a number of serious drawbacks:

- Inability to consistently authenticate speakers during interactions
- Dependency on cloud-based speech processing infrastructure limits support for emotion-aware adaptive engagement due to the lack of integrated deepfake voice attack detection mechanisms
- Lack of role-based access control in multi-user contexts; incapacity to manage long-term voice variances utilizing adaptive speaker modelling

Therefore, there is a need for a voice assistant that is extremely secure, protects user privacy, and integrates offline voice recognition, speaker adaptation, emotional response modification, voice deepfake detection, and continuous biometric authentication into a single interaction framework. By integrating several voice intelligence technologies using deep learning techniques under a single framework, this study aims to address the problems mentioned above.

B. Objective

Building a secure, privacy-conscious, and intelligent voiceactivated virtual assistant system is the study's primary goal. The system makes use of state-of-the-art biometric authentication and speech processing techniques. It was developed to address the shortcomings of current voice assistant systems by combining several deep learning methods into a single, cohesive voice-based interface system. The following are the proposed work's precise goals:

1. Instead of just checking the user's identity once at the beginning, the aim is to create a system that keeps verifying the user's identity throughout the whole conversation.
2. To make biometric identification more accurate, deep learning models should be used to detect fake voices, replay attacks, and artificial speech, with special attention to identifying deepfake sounds.
3. To make the AI assistant more effective, it should include emotional speech analysis, which helps understand the speaker's feelings.
4. Combine voice recognition, biometric identification, emotional speech analysis, spoofing detection, and intelligent answer generation into one easy-to-use system interface to make the system more reliable, efficient, and secure.

C. Challenges

It would be necessary to address a number of technological issues in order to develop an intelligent and secure voiceactivated virtual assistant that could carry out continuous speaker authentication, comprehend conversational emotions, identify deepfake and replay-based voices, and protect privacy in an offline setting. The difficulties arise from the complexity of processing voice signals, the necessity for swift decision-making, and combining multiple deep learning elements into one system.

The major challenge is identifying deepfakes and replays that can be utilized as potential attack vectors to jeopardize user security. The advent of sophisticated voice manipulation technology has made it challenging to discern between genuine and false speech signals. Therefore, developing a spoof detection system will be essential.

Because emotional characteristics differ between speakers and speaking situations, integrating emotion identification from speech signals adds further complexity. Changes in speech speed, tone, pitch, and recording conditions can decrease classification accuracy, making it difficult to detect consistent emotions in real-time applications. Another major problem is offline speech processing that protects privacy.[4] Cloud computing is used in the great majority of modern voice recognition and natural language comprehension techniques. Another crucial issue to deal with is the creation of an effective framework for speech processing that is independent of internet access.

In order to create a speech assistant that is reliable, efficient, and functional, all of these problems must be resolved. Implementing our system successfully will be substantially aided by resolving the issues mentioned.

II. RELATED WORKS

The most recent advancements in intelligent speech processing have greatly increased the efficiency of human computer communication through speaker verification systems and voice-activated digital assistants. However, despite significant advancements in this field, several issues related to security, spoofing voice verification, emotional analysis of a discussion, and privacy protection still need to be investigated.

Researchers working on speaker verification systems are increasingly interested in deep learning. In one study, Supriya Telsang et al. [5] developed a technique that uses LSTM networks and MFCCs to tell the difference between synthetic and real sounds. While this method had high accuracy, it only worked for one-time authentication and couldn't verify the user throughout a conversation. This made the system vulnerable to attacks where an imposter could imitate the

user's voice during an entire chat. Anuwat Chaiwongyen et al. [6] also worked on deepfake audio recognition. To make the algorithm better at detecting spoofing, the authors created a deep learning model that used speech disorders and a ResNet structure. They mainly focused on building a standalone model and didn't integrate it into a full solution for a secure voice assistant, even though the results showed better Equal Error Rate (EER) performance. Rohit Rastogi et al. (2023) [7] showed how important voice emotion detection is for improving human-computer interaction in emotion-focused systems. Specifically, in 2024, Jingxiang Guo et al.[8] evaluated how well the ECAPA-TDNN model recognized speakers in situations with remote recordings or background noise interference. The study found that ECAPA-TDNN was significantly more effective in extracting the features required to differentiate between various speakers than other models, such as i-vectors and x-vectors. However, the article did not address the issues related to real-time authentication; instead, it concentrated on improving speaker identification accuracy. Additionally, Zhenye Gan and Xu Zhang [9] investigated whether using the ECAPA-TDNN architecture in feature extraction may enhance performance. Nevertheless, their concept lacked integrated voice assistant technologies for ongoing verification during a conversation.

Hemlata Tak et al. [10] suggested creating a new deepfake detection framework for spoofing detection in general. Additionally, Hemlata Tak, Jose Patino, Massimiliano Todisco, Nicholas Evans, et al. [11] created RawNet2, a method for raw waveform end-to-end spoof detection. It should be noted that the method has shown effectiveness in defending against replay and synthetic speech attacks. However, no continuous authentication system that uses voice-activated assistants has used RawNet2.

Lastly, a model based on prosodic speech features can improve spoofing detection efficiency against deep fake attacks, according to recent research on prosody-based synthetic speech detection [12]. However, prosody-based detection models are not implemented in privacy-preserving voice assistants that can perform safe HCIA, just like earlier approaches.

Although speaker recognition, fraud detection, and emotionaware speech processing have benefited greatly from these efforts, the current systems have serious shortcomings. These include the use of cloud computing resources for speech processing, the incapacity to update speaker profiles based on interactions, the absence of role-based access control, the inability to perform continuous speaker authentication in the context of the interaction, and the absence of deepfake voice detection capabilities built into assistant frameworks. In light of this, the current proposal aims to address this by creating a comprehensive, privacy-preserving voice-controlled assistant system capable of continuous speaker authentication, RawNet2-based deepfake voice detection capabilities, emotion-aware interaction capability, speaker profile updating abilities, and role-based access control for multiuser environments.

III. METHODOLOGY

The new technology provides a safe virtual assistant that respects your privacy and can be controlled by voice commands. Various deep learning techniques are implemented in the system being showcased to improve interactions between humans and computers. Various components work together in the system to provide users with smart and secure responses in a sequential manner. The proposed approach performs voice recognition, security, and intention detection tasks offline whenever possible, which is different from traditional voice assistants that mainly depend on cloud computing methods for processing.

First, the suggested assistant's workflow consists of a number of steps: gathering speech; preprocessing the collected speech; identifying the speech content using ASR; verifying the speaker's identity; spoofing detection, which detects attempts to imitate another speaker's voice; assessing the speaker's emotional state; figuring out the speaker's intention; managing access; and updating the speaker profile

A. Preprocessing and Speech Recognition

Using a microphone interface, the first step in the process described is to record a voice command from the user. The speech signal undergoes preprocessing to enhance the sound quality and eliminate any background noise that may be present. Preprocessing techniques such as noise

filtering, normalization, eliminating silence, and enhancing audio features are commonly used in audio processing. This procedure enhances the system's overall strength.

C. Module for Continuous Speaker Authentication

The suggested virtual assistant employs ongoing authentication instead of traditional one-time verification in order to enhance security measures. The system utilizes the ECAPA-TDNN deep learning technique to extract distinct speaker embeddings from the audio data for speaker identification. Once authentication is successfully completed, this procedure blocks access and protects users from any attempts at impersonation.

D. Module for Detecting Deepfake Voices

In today's world, voice assistants must protect themselves from attacks that exploit advanced voice synthesis software to ensure their security. To assist the system in distinguishing between genuine and fake speech, the proposed model incorporates a spoof attack detection system that utilizes advanced deep learning methods called RawNet2. This module is designed to scan through the raw audio signals to detect signs of spoofing, like replay attacks, impersonation, and synthetic manipulation, in order to identify any potential voice tampering.

E. Module for Natural Language Understanding

Transcribing the voice into text for analysis comes next when verification is finished, and the emotions have been examined. BERT, a machine learning algorithm created by Google, is utilized in a transformer-based NLP (natural language processing) model to transcribe text from the user's speech. When it comes to capturing the message's context, the transformer-based model outperforms other models like the rule-based approach.

IV. IMPLEMENTATION

A modular architecture that integrates automatic speech recognition, continuous speaker authentication, deepfake voice detection, emotion recognition, and role-based access control within an offline-capable intelligent interaction framework was used to implement the suggested privacypreserving, emotion-aware voice-controlled virtual assistant. In order to provide safe and flexible human-computer interaction, the implementation places a strong emphasis on integrating several deep learning-based voice processing modules.

A. Environment for System Development

The following software tools and frameworks were used in the implementation of the suggested assistant: Python for system development in general. PyTorch for implementing deep learning models. Speech Brain for simulating speaker verification.

B. Implementing Speech Recognition

OpenAI's Whisper automatic speech recognition model was used to generate the assistant's speech recognition component. The model generates text that is transmitted to the intent recognition system after analysing recorded audio signals on the device.

C. Implementing Constant Speaker Authentication

- The ECAPA-TDNN speaker embedding model, which extracts significant voice characteristics from speech data, was used for continuous speaker authentication.
- When the system is being initialized, Speaker embeddings were created by recording user voice samples, and they were safely kept as reference templates.

D. Implementing Deepfake Voice Detection

A spoof detection module utilizing the RawNet2 deep learning model was incorporated into the assistant's operation to protect the system from replay attacks and phony speech. In order to differentiate between the following, the RawNet2 model examines raw waveform speech characteristics: authentic human speech, audio replay,

and synthetic speech produced by AI. In order to preserve security, the system instantly stops command execution and ends the session if spoofing is discovered.

F. Implementation of Natural Language Understanding

The model determines user intent and associates instructions with preset system actions, like launching applications, obtaining data, carrying out system functions, and producing conversational responses. When compared to rule-based methods, transformer-based language modeling greatly increases the accuracy of command interpretation.

G. Implementing Role-Based Access Control

Permission categories were given to users, including:

administrator, registered user, and visitor. Only authorized users were able to execute sensitive commands, guaranteeing safe system functioning in shared settings.

H. Privacy-Preserving Offline Processing

This system differs from standard cloud-based assistants in that it does speech recognition, verifies the identity of the speaker, identifies phony voices, and analyzes emotions whenever possible on the device.

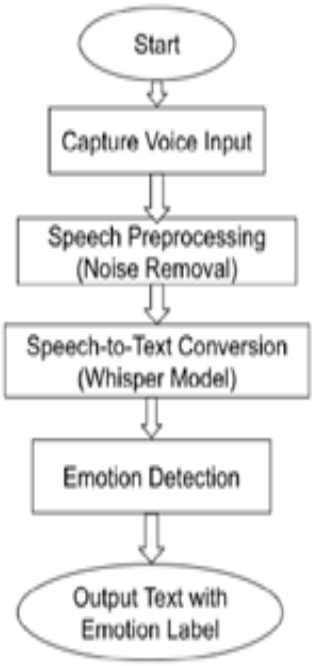


Fig. 1.1 Voice Processing Pipeline for Speech Recognition and Emotion Analysis

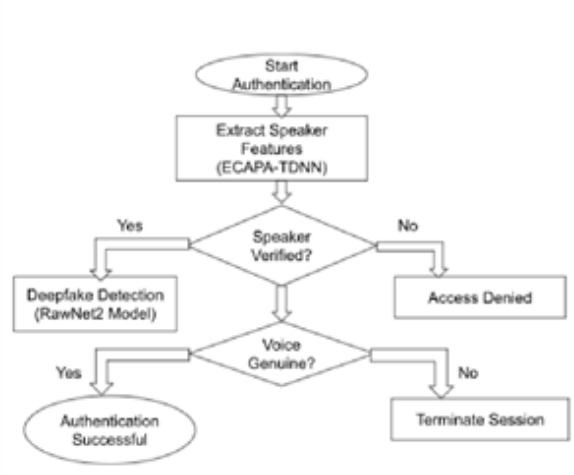


Fig. 1.2. Security Authentication Pipeline using Speaker Verification and Deepfake Detection

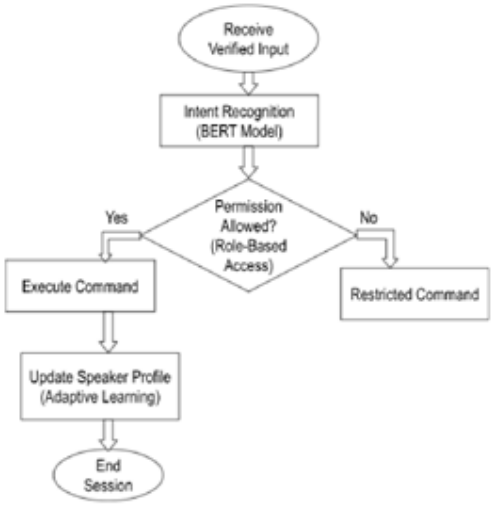


Fig. 1.3. Intelligent Command Execution and Access Control Pipeline

V. RESULTS AND DISCUSSION

The accuracy of speech recognition, speaker authentication, spoof detection, emotion categorization, and secure command execution efficiency of the novel privacy-focused emotion-aware voice-controlled virtual assistant were evaluated. Compared to conventional voice assistants, the assistant was more secure and more adept at comprehending context due to the combination of many deep learning-based modules.

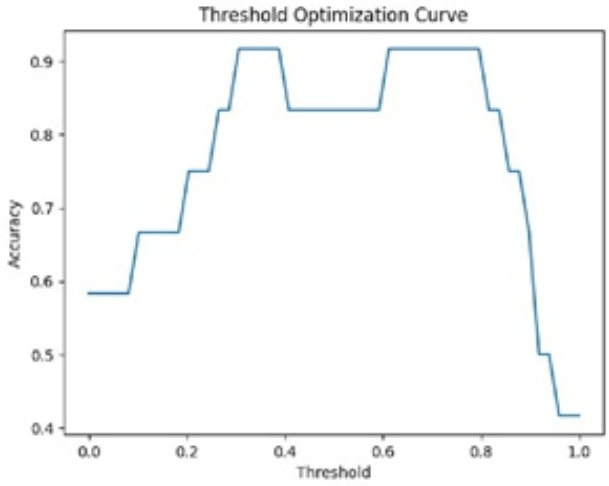
A. The Process of Speech Recognition

Based on the Whisper architecture, the speech-to-text module showed excellent robustness in identifying user commands in a variety of speaking styles and with moderate background noise. The model consistently maintained transcription accuracy despite differences in speech speed and tone, according to experimental results. The suggested approach allowed for local voice processing, which reduced latency and protected user privacy during interactions.

B. Constant Accuracy of Speakers

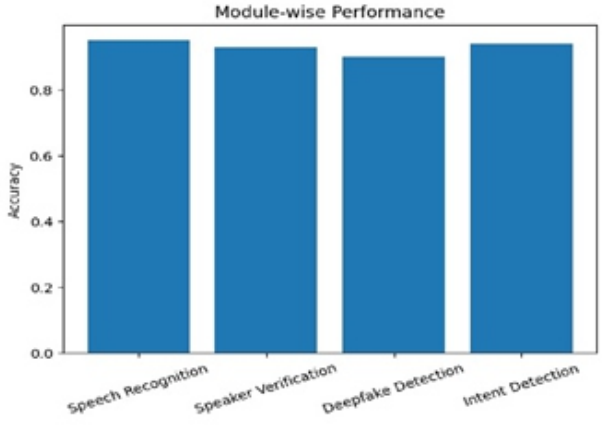
Using voice data gathered during their contacts, the ECAPATDNN-based speaker verification system effectively verified registered users. It ensured that only authorized users could access the system during the whole session, not only when they first logged in, by continuously verifying the user's identification. As a result, the system is now far more secure against efforts

to impersonate someone and unauthorized use of commands in locations where many people use it.



C. Effectiveness of Deepfake Voice Detection

In tests, the RawNet2 spoof detection model performed well in identifying replay assaults and phony speech. It performed a good job of distinguishing between human voices and machine voices, preventing the execution of dangerous commands. This module addressed a significant flaw in standard voice assistants, increasing the system's dependability.

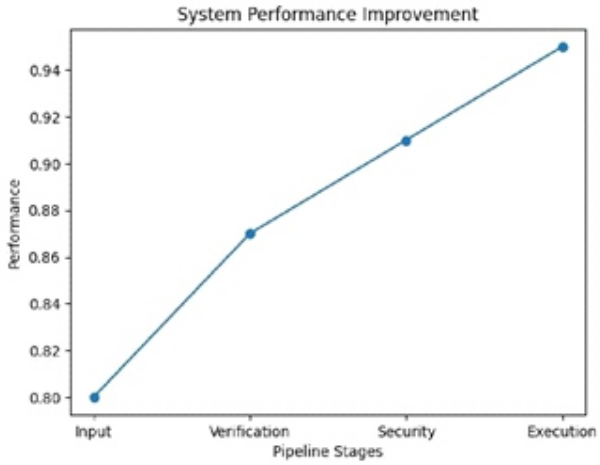


D. The Ability to Identify Emotions

To classify how users are feeling, the emotion detection part analysed different aspects of their speech, like pitch changes, tone strength, and energy in speech. Based on observed emotions such as tension, neutrality, or happiness, the assistant modified its responses. Improving user experience, adaptive interaction capabilities enhance communication between individuals and intelligent systems by enabling context-aware interactions.

E. Performance of Role-Based Access Control

The implementation of sensitive instructions depended on meeting permission criteria through the role-based authorization framework. Different levels of access, such as administrator, registered user, and guest user, were effectively implemented within the assistant system. In places where multiple people use the same computers, such as households, laboratories, and institutional networks, this feature enhances security measures.



F. Offline Efficiency & Privacy

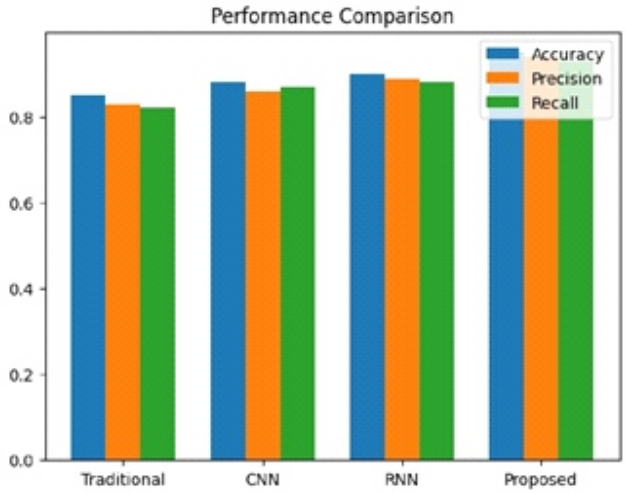
Reducing dependence on external cloud services enhanced privacy as per the recommendation of the assistant. Most of the system's speech-processing components functioned onsite, minimizing the risk of data exposure and unauthorized entry. Furthermore, offline processing enhanced the system's speed of response and decreased the time taken to react. *G. Enhancements to Adaptive Speaker Modelling*

The speaker status system improved long-term security accuracy by using sound samples confirmed during sessions. As a result, helpers can reliably remember the performance, even if slight changes happen because of factors such as the user's well-being or surroundings.

H. Comparative Analysis of Current Voice Assistants

- The suggested system shows many enhancements after contrasting our modelling method with conventional ones.
- Unlike single-step verification, continuous speaker authentication
- The capacity to recognize deepfake voices
- Role-based command authorization and emotion-aware response generation
- design for offline processing that protects privacy

The assistant adjusted its replies by analysing emotions like tension, neutrality, or happiness that were noticed.



VI. CONCLUSION AND FUTURE SCOPE

A. Conclusion

We have carried out research and innovation in creating virtual assistants that prioritize privacy, recognize emotions, and boost security measures. It allows the system to address various limitations present in conventional voice interface systems. To improve how users interact and protect system privacy, the proposed solution integrates speech recognition, speaker verification, deepfake audio detection, emotion evaluation, and role-based access control into one smart system.

This new helper works even without being connected to the internet. It consistently monitors the user's voice during the conversation, unlike regular voice assistants that depend on cloud processing and perform security checks once. This helps ensure that the system remains reliable and secure. Moreover, the assistant comes equipped with voice recognition technology to safeguard against hackers attempting to deceive the system with prerecorded or fake voices. This is especially important as voice-activated gadgets are increasingly susceptible to such attacks.

REFERENCES

[1] H. Tak, J. Patino, M. Todisco, and N. Evans, "RawNet2: End-to-end raw waveform spoofing detection," in *Proc. Odyssey: Speaker Lang. Recognit. Workshop*, Istanbul, Turkey, 2020, pp. 1-8, doi: 10.21437/Odyssey.2020-12.

[2] M. H. Alsalihi and D. Sztahó, "Comparative analysis of deep speaker embeddings: X-vector to WavLM," *Appl. Sci.*, vol. 15, no. 3, p. 789, Jan. 2025, doi: 10.3390/app15030789.

[3]"Emotion-dependent speaker verification with ECAPATDNN and HuBERT," in *Proc. ICASSP*, Apr. 2025, pp. 2345-2349, doi: 10.1109/ICASSP.2025.XXXX. [4]"Prosody-based detection of synthetic speech deepfakes," *Speech Commun.*, vol. 158, p. 103456, Feb. 2025, doi: 10.1016/j.specom.2024.103456.

[5] S. Telsang et al., "LSTM-MFCC based speaker verification for synthetic audio detection," in *Proc. ICASSP*, Apr. 2024, pp. 4567-4571, doi: 10.1109/ICASSP.2024.XXXX.

[6] A. Chaiwongyen et al., "ResNet-based deepfake audio detection using speech disorders," *IEEE Access*, vol. 14, pp. 23456-23467, 2026, doi: 10.1109/ACCESS.2026.XXXX.

[7] R. Rastogi et al., "Voice emotion detection for enhanced human-computer interaction," *J. Audio Eng. Soc.*, vol. 71, no. 12, pp. 890-899, Dec. 2023, doi: 10.17743/jaes.2023.XXXX.

[8] H. Tak, J. Patino, M. Todisco, and N. Evans, "RawNet2: End-to-end raw waveform spoofing detection," in *Proc. Odyssey: Speaker Lang. Recognit. Workshop*, Istanbul, Turkey, 2020, pp. 1-8, doi: 10.21437/Odyssey.2020-12.

[9] J. Guo et al., "ECAPA-TDNN for speaker verification under noisy conditions," *IEEE Trans. Audio, Speech, Lang. Process.*, vol. 32, no. 5, pp. 1234-1245, May 2024, doi: 10.1109/TASLP.2024.1234567.

[10] Z. Gan and X. Zhang, "Enhancing speaker verification with ECAPA-TDNN feature extraction," in *Proc. Interspeech*, Kos, Greece, 2024, pp. 567-571, doi: 10.21437/Interspeech.2024-1234.

[11] H. Tak et al., "Wav2vec 2.0-based deepfake detection with augmentations," *IEEE Signal Process. Lett.*, vol. 29, pp. 1456-1460, 2022, doi: 10.1109/LSP.2022.3187654.

[12] A. Krizhevsky, I. Sutskever, and G. Hinton, "ImageNet classification with deep convolutional neural networks," in *Proc. NeurIPS*, 2012, pp. 1097–1105.

[13] M. Schuster and K. K. Paliwal, "Bidirectional recurrent neural networks," *IEEE Transactions on*

Signal Processing, vol. 45, no. 11, pp. 2673–2681, 1997.

[14] A. Hannun et al., "Deep speech: Scaling up end-to-end speech recognition," arXiv:1412.5567, 2014.

[15] R. K. Moore, "Human–computer interaction in speech technology," *Philosophical Transactions of the Royal Society A*, vol. 366, no. 1871, pp. 3825–3846, 2008.

Shalini Kush
Department of CSE
Apex Institute of Technology
Chandigarh University, Punjab, India
shalinikush973@gmail.com

35

ARTIFICIAL INTELLIGENCE AND LEGAL SYSTEMS: BRIDGING INNOVATION WITH JUSTICE

Vismaya Bansal, Dr. Anchal Mittal Aggarwal

Abstract:

The use of Artificial Intelligence in the legal sector has increased tremendously over the last few years. The AI technologies, like the machine learning algorithms and computer vision, have been used time and again to different legal domains that include legal research, contract review, and prediction of case outcomes. The application of Artificial Intelligence in law has the capacity to enhance the efficiency and decrease the costs, also raising certain concerns regarding privacy, bias, and accountability. This research paper seeks to provide an impression of the intersection between artificial intelligence and law, including the various applications of AI in the legal system, such as legal research, contract analysis, and predictive analytics. It also examines the ethical implications of AI in the legal field, such as bias, privacy, and security concerns. Additionally, it intends to conclude with suggestions for policymakers, legal practitioners, and researchers, focusing on how to harness the potential of AI while mitigating the risks associated with it. Upholding a key ethos of the Constitution of India i.e. justice with the integration of innovation and technology.

Keywords: Artificial Intelligence, Legal Technology, Machine Learning, Natural

I. INTRODUCTION

It is pertinent to mention that there is not a single universally used definition of "artificial intelligence". There are many well accepted definitions of the term artificial intelligence. "Artificial intelligence" means the science and engineering of making intelligent machines.

According to Merriam Webster's, ***"Artificial intelligence is a branch of computer science dealing with the simulation of intelligent behavior in computers".***

According to Black's Law Dictionary, "***Machine Learning is using repetition and experience as how humans seem to learn. Using software whose operations mimic these methods, employing artificial intelligence techniques to enhance the ability of a machine to improve its own performance".***

Artificial intelligence has transformed many industries by giving latest technological know-how to cater to complex issues. In this aspect legal industry has also not been left. AI has the potential to transform the legal profession in varied ways, for e.g. automating the regular and routine tasks to increasing the accuracy of legal analysis. The use of AI in the legal industry has grown to a huge extent, and the potential for further expansion is enormous.

According to a report by Grand View Research, the global legal AI market size was valued at $714.4 million in 2020 and is bound to grow at a Compound Annual Growth Rate of 37.9% from 2021 to 2028. The report attributes this growth to the increasing demand for automation in legal processes, rising legal expenses, and the need for an efficient contract management.

The use of Artificial Intelligence enhances the efficiency and decreases the costs, along with questions pertaining to privacy, bias, and accountability. Using Artificial Intelligence in the legal system also raises concerns regarding the ethical and legal questions. We need to address issues like, how can we ensure that Artificial Intelligence systems are transparent and accountable and the ways how we prevent bias in Artificial Intelligence decision-making process.

The functioning of the Indian legal profession is such that the complete process is done physically and manually as the legal industry is largely labor-intensive. As a result, AI is still in its early stage in context of the application in the legal practice. Certain champions believe that technology should not be coarsely used since it may eventually take over man, and so avoiding the idea of Artificial Intelligence in legislation. But it needs to be noted that there are many tech-savvy lawyers, and some tier one law firms, who have started taking advantage of technological innovations to get an edge over their competitors.

Quoting one such example is the top tier legal firm in our country that is Cyril Amarchand and Mangaldas (CAM) that has acknowledged the capabilities of Artificial Intelligence and is therefore adopted it. CAM has achieved history by becoming the first Indian law practice to license *"Kira," a machine learning program that has been developed by the Kira Systems* in Canada. This Artificial

Intelligence based software saves a lot of time and effort. It is used to analyze legal papers, locate any potential dangerous and difficult areas, and extract provisions from various legal documents. It is a patented machine learning software that identifies, extracts, and analyzes content in contracts and documents with utmost accuracy and efficiency.

One such major concern is that Artificial Intelligence can be used to exclude certain groups of people. Yet other concern is that Artificial Intelligence could be used to erode the right to privacy, which can be a major disadvantage if not handled with proper measures and rules. Artificial Intelligence systems are making meaningful inferences, and categorizations, and their use is carried across sectors, from advertising to law enforcement. The ability of Artificial Intelligence systems to extract information from data, spot patterns and predict trends means that harmless information can be mined as per the relevance.

II. THE CURRENT STATE OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE IN LEGAL SYSTEM

The legal industry is one of the biggest in the world and is valued at around 1 trillion Dollar worldwide and, it remains considerably non-digitalized. The legal field is slow to adapt new technologies, and advocates still turn to solutions developed over the years. AI has the substance to change how Legal Personnel work and how a common man views the legal practice in India. This is an ongoing process and will develop over time. The legal system is dynamic, and lawyers can use smart skills to gain unique insight into the law in lesser span of time by correct utilization of the AI based tools and processes.

III. REGULATORY APPROACH TOWARDS ARTIFICIAL INTELLIGENCE: GLOBAL AND INDIAN PERSPECTIVE

The European Union had proposed that the Artificial Intelligence Act in 2021 with the aim of ensuring that Artificial Intelligence systems are secure and endorse the fundamental rights of everyone falling under its purview. Additionally, the act proposes to eliminate the market fragmentation within the European Union. The Brazil's government has adopted a Bill in order to establish a legal nexus for the Artificial Intelligence.

The Canadian government has also presented the Digital Charter Implementation Act at the House of Commons. The Act includes legislation that aims to strengthen the data privacy framework and guarantee the ethical advancement of Artificial Intelligence.

India's Regulatory Approach Towards AI So Far

At present, there are no one specific legislation in India with regard to regulating Artificial Intelligence. Ministry of Electronics and Information Technology, is the main agency for Artificial Intelligence strategies, which has formed committees to bring a policy framework for AI.

The Niti Aayog has also formulated set of seven Artificial Intelligence principles, which are safety and dependability, equality, inclusivity and non-discrimination, privacy and security, transparency, accountability, and the protection and reinforcement of positive human values which are expected to protect the public interest and encourage innovation through increased trust and adoption.

The Supreme Court of India has made the Artificial Intelligence Committee to check the application of Artificial Intelligence in the judiciary. This committee has primarily identified applications of AI technology in the translation of judicial documents, legal research assistance, and process automation.

It is pertinent to mention about the most recent legislation i.e., the ***"Digital Personal Data Protection Act", or DPDP Act***, which has been enacted in August 2023, is the law in India that caters to the rights of people in order to protect the personal data. The Act lays down the obligations on Data Fiduciaries, one's who are processing data, and demarcates the rights and duties of Data Principals. Further the penalties for breach of such obligations have also been given in the Act.

IV. THE INTERPLAY OF ARTIFICIAL INTELLIGENCE AND LEGAL SYSTEM

a. Applications of Artificial Intelligence

Artificial Intelligence technologies, like the machine learning, computer vision, have many applications in the legal domain. Some of them are as under:

I. Legal Research

Legal research is a lengthy and time taking process wherein the lawyers have to analyze large number of legal records. Artificial Intelligence tools, such as Lexis Nexis, Westlaw and Bloomberg Law, aid and assist the lawyers to do the research in the best manner. The said

applications use machine learning algorithms to analyse legal records and extract the required information. This helps the advocates in finding the correct cases and regulations faster.

Artificial Intelligence research tools use natural language processing algorithms to analyse legal record and figure out the relevant cases and statutes. Such tools do check and display the most important issues as per the search, thus making legal research faster and accurate. Artificial Intelligence research engines can give the insights into legal precedent that also aids professionals to take better and informed decisions.

ii. Contract Analysis

Contract analysis involves review and analysis of the legal records to cull out the major terms. Artificial Intelligence powered tools like Kira Systems used by the Cyril and Amarchand Law firm and Law Geex have led to a better and more effective process. Artificial Intelligence based tools use NLP to analyze legal records and check important terms. Artificial Intelligence powered contract analysis tools easily compare legal records to isolate the differences and similarities, and it becomes easier to create new contracts.

iii. Document Review

Artificial Intelligence review tools analyze huge volumes of records along with checking the important information, as most relevant terms. These tools can also check and verify substantial issues in records, like the conflicting or missing information. Artificial Intelligence tools decrease the time and cost of document review, to a great extent and hence allowing the legal professionals to focus on other aspects.

iv. Predictive Analytics

Predictive analytics is the domain where Artificial Intelligence technology has great potential in respect of law domain. In legal sector, predictive analytics can predict case outcomes, check for the potential risks, and give insights in the legal strategy. Artificial Intelligence tools, such as Blue J Legal and Premonition, use machine learning to analyze case law and tell the outcome of legal cases. These tools can give information on the likely impact of a topic, allowing advocates to take effective decisions and give better advice to their clients.

b. Benefits of Artificial Intelligence in the Legal System:

The following are benefits of Artificial Intelligence in the practice of law:

I. Time Saving

Dealing with the legal cases is a cumbersome process. It's a long process from filing a case until its disposal. Artificial Intelligence, has increased the level of handling cases significantly. The stakeholders those are involved in a case including the advocates and judicial officers can save time, by optimal utilization of the Artificial Intelligence tools.

ii. Analysis of Contract

Artificial Intelligence software applications are reliable for lawyers in working faster and in winning the trust of the clients. They analyze legal contracts in logical order along with the business contracts and its risk factors.

iii. Efficiency

Artificial Intelligence legal research tools are capable of working on huge amount of data efficiently. The processing allows lawyers to check on important information quickly, significantly increasing the speed of the research process.

iv. Accuracy

Artificial Intelligence tools are adept at analyzing and interpreting the legal records with a high degree of accuracy. This shells down the risk of overlooking highly important or misinterpreting legal texts. The accuracy of Artificial Intelligence in legal research checks that the legal professionals have access to dependable and up-to-date information, which is crucial when dealing.

Some of the significant drawbacks of Artificial Intelligence in law are discussed below:

I. Bias in Data and Algorithms

Artificial Intelligence is unbiased only to the extent of its input, which leads to biased results. The data that is used as the prototype for the Artificial Intelligence can be personal, including societal prejudices and norms. In case the data used to train Artificial Intelligence inputs is biased, the results will tend to be limited. In the legal sector, this leads to discriminatory results, which may lead to systemic prejudice and injustice. We need to ensure that the data that has been used to prepare the Artificial Intelligence inputs is representative and not biased, in order to deal with this concern.

ii.Limited Scope

Artificial Intelligence inputs can only work with the data they are provided, and they may comprehend entirely on the basis of the context that data has been given to it. This might be even problematic in respect of certain legal context, where defination of a term can differ based on the particular legal context.

iii. Cost and Accessibility

The Artificial Intelligence technology helps to decrease the costs in the legal sector, it is also expensive to implement. The tier 2 and 3 law firms and individual litigators might not have the funds to invest in the Artificial Intelligence technology, making it less accessible to the one's who require it the most.

iv. Data Security

Using of the AI in the legal domain may also lead to data breaches and other security concerns. Advocates deal with sensitive and privileged records, and any data fallout can have implications both the legal and financial. Artificial Intelligence tools used in the legal sector should be secured, and requisite measures must be implemented in order to protect sensitive data.

V. CAN ARTIFICIAL INTELLIGENCE BE GIVEN LEGAL RIGHTS AND DUTIES

There are a quite a few arguments that are in favor of giving Artificial Intelligence legal rights and duties.

Firstly, one of the arguing point is that Artificial Intelligence is now becoming a lot more trailblazing and is also making decisions that largely influence people.

Secondly it would help protect people from Artificial Intelligence potential harm.

Artificial intelligence entities must be treated as legal personalities so as to make them accountable under the law, the realm of legal personhood should be also be given to artificial intelligence entities like it is given to the corporate bodies.

However, there are also arguments against giving Artificial Intelligence *legal rights and duties.*

AI is not a person and does not have the same morality also. Artificial Intelligence systems are simply machines that have been made up to do allotted tasks. They do not have the same capacity for thought and experience as human beings, and they cannot be held morally accountable like the human beings are.

Conclusively, the question of whether or not to give Artificial Intelligence legal rights and duties is quite complex which can be decided on a case-by-case basis.

VI. CONCLUSION & SUGGESTIONS

Artificial Intelligence and Law has the potential to revolutionize the legal industry. Integration of the AI technology in various legal domains has been quite efficient and accurate.

The implementation of the Artificial Intelligence in the legal sector has raised many ethical concerns. The application of the Artificial Intelligence in the decision-making processes might cause violation of the legal principles that are transparency, accountability, and following the due process as given. Artificial Intelligence can also lead to biased decisions and discrimination against specific individuals or groups.

To address these concerns, legal professionals and policymakers need to take into account that Artificial Intelligence systems are transparent, accountable, and comply with legal and ethical standards. They also need to ensure that the AI systems are properly audited and evaluated to check and correct the possible errors.

The intersection of AI and law is increasing leaps and bounds. The use of Artificial Intelligence in legal applications has the potential to revolutionize the legal industry and make legal services more accessible and efficient for clients. The use of Artificial Intelligence in law is a complex issue that needs careful consideration and evaluation. All the stakeholders of the legal system need to work together to ensure that the advantages of Artificial Intelligence are seamingly realized along with addressing the possible risks and challenges. Careful planning and implementation, AI has the potential to revolutionize the legal industry and make legal services more accessible and efficient for all.

***Suggestions* and Recommendations:**

- There is a need to develop a system that determines the responsibilities of the machines processing the Artificial Intelligence prototypes and inputs.
- There is a need for stringent data protection laws to protect privacy. Therefore, the technology needs to be put to use by embracing it and establishing the necessary rules to protect the interests of the users.
- Developing systems and regulations in order to self-

perform legal tasks, like document review, legal research, and drafting, which will give the lawyers more time to focus on other legal issues.

• To reduce the monetary bearing of the legal services, and open public kiosks for understanding the AI assisted models. This can make the services easily available.

• Channelize the use of AI, and provide such legal advice and assistance to the public, that would help them understand the recourse they can resort to making the legal services available to everyone alike even to the one's who cannot afford to hire a lawyer.

References

1. Sherry Yates, Andrerw Walker and Kerri Van Meter, Artificial Intelligence, Researchgate Publication. (2020)
2. Available at https://thelawdictionary.org/machine-learning/ (Last visited on January, 08, 2025).
3. Available athttps://www. grandviewresearch. com/industry-analysis/legal-ai-market-report, (Last visited on January, 08, 2025).
4. Available at "https://kirasystems.com/how-kira-works/", Accessed January, 28, 2025.
5. K.S. Puttuswamy vs. Union of India (2014) 6 SCC 433.
6. Dr. Inderpreet Kaur and (Late) Mr. Chander Gopal Puri, "Impact of Artificial Intelligence on Legal Industry", IJLMH,http://doi.one/10.1732/IJLMH.26062, (2021)
7. Vidushi Marda, "Artificial intelligence policy in India: a framework for engaging the limits of data-driven decision-making", http://doi.org/ 10.1098/rsta. 2018.0087 (2018).
8. Natural language processing is a subfield of computer science and artificial intelligence that uses machine learning to enable computers to understand and communicate with human language. NLP enables computers and digital devices to recognize, understand and generate text and speech by combining computational linguistics-the rule-based modelling of human language-together with statistical modelling, machine learning (ML) and deep learning.
9. Blue J is a computer software program that searches legal rulings surrounding labour and tax issues and compares them to the factors you raise with us, to predict an outcome if a matter were settled in court.
10. Chatterjee, S. and N.S., "Artificial intelligence and human rights: A comprehensive study from Indian legal and policy perspective", *International Journal of Law and Management,* Vol. 64 No. 1, pp. 110-134., https://doi.org/10.1108/IJLMA-02-2021-0049, 2022
11. Dr. Inderpreet Kaur and (Late) Mr. Chander Gopal Puri, "Impact of Artificial Intelligence on Legal Industry",*IJLMH,* http:// doi.one /10.1732 / IJLMH. 26062, 2021

Authors and Affiliations

Vismaya Bansal

Research Scholar,

Faculty of Law, Shree Guru

Gobind Singh Tricentenary University,

Budhera, Gurugram.

Correspondence Address:

Villa 44, Mapsko Casabella,

Sector 82, Gurugram, Pincode: 122004

Mobile No. 9811656010

Co-Author:

Dr. Anchal Mittal Aggarwal

Associate Professor,

Faculty of Law, Shree Guru

Gobind Singh Tricentenary

University, Budhera, Gurugram

36

RESOURCE DEVELOPMENT AND ENVIRONMENTAL ISSUES: A HOLISTIC APPROACH TO SUSTAINABLE DEVELOPMENT

Prof. Tapan Kumar Shandilya

Abstract

The relationship between resource development and environmental sustainability has become one of the most significant concerns in contemporary development economics. Developing countries, in particular, face the dual challenge of promoting economic growth while conserving natural resources for future generations. This paper examines the interconnections among resource utilisation, environmental degradation, population growth, poverty, and sustainable development. It argues that environmental degradation and poverty often reinforce one another, creating a cycle in which economically vulnerable communities are compelled to overexploit natural resources for survival. The study discusses major dimensions of the environment-development nexus, including sustainable development, environmental accounting, population-resource dynamics, poverty-environment linkages, and the role of institutions in promoting ecological balance. The paper further emphasises that conventional measures of economic growth fail to account for environmental depletion and therefore require modification through environmental accounting frameworks. It concludes that sustainable development demands integrated policies that combine poverty alleviation, technological innovation, environmental conservation, institutional support, and equitable global cooperation. A holistic approach to resource development is essential for ensuring economic progress without compromising the ecological foundations of future generations.

Keywords: Sustainable Development, Environmental Accounting, Resource Conservation, Poverty, Population Growth, Environmental Degradation, Rural Development, Holistic Development.

1. Introduction

The relationship between economic development and environmental sustainability has emerged as one of the defining challenges of the twenty-first century. For many decades, economic growth was measured primarily through increases in output, industrial expansion, and national income. However, growing awareness of environmental degradation has led economists and policymakers to recognise that development cannot be sustained if it undermines the natural resources upon which human welfare depends (Todaro & Smith, 2015).

Developing countries face particularly complex environmental challenges. Rapid population growth, persistent poverty, increasing urbanisation, and dependence on natural resources often place severe pressure on land, forests, water resources, and biodiversity. In many instances, poor communities rely directly on environmental resources for their livelihoods, leading to unsustainable practices that further deepen poverty and ecological decline. Thus, poverty and environmental degradation frequently reinforce one another in a self-perpetuating cycle (Pearce & Warford, 1993).

Environmental degradation imposes substantial economic costs. Soil erosion, deforestation, water pollution, and declining agricultural productivity reduce income opportunities and increase health expenditures. The poor suffer disproportionately because they lack access to clean water, sanitation facilities, healthcare services, and alternative sources of livelihood. According to the World Health Organization (2023), unsafe drinking water and inadequate sanitation continue to contribute significantly to disease burdens in developing regions.

Traditional measures of national income, particularly Gross National Product (GNP), often fail to account for the depletion of environmental resources. Consequently, activities that increase current production but destroy forests, degrade soil, or pollute water may appear beneficial in economic statistics while undermining long-term welfare (Todaro & Smith, 2015). This limitation has encouraged the development of environmental accounting frameworks that incorporate natural capital into assessments of economic performance.

The present study adopts a holistic perspective on resource development and environmental issues. It examines the concepts of sustainable development and environmental accounting, analyses the interactions among population growth, poverty, and environmental degradation, and discusses policy measures required to promote environmentally sustainable economic development.

2. Sustainable Development and Environmental Accounting

2.1 Concept of Sustainable Development

The concept of sustainable development gained global prominence through the report of the World Commission on Environment and Development, which defined it as development that meets the needs of the present generation without compromising the ability of future generations to meet their own needs (WCED, 1987). This definition emphasises intergenerational equity and recognises that economic progress must occur within ecological limits.

Economists have expanded this concept by viewing sustainability in terms of maintaining or increasing the overall stock of capital assets over time. These assets include manufactured capital, human capital, and environmental capital (Pearce & Warford, 1993). Sustainable development therefore requires that economic activities preserve the productive capacity of natural resources while improving human welfare.

Environmental resources constitute a common heritage that supports present and future generations. Excessive exploitation of forests, water resources, minerals, and agricultural land for short-term economic gains imposes long-term social costs. Consequently, environmental conservation must be integrated into development planning rather than treated as a separate policy objective (Todaro & Smith, 2015).

2.2 Environmental Accounting

Conventional national income accounting systems provide only a partial picture of economic performance because they do not adequately reflect environmental degradation. The depletion of forests, soil fertility, groundwater reserves, and biodiversity often remains invisible in national accounts, leading to an overestimation of economic welfare (Pearce & Warford, 1993).

Environmental accounting seeks to address this deficiency by incorporating environmental depreciation into measures of national income. A simplified expression for sustainable national income may be represented as:

NNP = GNP – Dm – Dn

where:

- **NNP** = Net National Product,
- **Dm** = depreciation of manufactured capital,
- **Dn** = depreciation of environmental capital.

A more comprehensive framework also includes restoration and preventive expenditures:

NNP = GNP – Dm – Dn – R – A

where:

- **R** represents expenditures required to restore environmental resources, and
- **A** denotes expenditures incurred to prevent environmental degradation (Pearce & Warford, 1993).

Table 1: Components of Environmental Accounting

Component	Description	Examples
Gross National Product (GNP)	Total value of goods and services produced	Industrial and agricultural output
Manufactured Capital Depreciation (Dm)	Wear and tear of physical assets	Machinery replacement, road maintenance
Environmental Depreciation (Dn)	Loss of natural capital	Deforestation, soil erosion, water pollution
Restoration Expenditure (R)	Costs of ecological restoration	Reforestation programmes
Preventive Expenditure (A)	Costs of environmental protection	Pollution control measures

Source: Author's compilation based on Pearce and Warford (1993).

The integration of environmental accounting into policy frameworks can improve decision-making by recognising that natural resources constitute productive assets essential for long-term development. Such approaches encourage governments to pursue economic growth without compromising environmental sustainability.

3. Population, Resources, and the Environment

Population growth remains a major determinant of environmental change. Increasing population density intensifies pressure on land, forests, water resources, and energy supplies. Although technological innovation can expand resource availability, unchecked environmental degradation may significantly reduce the capacity of ecosystems to support human needs (Meadows et al., 1972).

In many developing countries, rapid population growth has contributed to shortages of agricultural land, fuelwood, and freshwater resources. Urban expansion has further strained sanitation systems and public health infrastructure. The resulting environmental stress often affects the poorest sections of society most severely

(Todaro & Smith, 2015).

The relationship between population growth and environmental degradation is, however, mediated by economic and institutional factors. Fertility decline generally accompanies improvements in education, healthcare, employment opportunities, and social security systems. Thus, population policies cannot be isolated from broader development objectives (WCED, 1987).

Table 2: Population–Environment Linkages

Population Pressure	Environmental Consequence	Development Impact
Rapid population growth	Land degradation	Reduced agricultural productivity
Expansion of households	Fuelwood scarcity	Deforestation
Urban migration	Water shortages	Public health challenges
Rising consumption	Waste generation	Pollution and ecological stress
High fertility rates	Resource competition	Pressure on common property resources

Source: Author's compilation based on Todaro and Smith (2015).

The persistence of poverty further complicates population-environment dynamics. Where economic opportunities are limited, large families often serve as sources of labour and social security. Consequently, sustainable development strategies must address poverty reduction alongside environmental conservation.

4. Poverty and Environmental Degradation

The relationship between poverty and environmental degradation is both complex and reciprocal. Poor households depend heavily on natural resources for food, fuel, shelter, and income. In the absence of alternative opportunities, they may engage in practices that degrade forests, soils, and water resources, thereby reinforcing conditions of poverty (Todaro & Smith, 2015).

Nevertheless, environmental degradation cannot be attributed solely to population growth or the behaviour of poor communities. Institutional failures, unequal access to resources, insecure land tenure, and inadequate public support systems frequently prevent low-income groups from adopting sustainable practices (Pearce & Warford, 1993).

Secure property rights and access to credit are particularly important. Farmers who possess long-term control over land are more likely to invest in soil conservation, irrigation, and sustainable agricultural methods. Conversely, insecure tenure arrangements encourage short-term exploitation and environmental depletion. Institutional reforms therefore play a critical role in promoting both environmental sustainability and social justice.

The experiences of several developing countries demonstrate that poverty reduction contributes positively to environmental conservation. Improvements in education, healthcare, employment, and rural infrastructure reduce dependence on environmentally destructive activities and enable communities to adopt more sustainable livelihoods (Todaro & Smith, 2015).

Table 3: Poverty–Environment Nexus

Poverty Condition	Environmental Outcome	Policy Response
Landlessness	Cultivation of ma rginal lands	Land reforms
Lack of credit	Overexploitation of resources	Financial inclusion
Insecure tenure	Short-term resource extraction	Property rights protection
Limited education	Unsustainable practices	Environmental awareness programmes
Poor infrastructure	Dependence on natural resources	Rural development initiatives

Source: Author's compilation based on Pearce and Warford (1993) and Todaro and Smith (2015).

Environmental policies in developing countries must therefore recognise poverty alleviation as a central objective. Sustainable development requires integrated interventions that strengthen institutions, improve livelihoods, and enhance access to economic opportunities while protecting natural resources.

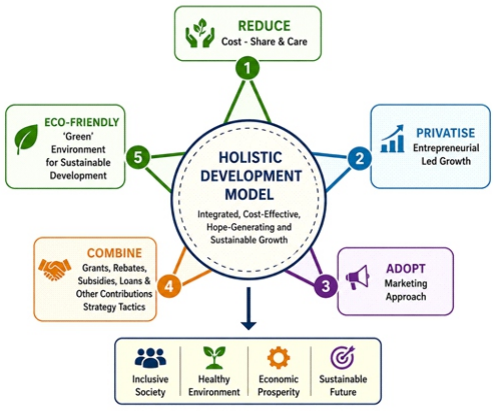


Fig 1: Holistic Model for Development

5. Growth versus the Environment

One of the central debates in development economics concerns the relationship between economic growth and environmental sustainability. Traditional development models often regarded environmental protection as a constraint on growth, whereas contemporary perspectives increasingly view environmental conservation as an essential component of long-term economic prosperity

(Todaro & Smith, 2015).

Economic growth undoubtedly improves living standards, reduces poverty, and creates employment opportunities. However, growth that depends on excessive resource extraction, fossil-fuel consumption, and unsustainable production practices can generate severe environmental costs. Deforestation, biodiversity loss, soil degradation, and pollution reduce the productive capacity of natural ecosystems and ultimately undermine economic welfare (WCED, 1987).

The relationship between income growth and environmental quality is not uniform across societies. While poverty often compels communities to exploit natural resources for immediate survival, higher income groups generally consume greater quantities of energy, water, and manufactured goods, thereby increasing ecological footprints. Consequently, both extreme poverty and excessive consumption contribute to environmental degradation, albeit through different mechanisms (Pearce & Warford, 1993).

Sustainable growth therefore requires technological innovation, environmental regulation, and changes in production and consumption patterns. Investments in renewable energy, cleaner production methods, efficient irrigation systems, and circular economy practices can simultaneously promote economic growth and environmental protection.

Table 4: Growth–Environment Trade-offs

Growth Scenario	Environmental Impact	Policy Implications
Poverty reduction through income growth	Positive environmental effects	Inclusive development policies
Rising middle -class consumption	Increased resource demand	Sustainable consumption measures
Growth without regulation	Severe environmental degradation	Environmental governance
Green technological growth	Reduced ecological impacts	Innovation and investment

Source: Author's compilation based on Todaro and Smith (2015).

The challenge for policymakers is therefore not to choose between growth and environmental protection but to ensure that economic expansion occurs within sustainable ecological limits.

6. Rural Development and Environmental Sustainability

Rural areas remain highly dependent on natural resources for agricultural production, livestock rearing, and household livelihoods. Consequently, rural development strategies have significant implications for environmental sustainability. Agricultural expansion without appropriate conservation measures can result in soil erosion, water depletion, and deforestation, reducing long-term productivity (Todaro & Smith, 2015).

Sustainable agriculture offers an alternative approach that combines productivity enhancement with environmental conservation. Practices such as crop rotation, organic farming, watershed management, agroforestry, and integrated pest management help preserve ecological balance while improving agricultural output (WCED, 1987).

Women play a particularly important role in rural environmental management. In many developing societies, women are responsible for collecting water, fuelwood, and other natural resources while contributing substantially to agricultural labour. Their participation in environmental programmes and rural development initiatives is therefore essential for sustainable resource management (Todaro & Smith, 2015).

Access to credit, technology, and extension services also enables small farmers to adopt resource-conserving investments. Secure land rights encourage long-term improvements in soil quality and irrigation infrastructure, thereby enhancing both environmental sustainability and rural incomes.

Table 5: Rural Development and Environmental Sustainability

Intervention	Environmental Benefits	Development Outcomes
Sustainable farming practices	Reduced soil erosion	Increased agricultural productivity
Women's empowerment	Improved resource management	Better household welfare
Land reforms	Efficient land utilisation	Poverty reduction
Access to rural credit	Conservation investments	Higher incomes
Technology transfer	Efficient resource use	Food security

Source: Author's compilation based on Todaro and Smith (2015).

The integration of environmental objectives into rural development policies can therefore strengthen food security, reduce poverty, and preserve natural resources for future generations.

7. Urban Development and Environmental Challenges

Urbanisation has become one of the most significant demographic transformations in developing countries. Rapid rural-urban migration and natural population growth have generated unprecedented pressures on urban

infrastructure, housing, transportation systems, and public services (Todaro & Smith, 2015).

Many cities struggle to provide adequate sanitation, clean drinking water, waste management, and healthcare facilities. Informal settlements often lack basic infrastructure, exposing residents to environmental hazards and communicable diseases. According to the World Health Organization (2023), inadequate water and sanitation services remain major contributors to public health challenges in developing regions.

Urban environmental problems also include air pollution, traffic congestion, industrial emissions, and improper disposal of solid waste. These issues reduce productivity, increase healthcare expenditures, and diminish overall quality of life. The environmental costs of urbanisation frequently rise faster than urban population growth itself, creating substantial challenges for municipal governance.

Sustainable urban development requires integrated planning approaches that promote efficient public transportation, green spaces, waste recycling, renewable energy, and environmentally friendly housing systems. Investments in urban infrastructure not only improve environmental conditions but also contribute to economic productivity and social welfare.

Table 6: Major Urban Environmental Challenges

Challenge	Environmental Effects	Policy Measures
Inadequate sanitation	Water contamination	Public sanitation programmes
Air pollution	Health risks	Emission controls
Traffic congestion	Increased carbon emissions	Public transport systems
Solid waste accumulation	Land and water pollution	Recycling initiatives
Informal settlements	Environmental vulnerability	Inclusive urban planning

Source: Author's compilation based on WHO (2023) and Todaro and Smith (2015).

Effective urban governance is therefore essential for balancing economic growth with environmental sustainability in rapidly expanding cities.

8. Global Environmental Governance and Sustainable Development

Environmental issues increasingly transcend national boundaries. Climate change, biodiversity loss, ocean pollution, and deforestation affect all countries regardless of their levels of economic development. Consequently, international cooperation has become indispensable for achieving sustainable development (United Nations, 1992).

The United Nations Conference on Environment and Development, held in Rio de Janeiro in 1992, marked a significant milestone in global environmental governance. The conference emphasised the principle of sustainable development and highlighted the concept of common but differentiated responsibilities, recognising that developed nations bear greater historical responsibility for environmental degradation (United Nations, 1992).

Similarly, the Kyoto Protocol established international commitments to reduce greenhouse gas emissions while acknowledging differences in national capacities and development needs (UNFCCC, 1998). These frameworks illustrate the importance of equitable burden-sharing in addressing global environmental challenges.

Developing countries often face difficult trade-offs between environmental investments and social expenditures on education, healthcare, and employment. Without international financial assistance and technological support, environmental protection measures may impose disproportionate economic burdens on low-income nations (Pearce & Warford, 1993).

Table 7: Global Environmental Challenges and Policy Responses

Environmental Challenge	International Framework	Key Issues
Climate change	Kyoto Protocol	Emission reductions
Biodiversity loss	Convention on Biological Diversity	Conservation financing
Deforestation	International forest initiatives	Sustainable land use
Marine pollution	Global marine agreements	Shared responsibilities
Ozone depletion	Montreal Protocol	Technology transfer

Source: Author's compilation based on United Nations (1992) and UNFCCC (1998).

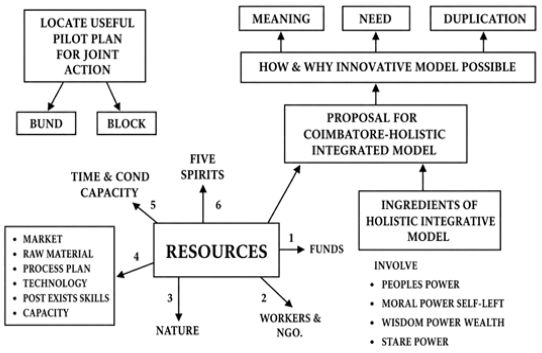


Fig 2 Analysis Series

Global environmental governance must therefore balance ecological imperatives with developmental priorities,

ensuring that sustainability initiatives do not hinder the economic progress of poorer nations.

9. Conclusion

The study demonstrates that resource development and environmental sustainability are deeply interconnected dimensions of economic progress. Sustainable development cannot be achieved through economic growth alone; it requires the careful management and conservation of natural resources to ensure the well-being of both present and future generations.

The analysis highlights the reciprocal relationship between poverty and environmental degradation. Poor communities frequently depend on natural resources for survival, while environmental decline further restricts their economic opportunities. Consequently, poverty alleviation must be regarded as a fundamental component of environmental policy. Secure land rights, access to credit, improved education, and institutional support enable vulnerable populations to adopt sustainable resource management practices.

The paper also emphasises the importance of environmental accounting in economic planning. Traditional measures such as Gross National Product fail to reflect the depletion of environmental capital, creating misleading impressions of economic progress. Integrating environmental depreciation, restoration costs, and preventive expenditures into national accounts provides a more realistic assessment of sustainable development.

Population growth, urbanisation, and rural transformation continue to place significant pressure on environmental resources. However, these challenges are closely linked to broader issues of economic opportunity, social development, and institutional capacity. Investments in education, healthcare, women's empowerment, sustainable agriculture, and urban infrastructure can simultaneously advance development and environmental objectives.

At the global level, environmental challenges require collective action and equitable sharing of responsibilities. Developed nations bear substantial historical responsibility for environmental degradation and therefore have an important role in providing financial assistance, technological support, and institutional cooperation to developing countries. International agreements such as the Rio Declaration and the Kyoto Protocol represent important steps toward a more coordinated approach to global sustainability.

Ultimately, sustainable development should not be viewed as a limitation on economic growth but as a framework for ensuring that growth remains inclusive, environmentally sound, and enduring. A holistic approach to resource development—one that integrates economic efficiency, social justice, technological innovation, and environmental conservation—offers the most promising path toward achieving long-term human well-being and ecological balance.

References

Meadows, D. H., Meadows, D. L., Randers, J., & Behrens, W. W. (1972). *The limits to growth*. Universe Books.

Pearce, D. W., & Warford, J. J. (1993). *World without end: Economics, environment, and sustainable development*. Oxford University Press.

Todaro, M. P., & Smith, S. C. (2015). *Economic development* (12th ed.). Pearson Education.

United Nations. (1992). *Report of the United Nations Conference on Environment and Development (Rio de Janeiro, 3–14 June 1992)*. United Nations.

United Nations Framework Convention on Climate Change (UNFCCC). (1998). *Kyoto Protocol to the United Nations Framework Convention on Climate Change*. United Nations.

World Commission on Environment and Development (WCED). (1987). *Our common future*. Oxford University Press.

World Health Organization. (2023). *Drinking-water*. Geneva: WHO.

Prof. Tapan Kumar Shandilya

Principal, T. P. S. College, Patna, Bihar.

Former Vice-Chancellor, D. S. P. M. University, Ranchi, Jharkhand.

37

The Role of Public-Private Partnerships in Mitigating Financial Cyber Fraud: An Evaluation of Gurugram Cyber Police and Banking Nodal Officers

Rakesh Kumar*Dr. Divya Sharma**

Abstract

Financial cyber fraud has emerged as one of the fastest-growing forms of economic victimization in India, driven by the rapid expansion of digital payments, mobile banking, UPI ecosystems, and remote account access. In this environment, cyber policing cannot operate effectively in isolation because the first hours after a fraudulent transfer are decisive, and fund-tracking requires immediate coordination between law-enforcement agencies, banks, payment intermediaries, RBI-regulated entities, and centralized reporting systems This paper evaluates the role of public-private partnerships in mitigating financial cyber fraud by focusing on the operational relationship between Gurugram Cyber Police and banking nodal officers. It argues that the contemporary Indian response architecture already reflects a functional public-private partnership model through the National Cybercrime Reporting Portal, the 1930 helpline, the Citizen Financial Cyber Frauds Reporting and Management System, and institutionalized nodal-officer networks connecting banks and law-enforcement agencies. The paper examines the legal-regulatory framework governing customer protection, banking responsibility, and reporting obligations, with special attention to the Reserve Bank of India's 2017 directions on unauthorized electronic banking transactions. It further analyses practical challenges such as delay in reporting, variable responsiveness of banking intermediaries, dependence on human coordination, inter-jurisdictional fraud chains, and occasional insider collusion, including a reported Gurugram case involving a bank official allegedly facilitating accounts for cyber criminals. The paper concludes that public-private partnerships significantly enhance the capacity to freeze transactions, preserve trails, and improve victim redress, but their effectiveness depends on standard operating procedures, 24x7 institutional responsiveness, accountability metrics for nodal officers, and stronger data-sharing safeguards.

Keywords: public-private partnerships, financial cyber fraud, Gurugram Cyber Police, banking nodal officers, CFCFRMS, NCRP, cybercrime governance, RBI, unauthorized electronic transactions, digital payments

Introduction

India's digital economy has expanded rapidly through online banking, UPI, mobile applications, cards, and payment intermediaries, but the same digital convenience has enlarged the opportunity structure for phishing, impersonation, mule accounts, remote-access scams, investment frauds, and social engineering attacks. Financial cyber fraud differs from many conventional offences because money can be layered and moved across banks, wallets, intermediaries, and jurisdictions within minutes, making time-sensitive intervention more important than traditional ex post investigation alone.

This reality has transformed cyber fraud control into a governance problem rather than a purely police problem. A police station may register the complaint and initiate investigation, but the capacity to stop or reverse the loss often depends on whether bank nodal officers, payment gateways, NPCI-linked systems, and regulatory channels respond quickly enough to mark, hold, or freeze suspicious transactions. Consequently, public-private partnerships (PPPs) in the cyber-fraud context should be understood not merely as contractual arrangements, but as institutional coordination mechanisms between state authorities and private financial actors for prevention, interruption, investigation, and restitution.

Gurugram provides a significant site for such evaluation. As part of the National Capital Region and a major corporate and financial-services hub, Gurugram faces a high volume of digitally mediated transactions and, correspondingly, a serious cyber-fraud risk profile. Public messaging linked to Gurugram authorities has repeatedly emphasized immediate reporting through the 1930 helpline, showing that local enforcement strategy is deeply integrated with the national reporting architecture rather than functioning as a standalone district mechanism.

This paper studies the partnership between Gurugram Cyber Police and banking nodal officers through four lenses: first, the legal and institutional architecture of cyber-fraud response in India; second, the operational role of nodal officers as private-sector gatekeepers in fraud interruption; third, the strengths and weaknesses of coordinated response

in practice; and fourth, the normative and policy implications for improving cyber-fraud governance. The central claim advanced here is that effective mitigation of financial cyber fraud in Gurugram depends on a high-trust, high-speed, continuously monitored public-private model backed by clear legal duties and measurable response standards.

Public-Private Partnership in Cyber Fraud Control

The classic public-private partnership model is usually discussed in the context of infrastructure or public service delivery. In cyber-fraud governance, however, the concept must be adapted to recognize collaborative enforcement, information sharing, risk management, and victim remediation across sectors. The public actor is represented by the cyber police, the Ministry of Home Affairs' Indian Cyber Crime Coordination Centre (I4C), and associated state and district law-enforcement structures; the private actor is represented by banks, wallets, payment intermediaries, and compliance personnel such as nodal officers who control transactional visibility and intervention capacities.

The NCRP framework explicitly acknowledges this interdependence. The I4C states that, to deal with financial frauds, a common integrated platform is required where law-enforcement agencies, banks, RBI, financial intermediaries, payment wallets, and NPCI work in tandem to ensure quick and system-based action so that money siphoned from victims can be prevented from flowing further to fraudsters. This statement is critical because it formally articulates cyber-fraud mitigation as a coordinated ecosystem responsibility, not a siloed institutional function.

The Citizen Financial Cyber Frauds reporting and Management System (CFCFRMS) operationalises this PPP logic. Current policy commentary describes the system as integrating more than 85 banks and payment intermediaries, enabling rapid coordination among law-enforcement agencies, banks, RBI, NPCI, and other stakeholders through the 1930 helpline and the national portal. Thus, the architecture of fraud response already contains the core features of a partnership framework: interdependence, shared objectives, emergency communication channels, and role-based intervention authority.

Institutional Framework

The I4C, established by the Ministry of Home Affairs, functions as the central coordinating body for cybercrime response in India. Under the NCRP, the revamped portal permits reporting of all types of cybercrime, while the dedicated financial-fraud mechanism is specifically designed to support rapid intervention in cases involving digital banking instruments, cards, UPI, and payment intermediaries.

The 1930 helpline is especially important because it converts citizen complaints into immediate actionable alerts rather than leaving victims to navigate fragmented institutional channels. RBI-linked public complaint guidance also directs victims of online financial fraud to the National Cybercrime Reporting Portal and the 1930 helpline, indicating regulatory recognition that cyber-fraud reporting requires a specialized national response pipeline distinct from ordinary consumer grievance mechanisms.

Banking nodal officers are central private-sector actors within this framework. Publicly available nodal lists show that banks designate officers specifically for cybercrime or fraud-related coordination, allowing law-enforcement agencies to contact authorized institutional representatives for urgent fund-freezing, account tracing, or verification requirements. These nodal officers function as the operational bridge between the internal banking system and the external law-enforcement process.

At the district level, Gurugram Cyber Police occupies the frontline position of complaint intake, preliminary verification, victim guidance, account trail development, and criminal investigation. Public advisories linked to Gurugram authorities and Gurugram cyber-police outreach stress immediate fraud reporting and awareness, showing that local policing strategy aligns with the national rapid-response model. The partnership therefore operates vertically and horizontally: vertically between local police and central reporting systems, and horizontally between police and private financial institutions.

RBI Framework and Banking Duties

The Reserve Bank of India's circular dated 6 July 2017 on customer protection and limiting liability in unauthorized electronic banking transactions provides a major

normative foundation for the role of banks in cyber-fraud mitigation. The circular requires banks to maintain appropriate safety systems, robust fraud-detection and prevention mechanisms, risk-assessment processes, mitigation measures, and continuous customer advisories concerning electronic banking fraud.

The circular also requires banks to provide customers 24x7 access through multiple reporting channels, including website, phone banking, SMS, e-mail, IVR, dedicated toll-free helplines, and branch reporting, while ensuring an immediate acknowledgement with a complaint number. This is not merely a consumer-service requirement; it supports the broader cyber-fraud response ecosystem because rapid victim reporting to banks helps trigger institutional action before funds are dissipated.

The RBI directions further establish that, upon receiving a report of an unauthorized transaction, banks must take immediate steps to prevent further unauthorized transactions in the account. They also place the burden of proving customer liability on the bank and mandate shadow reversal within 10 working days in qualifying cases, with final complaint resolution ordinarily not exceeding 90 days. These obligations reinforce the proposition that banks are not passive observers in cyber-fraud cases; they are active legal participants with duties of prevention, responsiveness, and remediation.

For the purpose of this paper, nodal officers become the institutional face of these banking obligations. Although the RBI circular does not itself specifically legislate the district-level police-bank relationship, its insistence on robust fraud response, quick reporting channels, and immediate protective action creates the legal environment within which nodal officers must function efficiently when cyber police seek intervention.

Gurugram as a Case Setting

Gurugram is a suitable case study because it combines dense digital economic activity with significant cybercrime exposure. Haryana policing discourse has acknowledged serious financial losses from cyber fraud and has simultaneously emphasized the need to improve the responsiveness of nodal officers in banks and telecom entities. Reports have highlighted proposals for technology upgrades, training programmes for nodal officers, and a 24x7 communication channel with cybercrime units, all of which directly support a strengthened PPP model.

The local relevance of coordinated response is heightened by the complex geography of cyber fraud. Investigators in Haryana have linked fraud networks to inter-district and interstate clusters, which means that local police often confront transactional trails extending beyond their immediate territorial jurisdiction. In such cases, institutional access through bank nodal officers can be more important in the first instance than territorial arrest powers, because the money trail is the most time-sensitive evidentiary and recovery pathway.

Public awareness messaging connected to Gurugram has consistently advised immediate reporting to 1930, which reflects a victim-centric and time-sensitive model of intervention. This local messaging matters because the effectiveness of the partnership begins with the victim's speed of reporting, continues through the cyber police's escalation process, and depends heavily on whether bank officers act before funds are layered through mule accounts or withdrawn.

Functions of Banking Nodal Officers

Banking nodal officers serve as compliance and coordination nodes between the police and the banking system. Their functions in financial cyber - fraud cases typically include receiving urgent police communications, identifying beneficiary accounts, placing debit freezes or holds where permissible, preserving KYC and transaction details, facilitating inter-branch or inter-bank coordination, and supporting documentary requirements for investigation and prosecution.

They also play a strategic role in converting legal process into actionable operational outcomes. A police complaint or NCRP alert has little practical value unless an authorized banking officer can map the complaint to specific accounts, transaction IDs, time stamps, and intermediary channels. Because digital fraud cases move at machine speed, nodal officers must combine legal sensitivity with real-time procedural competence.

A well-functioning nodal network can therefore improve three outcomes: first, fund preservation; second, evidentiary integrity; and third, victim confidence in the formal system. Conversely, delays, unclear jurisdictional ownership, or poor accountability among nodal officers

can neutralize the advantages of early complaint reporting.

Benefits of the Partnership Model

The strongest argument in favor of PPPs in cyber-fraud mitigation is speed. The NCRP/CFCFRMS architecture is designed specifically to prevent onward dissipation of funds through quick, system-based intervention involving police, banks, RBI, wallets, and payment intermediaries. Without such integration, fraud response would depend on slow bilateral correspondence, by which time many transactions would become practically irreversible.

Second, the partnership model pools asymmetric capacities. Cyber police contribute coercive authority, investigation, and procedural legitimacy, while banks contribute transaction visibility, account controls, KYC repositories, fraud analytics, and internal escalation hierarchies. Neither side can fully mitigate financial cyber fraud alone.

Third, PPPs support victim-centered governance. RBI rules requiring 24x7 reporting access, immediate acknowledgement, and structured customer-protection policies complement the national cyber-fraud reporting system and make recovery-oriented response more plausible. This integrated approach is especially significant in a city like Gurugram, where the volume of digital financial activity creates both high exposure and high expectations of institutional responsiveness.

Operational Challenges

Despite its promise, the PPP model faces serious limitations. One challenge is uneven responsiveness across institutions. Haryana police commentary has specifically noted the need to enhance the operational efficacy and responsiveness of nodal officers in banks and telecom companies, indicating that the partnership remains inconsistent in practice.

A second challenge is that the model remains highly time-sensitive. RBI rules and NCRP design both emphasize immediate reporting and immediate protective action, which means delays by victims, police intake bottlenecks, or bank-side escalation failures can all materially reduce recovery prospects. In fraud ecosystems where funds are quickly distributed through mule accounts and payment channels, even short delays can be fatal to recovery.

A third challenge is insider risk. In 2024, Gurugram cyber police reportedly arrested an SBI employee accused of providing bank accounts for cyber fraud operations linked to an investment scam complaint. This incident is important not merely as an isolated criminal case but as evidence that private-sector participation can itself become a vulnerability when internal compliance structures are compromised.

Another challenge lies in legal-process harmonization. Cyber police may need immediate transactional restraint, whereas banks must also operate within internal protocols, data-protection expectations, and evidentiary standards. If these processes are not standardized through clear SOPs and auditable workflows, coordination becomes person-dependent rather than system-dependent.

Case Law and Legal Principles

Although Indian cyber-fraud jurisprudence is still evolving, broader judicial principles on cyber governance, due diligence, and technological regulation remain relevant. In *Shreya Singhal v. Union of India* (2015), the Supreme Court affirmed that internet governance implicates constitutional values, especially the balance between regulation and rights, which remains important when designing anti-fraud systems involving surveillance, platform governance, and state intervention. The case does not concern banking fraud directly, but it underscores that digital regulation must remain legally structured rather than purely executive in character.

In *K.S. Puttaswamy v. Union of India* (2017), the Supreme Court recognised privacy as a fundamental right, a principle highly relevant to fraud-mitigation systems that depend on data sharing between police, banks, intermediaries, and central platforms. Any expanded PPP architecture for cyber-fraud control must therefore preserve necessity, proportionality, and accountability in the handling of personal financial data.

At the sectoral level, the most directly relevant legal instrument remains the RBI circular on unauthorized electronic banking transactions, which effectively functions as quasi-adjudicatory guidance on rights, liabilities, and institutional duties in fraud events. Its principles of zero liability in specified circumstances, immediate preventive action after reporting, burden of proof on the bank, and mandatory grievance frameworks

shape the legal background against which both police intervention and nodal-officer action should be assessed. The Gurugram case concerning the alleged involvement of a bank official in facilitating cyber-fraud accounts also demonstrates the criminal-law dimension of institutional responsibility. Where bank personnel actively aid fraud networks, the issue moves beyond negligence into conspiracy, facilitation, or abetment, making internal bank vigilance an indispensable complement to external police partnership

Evaluation

The evidence supports the view that public-private partnerships are indispensable for mitigating financial cyber fraud in Gurugram. The national architecture already recognizes that coordinated intervention among police, banks, RBI, NPCI, and intermediaries is necessary to prevent siphoning and enhance recovery. Gurugram's local policing environment, with its emphasis on 1930 reporting and concern about nodal-officer responsiveness, reflects both the practical necessity and the incompleteness of this partnership.

The partnership works best when four conditions are met. First, reporting must be immediate and frictionless for victims. Second, cyber police must have trained personnel capable of converting complaints into actionable requests without procedural delay. Third, banking nodal officers must be available on a true 24x7 basis with authority to trigger urgent account-level interventions. Fourth, the system must be auditable, so that delays and failures can be measured, reviewed, and corrected institutionally rather than ignored.

At present, the model appears stronger as an emergency coordination mechanism than as a fully institutionalized accountability regime. The existence of CFCFRMS, the 1930 helpline, and nodal-officer networks shows that the structural foundations are in place. However, reports calling for better training, stronger communication channels, and improved responsiveness suggest that the quality of execution still varies materially.

Recommendations

Several reforms would strengthen the Gurugram model. First, district-specific standard operating procedures should be formalized between Gurugram Cyber Police and major banks operating in the district, clearly defining escalation timelines, documentation formats, emergency points of contact, and preservation duties.

Second, nodal officers should be evaluated through measurable service standards, including average response time, percentage of actionable requests processed within the golden hours, freeze-to-recovery ratios, and quality of evidentiary compliance.

Third, periodic joint training and simulation exercises should be institutionalized. Haryana policing discourse has already stressed training programmes for nodal officers and improved communication channels, and these should be converted into mandatory collaborative drills involving police investigators, bank compliance teams, payment intermediaries, and prosecutors.

Fourth, insider-risk controls within banks must be strengthened through enhanced monitoring of suspicious account opening patterns, staff-access logs, and compliance audits, especially in light of the Gurugram case involving an alleged bank insider.

Fifth, privacy-by-design safeguards should be embedded into data-sharing practices so that fast fraud response does not produce indiscriminate or excessive personal-data circulation. This is necessary to maintain constitutional legitimacy alongside enforcement efficiency.

Conclusion

Financial cyber fraud in Gurugram cannot be effectively mitigated by police action alone. The Indian cyber-fraud response framework, especially through NCRP, CFCFRMS, the 1930 helpline, RBI customer-protection norms, and bank nodal-officer systems, already demonstrates that public-private partnership is the core operational logic of fraud interruption and victim relief.

The Gurugram experience shows both the promise and the fragility of this model. Where cyber police and banking nodal officers coordinate quickly, the chances of tracing, freezing, and potentially restoring funds improve substantially; where responsiveness is weak, delayed, or compromised, the system loses its preventive edge. The future of financial cyber-fraud governance therefore lies in deeper institutionalization of public-private coordination, backed by speed, accountability, technical

capacity, and rights-sensitive data governance.

References

1 **B.R. Sharma**, *Bank Frauds: Prevention and Detection* (4th edn, Eastern Book Company 2016)

2. **Indian Institute of Banking & Finance**, *Prevention of Cyber Crimes and Fraud Management* (Macmillan Education India 2017)

3. **Taxmann**, *Cyber Crimes & Financial Offences – Practical Solution* (Taxmann Publications 2024)

4 **Surya Kiran Sharma**, "Public-Private Partnership in Cyber Security", CLAWS Journal (November 2014)

5. Pavan Duggal, *Cyber Frauds & Remedies: UPI, Digital Payments & Internet Banking Frauds* (2nd edn, Bharat Law House 2023)

6.V. Prem Sam Ponniah, "Cyber Security in India: Law and Practice", NeuroQuantology Journal (2012) 1479

7. **Aparna Vishwanathan**, *Digital Payments and Cyber Fraud Governance* (Eastern Book Company 2024)

8.AIR 2015 SC 1523

9.(2017) 10 SCC 1

10. **N.V. Paranjape**, *Cyber Laws and Crimes: Banking and Financial Frauds* (3rd edn, Central Law Publications 2022)

Rakesh Kumar*
Research Scholar
Sushant university
Gurugram
Email: rk473210@gmail.com
Dr. Divya Sharma**
Assistant Professor
Sushant university
Gurugram

38

The Reclamation of Dalit Identity in Namdeo Dhasal's Poetry: A Critical Study

Dr. Ravi Kachhap

Keywords:- Dalit Literature, Marginalisation, Discrimination, Shudra, identity, Oppressed, un touch ability, Varna System, Consciousness, Marxism

Abstract:- The article critically analyses Namdeo Dhasal's poetry as a compelling representation of Dalit awareness and struggle. It looks at the many meanings and ideological bases of Dalit literature, especially how it deals with identity, exploitation, and social justice. Dhasal's poetry is a radical voice that uses strong language, vivid imagery, and symbolic representation to show how caste injustice, economic adversity, and cultural marginalisation affect people. Dhasal, who was inspired by Dr. B.R. Ambedkar and Marxist ideas, wants a world without caste and class inequalities. His poetry about prostitutes, downtrodden workers, and the poor shows that he cares about people from all walks of life, not just those of his own caste. His poetry serves as literature of resistance, change, and emancipation, advocating dignity, equality and global human solidarity.

The Reclamation of Dalit Identity in Namdeo Dhasal's Poetry: A Critical Study

The word "Dalit Literature" is highly disputed in the academic community due to its multiplicity of meanings, which makes it impossible to reach a definitive conclusion. Since it is a matter of serious debate in the post-independence period, intellectuals and scholars are interested in it and are engaged in mental exercises to determine its nature and extent. Between the center and the periphery, there has been an ongoing tug of war between the intellectuals. In order to reclaim its identity that was lost as a result of marginalisation and discrimination. (Varna System) from the dominant group, the periphery tends to go toward the center.

The following are the areas of concern around the phrase "Dalit Literature": Is the work crafted only by Dalit writers being considered "Dalit Literature"? Are works related to Dalits created by non-Dalits not considered "Dalit Literature"? Does a certain class have exclusive use of the word "Dalit"? Are Dalits or untouchables socially, culturally, and economically "exploited" or "marginalised "? If that is the only case, aren't the non-Dalits also "Dalits," since they claim to be such based on their exploitation and suffering? Can those who are financially secure and do not experience the same pain and suffering as their caste counterparts still be considered Dalits? Aren't Dalits being taken advantage of in their own right? To what extent do they need sympathy just because they are Dalits? The word "Dalan" refers to a class that is exploited. If thisinterpretation is accepted, then all of the members of the upper or lower class are Dalits. Then what is the criterion for Dalit status? Caste, is it? Is it being outdated?

Does it have to do with money? Dalit literature opposes the varna system or the sacred text of the Manusmriti, which has kept Sudras in the lower classes. Does the varna system follow caste or karma only? To interpret the meaning as one wishes is not misrepresentation, is it? What is the game being played under the Dalit identity? Do Dalits not have human laws? Isn't discrimination against Dalits and non-Dalits a political issue? Are there any parallels between Dalitism and Marxism? Is this a new kind of Marxism? It is believed that if the topic of debate is Dalit literature now, it would shift to non-Dalit literature tomorrow. The anguish, misery, and humiliation endured by exploited individuals worldwide are the same. Dr. M.S.Wankhede poses the question, "Where is the identity of the Dalit?" These individuals are brothers in spirit due to the link of anguish and suffering caused by exploitation, regardless of where they live in the world of literature. He responds, "It is essentially in the proclamation of Dalit identity by disregarding the symbolism and Brahminic language." Their own language, idiom, metaphor, and imagery are all examples of this. "The subject of Dalit literature primarily conveys the tragedy of their life and appreciation to Dr. Ambedkar for ameliorating them, according to him." (Cyber Literature 31)

By speaking out against the current system, Dalit literature aims to bring about change and give Dalits a human identity. Is Dalit literature limited to self-pity, identity crises, petitions to Dr. Ambedkar, or outright rebellions against the touchables? Does it have a clear plan or aim to qualify as "Mass Literature," "Literature of Action," or "Literature of

Protest"? Namdeo Dhasal's poetry aims to address Dalit concerns pragmatically and unambiguously. As the winner of Sahitya Akademi's only “Lifetime Achievement Award” in 2004, Namdeo Dhasal, who was born in 1949 into a mabar, an untouchable family in Pur-Kanersar, is a great poet because he believes that excellent poetry integrates. “Golpitha (1972), Moorkha Mbatarayane Dongar Halavile (1975), Tubi Yatta Kanchi (1981), Khel (1983), Gandu Bagicha (1986), Ya Sattet Jeev Ramat Nabi (1995), Mee Marale Sooryachya Rathache Ghode Saat (2005), and Tujhe Bot Dharoon Chalalo Ahe Mee (2006)” are among his poetic volumes that appear to be starting "from the very start - single-handedly - a guerrilla war against the effete middle-class and sanitised world of his literary readers" (12). The sample excerpt from Dhasal's eight Marathi poetry books has been translated into English by Dilip Chitre. Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld Poems 1972–2006 is the product of the translated effort.b For Dhasal, writing has evolved into "an instrument of cultural change and an expression of all deeper concerns such as the quality of life and the realisation of liberty, striving for equality, and the achievement of excellence" (Chitre 58). Namdeo Dhasal is a prominent Marathi poet who works with a sole purpose: to fight against all types of exploitation, whether they be economic, social, or cultural. Because he comes from a background in the human voice, he speaks freely. He uses words that other people don't know. Hesays, "The things that make you speak or write are the themes that cause you to feel terrible pain inside and make you more sensitive and troubled." "This is the kind of inner turmoil that inspires my poems"(Dhasal 167). He started the “Dalit Panther Movement” in India just because he wanted to unite oppressed individuals from diverse castes, groups, and religions together. He tried to bring together groups of people who were considered untouchable, such as Charmakar, Bhangi, Matang, and others. His vision was comprehensive, not myopic, regarding the term 'Dalit,' as he does not confine it to merely the “Scheduled Castes and the Scheduled Tribes.” In this regard, Dilip Chitre writes: "His definition of Dalit encompasses all individuals whom society has rejected as unworthy of its organisation. According to the Indian Constitution, the word "Dalit" now refers to more than only the Scheduled Castes and Scheduled Tribes. It refers to those who are socially marginalised, and there are hundreds of millions of them in India (Chitre 20)." Considering himself "one of the lumpenproletariat-scum of the earth" (Chitre 19), he describes how his poetry is coloured by prostitutes, pimps, criminals, street urchins, STIs, gangsters, mujra dancers, tamasha artists, coolies, labourers, vendors, and more.

The Dalit authors all seek inspiration from Dr.B.R. Ambedkar, whom they regard as the foundational pillar and pioneer for all Dalits and Dalit literature, even though he never encouraged idolatry among his followers. Dhasal's poet holds him in high regard for his role in establishing Dalits' identity and location. He stands before Babasaheb with his head bowed and is prepared to endure any form of retribution for the poetry he has composed in honour of his accomplishment. Babasaheb is the individual who not only "conceived of giving a burial to the cages of religion, caste, gender, and race" (37) but also "saved them from being exploited" (42).

He establishes Baba's objective of liberating humanity by referring to him as "the sun" and "the charioteer." Subsequently, he rationalises his rebellion as a means of "changing oneself, changing the world" (84). His awakening was "founded upon study and service," which is why he commends him for his conviction in "awakening, not in terrorising" (84). He is rooted in Ambedkar's vision, which he aspires to achieve. “On a barren blue canvas: Her clothes ripped off, her thigh blasted open, A sixteen-year old girl surrendering herself to pain. And a pig: its snout full of blood”. The Dalit idea proposed by Dhasal is panoptic. To symbolise the stigmatised and devalued members of humanity, he selects a female mascot. He sees prostitutes as his "ultimate symbol of human degradation and an object of exploitation through sexual possession, and an otherwise loathed nonperson, left to living decay after use," because he believes that they suffer for the rest of their lives”. (23) Mandakini Patil, a young prostitute who symbolises not just other prostitutes but all women who fall prey to love, especially those from higher castes, is exploited in the poem. It feels like every woman's story as he describes their anguish and sorrow. It is very poignant and meaningful that the identical quatrain appears at the start and finish. Through symbols, Dhasal conveys hismessage. Take note of the passage for any metaphorical meanings: "On a blank blue canvas: A sixteen-year-old

girl giving herself over to pain, her clothes torn off, her thigh blasted open." A pig's nose is full of blood. In this scenario, he shows a sixteen-year-old girl lying on a blue canvas and giving herself up to suffering in front of a pig. The poet puts "barren blue canvas" front and center to symbolise physical harassment. In addition to suggesting sexual impropriety, the blue canvas conveys the girl's despair and pessimism. The reason it is barren is that this forced or unwanted intercourse will not produce any descendants. Additionally, blue may refer to members of the aristocracy or nobility. They like torturing women sexually, even if they are members of the so-called aristocratic family, since they are powerless against their passion. The girl, who has no choice but to submit to the pig's snout, is in a horrible state, as seen by her torn clothing and blown-open thighs. Dhasal seems to have used the derogatory term "pig" to refer to a guy from a higher caste who wants to sate his desire. The poet then reaches the face that, despite its seeming beauty on the outside, conceals "the bitter reality of a skull, the ordinary truth" (56). In this scenario, he shows a sixteen-year-old girl lying on a blue canvas and giving herself up to suffering in front of a pig. The poet puts "barren blue canvas" front and center to symbolise sexual exploitation. In addition to suggesting sexual impropriety, the blue canvas conveys the girl's despair and pessimism. The reason it is barren is that this forced or unwanted intercourse will not produce any descendants. Additionally, blue may refer to members of the aristocracy or nobility. They like torturing women sexually, even if they are members of the so-called aristocratic family, since they are powerless against their passion. The girl, who hasno choice but to submit to the pig's snout, is in a horrible state, as seen by her torn clothing and blown-open thighs. Dhasal seems to have used the derogatory term "pig" to refer to a guy from a higher caste who wants to sate his desire. The poet then reaches the face that, despite its seeming beauty on the outside, conceals "the bitter reality of a skull, the ordinary truth" (56). He reflects on the torn-out face, which is little more than a skeleton that would arouse revulsion and terror, in a Hamlet-like fashion. One's loved ones are really "mere heaps of dust or smoke" (56). He generalises the idea of the lover and the beloved by referring to them as "just a glorified pimp" (58) and "a sanctified form of a whore," respectively. Shaw saw marriage as an authorised kind of prostitution. Dhasal views women as "merely printed whores of men" and men as "pimps of women" in this context. "Take a few whores; take a few pimps; take a few chewing sticks to clean the teeth; And throw them away after use; and then gargle with the holy water of the river"

(58) conveys the truth about the interaction between men and women in a very direct and sardonic manner. According to him, the connection is built on tossing and usage.“People who are merely involved in living are actually dead, and gone cold. They fall in love and get into a tangle of body and mind.” (60) By using the river's sacred water, he seems to be highlighting the hypocrisy of males, especially touchables, who appear to be devout while really feeling no piety toward women, even if they areuntouchables. He encourages Manda to avoid becoming delusional by the darkness, which she interprets as "a tree, the sky, a flower, a bed." The old Madam, the so-called Destiny of the touchables, has her in a cage. Those who "eat her up and survive, defy death, and lead what's life" (59) are nothing more than beasts in this madam's eyes. He considers the current situation, much as Eliot did: "Those who are only engaged in living are actually dead, and gone cold." They get entangled in their bodies and minds after falling in love (60). People are only able to view their bodies and minds here. They make their bodies their first focus. Dhasal believes that such guys are dead while they are still alive. By describing her eyes as "flames" and her touch as a spark for revolution, he elevates Mandakini's femininity to a divine level. She is referred to as "sandalwood," "the healing bark of the babul tree," "the living lightning," and "the water in the bones" by the will bringer, who is malevolent and forgets her "untimely slaughter"

(60). Because she does not take advantage of anybody, Dhasal views a prostitute like Mandakini as pure and holy. Nevertheless, she was exploited by men who, instead of experiencing remorse, derive satisfaction from harassing women.

Dhasal is unhappy with the current setup and wants to destroy it. His voice is raisedin opposition to holy texts that have caused religious division among people. Because of this, he expresses his rage by suggesting that "one should tear off all the pages of all the sacred books in the world, and give them to people for wiping shit off their

asses" (35). He firmly supports "Wage class wars, caste wars, communal wars, party wars, crusades, world wars" and urges people to "drink human blood, eat spit-roast human flesh, melt human fat and drink it" to bring hell everywhere (35). He doesn't worry if someone acts completely rough and careless, which leads to chaos. There are several positive aspects to Dhasal's strategy. He desires creation, creation that does not distinguish between men, according to his purpose. In order to construct a new structure in accordance with the egalitarian blueprint that he hopes to implement, he prefers to demolish the current society's structure rather than renovate it. There is devastation in his creation. Perhaps some individuals will live after the catastrophe. After destruction, keep in mind the positive goal of creation: Everyone who lives should cease robbing others or using others as slaves. They should therefore cease referring to each other by titles such as Brahmin, Kshatriya, Vaishya, Shudra, white, or black; “Man, one should act so bright as to make the Sun and the Moon seem pale. One should share each morsel of food with everyone else. One should compose a hymn to humanity itself. Man should sing only the song of man.” (36) He disapproves of males using the Varna system to enslave and exploit other men. He believes that all men are created equal. Due to his empathy for the abused, he urges people to refrain from referring to one another by caste, colour, or sex. He urges everyone to "avoid forming political parties, constructing real estate, and making commitments to "the offence of failing to identify one's mother, sister, or relatives" (36).The ground is one's grandmother, and the sky is one's grandfather. He sees mankind as a whole. He envisions a society in which humanity will sing its own song. Note the passage that describes Dhasal's vision: "Man, one should act so bright that the Sun and the Moon seem pale." A person should write a hymn to mankind itself, share every bit of nourishment with everyone else, and sing the melody of man solely.” (36) Marxism and Communism are the first things that come to mind when the poet in Dhasal considers both building and destruction. His vision is his existence. To put it simply, he states, "You become a problem to yourself if you lack a vision. Never did I turn into an issue for myself. As soon as I saw how phoney socialism was, I switched to communism" (15).

Undoubtedly, his idea of a society without castes or classes has the hallmarks of communism. He became more deeply and firmly committed to Dr. Bheem Rao Ambedkar's vision as a result of these influences. A war cry is raised by the poet in Dhasal against people who are members of the upper castes and enjoy all the comforts of life. The feudal rulers have prevented the untouchables from having access to the basic requirements of existence. Mark the passage where the touchables exploit the untouchables or the underworld:

“After all, they are the feudal lords; they've locked all the light in their vault. In this lowered life imposed on us, not even a pavement belongs to us”. “We can't find even dust to fill up our scorched bowels. The rising day of justice, like a bribed person, favours only them. While we are being slaughtered, not even a sigh for us escapes their generous hands.” (47)

He wants "to commit violence" by raising his hands against the have-class, who have taken everything from the have-not class. According to his presumption, "these usurpers' heads can be brought back to sense" (110). He is an advocate for Dalits and wants "to be martyred" for them (111).

When tracing the origins of violence "in the Havelis of Zamindars and in their Mehfils," which serve as "the safety vaults of capitalists and monopolists" (70), the poet in Dhasal demonstrates his sympathies with Marxism. Upon breaking the tree of violence and tracking down its roots, a new tree emerges and multiplies into several trees. The poet feels that removing the conditions that give rise to violence is the only way to eradicate the root of violence. The tree will not die since the situation cannot be eliminated; instead, it will "multiply by the hundred, by the thousands, by the millions, and by the billions" (71). It will "overflow into rice-fields, and foul up the Parliament, it will run over the ghettos of the untouchables, the mangs and mehetars, The Mahars and the chambhars, into the fields and into the factories:" (71). This is true even if humans kill it in broad daylight. According to him, the tree of violence may satisfy "the role of the tree of wish-fulfilment" and turn into "a cornucopia for the newborn nation" (71). Because capitalism has such a strong hold, it cannot be eradicated unless the conditions that support it are eliminated. “Hunger; What comes first, The tree or the seed? Hunger; you turn the question into a conundrum. Hunger, just tell

us, to what racedoes this ape belong? If you can't answer that, we'll destroy seventeen generations of you". (80) The poverty and wretched state of the untouchables are the result of the upper castes or touchables who embrace capitalism. Unfed untouchables, or Dalits, experience "a ferocious python" (63) passing through their empty bowels (64), shadowed by "Private property's banyan tree" (63), and to discuss "liberty, equality, fraternity," and "everything is cenotaphal before the darkness to darken it bless in it". Hunger may manifest itself in a variety of ways; it can occasionally take the shape of a "mouse," "cat," or "lion." To be adored, she is "the last whore" (79), and the poet confronts her, saying, "Let's see who wins, we or you" (80). Take note of the passage's tone of questioning, rage, and revolt.

In the poem "I Slew the Seven Horses of the Chariot of the Sun," Dalits express their disapproval of the Sun, who is the all-mighty God, the capitalist, and the exploiter masquerading as an unbiased Messiah. The poet first bemoans the Sun's broken or fractured mirror, which inadequately depicts the faces of the Dalits. The landscapes of Dalits who must live in terrible situations are characterised by things like leaking roofs, malnutrition, cruelty even to cows and buffaloes, desolate terrain, poverty, diseases, filth contaminated by flies and mosquitoes, trash, and sewage. Therefore, the poet requests that the Sun "Punish the landowners and the feudal lords/ Whom caste and money have made powerful and arrogant" (p.123). He calls the Sun a "heartless god," and because he is aware of the Sun's lack of concern for people like him, he declines to join his tribe. Note the passage where the poet candidly portrays the so-called Dalit Messiahs:

"You rise in the morning; at noon you burn overhead; You give us a slip in the evening without keeping any promise. We are used to your ways. We are used to your insensitive behaviour, your indifferent attitude. Where have you lost that invisible bond between you and us? When did you cut off the cords that tied us together?" (125)

It is his conviction that the celestial body is a serpent that has consumed all existence. He then speaks for the Dalits who "do not wish to live an uncertain life. That depends on chance" (125) and hence decline to be puppets. Note the defiant attitude that symbolises the Dalits' resolve to stop being exploited:

"We refuse to be puppets on a string Pulled by a governor of our destiny. Who has no pedigree. Someone pulls the string, and it's a new Epoc omeone else comes along and pulls the string, and it's another age". (125)

Deeply affected by the sight of Dalit exploitation, Dhasal's writing becomes agony itself. Because of his broad perspective and tremendous humanity, he is no longer "bonded byattachment" and "driven by a thirst to possess" (128). He sculpts the picture of the wound: "I've made myself tired and unhappy here on this seashore of pain; Sculpting with a chisel an image of many-faceted wounds" (112). Upon discussing the socioeconomically marginalised, he transforms into "the poet of the underworld, a lumpen messiah, a poor man's bodhisattva" (Chitre153). He is troubled by the thoughtof tomorrow's bread and feels "a venereal sore in the private part of language" (100). "Pain and roti are being roasted in the same tandoor's fire" (101), he emphasises, highlighting the situation Dalits have been in. Beyond the individual voice of the poet, it is the voice of every Dalit who aspires to be an individual: Release me from my infernal identity. Let me fall in love with these stars. (100) He acts like a vengeful man at times when the upper castes take advantage of the untouchables, even for water. He loses self-control due to his anger and uses derogatory language, including things that a sensible man would never say in front of others.

The muse of Namdeo Dhasal truly depicts the anguish and suffering of Dalits without resorting to caste prejudice. As he describes all exploited, dejected, economically poor, and shunned individuals, the poet shows a broad perspective. He speaks out for Dalits while remembering Ambedkar's vision. Because his writing provides a plan of action that brings all Dalits together beyond boundaries and order, he is a real underworld poet. His poetry is undoubtedly global in character, as it views people as fellow humans and presents opportunities for the betterment of the Dalit community. Despite its acerbic tone, its purpose of combating all sorts of exploitation makes it powerful in appeal.

Conclusion

Namdeo Dhasal's poetry reclaims Dalit identity by challenging the caste-based oppression of the Varna system and advocating equality, dignity, and social

justice. Inspired by Dr. B. R. Ambedkar, Dhasal broadens the meaning of "Dalit" to include all socially and economically marginalized people. His poems portray the harsh realities of exploitation, poverty, violence, prostitution, and discrimination while condemning religious orthodoxy, feudalism, and capitalism. Through powerful imagery, symbolic language, and a rebellious tone, Dhasal calls for the destruction of oppressive social structures and the creation of a humane society founded on liberty, equality, fraternity, and universal human dignity.

Works Cited

Dhasal, Namdeo. Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld Poems of 1972-2006 (translated by Dilip Chitre), Chennai: Navayana, 2007.

Dhasal, Namdeo. "Namdeo on Namdeo", Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld Poems of 1972-2006 (translated by Dilip Chitre), Chennai: Navayana, 2007. 163.

Chitre, Dilip. "A Translator's Delight and Despair," Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld Poems of 1972-2006 (translated by Dilip Chitre), Chennai.Chitre, Dilip. "A Translator's Delight and Despair," Namdeo Dhasal: Poet of the Underworld Poems of 1972-2006 (translated by Dilip Chitre), Chennai: Navayana, 2007. 174-180.

Wankhede, M. S. "Dalit Voice in India: The Protest Literature," Cyber Literature, Volume: XXI June, 2008.

Dr. Ravi Kachhap
University Department of English Correspondence
Address:-C/O- Dr. Jaipal Kachhap Opposite DC office
Chaibasa Road, Near Petrol pump. Martin Bunglow
Khunti Pin: 835210 PO- Khunti Jharkhand

39

दसवें दशक के नाटकों में नारी– चेतना

डॉ० संगीता वर्मा

सारांशः

दसवें दशक (1990 के दशक) के हिंदी नाटकों में परंपराओं के प्रति नारी विद्रोह का मुख्य कारण पितृसत्तात्मक व्यवस्था लैंगिक असमानता और रूढ़िवादी मान्यताओं के विरुद्ध पनपी स्त्री– चेतना थी। इस दौर में स्त्री मुक्ति, शोषण के खिलाफ प्रतिरोध और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने की ललक को प्रमुखता मिली। पितृसत्तात्मक जकड़न की मुक्ति सदियों से चली आ रही वर्ण – व्यवस्था और पुरुष – प्रधान समाज ने स्त्री को केवल श्गृह लक्ष्मीश या उपभोग की वस्तु तक सीमित कर दिया था। इसके विरुद्ध विद्रोह कर महिलाओं ने अपनी स्वतंत्र सत्ता और अस्मिता की मांग की।

पौराणिक एवं ऐतिहासिक मिथकों के पुर्नपाठ के कारण नाटककारों ने पुराने मिथकों और ऐतिहासिक कथाओं को नए नजरिए से देखा । उन्होंने यह दिखाया कि कैसे पारंपरिक व्यवस्था में स्त्री को हमेशा त्याग और बलिदान की मूर्ति मानकर उनके अधिकारों का हनन किया। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता आधुनिकता के प्रसार और शिक्षा के कारण महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी।वे अब अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति खुद तय करना चाहती थी जो पारंपरिक आज्ञाकारिता की सीमाओं से टकराता था । 70 के दशक के अंत और 90 के दशक के बीच नुक्कड़ नाटकों ने महिला आंदोलन (दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा और लैंगिक शोषण) को सीधे तौर पर मंच पर उतारा। इसने परंपराओं को चुनौती देने के लिए एक आक्रामक और यथार्थवादी जमीन तैयार की।

यही कारण है कि दसवें दशक के नाटकों में चित्रित इस प्रकार के कुछ नवयुवक एवं नवयुवतियां पारंपरिक हिंदू धर्म की नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों की अवहेलना करके प्रदर्शन की प्रवृत्ति, उन्मुक्त प्रेम, सही – गलत अधिकारों के लिए हड़तालें, अप्राकृतिक शारीरिक संबंध विवाह – विच्छेद, मादक द्रव्यों का सेवन आदि कुप्रवृत्तियों का शिकार होकर समाज में अराजकता उत्पन्न करने में सहायक बनते दिखाई देते हैं।

समाज में बहुत बड़े जन–भाग में महिलाओं के प्रति अस्वस्थ और रूग्न सोच क्रियाशील थी, अब भी पारंपरिक और पिछड़े समाज में निरंतर क्रियाशील है कि महिला को बाहर नहीं निकलना चाहिए इसके पीछे पुरुष का मानना है कि घर के बाहर काम करने वाली महिला चरित्र हीन होती है।१ यधपि धर्मवीर भारती ने बहुत पहले यह स्पष्ट कर दिया था कि मानव की सदियों पुरानी मान्यताएं बहुत तेजी के साथ ढहती चली जा रही है, उनकी चेतना के आगे नए–नए क्षितिज हर साल खुलते जा रहे हैं।२ तथापि पुरानी मान्यताएँ अब भी चिपकी हुई हैं। अतः घर और बाहर के बीच फंसी नारियां अब भी यंत्रणाएं भोग रही हैं शारीरिक और मानसिक भी। विभिन्न आजीविकाओं में स्त्री–पुरुषों के बीच प्रतियोगिता समानता के भाव की बजाए, कटुता को ही जन्म देती है। ३

इस स्थिति में विद्रोह बहुत जरूरी है क्योंकि विद्रोह –चेतना महिलाओं के अस्तित्व सुरक्षा के मूलभूत प्रश्न से ही जुड़ी हुई है।

त्रिशंकु में अज्ञेय लिखते हैं एक विशेष सीमा तक, व्यक्ति समाज के अनुकूल अपने को गढ़ता है, स्वीकृति पाने का यह मूल्य वह चुकता है, उसके बाद जब उसका मर्म घायल हुआ जाता है तब वह आहत होकर विद्रोह या चीत्कार कर उठता हैं। ४

पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी भारती सहृदय के संस्कार के विषय में रहते हैं कि ष्दीर्घकाल से भारत वर्ष इस बात में विश्वास करता रहा है कि किए का फल जरुर भोगना पड़ता है। इस जन्म में नहीं तो उसे अगले जन्म में अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा।..... . इस जन्म में कुछ भी मनुष्य ने पाया है, वह पूर्वजन्म के पुण्य या पाप का परिणाम है और इस जन्म में जो पुण्य या पाप करेगा, वह भी उसको भोगना ही पड़ेगा। ५

इतनी संकुचित सामाजिक व्यवस्था में जहां अच्छा और बुरा, पाप और पुण्य का परिणाम।हो, वहां विरोध या विद्रोह कीआवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन भारतीय समाज में भी व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया हुई,परंपराओं के प्रति विद्रोह भाव जागा तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठी। मानसिक संगठन में परिवर्तन,जिसे अज्ञेय ने व्यक्ति का मर्म कहां है उसमें परिवर्तन आधुनिकाल से ही प्रारंभ हुआ क्योंकि आस्था और विश्वास का स्थान तर्क और विवेचन ने ले लिया और सदियों से चला आ रहा धर्म का एकाधिकार समाप्त हो गया। इस तरह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल का स्वरूप ही विद्रोहात्मक है। दसवें दशक के नाटको में भी सर्वत्र शंका, अनिश्चय, द्वंद्व और विद्रोह का होना सहज स्वाभाविक है। इन नाटकों की नारियों को यह एहसास होने लगता है कि कुछ स्थापित मान्यताएं ,परंपरा,व्यवस्था के ढांचे उन्हें सीमाओं में बांध रहे हैं, तो वे उनके प्रति अस्वीकार का भाव प्रकट कर, उनसे निकलने के लिए प्रयत्नशील हो उठती हैं।

रामू ने कहा कि विद्रोह की प्रक्रिया, व्यक्ति से होती हुई सामूहिक रूप धारण करती है। ष्मैं विद्रोह करता हूँ, इसीलिए हम अस्तित्व रखते हैं ।६ विद्रोह व्यक्ति की स्वतंत्रता की पहचान है, उसकी अस्तित्वगत मजबूरी । विद्रोह की इस प्रक्रिया में व्यक्ति भीतर ही भीतर संघर्षरत रहता है। कभी वह समाज के अनुसार स्वयं को ढ़ालता है और अपने श्स्वश को नकारता है और कभी श्स्वश के प्रति अपने उत्तरदायित्व निभाता है । इस तरह विद्रोह के दोहरे आयाम को स्वीकारता, नकारता एक अंतर्द्वंद्व की स्थिति में जीता है । यह दुविधा की स्थिति विद्रोह की भूमिका में एक सक्रिय प्रयास है। सर्जनात्मक धरातल पर इस प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्तियों के टूटने और बिखरने को रुपायित किया गया है।

आज का हिंदी नाट्य साहित्य में परंपरा के प्रति विद्रोह को बहुत गंभीर ढंग से अभिव्यक्त कर, नाटककार अपना दायित्व निभा रहे हैं। विद्रोह एक पेचीदा– सा सवाल बनकर आता है जिसे नाना रूपों में स्त्री पात्र पूछ रही है। समाजशास्त्रियों द्वारा स्थापित विविध कारणों के चलते, नारी मन के भीतर पनपते असंतोष को नाटककार कथानक तथा विश्लेषण के माध्यम से, क्रियात्मक रूप देते नजर आ रहे हैं।

विद्रोह–साहित्य सृजन क्यों कर रहे हैं? सशक्त शब्दों में वे हमें इसका उत्तर देते रहते हैं। इनके नारी पात्र स्वयं को स्वतंत्र इकाई के रूप में पहचानने लगी हैं और इस स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत हैं। परिणामरू इनकी बोली में अस्वीकार है, निषेध है, और उनकी हर अभिव्यक्ति विद्रोह मूल्याग्रही दृष्टि से संपन्न है।

पुरुष प्रधान समाज के खिलाफ विद्रोह,परंपरित अत्याचारों के प्रति विद्रोह, सशक्त स्वर में बुलंद करती नारियां स्थापित कर रही हैं कि ये प्रतिरोध मुख्यतः जाति, अर्थ, और लिंग पर आधारित भेदों में अवलोकनीय हैं। लिंग भेद के कारण तथा आर्थिक असुरक्षा के कारण इन्हें विविधमुखी शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। उन्हें लगता है की शाद के कुछ साल बाद पति अपनी पत्नी को एक काम करने वाली मशीन समझने लगते हैं। इसका बोध परंपरागत नारी को नहीं था। कइयों को लगने लगा कि अभी तक उनके साथ बलात्कार ही किया जा रहा है था– शारीरिक और मानसिक – दोनों स्तरों पर उन्हें इससे छुटकारा चाहिए। क्योंकि उन्हें लगता है कि वे उन मन और तन की हिंसाओं से परे जापाएंगी–अकेली। वे सब मुक्ति के लिए छटपटाती हैं, जिंदगी पर अपना बदला लेना चाहती हैं, एक पराजित जीवन जीना नहीं चाहती हैं।

विद्रोह साहित्य की परिचारिका तसलीमा नसरीन अपनी पुस्तक श्नष्ट लड़कीश, श्नष्ट गधश की भूमिका में लिखते हैं– उन सभी प्रथा रीति–रिवाज का खंडन करना चाहिए जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता है। जैसे है तो सिर्फ एक संस्कार कि रसोई का काम स्त्रियों का है। हालांकि बाहर पुरुष बावर्ची, दर्जी और क्लिनरअधिक पाए जाते हैं, घर में कुक, टेलर, क्लिनर के रूप में स्त्री ही बिना पारिश्रमिक के परिश्रम करती है। परंपरा के चलते, समाज में जहां कहीं छोटी– बड़ी विषमता या अन्याय व्याप्त है, उसका विरोध करते जाना अनिवार्य है। और इस विरोध का दायित्व सब का है गारमेंट बनाने वाले श्रमिक से लेकर प्रधानमंत्री तक का।७

आगे यह भी लिखती है कि चीन में लड़कियों के पैरों में लोहे के जूते पहनाकर रखा जाता था, फलस्वरुप चीनी लड़कियों के पांव छोटे हो गए। उसी प्रकार लंबे समय में यहां की स्त्रियों के मन पर जंग लग गया है। और जंग लगे मन में नयी भावना तक नहीं आती, विरोध तो बहुत दूर की बात है। काफी हद तक पिंजरे के पंछी की तरह, जो पिंजरे में बंद रहते – रहते उड़ना भूल जाता है, इस देश की स्त्रियां भी अपने चारों तरफ के पिंजरे को तोड़कर बाहर निकल आना भूल चुकी हैं। अनभ्यास के कारण, वे विरोध की भाषा भूल गयी हैं। हम जैसों को, जिनकी आवाज अब तक बंद नहीं हुई है। चाहिए कि चिल्लाए, ताकि सोई हुई स्त्रियों के कानों तक वह आवाज पहुंचे।८

रिवाजों के प्रति विरोध करने कीआवश्यकता के बारे में तसलीमा नसरीन लिखती है कुछ बेहूदा रिवाजों को आदमी अब भी समाज में बचाए हुए हैं पशु जिस तरह कई मादाओं के साथ अभ्यस्त होता है, पुरुष भी इसी तरह कई आदमियों के साथ अभ्यस्त होता है, पुरुष भी इसी तरह बहुस्त्रीगामी होना चाहेगा।.... ...मौका पाते ही पुरुष दावा करता है कि वह अशरफ– उल– मुखलुकात यानि सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।९

भारतीय परंपरा के अनुसार नारी की डोली ही घर आती है और घर से बाहर उसकी अर्थी निकलती है। यह है भारतीय परंपरा परंतु आज की नारी रूढ़िवादी परंपरा से विद्रोह कर स्वच्छंद होना चाहती है वह घर की चार दिवारी से बाहर निकाल कर पुरुषों की तरह रहना चाहती है परंतु उसके इस विद्रोह का परिणाम सुखद न होकर दुखद ही होता है।

हमीदुल्लाकृत नाटक उलझी आकृतियां में परंपरा के प्रति विद्रोह करती हुई नारी को दर्शाया गया है। अपने को अत्याधुनिक एवं अत्यंत पढ़ी – लिखी समझने के भुलावे में पड़ी आज की नारी इतनी स्वार्थी होती जा रही है कि शरीर का उसके लिए काम निकालने के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रह गया हैं । परंपरा से विद्रोहित नारी अपने को पढ़ी–लिखी एवं विस्तृत मानसिकता से युक्त समझती हुई परंपरा के घरौंदे को विद्रोह कर

उखड रही है । शादी की अपेक्षा प्रेम को ही सर्वस्व मानती है।विवेच्य नाटक की बेला ऐसी ही नारी पात्र है। वह प्रेम के संबंध में कहती है – श्प्रेम जीवन का प्राथमिक सत्य है – वह जमाना लद गया जब औरतें अपना जीवन पर्दे में कैद होकर बिता देती थी।.....कम से कम हम ब्रांड मांइडिंड तो हो सकते हैं।.....जब आपस में इतना मिलना – जुलना होता रहेगा तो प्रेम तो कायम रहेगा ही। शादी में होने से क्या फर्क पड़ता है। १०

बेला ने यहां विवाह संख्या पर ही प्रश्नचिन्ह अंकित कर दिया है। वह अपने बॉस से प्रेम करती है और मिलना – जुलना आवश्यक समझती है, शादी होना या ना होना उसके लिए महत्वहीन है।

उलझी आकृतियांश नाटक में परंपरा के प्रति विद्रोह करने वाली नारी का घर से बाहर ऐसा शारीरिक अनुबंध है, जो बॉस के बिस्तर पर लिखा जाता हैं वह स्वयं फाइल बन चुकी है – बॉस की दी हुई साड़ी में लिपटी हुई फ़ाइल। हर फाइल के साथ उसे साड़ी सहित स्वयं खुलना पड़ता है और फाइल पर हस्ताक्षर लेने से पूर्व अपने जिस्म पर बॉस के इनीशियल लेने पड़ते हैं। वह प्रत्येक पत्र की ऑफिस प्रतिलिपि है। फाइल की भांति ही वह छोटे–बड़े अधिकारियों के केबिन में खुलती है। परंपरा के प्रति विद्रोह करने वाली नारी नौकरी की तलाश में घर से बाहर निकली नारी का सच्चा प्रतिबिंब उपयुक्त कथन से पाठक के मानस पटल पर उभरता है। निश्चय ही वह अधिकारी के आगे शरीर समर्थन करती हुई कार्य –सिद्धि की ओर अग्रसर होती है और ऐसा करने से उसे बिल्कुल संकोच भी नहीं होता, बल्कि उसके लिए उसका यह विद्रोह गौरव का विषय बन गया है।

संदर्भ सूचीः–

१. शिवप्रसाद सिंह, औरत, पृ.107

२. धर्मवीर भारती, संपा, अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ.166

३. नेमिचंद जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ. 157

४. अज्ञेय, त्रिशंकु, संस्करण 1945, पृ.55

५. पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पृ.68

६. Irebel there fore we म•पेज, ।सइमतज Camus, The Rebe, p. 47

७. तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिकाओ

८. तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिका

९. तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिका

१०. हमीदुल्लाह, उलझी आकृतियांश, पृ. 199

डॉ० संगीता वर्मा

सहायक प्रवक्ता

(हिन्दी विभाग)

आई. एल. आर, कॉलेज,

जसाना, फरीदाबाद।

दूरभाष 9654423713

पिनकोड– 121101

40

पटना कलम चित्रकला में भारतीय जनजीवन का यर्थाथवादी चित्रण

प्रवीन कुमार

शोध सार :

पटना कलम चित्रकला भारतीय लघु चित्रकला की एक महत्वपूर्ण शैली है। जिसका विकास 18वीं और 19वीं शताब्दी में बिहार के पटना क्षेत्र में हुआ। मुगल दरबार में तो चित्रकार पूरी तरह दरबारी चित्रकार थे, उनको जैसा कहा जाता वैसा ही चित्रित करना होता था, लेकिन पटना शैली में जब उन्ही चितेरों को चित्रांकन करने की आजादी मिली तब उनकी आजाद कलम ने पटना शैली की चित्रकला को विकसित किया। पटना शैली के चित्रकारों को यहां संरक्षण मिला और तेजी से यहां एक चित्रकला शैली का विकास हुआ और यह समृद्ध होती गई।

पटना कलम की सबसे महत्वपूर्ण विशेशता यह थी कि इसमें सामान्य जनता के जीवन को चित्रकला का मुख्य विशय बनाया। ये प्रमुख विशयों में व्यक्ति चित्र, साधारण लोगों के व्यक्ति चित्र थे। जन साधारण के विशयों में मछली बेचने वाली, चक्की वाली, लुहार, दर्जी, सेविका, मिट्टी के खिलोने बनाने व बेचने वाले, मांगलिक पर्व, उत्सवों, त्योहारों, डोली, पालकी, नृत्य, संगीत, पशु–पक्षी, अलंकारीक सुलेख आदि का चित्रण किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में पटना कलम चित्रकला में भारतीय जनजीवन के यथार्थवादी स्वरूप, उसकी कलात्मक विशेशताओं तथा सामाजिक महत्व का अध्ययन किया गया है।

शोध पद्धति

यह शोध ऐतिहासिक एवं विश्लेशणात्मक पद्धति पर आधारित हैं अध्ययन के लिए कला इतिहास संबधों पुस्तकों, शोधपत्रों, संग्रहालय, अभिलेखों तथा आनलाइन स्त्रोतों का उपयोग किया गया है।

मूल शब्द : कलम, जनजीवन, वर्गीकरण, तत्कालीन

शोध बिन्दू :

- पटना कलम चित्रकला के उद्गम व विकास का अध्ययन करना।
- पटना कलम चित्रकला में उकेरे गये चित्रों के विशय का अध्ययन करना।
- पटना शैली में प्रयोग कला सामग्री का अध्ययन करना।
- पटना कलम के चित्रों के वर्गीकरण का अध्ययन करना।

प्रस्तावना :

पटना कलम या पटना शैली की चित्रकला 'कम्पनी' या 'फिरंगी' कला का ही एक पर्याय है। इन कथनों के बावजूद पटना कलम की अपनी कुछ विशेशताएं हैं। सौन्दर्यशास्त्र की दृश्टि से 'पटना शैली' कोई अलग–अलग शैली नहीं है, परन्तु इसकी रचना या विशयवस्तु भारतीय कला के इतिहास में इसके अन्य कलाओं से अंतर को स्पश्ट करती हैं साथ ही दो शताब्दीयों की इस चित्रकला को निरंतरता भी प्रदान करती है।

अब तक के अध्ययन से इतना तो तय है। कि पटना शैली में पटना की जमीन और पटना के सामाजिक परिवेश में विकसित हुई। 1760 ई० से 1949 ई० तक की चित्रकला की एक अभिन्न और अप्रतिम पहचान है, क्योंकि इसमें पटना के तत्कालीन जीवन की एक अंतरंग झलक है और वह ऐतिहासिक भी है। वैसे पटना शैली की चित्रकला का अततः सबसे बड़ा सत्य यह है कि इसमें पटना के आम जीवन को इस चित्रांकन का विशय बनाया गया हैं।

पटना कलम के चित्रों के खरीददार दो प्रकार के थें। एक पटना के धनाड्य रईस तथा दूसरे विदेशी व्यापारी, रईसों की पसन्द व्यक्ति चित्र और फूलों तथा पक्षियों के चित्र थे। विदेशी खरीददारों की पसन्द भारतीय सांस्कृतिक तीज, त्यौहार, वेश–भूशा, परम्परा रीति–रिवाज तथा कुटीर उद्योग–धंधा से अधिक थी। इसका कारण यह भी था वे यहाँ की गरीबी, व्यावसायिक दुर्दशा को दिखाकर भारत पर ब्रिटिश शासन और प्रभुत्व के महत्व को उजागर करना। अतः चित्रकार बाजार की मांग के अनुरूप चित्रों का निर्माण करते थे और मुख्य खरीदार के रूप में विदेशी व्यापारी, अफसर तथा लेखकों का समूह सामने आ रहा था।

विषयवस्तु के आधार पर पटना कलम के चित्रों को छह भाग में बांटा जा सकता हैः–

- दैनिक जीवन, उद्योग–धधों (व्यवसाय) पर आधारित। जैसे –धोबी, कसाई, कुली, कुम्हार, नौकरानी, किसान, पील्वान, मेहतर, डाकिया आदि।
- मांगलिक पर्व, त्योहार और उत्सवों के चित्र, जैसे –पालकी, डोली, दीवाली, होली, नृत्य–संगीत आदि।
- मुखाकृति (शबीह) चित्रण
- वस्तु चित्रण, दृश्य चित्र और स्थापत्य कला के चित्र
- पशु–पक्षी
- अलंकारिक सुलेख चित्र।

पटना कलम के चित्रकारों ने कागज, अभ्रक और हाथी दांत को चित्रों का माध्यम बनाया, अभ्रक पर प्रायः जनजीवन के ही चित्र देखने को मिलते है और हाथी दांत पर अधिकतर प्रोट्रेट ही बनाये गये थे। उस समय पर्दा प्रथा थी अतः सम्राट और कुलीन स्त्रियों के चित्र देखने को नहीं मिलते थे। स्त्रियों के जो चित्र मिले है,

वे संभवत नृत्यांगनाओं और रूप जीवाओं के चित्र है जिन्हें रईस वर्ग अपने वैभव के प्रतीक के रूप में रखते थे।

पटना कलम के चित्रों में अनावश्यक प्रयोग नहीं मिलता है, यहां तक की फूलों और पक्षियों के चित्रण में भी अधिक आवश्यकता होने पर मात्र एक टहनी बना दी जाती थी। पटना कलम के चित्रों को देखने पर यह स्पश्ट होता है कि मुगलकालीन शाही चित्रों की विरासत लिए इन चित्रकारों ने कितनी तत्परता से मध्यकालीन रूढ़ियों को तोड़ दिया। कंहा दरबारी शानों–शौकत, शिकार, युद्ध, राग–रागिनी, बारहमासा का चित्रण हो रहा था और कंहा ये चित्रकार पटना आकर सामान्य जन–जीवन का चित्रण करने लगे।

मुगल चित्रों में उनकी कल्पनाओं को स्वतंत्र उड़ान भरने की छूट थी, किन्तु पटना कलम चित्रों के लिए व्यावसायिक दृश्टि से कल्पना को कोई स्थान नहीं मिला। फिर भी जब कभी चित्रकारों को रईसों का प्रक्षय, उचित मूल्य तथा प्रोत्साहन और स्वंतत्र अभिव्यक्ति का अवसर मिला तथा अवचेतन में जबरन दबाई गई कल्पनाएं अलंकरण के साथ पटना कलम के चित्रों में भी मुखर हो उठी। विभिन्न संग्रहालयों में शोभायमान पटना कलम के चित्रों को देखकर स्पश्ट होता है कि चित्रकारों के अन्तर्मन में अभिव्यक्ति की अभिलाशा जो अभी तक दबी–ढंकी थी उसे रास्ता मिलने पर भिन्न विशय वस्तु और सन्दर रंग संयोजन के साथ अद्भुत चित्रों का भी निर्माण हुआ।

अवधेश मित्र अपनी पुस्तक कम्पनी काल में पटना शैली की चित्रकला में लिखते है कि–

पटना शैली की चित्रकला पर थोड़ा निश्पक्ष चिंतन मिल्ड्रेड आर्चर ने किया है। मिल्ड्रेड भारतीय, पुरातत्व और विशेश रूप से भारतीय लघु चित्रकला पर अच्छी समझ रखती है। पटना में रहते हुए ही मिल्ड्रेड ने द रॉयल इण्डिया सोसाइटी के लिए पटना पेंटिग पर एक पुस्तिका में मिल्ड्रेड का आलेख एक ऐतिहासिक विश्लेशण के साथ है और यथासंभव प्रमाणिक तिथियाँ भी इसमें मौजूद है। मगर उनकी कुछ ब्रितानी मानसिकता की पक्षधरता इस आलेख में है, और मिल्ड्रेड आर्चर ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शौकिया चित्रकारों को श्रेश्ठ बनाने का प्रयास किया है। साथ ही यह भी लिखा है कि पटना के चित्रकारों को नई तकनीक और यर्थाथपरकता की शैली का ज्ञान भी यूरोपीय चित्रकारों के सानिध्य में आकर ही उन्हे मिला। जबकि यह सत्य है कि पटना के चित्रकारों ने भी कुछ खूबियां ब्रितानी चित्रकारों की अपनाई। चूंकि पटना शैली की चित्रकला के चितेरे मुगल शैली और राजस्थानी शैली की अत्यंत समृद्ध चित्रकला परम्परा के चित्रकार थे और उन्हें तमाम तकनीक तथा विशय का बेहतर ज्ञान था, इसलिए अपने परंपरागत सौन्दर्य शास्त्र को परिवर्तित करने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं हुई।

लंदन के विक्टोरिया एण्ड अल्बर्ट म्युजियम में भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के काल के 2000 चित्र हैं, जिसमें पटना शैली के भी चित्र है। इन्हे एक साथ देखने के बाद कई सूक्ष्म बातों की जानकारी होती है, वैसे पटना शैली की चित्रकला का अततः सबसे बड़ा सत्य यह है कि इसमें पटना के आम जीवन को इस चित्रांकन का मुख्य विशय बनाया गया है। पटना के एक स्वच्छंद वातावरण ने पटना चित्रकला को किसी दासता से मुक्त रखा था, इसलिए भी उनकी सृजनशीलता पटना के आम आदमी के जीवन को चित्रांकित करने के लिए मुखर हुई।

इस चित्र शैली के अस्त होने में एक और राजनीतिक उथल–पुथल का प्रमुख हाथ रहा। दूसरी और लियोग्राफ्स और प्रिन्टस तैयार करने की मशीनों के आविश्कार ने रही सही कसर भी पूरी कर दी। 1870 में कैमरे के आविश्कार ने बाजार की उस मांग को, जो विदेशी ग्राहकों द्वारा की जा रही थी, अपनी और आकर्शित कर लिया।

पटना कलम के चित्रों ने जाते–जाते भविश्य की भारतीय कला को एक नई दिशा दी और वह थी स्वतंत्र चित्रकर्म की। चित्रकला को राजकीय सरंक्षण के दासत्व से मुक्ति मिली, फलस्वरूप स्वतंत्र चित्रकारिता ने स्वदेशी और राश्ट्रीयता की भावना को न सिर्फ पोशित किया बल्कि स्वतंत्र भारत के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। चित्रकार पौराणिक कथाओं, श्रृंगारिक चित्रों या वैभव और अंलकरण की विशयवस्तु को छोड़कर वास्तविकता की ओर उन्मुख हुए। फलस्वरूप भारतीय मानस की उस अर्न्तधारा को अभिव्यक्ति मिलने लगी। जो स्वतंत्र भारत की मांग थी।

पटना कलम के चित्रकारों के प्रयत्न से तथा चित्रों के माध्यम से, भारतीय सीमा परिधि के बाहर सुदूर यूरोपीय देशों में, भारतीय सीमा परिधि के बाहर सुदूर यूरोपीय देशों में, भारतीय समृद्ध संस्कृति का जो साम्राज्य स्थापित हुआ और भारतीय इतिहास तथा जन–जीवन का स1त्र अक्षुण्य रह सका इसके लिए भारत सदा इन चित्रकर्मियों का कृतज्ञ रहेगा। पटना कलम के प्रथम चित्रकार के रूप में सेवकराम का नाम लिया जाता हैं। इनका समय 1770 से 1930 तक माना जाता है, सेवक राम पैन्सिल से चित्र का खाका नहीं बनाते थे बल्कि सीधे ब्रश और कजली स्याही से चित्र बनाने में इन्हें महारत हासिल थी, इनके बाद झूमल लाल (1784) फकीरचन्द लाल (1790) तथा टुन्नी लाल (1800) प्रमुख चित्रकार हुए।

19 वीं सदी के प्रमुख चित्रकारों में शिवलाल और

शिवदयाल लाल का नाम आता हैं। शिवलाल को शाही मुसाव्विर की उपाधि प्राप्त थी। उल्लेखनीय है कि मुगल काल से ही कला जगत में पुरूशों का ही प्राधान्य रहा, पर पटना कलम के चित्रकार के रूप में पहली बार महिला चित्रकारों ने भी प्रवेश किया।

कुछ प्रमुख कलाकृतियां :

1. सज्जित घोड़ागाड़ी, कागज, सेवक राम : सेवक राम पटना के प्रमुख चित्रकार है। सज्जित घोड़ाघाड़ी भारतीय जनजीवन का यर्थाथवादी चित्रण सेवक राम की इस कृति में दर्शाया गया है। चित्र में एक सारथी सजी हुई घोड़ाघाड़ी चला रहा हैं। गाड़ी पर सुन्दर सजावट तथा छत्रनुमा आवरण दर्शाया गया है जो, यात्री की सामाजिक प्रतिश्ठा को दर्शाता है। गाड़ी चलाने वाले के हाथ में चाबुक है। जिससे वह घोड़ाघाड़ी को संचालित कर रहा है। पृश्ठभूमि को लगभग रिक्त रखा गया है। चित्र में रेखाकंन, अनुपात तथा गतिशीलता का प्रभाव स्पश्ट दिखाई देता है। कलाकार ने दैनिक जीवन के सामान्य दृश्य को जलरंगो के सूक्ष्म प्रयोग द्वारा भारतीय समाज की परिवहन व्यवस्था तथा सामाजिक जीवन को बड़ी खूबसूरती से दर्शाया है यह चित्र उन्नीसवी शताब्दी के भारतीय यथार्थवादी जनजीवन के दर्शाता ऐतिहासिक चित्र है। सेवकराम ने अपने किसी भी चित्र पर हस्ताक्षर नहीं किये मगर कुछ संकेत है जिनसे इनकी कृतियां पहचानी जाती हैं। उनके आरेखन में एक औपचारिक परिशुद्धता थी। मनुष्य के चेहरे में नुकीली नाक, घनी भौहे, विषय को गहराई से चित्रित आंखे तथा सम्पूर्ण मुखाकृति की अपनी विशेषता थी। चित्र में गहरा सीपिया, भूरा और लाल रंग का प्रयोग अधिक दिखता है। स्वर्ण जैसा पीला और गहरा नीला भी वह व्यवहार में लाते थे ।

2. भार लदी बैलगाड़ी कागज, हुलासलाल

हुलास लाल द्वारा निर्मित ग्रामीण जीवन का एक यथार्थवादी उत्कृष्ट चित्र है, बैलो द्वारा खिंची जा रही बैलगाडी में भारी मात्रा में सामान से लदी हुई है। गाड़ी चलाने वाले के हाथ में चाबुक है, जो बैलों को संचालित कर रहा है। बैलगाड़ी में तीन बैल खींच रहे है, दो पीछे और एक आगे। बैलों की गतिशील मुद्रा तथा गाड़ी के भार का प्रभाव साफ दिख रहा है। चित्र में उकेरे गये सभी पहलुओं पर बड़ी बारीकी से ध्यान रखते हुए अकंन प्राकृतिक ढंग से किया गया है, चाहे वो बैलों कद काठी हो या चाल। पृष्ठभूमि को सरल रखा गया है। प्रकाश और छाया का प्रयोग इतने सही ढंग से किया गया है कि चित्र में गहराई और त्रिआयामी प्रभाव साफ तौर पर दिखाई देता है। हुलासलाल ने इस कृति के माध्यम से उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जनजीवन, कृर्षि आधारित अर्थव्यवस्था तथा परिवहन साधनों को चित्रित किया है । इससे उस समय के श्रमिक वर्ग के जीवन, परिश्रम और दैनिक गतिविधियो की झलक मिलती है।

हुलासलाल के चित्रो से हम पटना शैली की अप्रतिम यथार्थपरकता देखते हैं, जो एक प्रभावशाली सरंचना भी होती है इनकी कृतियां उन दिनों के सामाजिक दृश्यों को प्रदर्शित करती है।

3. धोबी और धोबिन, कागज, झुमल लाल :

झुमल लाल द्वारा निर्मित ''धौबी और धौबिन'' चित्र श्रम सादगी और जनजीवन का सजीव चित्रण है। सामान्य जनजीवन के एक दैनिक दृश्य को बड़ी सादगी और सुंदरता से चित्रित किया गया है। चित्र में एक धोबी और धोबिन कपड़े धोते हुए दिखाई दे रहे हैं। चित्र के मध्य भाग में धोबी पानी में खड़ा होकर कपड़े धो रहा है। उसके पास कपड़ो की टोकरी रखी हुई दिखाई देती है। पृष्ठभूमि में एक बालक भी दिखाई देता है, जिससे दृश्य में स्वाभाविकता और जीवतंता का संचार होता है। चित्र में आकृतियों का रेखाकंन सरल, स्वाभाविक और प्रभावशाली तरीके से उकेरा गया है। चित्र में शांत वातावरण दर्शाने के लिए रंगों का प्रयोग हल्का तथा सौम्य किया है।

यह चित्र उस समय के समाज में धोबी समुदाय के दैनिक कार्यो और श्रमशील जीवन को दर्शाता है। इस चित्र में भारतीय जनजीवन का वास्तविक स्वरूप चित्रित किया है।

4. लकडी काटता बढ़ई, कागज, फकीरचंद :–

फकीरचंद ने इस चित्र में एक साधारण कारीगर के दैनिक श्रम को दर्शाया है। चित्र में दो बढ़ई एक बड़ी लकड़ी को आरी से काटते दिखाई दे रहे हैं। एक बढ़ई लकड़ी के तख्तों पर खड़ा होकर ऊपर से आरी चला रहा हैं। इस चित्र में में कारीगरों की शारीरिक स्थिति और कार्य की गतिशीलता को दर्शाता है। चित्रकार ने बढईयों की शारीरिक संरचना पर विशेश ध्यान देते हुए बड़ी कुशलता से चित्रित किया हैं। पृश्ठभूमि को पटना कलम के और त्रिआयामी प्रभाव साफ दिखाई देता है। इसी प्रकार रेखांकन का प्रयोग बड़ी ही सूक्ष्मता से किया गया है। कारीगर की कार्यप्रणाली को दर्शाता यह चित्र कारीगर वर्ग के पांरपरिक शिल्प कौशल का सजीव चित्रण है। अन्य चित्रकारों की भांति फकीरचन्द ने भी सामान्य जन, शिल्पकारों और श्रमिकों को अपनी कला का विशय बनाकर भारतीय समाज के वास्तविक जीवन को चित्रित किया।

पटना शैली के चित्र व्यक्तिगत संग्रह के अलावा पटना संग्रहालय, बिहार राज्य कला विथिका, खुदा बख्स ओरिएंटल पब्लिक लाइब्रेरी, चैतन्य पुस्तकालय एवं संग्रहालय, पटना, जलान संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय, नई दिल्ली, इंडियन

म्यूजियम, कोलकाता, भारत कला भवन संग्रहालय, वाराणसी, सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद आदि अनेक जगह सोभायमान है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि पटना कलम भारतीय चित्रकला की एक विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण शैली है, जिसने भारतीय जनजीवन को अत्यंत यथार्थवादी, जीवंत और संवेदनशील रूप में चित्रित किया ।

अध्ययन से ज्ञात होता है कि पटना कलम के कलाकारों ने भारतीय जनजीवन विभिन्न कार्यों, वेशभूषा, रीति–रिवाज और सांस्कृतिक गतिविधियों को दर्शाकर यह संदेश दिया कि पटना कलम केवल एक कलाशैली नहीं, बल्कि उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय समाज का दृश्य इतिहास भी है। जलरंगों का पारदर्शी प्रयोग, सूक्ष्म रेखांकन, संतुलित रंग–संयोजन तथा दैनिक जीवन के स्वाभाविक दृश्यों का चित्रण इसे अन्य चित्रशैलियों से अलग पहचान प्रदान करता है। ये कलाकृतियाँ भारत के सामाजिक इतिहास, लोक संस्कृति को समझने का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। इस शैली ने सामान्य जन को कला का केंद्र बनाकर भारतीम कला को नई दिशा प्रदान की। वर्तमान समय में भी पटना कलम भारतीय सांस्कृतिक विरासत की अमूल्य धरोहर है, जो दृश्य रूप में इतिहास का संरक्षण करती है। पटना कलम की बदोलत ही भारतीय चित्रकला राजदरबारों, धार्मिक आख्यानो और अभिजात वर्ग की सीमाओं से बाहर निकलं पाई। यदि पटना कलम के कलाकारों ने यह विशेष प्रयास न किया होता तो हमें उस समाज के दर्शन नहीं होते जिससे हमें प्रेरणा मिलती हैं कि हमारा इतिहास कितनी गौरवशाली है, जिस पर हमें हमेशा गर्व है।

संदर्भ सूची.

1. अमन, अवधेश (2024), कंपनी काल में पटना शैली की चित्रकला, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
2. आर्चर, मिल्ड्रेड, (1948), पटना चित्रकला, लंदन : रॉयल इंडिया सोसाइटी।
3. आर्थर मिल्ड्रेड, (1992), कंपनी चित्रकला : बिटिश काल की भारतीय चित्रकलाएँ, लंदन : विक्टोरिया एवं अल्बर्ट संग्रहालय।
4. 4 ब्राउन, पर्सी, (1942). मुगलों के अधीन भारतीय चित्रकला, ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. कुमारस्वामी, आनंद केंटिश, (1927), भारतीय एवं इंडोनेशियाई कला का इतिहास, लंदन।
6. दास, राय कृष्ण (1940), भारत की चित्रकला, वाराणसी : नागरी प्रचारिणी सभा।
7. गैरोला, वाचस्पति, (1998). भारतीय चित्रकला, इलाहाबादः लोक भारती प्रकाशन।
8. हैवेल, ई. बी. (1908). भारतीय मुर्तिकला और चित्रकला, लंदन।
9. मेहता एन. सी. (1926). भारतीय चित्रकला पर अध्ययन, (मुंबई)

प्रवीन कुमार
टीचिंग असिस्टेंट,
दृश्य कला विभाग,
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय,
रोहतक
Email :parvin.rp.varts@mdurohtak.ac.in

41

त्रिभाषा सूत्रः विद्यार्थियों, समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र निर्माण का सशक्त आधार

डॉ0 सुबोध कुमार

शोध सार :

भाषा केवल विचारों के आदान–प्रदान का साधन नहीं होती, वह किसी समाज की स्मृति, उसकी संवेदना और उसकी पहचान का जीवंत आधार होती है। भारत जैसे विशाल एवं विविधतापूर्ण देश में, जहाँ प्रत्येक क्षेत्र की अपनी बोली, अपना लोकगीत और अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति है, भाषा का प्रश्न कभी भी केवल शिक्षा–प्रणाली से जुड़ा प्रश्न नहीं रहा। यह राष्ट्रीय एकता, सामाजिक समरसता और सांस्कृतिक निरंतरता से जुड़ा हुआ एक गहरा प्रश्न है। भारत विश्व के उन गिने–चुने देशों में है जहाँ भाषायी विविधता को बोझ नहीं, बल्कि सम्पदा के रूप में देखा गया है। इसी दृष्टिकोण से त्रिभाषा सूत्र की परिकल्पना उपजी, जो विद्यार्थी को उसकी मातृभाषा में जड़ें जमाने का अवसर देती है, साथ ही उसे राष्ट्रभाषा और एक अतिरिक्त भाषा के माध्यम से व्यापक राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिदृश्य से जोड़ती है।

त्रिभाषा सूत्र का विचार अचानक उत्पन्न नहीं हुआ। यह स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतीय शिक्षाविदों, नीति–निर्माताओं और चिंतकों के बीच वर्षों तक चले मंथन का परिणाम है। एक ओर देश को भाषायी आधार पर एकजुट रखने की आवश्यकता थी, तो दूसरी ओर प्रत्येक प्रांत की भाषायी अस्मिता का सम्मान करना भी अनिवार्य था। इन दोनों आवश्यकताओं के बीच संतुलन बनाने के प्रयास में त्रिभाषा सूत्र का जन्म हुआ, जिसे समय–समय पर शिक्षा आयोगों ने परिष्कृत किया और अंततः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इसे नए सिरे से, नए तर्कों और नए शोधों के आलोक में पुनर्स्थापित किया। यह सूत्र अब केवल एक प्रशासनिक व्यवस्था नहीं, बल्कि विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास की एक वैज्ञानिक रूपरेखा के रूप में देखा जाने लगा है।

प्रस्तुत आलेख में हम त्रिभाषा सूत्र की ऐतिहासिक यात्रा, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में उसके नए स्वरूप, विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उसकी उपयोगिता, विद्यार्थियों के मानसिक एवं भावनात्मक विकास में उसकी भूमिका, भारतीय समाज तथा संस्कृति के संरक्षण में उसके योगदान और अंततः राष्ट्र निर्माण की बड़ी परियोजना में उसके महत्त्व को समग्रता से समझने का प्रयास करेंगे। साथ ही, इसके क्रियान्वयन में आने वाली चुनौतियों और भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार किया जाएगा, ताकि यह स्पष्ट हो सके कि त्रिभाषा सूत्र केवल कक्षा–कक्ष की व्यवस्था नहीं, बल्कि विकसित भारत के स्वप्न को साकार करने वाली एक बुनियादी नींव है।

2. भारत में त्रिभाषा सूत्र की अवधारणा एवं विकास यात्रा

स्वतंत्रता के पश्चात नवनिर्मित भारत के सामने सबसे जटिल प्रश्नों में एक भाषा–नीति का प्रश्न था। संविधान सभा में लंबी बहसों के बाद हिंदी को राजभाषा का दर्जा मिला, परंतु प्रादेशिक भाषाओं तथा अंग्रेजी की भूमिका को लेकर विमर्श लंबे समय तक जारी रहा। सन् 1961 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में त्रिभाषा सूत्र की रूपरेखा पहली बार सामने आई, जिसे बाद में सन् 1964 से 1966 के मध्य गठित राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, जिसे कोठारी आयोग के नाम से जाना जाता है, ने विस्तार से परिष्कृत किया। इस आयोग ने सुझाव दिया कि विद्यार्थी को मातृभाषा अथवा क्षेत्रीय भाषा, संघ की राजभाषा हिंदी अथवा अंग्रेजी, तथा कोई अन्य आधुनिक भारतीय अथवा विदेशी भाषा सीखनी चाहिए, ताकि भाषायी संतुलन बना रहे और किसी भी क्षेत्र को भाषायी दृष्टि से पिछड़ेपन का अनुभव न हो।

यह सूत्र आरम्भ से ही एक संवेदनशील विषय रहा। हिंदीभाषी राज्यों में इसे स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया गया, किंतु कुछ गैर–हिंदीभाषी राज्यों में इसे लेकर आशंकाएँ भी उभरीं, विशेषकर इस भय के कारण कि कहीं यह किसी एक भाषा को अन्य भाषाओं पर वरीयता देने का माध्यम न बन जाए। समय के साथ नीति–निर्माताओं ने यह स्पष्ट किया कि त्रिभाषा सूत्र का उद्देश्य किसी भाषा का आरोपण नहीं, अपितु प्रत्येक बच्चे को अधिक से अधिक भाषायी सामर्थ्य प्रदान करना है, जिससे वह अपनी जड़ों से जुड़ा रहते हुए भी राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सहजता से संवाद कर सके। सन् 1968 की पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति और उसके बाद 1986 की नीति में भी इस सूत्र को यथावत बनाए रखा गया, यद्यपि इसके क्रियान्वयन की गति तथा गुणवत्ता राज्य दर राज्य भिन्न रही।

पिछले छह दशकों के अनुभव से यह प्रमाणित हुआ कि जहाँ भी त्रिभाषा सूत्र को ईमानदारी से लागू किया गया, वहाँ विद्यार्थियों में भाषायी सहजता, सांस्कृतिक समझ और राष्ट्रीय एकता की भावना अधिक सुदृढ़ रूप से विकसित हुई। दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में इस सूत्र के क्रियान्वयन में असमानताएँ रहीं, तथापि जिन विद्यालयों ने इसे अपनी वास्तविक भावना के साथ अपनाया, वहाँ के विद्यार्थियों ने बहुभाषिकता का लाभ स्पष्ट रूप से प्राप्त किया। यह विकास यात्रा इस बात की साक्षी है कि त्रिभाषा सूत्र किसी अस्थायी नीति–प्रयोग का नाम नहीं, बल्कि भारत की भाषायी विविधता को सहेजते हुए राष्ट्रीय एकता की दिशा में उठाया गया एक सुविचारित और दूरदर्शी कदम है, जिसे राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने और अधिक

स्पष्टता तथा लचीलेपन के साथ आगे बढ़ाया है।

तालिका 1: त्रिभाषा सूत्र की विकास यात्रा के प्रमुख पड़ाव

वर्ष / काल	घटना अथवा सिफारिश	मुख्य विशेषता
1961	मुख्यमंत्री सम्मेलन	त्रिभाषा सूत्र की प्रारंभिक रूपरेखा
1964–66	कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग)	मातृभाषा, राजभाषा तथा एक अतिरिक्त भाषा का सुझाव
1968	प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति	त्रिभाषा सूत्र को नीतिगत मान्यता
1986/1992	राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं संशोधन	सूत्र की निरंतरता, क्रियान्वयन में राज्यवार भिन्नता
2020	राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020	लचीलापन, मातृभाषा-आधारित शिक्षा, संस्कृत को विशेष स्थान

3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और त्रिभाषा सूत्र का शैक्षिक दृष्टिकोण

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने त्रिभाषा सूत्र को नए सिरे से परिभाषित करते हुए इसे विद्यार्थी–केंद्रित एवं लचीला बनाया है। नीति स्पष्ट करती है कि जहाँ तक संभव हो, कक्षा पाँच तक, और अधिक उपयुक्त हो तो कक्षा आठ तक, शिक्षण का माध्यम मातृभाषा अथवा स्थानीय भाषा ही होनी चाहिए, चाहे विद्यालय सरकारी हो अथवा निजी। इसके साथ ही नीति यह भी रेखांकित करती है कि किसी भी राज्य अथवा विद्यार्थी पर कोई भाषा थोपी नहीं जाएगी, और राज्यों को अपनी आवश्यकता के अनुरूप भाषाओं का चयन करने की स्वतंत्रता होगी। यह दृष्टिकोण त्रिभाषा सूत्र को केंद्रीकृत आदेश के बजाय एक सहभागितापूर्ण प्रक्रिया के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसमें राज्य, विद्यालय और अभिभावक सभी की भूमिका महत्वपूर्ण मानी गई है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति क्या कहती है

नीति में स्पष्ट किया गया है कि त्रिभाषा सूत्र में लचीलापन बना रहेगा, परंतु तीन में से कम से कम दो भाषाएँ भारतीय मूल की होनी चाहिए। संस्कृत को सभी स्तरों पर एक समृद्ध विकल्प के रूप में उपलब्ध कराने पर विशेष बल दिया गया है, साथ ही अन्य शास्त्रीय भाषाओं तथा साहित्य को भी बढ़ावा देने की बात कही गई है।

नीति के इस प्रावधान के पीछे एक गहरी शैक्षिक समझ काम कर रही है। बाल्यावस्था में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया मातृभाषा के माध्यम से कहीं अधिक स्वाभाविक और गहन होती है, क्योंकि बच्चा जिस भाषा में सोचता और अनुभव करता है, उसी भाषा में सीखी गई अवधारणाएँ उसके मस्तिष्क में स्थायी रूप से अंकित होती हैं। जब आरंभिक शिक्षा किसी अपरिचित भाषा में दी जाती है, तो विद्यार्थी की ऊर्जा का एक बड़ा भाग भाषा को समझने में ही व्यय हो जाता है, जिससे विषयवस्तु की गहराई तक पहुँचना कठिन हो जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने इसी वैज्ञानिक तथ्य को आधार बनाकर त्रिभाषा सूत्र को नए सिरे से प्रस्तुत किया है, जिसमें मातृभाषा को नींव और अन्य दो भाषाओं को क्रमिक विस्तार के रूप में देखा गया है।

इसके अतिरिक्त नीति उच्च शिक्षा में भी बहुभाषिकता को प्रोत्साहित करती है। तकनीकी तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कराने, द्विभाषी पाठ्यपुस्तकों के निर्माण तथा भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण शोध–सामग्री तैयार करने पर बल दिया गया है। इस प्रकार त्रिभाषा सूत्र अब केवल विद्यालयी शिक्षा तक सीमित नहीं रह गया, बल्कि यह उच्च शिक्षा, शोध और रोजगारपरक कौशल विकास तक विस्तारित हो चुका है। यह दृष्टिकोण भारतीय भाषाओं को हीन दृष्टि से देखने की मानसिकता को तोड़ते हुए उन्हें ज्ञान–सृजन के सशक्त माध्यम के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है।

तालिका 2: राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भाषा नीति के प्रमुख प्रावधान

स्तर	अनुशंसित माध्यम भाषा	त्रिभाषा सूत्र की भूमिका
आरंभिक बाल्यावस्था	मातृभाषा / घर की भाषा	भाषायी नींव का निर्माण
कक्षा 1–5	मातृभाषा / स्थानीय भाषा (अनुशंसित)	संकल्पनात्मक स्पष्टता
कक्षा 6–8	मातृभाषा जारी, अन्य भाषाओं का क्रमिक परिचय	तीनों भाषाओं का संतुलित अभ्यास
कक्षा 9–12	विद्यार्थी की रुचि अनुसार विकल्प	बहुभाषिक दक्षता का सुदृढ़ीकरण
उच्च शिक्षा	भारतीय भाषाओं में पाठ्यक्रम विकल्प	शोध व नवाचार में भारतीय भाषाओं का उपयोग

सूत्र का महत्व

मध्य विद्यालय स्तर पर, जब बालक ग्यारह से चौदह वर्ष की आयु में प्रवेश करता है, उसका मस्तिष्क भाषायी संरचनाओं को ग्रहण करने के लिए अत्यंत सक्रिय अवस्था में होता है। इसी अवस्था में यदि विद्यार्थी को तीन भाषाओं के व्यवस्थित परिचय का अवसर मिले, तो वह न केवल शब्द–भंडार में वृद्धि करता है, बल्कि विभिन्न भाषाओं की व्याकरणिक संरचनाओं, ध्वनि–प्रणालियों और अभिव्यक्ति–शैलियों की तुलना करने की क्षमता भी विकसित करता है। यह तुलनात्मक क्षमता आगे चलकर विद्यार्थी की विश्लेषणात्मक बुद्धि को पैना करती है। मध्य विद्यालय स्तर पर त्रिभाषा सूत्र का सुनियोजित क्रियान्वयन विद्यार्थी को भाषा–सीखने की प्रक्रिया के प्रति सहज और आत्मविश्वासी बनाता है, जिससे आगे की शिक्षा में भाषायी बाधाएँ न्यूनतम रह जाती हैं।

माध्यमिक स्तर पर पहुँचते–पहुँचते विद्यार्थी के सामने विषयों की जटिलता बढ़ जाती है और उसे विज्ञान, गणित तथा सामाजिक विज्ञान जैसे विषयों में गहन अवधारणात्मक समझ की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में त्रिभाषा सूत्र का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है क्योंकि विद्यार्थी अब तक विकसित हुई अपनी बहुभाषिक क्षमता का उपयोग जटिल विषयों को विभिन्न कोणों से समझने में कर सकता है। जो विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में मूल अवधारणाओं को दृढ़ता से समझ चुका होता है, वह उन्हीं

अवधारणाओं को राष्ट्रभाषा अथवा अंग्रेजी में भी सहजता से व्यक्त कर पाता है, क्योंकि भाषाओं के बीच ज्ञान का हस्तांतरण स्वाभाविक रूप से होता है। यह क्षमता बोर्ड परीक्षाओं की तैयारी में भी सहायक सिद्ध होती है, क्योंकि विद्यार्थी रटने के बजाय समझने की प्रवृत्ति विकसित करता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी अपने भविष्य के व्यावसायिक अथवा शैक्षणिक मार्ग का चयन करता है, और यहीं पर त्रिभाषा सूत्र से प्राप्त बहुभाषिक दक्षता उसके लिए एक बड़ी संपत्ति सिद्ध होती है। चाहे वह इंजीनियरिंग, चिकित्सा, विधि, प्रशासनिक सेवाओं अथवा रचनात्मक क्षेत्रों में जाना चाहे, बहुभाषिकता उसे साक्षात्कार, संप्रेषण तथा टीम–कार्य में विशिष्ट बढ़त प्रदान करती है। साथ ही, संस्कृत अथवा किसी शास्त्रीय भाषा के अध्ययन से विद्यार्थी को भारतीय ज्ञान परंपरा, प्राचीन विज्ञान, गणित तथा दर्शन की गहरी थाती से भी परिचय होता है, जो उसकी बौद्धिक चेतना को व्यापक फलक प्रदान करता है। इस प्रकार उच्च माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र केवल भाषा–शिक्षण न रहकर विद्यार्थी के समग्र व्यक्तित्व–निर्माण का एक सशक्त माध्यम बन जाता है।

तालिका 3: शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर त्रिभाषा सूत्र से प्राप्त लाभ

शिक्षा स्तर	मुख्य लाभ
मध्य विद्यालय	शब्द-भंडार वृद्धि, तुलनात्मक भाषा-बोध, आत्मविश्वास
माध्यमिक स्तर	जटिल अवधारणाओं की गहन समझ, विषयों में स्पष्टता
उच्च माध्यमिक स्तर	व्यावसायिक तत्परता, भारतीय ज्ञान परंपरा से जुड़ाव

व्यक्तित्व विकास में त्रिभाषा सूत्र की भूमिका

बहुभाषिकता पर विश्व भर में हुए शोधों ने यह प्रमाणित किया है कि एक से अधिक भाषाओं में दक्षता प्राप्त करने वाले बच्चों का संज्ञानात्मक विकास तुलनात्मक रूप से अधिक समृद्ध होता है। कनाडा की मनोवैज्ञानिक एलन बायलिस्टॉक के दीर्घकालिक शोधों से यह सामने आया कि द्विभाषी अथवा बहुभाषी बालकों में ध्यान–नियंत्रण, कार्य–परिवर्तन तथा भ्रामक सूचनाओं को नजरअंदाज करने जैसी कार्यकारी मानसिक क्षमताएँ अधिक प्रभावी ढंग से विकसित होती हैं□। इसका सीधा अर्थ यह है कि जब बालक एक साथ दो या तीन भाषाओं का प्रबंधन करना सीखता है, तो उसका मस्तिष्क निरंतर सक्रिय अभ्यास से गुजरता है, जिससे उसकी समग्र मानसिक चपलता में वृद्धि होती है। यह लाभ केवल भाषायी क्षेत्र तक सीमित नहीं रहता, अपितु गणितीय तर्कशक्ति, समस्या–समाधान तथा रचनात्मक चिंतन जैसे क्षेत्रों में भी परिलक्षित होता है।

प्रसिद्ध भाषाविद् जिम कमिंस ने अपने विकासात्मक अन्योन्याश्रय सिद्धांत में यह प्रतिपादित किया कि किसी बालक की दूसरी अथवा तीसरी भाषा में दक्षता का स्तर बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि उसने अपनी प्रथम भाषा अर्थात मातृभाषा में कितनी सुदृढ़ बुनियाद तैयार की है□। यही कारण है कि त्रिभाषा सूत्र में मातृभाषा को आधार बनाकर अन्य भाषाओं का क्रमिक परिचय कराया जाता है, ताकि भाषाओं के बीच ज्ञान और कौशल का सहज हस्तांतरण हो सके। जब यह प्रक्रिया वैज्ञानिक ढंग से आगे बढ़ती है, तो विद्यार्थी में आत्मविश्वास बढ़ता है, क्योंकि वह पाता है कि नई भाषा सीखना उसकी मातृभाषा में अर्जित समझ को नकारता नहीं, बल्कि उसे और समृद्ध करता है। इसके विपरीत, जब बालक पर आरंभ से ही किसी अपरिचित भाषा का दबाव डाला जाता है, तो उसमें हीन भावना तथा शैक्षिक चिंता उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

शोध क्या बताते हैं

बहुभाषिकता पर हुए मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह संकेत मिलता है कि जो बच्चे बचपन से ही एक से अधिक भाषाओं के संपर्क में रहते हैं, वे प्रायः अधिक सहानुभूतिपूर्ण होते हैं, क्योंकि वे यह समझने के अभ्यस्त हो जाते हैं कि एक ही विचार को अलग–अलग भाषाओं और सांस्कृतिक संदर्भों में किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है। यह क्षमता आगे चलकर उनकी सामाजिक समझ तथा संवेदनशीलता को भी पुष्ट करती है।

इस संदर्भ में डॉ० ए०पी०जे० अब्दुल कलाम का अनुभव विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों से यह बताया कि मातृभाषा में गणित और विज्ञान का अध्ययन करना ही उनके वैज्ञानिक बनने की नींव सिद्ध हुआ। यह कथन इस बात का प्रमाण है कि प्रारंभिक शिक्षा में मातृभाषा की मजबूत बुनियाद किसी भी क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करने का आधार बन सकती है। भावनात्मक दृष्टि से भी त्रिभाषा सूत्र विद्यार्थी को यह अनुभव कराता है कि उसकी अपनी भाषा और संस्कृति का सम्मान किया जा रहा है, जिससे उसमें आत्म–गौरव और अपनेपन की भावना प्रबल होती है। यही भावनात्मक स्थिरता आगे चलकर उसके व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में सहायक सिद्ध होती है, क्योंकि एक संतुलित और आत्मविश्वासी विद्यार्थी ही जीवन की जटिल चुनौतियों का सामना धैर्यपूर्वक कर सकता है।

तालिका 4: विद्यार्थियों के सर्वांगीण विकास में त्रिभाषा सूत्र का योगदान

विकास का आयाम	योगदान
संज्ञानात्मक विकास	ध्यान-नियंत्रण एवं कार्य-परिवर्तन क्षमता में सुधार
भावनात्मक विकास	आत्म-गौरव, सांस्कृतिक अपनेपन की भावना
सामाजिक विकास	सहानुभूति, विविधता के प्रति सम्मान
रचनात्मक विकास	बहु-दृष्टिकोणीय चिंतन, नवाचार की प्रवृत्ति

संरक्षण में त्रिभाषा सूत्र

भारत की सबसे बड़ी विशेषता उसकी विविधता में एकता है, और यह विविधता सबसे प्रत्यक्ष रूप से भाषाओं में दिखाई देती है। देश के प्रत्येक कोने में बोली जाने वाली भाषाएँ और बोलियाँ न केवल संवाद का माध्यम हैं, बल्कि वे स्थानीय लोकगीत, लोककथा, कहावतों और पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होने वाले ज्ञान की संवाहक भी हैं। जब कोई बालक अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करता है, तो वह केवल शब्द नहीं सीखता, अपितु अपने पूर्वजों की सोचने की शैली, उनके मूल्यबोध और उनकी सांस्कृतिक स्मृति से भी जुड़ता है। त्रिभाषा सूत्र इस सांस्कृतिक कड़ी को टूटने से बचाता है, क्योंकि यह मातृभाषा को शिक्षा के केंद्र में बनाए रखते हुए ही अन्य भाषाओं का परिचय कराता है।

"बालक के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है जितना शारीरिक विकास के लिए माँ का दूध।"

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी का यह विचार आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना उनके समय में था। गांधी जी सदैव इस बात के पक्षधर रहे कि विदेशी भाषा के माध्यम से दी गई शिक्षा बालक को अपनी मिट्टी से काट सकती है, जबकि मातृभाषा में दी गई शिक्षा उसे अपनी जड़ों से जोड़े रखती है। इसी प्रकार गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर का भी यह दृढ़ मत था कि मातृभाषा को शिक्षा का प्रमुख माध्यम बनाया जाना चाहिए, क्योंकि इसी के माध्यम से संपूर्ण राष्ट्र को प्रभावी ढंग से शिक्षित किया जा सकता है। दोनों महापुरुषों के विचारों में यह समानता दिखाई देती है कि भाषा और संस्कृति एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं, और किसी एक की उपेक्षा दूसरे के क्षरण का कारण बन सकती है।

क्या आप जानते हैं?

भारत विश्व के उन देशों में गिना जाता है जहाँ भाषायी विविधता सबसे अधिक है। देश में सैकड़ों भाषाएँ और हजारों बोलियाँ बोली जाती हैं, और अनेक भाषाओं का अपना समृद्ध साहित्य, अपनी लिपि और अपनी सदियों पुरानी परंपरा है। इस विविधता को संरक्षित रखना केवल सांस्कृतिक दायित्व नहीं, बल्कि राष्ट्रीय पहचान की रक्षा का प्रश्न भी है।

त्रिभाषा सूत्र के माध्यम से जब विद्यार्थी संस्कृत अथवा किसी अन्य शास्त्रीय भाषा से परिचित होता है, तो उसे भारतीय ज्ञान परंपरा की उस विशाल थाती तक पहुँच मिलती है जिसमें दर्शन, गणित, खगोलशास्त्र, आयुर्वेद और साहित्य की अनमोल निधि सुरक्षित है। यह परिचय विद्यार्थी में अपनी सभ्यता के प्रति गौरव का भाव जगाता है और उसे यह समझने में सहायता करता है कि आधुनिकता और परंपरा परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक–दूसरे की पूरक हो सकती हैं। इस प्रकार त्रिभाषा सूत्र केवल भाषा–शिक्षण की नीति नहीं, बल्कि सांस्कृतिक निरंतरता और राष्ट्रीय अस्मिता के संरक्षण की एक सुविचारित रणनीति के रूप में सामने आता है, जो प्रत्येक भारतीय भाषा और बोली को समान सम्मान देने का प्रयास करती है।

7. राष्ट्र निर्माण, ज्ञान अर्थव्यवस्था तथा विकसित भारत के निर्माण में त्रिभाषा सूत्र का योगदान

इक्कीसवीं सदी की अर्थव्यवस्था तेजी से ज्ञान–आधारित अर्थव्यवस्था का रूप ले रही है, जिसमें भाषायी दक्षता और संप्रेषण–कौशल किसी भी व्यक्ति की रोजगार–क्षमता का महत्वपूर्ण आयाम बन चुके हैं। बहुभाषी विद्यार्थी न केवल राष्ट्रीय स्तर पर, बल्कि अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी अधिक सहजता से अपनी बात रख पाते हैं, क्योंकि उनमें विभिन्न भाषायी एवं सांस्कृतिक संदर्भों को समझने की स्वाभाविक क्षमता विकसित हो चुकी होती है। जैसे–जैसे भारत वैश्विक व्यापार, सूचना प्रौद्योगिकी, पर्यटन तथा सेवा क्षेत्र में अपनी उपस्थिति सुदृढ़ कर रहा है, वैसे–वैसे बहुभाषिक कार्यबल की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है। त्रिभाषा सूत्र इसी आवश्यकता को दूरदर्शितापूर्वक संबोधित करता है, क्योंकि यह विद्यार्थियों को प्रारंभ से ही बहुभाषिकता की ओर उन्मुख करता है।

आत्मनिर्भर भारत के व्यापक स्वप्न में भी भाषायी आत्मनिर्भरता का विशेष स्थान है। जब भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण वैज्ञानिक, तकनीकी तथा व्यावसायिक सामग्री उपलब्ध होगी, तो देश के दूरस्थ एवं ग्रामीण क्षेत्रों के प्रतिभाशाली विद्यार्थी भी भाषायी बाधा के कारण पीछे नहीं रहेंगे। डिजिटल शिक्षा के इस युग में भारतीय भाषाओं में तैयार किए गए ऑनलाइन पाठ्यक्रम, ई–पुस्तकें तथा शैक्षिक मंच लाखों विद्यार्थियों तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पहुँचाने का माध्यम बन सकते हैं। त्रिभाषा सूत्र के माध्यम से विकसित बहुभाषिक क्षमता इस डिजिटल शिक्षा–क्रांति का लाभ उठाने के लिए विद्यार्थियों को समुचित रूप से तैयार करती है, जिससे समावेशी शिक्षा का लक्ष्य भी स्वाभाविक रूप से पूर्ण होता है।

विकसित भारत 2047 की परिकल्पना में शिक्षा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्तंभों में गिना गया है, और इस परिकल्पना की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या हम अपने विद्यार्थियों को भाषायी दृष्टि से सशक्त, आत्मविश्वासी तथा वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धी बना पाते हैं। त्रिभाषा सूत्र इस दिशा में एक सेतु का कार्य करता है, जो मातृभाषा में गहरी जड़ों के

साथ–साथ राष्ट्रभाषा से एकता का भाव और अतिरिक्त भाषा से वैश्विक दृष्टि प्रदान करता है। इस त्रिस्तरीय भाषायी निर्माण के माध्यम से देश एक ऐसी युवा पीढ़ी तैयार कर सकता है जो अपनी जड़ों से जुड़ी रहते हुए भी विश्व–मंच पर आत्मविश्वास के साथ खड़ी हो सके, और यही राष्ट्र निर्माण की सच्ची कसौटी है।

तालिका 5: राष्ट्र निर्माण में त्रिभाषा सूत्र का योगदान

क्षेत्र	योगदान
राष्ट्रीय एकता	भाषायी सद्भाव, प्रादेशिक अस्मिता का सम्मान
ज्ञान अर्थव्यवस्था	बहुभाषिक कार्यबल, वैश्विक प्रतिस्पर्धात्मकता
डिजिटल व समावेशी शिक्षा	भारतीय भाषाओं में सामग्री से व्यापक पहुँच
सांस्कृतिक संरक्षण	भाषायी विरासत तथा शास्त्रीय ज्ञान का संरक्षण

किसी भी दूरदर्शी नीति के क्रियान्वयन में चुनौतियाँ स्वाभाविक हैं, और त्रिभाषा सूत्र भी इसका अपवाद नहीं है। सबसे बड़ी चुनौती प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता है, क्योंकि तीन भाषाओं का प्रभावी शिक्षण करने के लिए ऐसे शिक्षकों की आवश्यकता होती है जो न केवल भाषा में दक्ष हों, बल्कि बहुभाषिक शिक्षण–शास्त्र की समझ भी रखते हों। ग्रामीण तथा दूरस्थ क्षेत्रों में ऐसे प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी एक व्यावहारिक बाधा के रूप में सामने आती है। इसके अतिरिक्त, कुछ राज्यों में त्रिभाषा सूत्र को लेकर राजनीतिक तथा भावनात्मक संवेदनशीलताएँ भी बनी हुई हैं, जो कभी–कभी नीति के तटस्थ एवं शैक्षिक स्वरूप पर हावी हो जाती हैं।

महत्वपूर्ण तथ्य

भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण पाठ्यपुस्तकों, शब्दकोशों तथा तकनीकी शब्दावली के विकास की गति अब तक अपेक्षाकृत धीमी रही है। जब तक विज्ञान, गणित तथा तकनीकी विषयों की सामग्री भारतीय भाषाओं में सहजता से उपलब्ध नहीं होगी, तब तक त्रिभाषा सूत्र की पूर्ण क्षमता का उपयोग कठिन बना रहेगा।

इन चुनौतियों के बावजूद संभावनाओं का फलक अत्यंत व्यापक है। सूचना प्रौद्योगिकी तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित अनुवाद उपकरणों के विकास से भारतीय भाषाओं में सामग्री तैयार करने की प्रक्रिया अब पहले से कहीं अधिक सुगम हो चली है। एनसीईआरटी तथा अन्य शैक्षिक संस्थाएँ निरंतर नई पाठ्यपुस्तकों तथा शिक्षक–प्रशिक्षण मॉड्यूलों का विकास कर रही हैं, जिससे धीरे–धीरे यह अंतर पाटा जा सकेगा। इसके साथ ही, समावेशी शिक्षा के दृष्टिकोण से त्रिभाषा सूत्र दिव्यांग विद्यार्थियों तथा सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से वंचित वर्गों के विद्यार्थियों के लिए भी लाभकारी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने से उन्हें विषयवस्तु समझने में अतिरिक्त सहायता मिलती है।

भविष्य की दिशा स्पष्ट है, राज्यों, शिक्षकों, अभिभावकों तथा नीति–निर्माताओं को मिलकर त्रिभाषा सूत्र के क्रियान्वयन को अधिक संवेदनशील, लचीला तथा गुणवत्तापूर्ण बनाना होगा। इसके लिए शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रमों में बहुभाषिक शिक्षण–शास्त्र को अनिवार्य रूप से सम्मिलित करना होगा, भारतीय भाषाओं में डिजिटल तथा मुद्रित शैक्षिक सामग्री के निर्माण में निवेश बढ़ाना होगा, और सबसे महत्वपूर्ण, इस सूत्र को राजनीतिक विवाद के बजाय शैक्षिक आवश्यकता के रूप में देखने की मानसिकता विकसित करनी होगी। जब यह दृष्टिकोण व्यापक रूप से अपनाया जाएगा, तभी त्रिभाषा सूत्र अपनी संपूर्ण क्षमता के साथ भारतीय शिक्षा–व्यवस्था को समृद्ध कर सकेगा।

9. निष्कर्ष

त्रिभाषा सूत्र भारत की शिक्षा–नीति में केवल एक प्रशासनिक व्यवस्था नहीं, बल्कि एक सुविचारित दार्शनिक दृष्टिकोण है, जो मातृभाषा की गहराई, राष्ट्रभाषा की एकता और अतिरिक्त भाषा की वैश्विक दृष्टि को एक साथ पिरोने का प्रयास करता है। इस लेख में हमने देखा कि किस प्रकार यह सूत्र कोठारी आयोग की सिफारिशों से लेकर राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 तक की यात्रा में निरंतर परिष्कृत होता रहा है, और किस प्रकार यह विद्यार्थियों के बौद्धिक, भावनात्मक तथा सामाजिक विकास में एक वैज्ञानिक आधार प्रदान करता है। महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर तथा डॉ० अब्दुल कलाम जैसे महापुरुषों के विचार और जिम कमिंस तथा एलन बायलिस्टॉक जैसे शोधकर्ताओं के निष्कर्ष, दोनों ही इस बात की पुष्टि करते हैं कि मातृभाषा में सुदृढ़ नींव के साथ बहुभाषिकता की ओर बढ़ना विद्यार्थी के सर्वांगीण विकास के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मार्ग है।

अंततः त्रिभाषा सूत्र केवल कक्षा–कक्ष तक सीमित रहने वाला विषय नहीं है, यह भारत के सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक समरसता और आर्थिक भविष्य से गहराई से जुड़ा हुआ है। जब हमारे विद्यार्थी अपनी मातृभाषा में गौरव का अनुभव करते हुए, राष्ट्रभाषा के माध्यम से एकता का भाव संजोते हुए, और किसी अतिरिक्त भाषा के माध्यम से वैश्विक दृष्टि प्राप्त करते हुए आगे बढ़ेंगे, तभी विकसित भारत 2047 की परिकल्पना सच्चे अर्थों में साकार हो सकेगी। यह नीति केवल भाषाओं की संख्या बढ़ाने की परियोजना नहीं, अपितु प्रत्येक भारतीय बालक को उसकी जड़ों से जोड़ते हुए उसे संपूर्ण विश्व के लिए तैयार करने की एक सुदूरगामी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता है।

संदर्भ सूची (References)

1. भारत सरकार, शिक्षा मंत्रालय. (2020). राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020. https://www.education.gov.in/sites/upload–files/mhrd/files/NEP–Final–English–0-pdf

2. Press Information Bureau] Government of India-National Education Policy 2020 (Official TeÛt)-https://static-pib-gov-in/ Write ReadData/userfiles/NEP&Final–English–0-pdf

3. NCERT- National Policy on Education (NEP) 2020 — Official Resources- https://ncert-nic-in/nep-php\ln=en

4. Ministry of Education] Government of India-National Education Policy 2020- https://education-gov-in/en/national–education–policy–2020–0

5. PRS Legislative Research- (2020). Report Summary: National Education Policy 2020-https://prsindi.org/policy/report&summaries/ra–shha–ta&ra–ya–sha–ka–shha–na–ta–2020–399

6. Wikipedia contributors- National Education Policy 2020- Wikipedia The Free Encyclopedia-https://en-wikipedia-org/wiki/National–Education/Policy/2020

7. The EÛam Pillar- कोठारी आयोग (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग) 1964–66. https://theeÛampillar.com/kothari/commission/national/education/commission/1964–66/

8. Praveen Education राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) 1964–66. https://www. praveen education. com/2024/02/ rashtreey–shiksha– aayog.html

9. Sarkari Diary- dksBkjh vk;ksx (1964&1966): उद्देश्य एवं सिफारिशें- https://sarkaridiary.in/

10. Cummins, J- (1979)- Linguistic Interdependence and the Educational Development of Bilingual Children- Review of Educational Research, 49(2), 222–251. https://journals.sagepub.com/doi/10.3102/00346543049002222

11. Cummins, J- (1981)- Empirical and Theoretical Underpinnings of Bilingual Education- Journal of Education] 163(1)-https://journals-sagepub.com/doi/10-1177/002205748116300104

12. Cummins, J- (1979)- Cognitive/Academic Language Proficiency, Linguistic Interdependence, the Optimal Age Question and Some Other Matters- Working Papers on Bilingualism, No-19- https://www-coli-uni–saarland-de/~masta/Ws15/ Cummins 1979.pdf

13. Bialystok, E- (2011)- Reshaping the Mind: The Benefits of Bilingualism- Canadian Journal of EÛperimental Psychology- https://pmc-ncbi-nlm-nih-gov/articles/PMC4341987/

14. Bialystok, E-, Craik, F- I- M-, Green, D- W-, – Gollan, T- H- (2009)- Bilingual Minds-Psychological Science in the Public Interest-https://journals.sagepub.com/doi/10-1177/1529100610387084

15. Bialystok, E-, et al- (2022)- How does bilingualism modify cognitive function\ Attention to the mechanism-Psychonomic Bulletin & Review-https://pubmed. ncbi. nlm.nih.gov/ 35091993/

16- Chung–Fat/Yim] A-, Himel, C-, / Bialystok, E. (2019). The impact of bilingualism on eÛecutive function in adolescents-International Journal of Bilingualism-https://journals-sagepub.com/doi/abs/10-1177/1367006918781059

17. Wikipedia contributors- Ellen Bialystok-Wikipedia, The Free Encyclopedia-https:// en-wikipedia.org/wiki/Ellen–Bialystok

18. UNESCO- ¼2003½- Education in a Multilingual World: UNESCO Education

Position Paper-Paris: UNESCO- https://unesdoc-unesco.org/ark:/48 223/pf 0000 130800

19. UNESCO- (2025)- Languages Matter: Global Guidance on Multilingual Education- https://www-unesco-org/en/articles/new–unesco–report–calls–multilingual–education–unlock–learning–and–inclusion

20. UNESCO- Why Mother Language–Based Education is Essential- https://www.unesco. org/en/articles/why–mother– language–based–education – essential

21. हिन्दवी (Hindwi). मातृभाषा के विषय पर उद्धरण महात्मा गांधी. https://www.hindwi-org/tags/mother– language / quotes

22. विकिपीडिया. मातृभाषा. https://hi-wikipedia-org/wiki/मातृभाषा

23. पांचजन्य. बच्चों को संस्कारित करती है मातृभाषा. https://panchjanya-com/2021/08/01/183258/bharat/delhi/mother–tongue–inculcates– children– national–education–policy/

24. पांचजन्य. अंतरराष्ट्रीय मातृभाषा दिवस पर विशेषः मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा का महत्व. https://panchjanya-com/2023/02/21/267602/bharat/importance–of–primary–education–in–mother–tongue/

25. MP GK PDF- टैगोर के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य. https://www.mpgkpdf.com/2021/11/aims–of–education–tagore-html

26. IASbook- महात्मा गांधी तथा रवींद्रनाथ टैगोर के विचार : शिक्षा. https://www.iasbook-com/hindi/mahatma–gandhi/evam/ravindra/nath–tegor/ki/shiksha/

27. Samvad- मातृभाषाः अपना गौरव अपनी पहचान (डॉ० अब्दुल कलाम के कथन सहित). https://www.samvad.पद/Encyc/2021/2/21/matrabhasha–वनत–चतide–and–identity-html

28. IMPRI — Impact and Policy Research Institute- National Education Policy 2020 — Overview- https://www-impriindia-com/insights/policy–update/education–policy/

29. Research Gate- An Overview of India's National Education Policy 2020: Key Features and the Way Forward- https://www-researchgate. net/publication /373841542

30. AIJRA. राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 और भारतीय भाषाएँ. https://www.ijcm`2015.बव/पिसम/2024/परतं–अवस–9–पेनम–1/परतं–अवस–9–पेनम–1–40.pdf

31. गुरुपंच, कुबेर सिंह. (2023). महात्मा गांधी जी के शिक्षा संबंधी विचार का विश्लेषण. International Journal of Advances in Social Sciences, 11(4), 226–229- https://ijassonline.in/AbstractView-aspÛ\PID=2023–11–4–5

32. बेड हिंदी आर्टिकल्स. महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन. https://bedhindiarticles-blogspot-com/2022/06/educational–philosophy–of–mahatma–gandhi-html

33. NEWSWING. रविंद्र नाथ टैगोर का भारतीय शिक्षा दर्शन.https:// newswing. com/ indian–education – philosophy –of–ravindra– nath – tagore /252330/

34. Education Mirror- रवींद्रनाथ टैगोरः प्रकृति और सामाजिक संदर्भ से दूर न हो शिक्षा https://educationmirror.org/ 2015/05/09/rabindranath– tagore– education – philosophy/

35. IJMRA- रविन्द्र नाथ टैगोर के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का अध्ययन. https://www.ijmra-us/project%20doc/2016/IJRSS–JUNE2016/IJRSSJune2016RamaPG-pdf

डॉ. सुबोध कुमार
सहायक प्राध्यापक,
आर.टी.सी. बीएड महाविद्यालय,
राँची, झारखंड।

42

LEGAL CHALLENGES AND CONSTITUTIONAL SAFEGUARDS RELATING TO MENTAL HEALTH RIGHTS IN INDIA

Sudeep Sharma, Dr. Archana Vashishth

Abstract

Whether the Constitution of India actually protects people with mental illness has less to do with what Parliament wrote and more to do with whether the State is prepared to fund, staff, and enforce it. On paper, the Mental Healthcare Act, 2017 ('MHCA') goes a long way: it creates a justiciable right to mental healthcare, presumes legal capacity, moves attempted suicide out of criminal law and into a care framework, and sets up Mental Health Review Boards ('MHRBs') as district-level bodies to protect patients' rights. Yet the Rajya Sabha's 148th Report, published in August 2023 ('148th Report'), found that five years after the Act came into force, 'much work' still remained before it could be effectively implemented. India has 0.75 psychiatrists for every 100,000 people, against a WHO benchmark of 3, and closing that gap at current training rates could take close to three decades. MHRBs have not been constituted in most states, so the Act's central rights-review mechanism is unavailable to most patients, and the NHRC has documented widespread non-compliance in government mental hospitals. This article examines India's constitutional and statutory mental health rights framework and explains why its legal ambitions remain so distant from institutional reality.

Keywords: *Mental Healthcare Act, 2017; Article 21; UNCRPD; Mental Health Review Boards; Advance Directives; Dignity; Right to Mental Health; Constitutional Safeguards; Treatment Gap.*

I. INTRODUCTION

India's mental health law has a long habit of promising more than its institutions can deliver. The Indian Lunacy Act, 1912, treated mental disorder mainly as a matter of social danger. The Mental Health Act, 1987, improved on this procedure but remained essentially custodial in character, and critics pointed out early on that its human rights protections were thin and its procedures cumbersome. The MHCA, which came into force on 29 May 2018, was meant to break from that history altogether. India had ratified the UNCRPD back in October 2007, taking on obligations the existing law simply could not meet, and the MHCA was Parliament's attempt to close that gap. It created an enforceable right to government-funded mental healthcare, introduced advance directives and nominated representatives, and gave MHRBs the job of independently reviewing involuntary admission. The scale of the underlying problem is not really in dispute. NIMHANS' National Mental Health Survey of 2015-16 found that roughly 150 million Indians needed some form of active mental health intervention, with a treatment gap running between 70 and 92 percent depending on the disorder, covering everything from common and severe mental disorder to psychosis, bipolar affective disorder, and substance use. Six years after the MHCA took effect, the 148th Report, drawing on the WHO's World Mental Health Report 2022, placed India 56th out of 64 countries on the Mental Health Quotient scale and recorded that 30.1 percent of the population counted as mentally distressed. These numbers say something beyond public health. They point to a persistent gap between the rights the MHCA promises on paper and the infrastructure that is actually there to deliver them. The statute exists; the implementation does not match it. This article looks at why that gap has proved so durable, what the Constitution requires in response, and what reforms might begin to close it, drawing on legislative texts, parliamentary reports, clinical scholarship, and case law.

II. CONSTITUTIONAL FRAMEWORK: ARTICLES 14, 19, AND 21

A. Article 14: Substantive Equality

The Supreme Court has read Article 14 as demanding substantive equality rather than the formal, identical-treatment kind. That distinction matters a great deal here, because people with mental illness face diagnostic barriers, stigma, and dependence on a public system that often fails them in ways that other patients simply do not encounter. Section 21(4) of the MHCA statutorily expresses this idea by requiring insurers to treat mental illness the same as physical illness. However, it is the State's own record that truly tests Article 14. The NHRC's finding, recorded in the 148th Report, that government mental hospitals continue to suffer serious infrastructure deficiencies and widespread non-compliance is not just an administrative failing. The patients who rely on these hospitals are, for the most part,

people with no access to private care, so when the public system breaks down, the equality guarantee breaks down with it.

B. Article 19: Proportionality and Involuntary Admission

Involuntary psychiatric admission restricts movement under Articles 19(1)(d) and (e) and, at the same time, engages the liberty guarantee in Article 21. Puttaswamy made proportionality a constitutional requirement for measures like involuntary admission: there has to be a valid aim, the means chosen have to be the least intrusive available, and the burden imposed has to be proportionate to what is achieved. Under the MHCA, Sections 89 and 90 require MHRB review once 'supported admission' extends beyond 30 days, intended to check proportionality. The 148th Report found MHRBs unconstituted across most states, so admissions in large parts of the country proceed without any independent review of the physician's assessment, the continuing need for admission, or the treatment provided. That is a real constitutional problem, not a technical one.

C. Article 21: Dignity, Privacy, Autonomy, and the Right to Mental Health

The Supreme Court's Article 21 jurisprudence has not moved in a straight line, but the overall direction is clear enough. In Francis Coralie Mullin, a case about the conditions of a foreign national's detention, the Court held that the right to life includes the right to live with basic human dignity. A decade later, Consumer Education and Research Centre brought the right to healthcare within Article 21 as part of that same dignity guarantee. The Court has not gone as far as recognising a fully developed, standalone right to mental healthcare, but the reasoning behind these cases points that way: 150 million people needing active intervention, with a treatment gap running as high as 92 percent, looks very much like the deprivation of life that Article 21 exists to prevent. And the workforce numbers behind that gap are genuinely alarming. India has 0.75 psychiatrists per 100,000 people nationally, fewer than 0.5 per two million in rural areas, and only 0.07 psychologists, 0.07 social workers, and 0.12 trained mental health nurses per 100,000, all well below global norms. That shortage directly leads to worse access, weaker continuity of care, and later diagnosis. Puttaswamy added something else worth noting: Justice Chandrachud's opinion recognised 'mental integrity' as part of the right to privacy, meaning individuals have a constitutionally protected interest in keeping their psychological processes, treatment history, and diagnostic information away from anyone they have not authorised to see it. That principle covers everything from non-consensual medication to the unregulated digital platforms now collecting sensitive mental health data. Common Cause saw a Constitution Bench uphold advance medical directives, confirming that a competent patient's treatment decisions are constitutionally protected against being overridden by the State or medical institutions, on which Section 5 of the MHCA stands. And Sheela Barse, as far back as 1986, dealt with what happens when mentally ill people end up in the criminal justice system, sometimes held in prison without psychiatric care and sometimes detained well past their lawful sentence. The Court's mandatory directions for their transfer and review established that Article 21 creates real, enforceable obligations here, not just aspirational ones, obligations that have had to be relitigated again and again in the decades since.

III. THE MHCA, 2017: RIGHTS-BASED ARCHITECTURE AND ITS FAULT LINES

The MHCA is built on an assumption that had never been made explicit in Indian law before: a person with mental illness can make their own decisions unless a competent court says otherwise (Section 4). Section 3 goes further, prohibiting a diagnosis of mental illness based simply on non-conformity with social, political, cultural, racial, or religious norms, which directly addresses the old use of psychiatric labels as a tool of social control. Section 18(1) creates an enforceable right to government mental healthcare, subject to the affordability, quality, and accessibility standards set out in Section 18(2). Section 115 treats attempted suicide as evidence of severe stress rather than grounds for prosecution, and Chapter V lays out a broader catalogue of rights covering community living, freedom from degrading treatment, non-discrimination, and confidentiality. Duffy and Kelly went so far as to call the MHCA's enactment 'one of the most dramatic acts of legislative commitment to mental health in the world', putting India among a small group of countries with a population-wide justiciable right to

mental healthcare. That is a fair assessment, and it should not be understated. But the Act has real problems too. The definition of 'mental illness' in Section 2(s), which requires a 'substantial disorder' that 'grossly impairs' judgment, has drawn criticism for being too narrow. Chadda points out that people with depression, anxiety, or psychotic illness who still manage to function in day-to-day life may fall entirely outside the Act's protection. And Sections 89 and 90 allow admission without consent based solely on a treating physician's assessment, with no immediate independent check, something the UNCRPD Committee's General Comment No. 1 (2014) treats as incompatible with CRPD Article 12, an obligation India signed up to on ratification. Whether the Act's decision to keep this form of supervised involuntary admission can be defended against that tension is still an open question.

IV. LEGAL CHALLENGES IN IMPLEMENTATION

A. The Workforce Crisis and the Enforcement Gap

Start with the numbers, because no statute can fix these on its own. India has 0.75 psychiatrists per 100,000 people against a WHO recommendation of 3, and trains only about 1,000 new psychiatrists a year against roughly 9,000 currently in practice. The 148th Report does the arithmetic: closing the gap to the WHO benchmark of 36,000 would take about 27 years at the current rate, and that assumes zero attrition. The Committee also flagged something less obvious, that discontinuing M.Phil. courses in clinical psychology under the New Education Policy has tightened the supply of trained psychologists at exactly the moment implementation needs more of them. The budget tells a similar story. The Tertiary Care Programme was cut by 42 percent, from Rs. 500 crore in 2022-23 to Rs. 289.81 crore in 2023-24. NIMHANS, India's leading mental health institution, received Rs. 721 crore that year; its American counterpart received roughly Rs. 20,000 crore. That gap says something about political priority, not just economic disparity.

B. Advance Directives: Innovative in Principle, Inaccessible in Practice

Section 5 lets a mentally competent person set out, in advance, how they want to be treated if they later develop a mental illness, and appoint someone to help make decisions on their behalf. It is a direct implementation of the supported decision-making model in UNCRPD Article 12 and gives practical effect to the autonomy Common Cause recognised. The catch is Section 11, which requires advance directives to be registered before an MHRB, something that simply cannot happen where no MHRB exists. The 148th Report was fairly candid about this, pointing to low awareness among healthcare professionals and the public as a key obstacle, and there has been no documented government campaign to change that. Section 9(4) compounds the problem by allowing treating physicians to set aside a directive based on their own clinical judgment, so, outside a district with a functioning MHRB, the safeguard offers patients very little in practice.

C. Decriminalisation of Attempted Suicide: Incomplete Reform

Section 115 was a significant political and legislative choice as it replaced criminal prosecution for attempted suicide with a statutory presumption of severe stress and a duty on the State to provide care rather than punishment. The Law Commission had recommended repealing Section 309 of the Indian Penal Code as far back as 2008. Parliament, however, did not repeal Section 309 through the MHCA, and the two provisions sat awkwardly alongside each other until Section 309 was finally omitted under the Bharatiya Nyaya Sanhita. In the meantime, the 148th Report found that police were often simply unaware of the statutory shift and continued registering cases under Section 309 against people who had attempted suicide. The NCRB recorded 164,033 suicides in 2021, up from 129,887 in 2017, a rise that says something both about the depth of the crisis and about how far enforcement lagged behind what Parliament intended.

D. Prison Mental Healthcare and the Legacy of Sheela Barse

The NCRB's Prison Statistics India 2021 counted 9,180 inmates identified as mentally ill, about 1.7 percent of 5.54 lakh prisoners, and that is almost certainly an undercount given how limited diagnostic capacity is inside prisons and how much pressure inmates face to conceal illness. What the law requires here is not complicated. Section 103 mandates transferring a mentally ill prisoner to a facility with a psychiatric ward, Sections 73 and 74 give MHRBs the power to inspect prisons, and Section 31(2) requires prison medical

officers to receive basic psychiatric training. These largely repeat what Sheela Barse required in 1986. Nearly forty years on, the 148th Report is still recording rising prison deaths and continuing failures in custodial mental healthcare, which suggests this was never really a legislative problem. The institutions were never built, and the officers were never trained.

E. Stigma, Insurance Discrimination, and the Anti-Discrimination Gap

The NMHS finding that 70 to 92 percent of people with mental disorders get no treatment at all is, in large part, a story about stigma operating long before any legal protection comes into play. Section 21 of the MHCA addresses the institutional side of this, and Section 21(4) in particular requires insurers to cover mental illness on the same terms as physical illness. IRDAI's Master Circular of May 2024 directs compliance with this, and Ayushman Bharat PM-JAY now covers 22 procedures under its Mental Disorder Speciality. Even so, insurance design still centres on in-patient procedures, while most mental healthcare is outpatient counselling and management, which falls outside that model. Formal non-discrimination and a coverage structure that still excludes much of what patients actually need end up coexisting. A mechanism that tracks what is actually being covered, and what is being denied, would do more good than the circular by itself.

V. JUDICIAL TRENDS AND EMERGING CONSTITUTIONAL JURISPRUDENCE

Indian courts have tended to reach for general constitutional principles here rather than any mental-health-specific doctrine, so the MHCA has to be read alongside the wider case law rather than in isolation. Maneka Gandhi established that any procedure depriving someone of liberty has to be just, fair, and reasonable, a standard that bears directly on supported admission: that kind of deprivation cannot be sustained without effective MHRB oversight. The proportionality standard from Puttaswamy, later applied in Anuradha Bhasin, gives courts the doctrinal tool to test whether any particular instance of involuntary detention or treatment can be justified. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 works alongside the MHCA as a second vehicle for implementing the UNCRPD, extending anti-discrimination and healthcare-access protections to people with psychosocial disabilities, though coordination between the two statutes remains far from perfect, and it is not always clear which regime takes precedence. Paschim Banga Khet Mazdoor Samity offers a useful model of what comprehensive judicial enforcement could look like: there, the Court translated the Article 21 right to emergency care into specific directions on hospital infrastructure and service delivery. A similarly framed petition could plausibly ask for comparable directions here, timelines for constituting MHRBs, minimum psychiatrist-to-population ratios, and infrastructure standards for government hospitals. The legal groundwork exists. What is missing is the petition.

VI. RECOMMENDATIONS

First, constituting and operationalising MHRBs in every state needs to be treated as a statutory and constitutional priority, not an administrative afterthought. The Ministry of Health and Family Welfare should put in place a public, time-bound framework for fully functional MHRBs in every district, with regular compliance reporting to Parliament. The 148th Report's proposal for a real-time implementation tracker deserves to be treated as urgent rather than aspirational. Without functioning MHRBs, the MHCA's rights architecture is largely unenforceable, and the safeguards of procedural fairness and independent review that Maneka Gandhi and Puttaswamy require remain, in practice, theoretical.

Second, Section 115's presumption of severe stress needs a crisis-response framework to back it up, because the protection is weak on paper if there are no operational protocols behind it. The Union and State Governments should establish mandatory Mental Health Crisis Intervention Protocols across police forces, district hospitals, emergency services, prisons, and public healthcare institutions, requiring immediate psychiatric assessment by a qualified professional, non-custodial handling except where safety strictly demands otherwise, and documented rehabilitation steps. District-level crisis response teams made up of psychologists, psychiatrists, social workers, and trained personnel should be built into public health and emergency systems, because without that kind of real-time support, Section 115 risks staying a statement of intent rather than an operating rule.

Third, the workforce crisis will not be fixed by half

measures. The Manpower Development Scheme should be continued and substantially expanded, particularly given the roughly 42 percent cut to the Tertiary Care Programme allocation for 2023-24, which pulled policy in the wrong direction entirely. What is needed is a long-term national workforce plan with state-wise targets for psychiatrists, clinical psychologists, psychiatric social workers, and mental health nurses, developed together with bodies like the Indian Psychiatric Society and the Rehabilitation Council of India. Without trained people to deliver on it, the rights the MHCA guarantees will keep being difficult to enforce.

Fourth, Sections 23 and 24 should be brought in line with the Digital Personal Data Protection Act, 2023. Tele-MANAS had handled 19.67 lakh calls by March 2025 and is still growing, and every one of those calls generates sensitive health data under confidentiality provisions written well before digital mental healthcare became a serious presence. Data minimisation, storage limits, breach notification, and independent audit requirements need to be spelled out, either through an amendment to the MHCA or through DPDPA rules that deal specifically with mental health data.

Fifth, IRDAI's insurance circular needs enforcement teeth behind it: a binding direction against excluding attempted-suicide and self-injury treatment from policies, and published, insurer-by-insurer data on claims submitted, settled, and rejected for mental health procedures.

VII. CONCLUSION

There is a pattern that keeps repeating in India's mental health governance, and this article has tried to trace it honestly. A serious legislative commitment gets made, grounded in constitutional values and international obligations, and then institutional inertia keeps it from actually working. The 1987 Act was supposed to improve on the 1912 Lunacy Act. The 2017 MHCA was supposed to improve on 1987. Each generation genuinely does represent progress, and the constitutional framework built through Puttaswamy, Common Cause, Sheela Barse, and Maneka Gandhi is fully capable of grounding enforceable rights to dignified mental healthcare. India ratified the UNCRPD. None of that counts for nothing. But the 148th Report makes clear that progressive legislation and weak implementation have coexisted for too long now to call this merely transitional. The NHRC found government hospitals still non-compliant with the MHCA. MHRBs remain non-functional in most districts. At the current pace of workforce expansion, the psychiatrist deficit is unlikely to close for close to thirty years. Suicide rates keep rising even though Section 115 was meant to move the legal response from punishment to care, and police still file charges for conduct Parliament decided, back in 2017, should not be treated as a crime at all. The result is a constitutional contradiction: rights exist in the text and disappear at the point of enforcement. Seervi and Sharma, writing from clinical practice in government hospitals in Rajasthan, described what practitioners go through, caught between what the law requires and what the system actually allows, as 'systematic moral injury'. That phrase captures something the legal analysis alone cannot: the cost of non-implementation falls on patients who never chose their illness, on families trying to navigate a system that is meant to help them but does not give them the resources to do so, and on clinicians who went into the profession to treat people and find that they cannot do it properly. Constitutional safeguards are only as real as the institutions that enforce them. Building those institutions is no longer a legal problem. It is a question of political will, and of whether India is actually willing to honour an obligation it has already accepted, in writing, in statute, and before the international community.

References

Statutes

1. The Constitution of India, arts. 14, 19(1)(d), 19(1)(e), 21, 39A, 41, 47.
2. The Mental Healthcare Act, 2017 (Act 10 of 2017), ss. 2(s), 3, 4, 5, 9(4), 11, 14, 18, 19, 20, 21, 23, 24, 25, 26, 31, 33, 45, 73, 74, 89, 90, 103, 115.
3. The Mental Health Act, 1987 (Act 14 of 1987) [repealed].
4. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 (Act 49 of 2016), ss. 2(s), 3, 25, 26.
5. The Digital Personal Data Protection Act, 2023 (Act 22 of 2023), ss. 4, 7, 9, 16, 17.
6. The Information Technology Act, 2000 (Act 21 of 2000), s. 43A.
7. The Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (Act 45 of 2023), s. 309.

8. The Information Technology (Reasonable Security Practices and Procedures and Sensitive Personal Data or Information) Rules, 2011, r. 3.
9. The United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, 2006, GA Res 61/106, arts. 12, 19.

Case Law

10. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1.
11. Common Cause (A Registered Society) v. Union of India, (2018) 5 SCC 1.
12. Sheela Barse v. Union of India, (1986) 3 SCC 596.
13. Maneka Gandhi v. Union of India, (1978) 1 SCC 248.
14. Francis Coralie Mullin v. Administrator, Union Territory of Delhi, (1981) 1 SCC 608.
15. Consumer Education and Research Centre v. Union of India, (1995) 3 SCC 42.
16. Anuradha Bhasin v. Union of India, (2020) 3 SCC 637.
17. Paschim Banga Khet Mazdoor Samity v. State of West Bengal, (1996) 4 SCC 37.
18. Navtej Singh Johar v. Union of India, (2018) 10 SCC 1.
19. State of West Bengal v. Anwar Ali Sarkar, AIR 1952 SC 75.
20. Shafin Jahan v. Asokan K.M., (2018) 16 SCC 368.

Books and Reports

21. Soumitra Pathare and Sachin Nair, "Implementing the Mental Healthcare Act 2017: Challenges and the Way Forward", in Narendra Kala (ed.), Mental Health in India: A Public Health Perspective (SAGE Publications, New Delhi, 2020).
22. Justice A.P. Shah (Chair), Report of the Group of Experts on Privacy (Planning Commission of India, New Delhi, 2012).
23. Law Commission of India, "210th Report on Humanization and Decriminalization of Attempt to Suicide" (Law Commission of India, New Delhi, 2008).
24. K. Srinath Reddy et al., India: Health of the Nation's States, The India State-Level Disease Burden Initiative (ICMR, New Delhi, 2017).

Journal Articles

25. Rakesh K. Chadda, "Influence of the New Mental Health Legislation in India" 16 *BJPsych International* 20 (2019).
26. Richard M. Duffy and Brendan D. Kelly, "The Right to Mental Healthcare: India Moves Forward" 214 *British Journal of Psychiatry* 59 (2019).
27. N.A. Uvais and Kaustubh Joag, "Perceptions Regarding the Indian Mental Healthcare Act 2017 Among Psychiatrists: Review and Critical Appraisal in the Light of CRPD Guidelines" 11 *Cambridge Prisms: Global Mental Health* e39 (2024).
28. Prithivi RAJ and Jatin Patil, "Mental Health Laws in India: A Critical Analysis" 6(S1) *International Journal of Health Sciences* 9775 (2022).
29. Ashok Seervi and Indraja Sharma, "Between Law and Reality: Moral Injury in Resource-Limited Psychiatry" *BJPsych International*, doi:10.1192/bji.2025.10090 (2026).
30. Purbita Das, "A Review Article on the Mental Health Act in India: A Legal and Societal Evolution" 20(3) *The Bioscan* 845 (2025).
31. Manisha Wadhwa, "Digital Mental Health Initiatives in India" ICT India Working Paper No. 60 (Columbia University, New York, 2021).
32. C.L. Narayan, M. Narayan and D. Shikha, "The Ongoing Process of Amendments in MHA-87 and PWD Act-95 and Their Implications on Mental Health Care" 53 *Indian Journal of Psychiatry* 343 (2011).
33. Pratiksha Baxi, "Mental Health Law and Rights in India" 10 *Socio-Legal Review* 44 (2019).
34. Vikram Patel, "The Future of Psychiatry in Low- and Middle-Income Countries" 69 *Psychological Medicine* 1 (2012).
35. Lawrence O. Gostin et al., "The Human Right to Health: A Legal and Moral Framework" 47

Journal of Law, Medicine and Ethics 196 (2019).

Policy Documents and Parliamentary Reports

36. Department-Related Parliamentary Standing Committee on Health and Family Welfare, Rajya Sabha, "One Hundred Forty-Eighth Report on Mental Health Care and its Management in Contemporary Times" (Rajya Sabha Secretariat, New Delhi, Aug. 2023).
37. Ministry of Health and Family Welfare, *National Mental Health Policy of India 2014* (Government of India, New Delhi, 2014).
38. Ministry of Health and Family Welfare, *National Health Policy 2017* (Government of India, New Delhi, 2017).
39. National Human Rights Commission, *Advisory on Mental Health* (NHRC, New Delhi, 2023).
40. National Crime Records Bureau, *Accidental Deaths and Suicides in India 2021* (Ministry of Home Affairs, New Delhi, 2022).
41. National Crime Records Bureau, *Prison Statistics India 2021* (Ministry of Home Affairs, New Delhi, 2022).
42. World Health Organization, *Mental Health Atlas 2020* (WHO, Geneva, 2021).
43. World Health Organization, *World Mental Health Report: Transforming Mental Health for All* (WHO, Geneva, 2022).
44. Press Information Bureau, "Steps Taken on Mental Health" (Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, Mar. 25, 2025).
45. Press Information Bureau, "Understanding Mental Health: Global Perspectives and Indian Initiatives" (Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, Nov. 9, 2025).
46. Insurance Regulatory and Development Authority of India, "Master Circular on Health Insurance Business" (IRDAI, Hyderabad, May 29, 2024).
47. UN Committee on the Rights of Persons with Disabilities, "General Comment No. 1 (2014) on Article 12: Equal Recognition before the Law", UN Doc CRPD/C/GC/1 (May 19, 2014).

1. Prithivi RAJ and Jatin Patil, "Mental Health Laws in India: A Critical Analysis" 6(S1) *International Journal of Health Sciences* 9775, 9778 (2022).
2. Department-Related Parliamentary Standing Committee on Health and Family Welfare, Rajya Sabha, "One Hundred Forty-Eighth Report on Mental Health Care and its Management in Contemporary Times" para 1.10 (Rajya Sabha Secretariat, New Delhi, 2023) [hereinafter 148th Report].
3. 148th Report, supra note 2, para 1.14; World Health Organization, *World Mental Health Report: Transforming Mental Health for All* (WHO, Geneva, 2022).
4. State of West Bengal v. Anwar Ali Sarkar, AIR 1952 SC 75; Navtej Singh Johar v. Union of India, (2018) 10 SCC 1.
5. Justice K.S. Puttaswamy (Retd.) v. Union of India, (2017) 10 SCC 1, para 302 (Chandrachud J.) [hereinafter Puttaswamy].
6. 148th Report, supra note 2, para 2.19.
7. Francis Coralie Mullin v. Administrator, Union Territory of Delhi, (1981) 1 SCC 608, 619.
8. Consumer Education and Research Centre v. Union of India, (1995) 3 SCC 42, 65.
9. Raviteja Innamuri, *India's Mental Health Crisis*, Times of India Reader's Blog, Apr. 5, 2019, available at: <https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/soulsurgery/mental-health-stigma-2883/> last visited on May 21, 2026.
10. V.S. Chauhan, Prateek Yadav, S.P. Panda and Neha Sharma, "Bridging the Chasm: Addressing Mental Health Awareness and Care Disparities in India" (2025) 81 *Medical Journal Armed Forces India* 123.
11. Puttaswamy, supra note 5, para 302 (Chandrachud J.).
12. Common Cause (A Registered Society) v. Union of India, (2018) 5 SCC 1, paras 228-234.
13. Sheela Barse v. Union of India, (1986) 3 SCC 596, para 4.
14. The Mental Healthcare Act, 2017 (Act 10 of 2017), ss. 3, 4; The United Nations Convention on the Rights of Persons with Disabilities, 2006, GA Res 61/106, art. 12; N.A. Uvais and Kaustubh Joag, "Perceptions

Regarding the Indian Mental Healthcare Act 2017 Among Psychiatrists: Review and Critical Appraisal in the Light of CRPD Guidelines" 11 *Cambridge Prisms: Global Mental Health* e39, 2 (2024).

15. The Mental Healthcare Act, 2017, s. 18(2).
16. The Mental Healthcare Act, 2017 (Act 10 of 2017), ss. 18, 19, 20, 21, 23, 115; Richard M. Duffy and Brendan D. Kelly, "The Right to Mental Healthcare: India Moves Forward" 214 *British Journal of Psychiatry* 59 (2019).
17. Rakesh K. Chadda, "Influence of the New Mental Health Legislation in India" 16 *BJPsych International* 20, 20-21 (2019); UN Committee on the Rights of Persons with Disabilities, "General Comment No. 1 (2014) on Article 12: Equal Recognition before the Law" para 26, UN Doc CRPD/C/GC/1 (May 19, 2014).
18. 148th Report, supra note 2, para 3.18
19. 148th Report, supra note 2, paras 3.17-3.20; World Health Organization, *Mental Health Atlas 2020* (WHO, Geneva, 2021).
20. 148th Report, supra note 2, paras 3.44-3.47.
21. 148th Report, supra note 2, para 2.15.
22. 148th Report, supra note 2, para 2.7; Law Commission of India, "210th Report on Humanization and Decriminalization of Attempt to Suicide" (Law Commission of India, New Delhi, 2008); The Bharatiya Nyaya Sanhita, 2023 (Act 45 of 2023), s. 309.
23. National Crime Records Bureau, *Accidental Deaths & Suicides in India 2021* (Ministry of Home Affairs, Government of India, 2022) 16.
24. National Crime Records Bureau, *Prison Statistics India 2021* para 2.21 (Ministry of Home Affairs, New Delhi, 2022); 148th Report, supra note 2, para 2.21.
25. Sheela Barse v. Union of India, (1986) 3 SCC 596; The Mental Healthcare Act, 2017 (Act 10 of 2017), ss. 31(2), 73, 74, 103.
26. Press Information Bureau, "Understanding Mental Health: Global Perspectives and Indian Initiatives" (Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, Nov. 9, 2025); 148th Report, supra note 2, para 1.10.
27. Press Information Bureau, "Steps Taken on Mental Health" (Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, Mar. 25, 2025); Insurance Regulatory and Development Authority of India, "Master Circular on Health Insurance Business" (IRDAI, Hyderabad, May 29, 2024).
28. Anuradha Bhasin v. Union of India, (2020) 3 SCC 637.
29. The Rights of Persons with Disabilities Act, 2016 (Act 49 of 2016), ss. 2(s), 3, 25, 26.
30. Paschim Banga Khet Mazdoor Samity v. State of West Bengal, (1996) 4 SCC 37.
31. Press Information Bureau, "Steps Taken on Mental Health" (Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, Mar. 25, 2025); The Digital Personal Data Protection Act, 2023 (Act 22 of 2023), ss. 4, 7, 9; The Mental Healthcare Act, 2017 (Act 10 of 2017), ss. 23, 24; Manisha Wadhwa, "Digital Mental Health Initiatives in India" *ICT India Working Paper* No. 60, 4 (Columbia University, New York, Oct. 2021).
32. Ashok Seervi and Indraja Sharma, "Between Law and Reality: Moral Injury in Resource-Limited Psychiatry" *BJPsych International*, doi:10.1192/ bji. 2025.10090, 1, 2 (2026).

***Sudeep Sharma**,
Research Scholar, School of Law,
Sushant University, Sector 55, Gurugram, Haryana

**** Dr. Archana Vashishth**
Associate Professor, School of Law,
Sushant University, Sector 55, Gurugram, Haryana

43

दसवे दशक के नाटकों में नारी–विद्रोह

डॉ0 अनु जागलान

सरांश

आजादी के उपरान्त भारतीय स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक – सभी दृष्टियों से वैधानिक स्वतन्त्रता प्राप्त हुई, जब स्त्रिया घर की चार दिवारी लांघकर व्यापक स्तर पर विभिन्न देशों में कार्य करने के लिए निकली। स्त्रियों का अधिकांश समय पुरुषों के साथ विभिन्न कार्यालयों में व्यतीत होने लगा जिसके कारण उनके सम्मुख घर – बाहर की समस्या, अधिकार की सुरक्षा से संबंधित समस्या आदि का समाधान पाश्चात्य देशों की कार्यस छियों के अनुकर द्वारा पूर्ण करने का सफल–असफल प्रयत्न रहा फलस्वरूप भारतीय पारिवारिक व्यवस्था विघटित होने लगी।

दसवे दशक के नाटकों में चित्रित कुछ नवयुवक 2 नवयुवतियाँ पारम्परिक हिन्दू धर्म की नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा पारिवारिक उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों की अवहेलना करके प्रदर्शन की प्रवृत्ति, उन्मुक्त प्रेम, सही–गलत अधिकारों के लिए हडवाले, अप्राकृतिक शारीरिक संबंध, विवाह – विच्छेद,
यादव द्रव्यों का का सेवन आदि कुप्रवृत्तियों का शिकार होकार समाज में अराजकता उत्पन्न करने में सहायक बनते दिखाई देते है।[1]

दो या अधिक संस्कृतियों की पारस्परिक टकराहट, धर्म के महत्त्व में कमी, पारिवारिक संरचना में परिवर्तन, नैतिक पतन, अपराध, निर्धनता, आर्थिक, असुरक्षा, दोषपूर्ण मनोरंजन के साधन, औद्योगीकरण, युद्ध आदि अनेक ऐसे कारण हैं जो व्यष्टि या समष्टि रूप में सामाजिक विघटन उत्पन्न करते हैं।

भारत में सामाजिक विघटन के लिए सांस्कृतिक कारण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सामाजिक मूल्यों में संघर्ष, नए मूल्यों का उदय और मूल्यों में व्यक्तियों के विश्वासों में परिवर्तन, नैतिकता में परिवर्तन, त्रुटिपूर्ण शिक्षा पद्धति तथा नयी मनोवृत्तियों और प्राचीन मूल्यों में संघर्ष की स्थिति तथा धार्मिक विश्वासों में कमी और धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन, सिनेमाव आदि जनसंचार माध्यम तथा साहित्य–सामाजिक विघटन उत्पन्न करते हैं।[2]

समाज में एक बहुत बड़े जन–भाग में महिलाओं के प्रति अस्वस्थ और रूग्ण सोच क्रियाशील थी, अब भी पारंपरिक और पिछड़े समाज में निरंतर क्रियाशील है कि महिला को बाहर नहीं निकलना चाहिए।[3] इसके पीछे पुरुष का मानना है कि घर के बाहर काम करने वाली महिला चरित्रहीन होती है।

यद्यपि धर्मवीर भारती ने बहुत पहले यह स्पष्ट कर दिया था कि मानव की सदियों पुरानी मान्यताएं बहुत तेजी के साथ ढहती चली जा रही है, उनकी चेतना के आगे नये–नये क्षितिज हर साल खुलते जा रहे हैं। तथापि पुरानी मान्यताएं अब भी चिपकी हुई हैं। अतः घर और बाहर के बीच फंसी नारियां अब भी यंत्रणाएं भोग रही हैं शारीरिक और मानसिक भी। विभिन्न – आजीविकाओं में स्त्री–पुरुषों के बीच प्रतियोगिता समानता के भाव की बजाय, कटुता को ही जन्म देती है।[4]

इस स्थिति में विद्रोह बहुत जरूरी है क्योंकि विद्रोह–चेतना महिलाओं के अस्तित्व सुरक्षा के मूलभूत प्रश्न से ही जुड़ी हुई है।त्रिशंकु में अज्ञेय लिखते हैं ष्एक विशेष सीमा तक, व्यक्ति समाज के अनुकूल अपने को गढ़ता है, स्वीकृति पाने का यह मूलय वह चुकाता है, उसके बाद जब उसका मर्म घायल हुआ जाता है तब वह आहत होकर विद्रोह या चीत्कार कर उठता है।[5]

पंडित हजारीप्रसाद द्विवेदी भारतीय सहृदय के संस्कार के विषय में कहते हैं कि ष्दीर्घकाल से भारतवर्ष इस बात में विश्वास करता रहा है कि किए का फल जरूर भोगना पड़ता है। इस जन्म में नहीं तो उसे अगले जन्म में अपने कर्म का फल भोगना पड़ेगा।..... .. इस जन्म में कुछ भी मनुष्य ने पाया है, वह पूर्वजन्म के पुण्य या पाप का परिणाम है और इस जन्म में जो पुण्य या पाप करेगा, वह भी उसको भोगना ही पड़ेगा।[6]

इतनी संकुचित सामाजिक व्यवस्था में, जहां अच्छा और बुरा, पाप और पुण्य का परिणाम हो, वहां विरोध या विद्रोह की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। लेकिन भारतीय समाज में भी व्यवस्था के प्रति प्रतिक्रिया हुई, परंपराओं के प्रति विद्रोह भाव जागा तथा अन्याय के विरुद्ध आवाज उठी। मानसिक संगठन में परिवर्तन, जिसे अज्ञेय ने श्व्यक्ति का मर्मश कहा है उसमें परिवर्तन आधुनिक काल से ही प्रारम्भ हुआ क्योंकि आस्था और विश्वास का स्थान तर्क और विवेचन ने ले लिया और सदियों से चला आ रहा धर्म का एकाधिकार समाप्त हो गया। इस तरह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल का स्वरूप ही विद्रोहात्मक है। दसवें दशक के नाटकों में भी सर्वत्र शंका, अनिश्चय, द्वंद्व और विद्रोह का होना सहज स्वाभाविक है। इन नाटकों की नारियों को यह एहसास होने लगता होने लगता है कि कुछ स्थापित मान्यताएं, परंपराएं, व्यवस्था के ढांचे उन्हें सीमाओं में बांध रहे हैं, तो वे उनके प्रति अस्वीकार का भाव प्रकट कर, उनसे निकलने के लिए प्रयत्नशील हो उठती हैं।

रामू ने कहा कि विद्रोह की प्रक्रिया, व्यक्ति से होती हुई सामूहिक रूप धारण करती है। ष्मैं विद्रोह करता हूँ, इसलिए हम अस्तित्व रखते है।ष विद्रोह व्यक्ति की स्वतन्त्रता की पहचान है,

उसकी अस्तित्वगत मजबूरी। विद्रोह की इस प्रक्रिया में व्यक्ति भीतर–ही–भीतर संघर्षरत रहता है। कभी वह समाज के अनुसार स्वयं को डालता है और अपने स्व को नकारता है और कभी श्स्वश के प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाता है। इस तरह विद्रोह के दोहरे आयाम को स्वीकारता, नकारता एक अंतर्दृद्व की स्थिति में जीता है। यह दुविधा की स्थिति विद्रोह की भूमिका में एक सक्रिय प्रयास, है। सृजनात्मक धरातल पर इस प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्तियों के श्टूटनेश और बिखरने का रूपायित किया जाता है।–

आज का हिन्दी नाट्य साहित्य में परंपरा के प्रति विद्रोह को बहुत गंभीर ढंग से अभिव्यक्त कर, नाटककार अपना दायित्व निभा रहे हैं। विद्रोह एक पेचीदा–सा सवाल बनकर आता है जिसे नाना रूपों में स्त्री पात्र पूछ रही है। समाजशास्त्रियों द्वारा स्थापित विविध कारणों के चलते, नारी मन के भीतर पनपते असंतोष को नाटककार कथानक तथा विश्लेषण के माध्यम से, क्रियात्मक रूप देते नजर आ रहे हैं।

पुरुष प्रधान समाज के खिलाफ विद्रोह, परंपरित अत्याचारों के प्रति विद्रोह, सशक्त स्वर में बुलंद करती नारियां स्थापित कर रही हैं कि ये प्रतिरोध मुख्यतः जाति, अर्थ, और लिंग पर आधारित भेदों में अवलोकनीय हैं। लिंग भेद के कारण तथा आर्थिक असुरक्षा के कारण इन्हें विविधमुखी शोषण का शिकार होना पड़ रहा है। उन्हें लगता है कि शादी के कुछ साल बाद पति अपनी पत्नी को एक काम करने वाली मशीन समझने लगते हैं। इसका बोध परंपरागत नारी को नहीं था। कइयों को लगने लगाकि अभी तक उनके साथ बलात्कार ही किया जा रहा था शारीरिक और मानसिक दोनों स्तरों पर उन्हें इससे छुटकारा चाहिए। क्योंकि उन्हें लगता है कि वे उन मन और तन की हिंसाओं से परे जा पायेंगी अकेली वे सब मुक्ति के लिए छटपटाती हैं, जिन्दगी पर अपना बदला लेना चाहती है, एक पराजित जीवन जीना नहीं चाहती हैं।

विद्रोह साहित्य की परिचालिका तसलीमा नसरीन अपनी पुस्तक नष्ट लड़की नष्ट गद्य की भूमिका में लिखती है–उन सभी प्रथाओं, रीति–रिवाजों का खण्डन करना चाहिए जिनके अस्तित्व का कोई तार्किक कारण नहीं होता है। जैसे है तो सिर्फ एक संस्कार कि रसोई का काम स्त्रियों का है। हालांकि बाहर पुरुष बावर्ची, दर्जी और क्लिनर अधिक पाये जाते हैं, घर में कुक, टेलर, क्लिनर के रूप में स्त्री ही बिना पारिश्रमिक के परिश्रम करती है। परंपरा के चलते, समाज में जहां कहीं छोटी–बड़ी विषमता या अन्याय व्याप्त है, उसका विरोध करते जाना अनिवार्य है। और इस विरोध का दायित्व सबका है, गारमेंट बनाने वाले श्रमिक से लेकर प्रधानमंत्री तक का।[7]

आगे यह भी लिखती है कि चीन में लड़कियों के पैरों में लोहे के जूते पहनाकर रखा जाता था, फलस्वरूप चीनी लड़कियों के पांव छोटे हो गये। उसी प्रकार लंबे समय में यहां की स्त्रियों के मन पर जंग लग गया है। और जंग लगे मन में नयी भावना तक नहीं आती, विरोध तो बहुत दूर की बात है। काफी हद तक पिंजड़े के पंछी की तरह, जो पिंजड़े में बंद रहते–रहते उड़ना भूल जाता है, इस देश की स्त्रियां भी अपने चारों तरफ के पिंचड़े को तोड़कर बाहर निकल आना भूल चुकी हैं। अनभ्यास के कारण, वे विरोध की भाषा भूल गयी है। हम जैसों को, जिनकी आवाज अब तक बंद नहीं हुई है। चाहिए कि चिल्लाएं, ताकि सोई हुई स्त्रियों के कानों तक वह आवार पहुंचे।[8]

रिवाजों के प्रति विरोध करने की आवश्यकता के बारे में तसलीमा नसरी लिखती हैष् कुछ बेहूदा रिवाजों को आदमी अब भी समाज में बचाए हुए हैं।[9] पशु जिए तरह कई मादाओं के साथ का अभ्यस्त होता है, पुरुष भी इसी तरह कई आदमियों के साथ का अभ्यस्त होता है, पुरुष भी इसी तरह बहुस्त्रीगामी होना चाहेगा।..... मौका पाते ही। पुरुष दावा करता है कि वह श्अशरफ –उल–मुखलुकात
यानि सृष्टि का सर्वश्रे प्राणी है।[10]

भारतीय परम्परा के अनुसार नारी की डोली ही घर आती है और घर और बाहर उसकी अर्थी निकलती है। यह है भारतीय परम्परा परन्तु आज की नारी रूढिवादी परम्परा से विद्रोह कर स्वच्छन्द होना चाहती है। वह घर की चार दीवारी से बाहर निकाल कर पुरुषों की तरह रहना चाहती है। परन्तु उसके इस विद्रोह का परिणाम सुखद न होकर दुखद ही होता है।

हमीदुल्ला कृत नाटक श्उलझी आकृतियांश में परम्परा के प्रति विद्रोह करती नारी को दर्शाया गया है। अपने को अत्याधुनिक एवं अत्यन्त पढ़ी–लिखी समझाने के भुलावे में पड़ी आज की नारी इतनी स्वार्थी होती जा रही है कि शरीर का उसके लिए काम निकालने के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रह गया है। परम्परा से विद्रोहित नारी। अपने को पढ़ी–लिखी एवं विस्तृत मानसिकता से युक्त समझती हुई परम्परा के घरौंदे को विद्रोह कर उखाड रही है। शादी की अपेक्षा प्रेम को ही सर्वस्व मानती है। विवेच्य नाटक की बेला ऐसी ही नारी पात्र है। वह प्रेम के सम्बन्ध में कहती है–श्प्रेम जीवन का प्राथमिक सत्य है– वह जमाना लद गया जब औरतें अपना जीवन परदे में कैद होकर बिता देती थी।.. .. कम से कम हम ब्रांड माइडिंड तो हो सकते है।..... जब आपस में इतना मिलना–जुलना होता रहेगा तो प्रेम तो कायम रहेगा ही। शादी न होने से क्या फर्क पड़ता है।[11]बेला ने यहां विवाह संख्या पर ही प्रश्नचिन्ह अंकित कर दिया है। वह अपने बॉस से प्रेम

करती है और मिलना–जुलना आवश्यक समझती है, शादी होना या न होना उसके लिए महत्वहीन है। श्उलझी आकृतियां नाटक में परम्परा के प्रति विद्रोह करने वाली नारी का घर से बाहर ऐसा शारीरिक अनुबंध है, जो बॉस के बिस्तर पर लिखा जाता हैं वह स्वयं फाइल बन चुकी है–बॉस की दी हुई साड़ी में लिपटी हुई फाइल। हर फाइल के साथ उसे साड़ी सहित स्वयं खुलना पड़ता है और फाइल पर हस्ताक्षर लेने से पूर्व अपने जिस्म पर बॉस के ष इनीशियलष लेने पड़ते हैं। वह प्रत्येक पत्र की ऑफिस प्रतिलिपि है। फाइल की भांति ही वह छोटे–बड़े अधिकारियों के केबिनों में खुलती है। परम्परा के प्रति विद्रोह करने वाली नारी नौकरी की तलाश में घर से बाहर निकली नारी का सच्चा प्रतिबिम्ब उपर्युक्त कथन से पाठक के मानस पटल पर उभरता है। निश्चय ही वह अधिकारी के आगे शरीर समर्थन करती हुई कार्य–सिद्धि की ओर अग्रसर होती है और ऐसा करने से उसे बिल्कुल संकोच भी नहीं होता, बल्कि उसके लिए उसका यह विद्रोह गौरव का विषय बन गया है।

संदर्भसूची–

१. डॉ० सत्येन्द्र त्रिपाठी, सामाजिक विघटन, पृ. 42–45

२. शिवप्रसाद सिंह, औरत, पृ. 107

३. धर्मवीर भारती, संपा, अज्ञेय, दूसरा सप्तक, पृ. 166

४. नेमिचंद जैन, अधूरे साक्षात्कार, पृ. 157

५. अज्ञेय, त्रिशंकु, संस्करण 1945, पृ. 55

६ पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी, मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पृ. 68

७ rebel therefore we exist Albert Canus The Rebel P-47"

८ तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिका

९ तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिका

१०. तसलीमा नसरीन, अनुवाद मुनमुन सरकार, नष्ट लड़की, नष्ट गद्य, भूमिका

११. हमीदुल्ला, उलझी आकृतियां, पृ. 199

डॉ0 अनु जागलान

लक्ष्मी नगर, मेन बरोदा रोड़ गोहाना

(सोनीपत)

44

Judicial Approach to Live-in Relationships under the Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005: A Critical Analysis

Anuj Jain, Dr. Priya A. Sondhi, Dr. Deepak Miglani

Abstract

The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 moves beyond the older assumption that domestic security is tied exclusively to a legally contracted marriage. It recognises that violence within a home is not confined to wedded couples, and that relationships resembling and functioning like marriage can carry the same risks. By including a "relationship in the nature of marriage" within the definition of "domestic relationship," the Act allows women in live-in relationships to approach a court for residence, protection, monetary relief and related orders without first proving they were married. This paper examines both the reach and the limits of that protection. It argues that although the Act remains a genuine remedial and constitutional safeguard, its real-world value depends on courts resisting moralistic readings of the phrase and instead recognising women whose relationships are informal, unequal or kept hidden from public view. Using a doctrinal method, the paper works through the statutory text, the 2006 Rules, and the major decisions in D. Velusamy, Indra Sarma, Hiral P. Harsora, Lalita Toppo, Satish Chander Ahuja, Kamatchi and Prabha Tyagi. What emerges is a judicial legacy that is protective but conditional: courts have refused to treat every casual or transient relationship as a domestic one, yet have equally refused to let men escape accountability simply because a relationship was never formalised. The judiciary has proved strongest at granting urgent civil relief and weakest at building consistent standards, embedding social acceptance of the Act, and equipping Protection Officers to act proactively. To close this gap, the paper proposes a set of contextual indicators, including duration, interdependence, vulnerability and public acknowledgment, none of which should be treated as decisive on its own. It concludes that meaningful protection for women in live-in relationships needs legal clarity alongside institutional responsiveness: gender-sensitive fact-finding, and closer cooperation between courts, Protection Officers, service providers, shelters and legal aid bodies.

Keywords: Domestic Violence Act, live-in relationship, relationship in the nature of marriage, shared household, residence order, monetary relief, women's rights.

1. Introduction

Indian family law has never dealt comfortably with women in live-in relationships. Personal laws built around marriage tend to overlook such women altogether, and social, economic and familial pressures often keep couples from ever formalising their relationship in the first place. When conflict turns violent, a legal system built solely around marriage offers such women little to work with. The Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005 changes this picture by extending its protection to a wider category of domestic partnerships. Section 2(f) defines a "domestic relationship" to include not just marriage but also relationships in the nature of a family, of cohabitation, and of shared partnership. In effect, this provision is the statutory bridge that lets women in live-in relationships invoke the Act at all.

How society feels about live-in relationships is, in a sense, beside the point. The law cannot exclude a category of women from protection merely because their relationships sit outside prevailing social norms. The real question this paper is interested in is how closely a live-in relationship must resemble marriage before the Act's protective machinery is triggered. Courts have developed a range of indicators to answer this: the duration of cohabitation, whether the couple shared a single household, how far their finances were pooled, the degree of sexual and emotional exclusivity, whether they presented themselves publicly as a couple, and sometimes the presence of children or shared domestic arrangements. Abuse, however, rarely announces itself so neatly. It tends to hide behind dependency, imbalance of power and deliberate concealment, which is exactly why this paper looks closely at the reach of the PWDVA and at the legal and practical obstacles that keep women in live-in relationships from actually reaching its remedies.

The trouble is that the PWDVA never actually defines "relationship in the nature of marriage." Courts have stepped in to fill this gap, building tests meant to separate genuine live-in partnerships from casual or exploitative ones, but these tests often smuggle in assumptions about

respectability, exclusivity and public legitimacy that have little to do with how vulnerability actually looks in practice. Here lies the paper's central problem: the Act was drafted so that formal marriage would not be a precondition for protection, yet the burden of proving a marriage-like relationship can end up excluding exactly the women who need protection most, those who entered informal partnerships out of dependency, deception or social stigma. The result is a narrow but real gap in the law. A woman can be living through domestic violence inside a shared household and still be denied a remedy because a court decides her relationship was not marriage-like enough. This paper asks how the law can keep some principled limits in place without letting moralistic or overly technical interpretation hollow out the PWDVA's protective purpose.

2. Constitutional Rationale and Gender Justice

The statutory text is not the only source of protection here; the Constitution matters just as much. Domestic abuse strikes at equality, bodily integrity, privacy and personal autonomy, all values the Constitution is meant to guard. Article 14 is engaged the moment a woman is denied recourse simply because no legally recognised marriage exists, since she suffers the same abuse a wife would and yet receives none of the law's protection. Article 15 gives the State room to address gender-based vulnerability through statutes like the PWDVA. Article 21 is perhaps the most directly relevant of the three: domestic violence undermines a person's security, mental well-being and autonomy, and the State cannot simply look away because a relationship falls outside the traditional mould of marriage.

Reading the Act through this constitutional lens helps resolve some of the interpretive tension at its core. The Act was never meant to sweep in every brief romantic connection, since a "domestic relationship" presupposes a shared home and a genuine domestic bond. At the same time, "relationship in the nature of marriage" should not be read to demand proof of ceremonies, family acceptance or social respectability, since those belong to the law of marriage, not to a remedial statute aimed at stopping violence. A more useful test may simply be a functional one: did the couple build a domestic life together that left the woman exposed to control, violence, dispossession or economic deprivation similar to what she might have faced within a marriage? If the answer is yes, the Act's protective provisions should apply, even where the relief eventually granted has to be shaped carefully to avoid clashing with the property rights of another spouse or other legitimate competing claims.

A gender-justice approach also has to account for the different shapes vulnerability can take. A migrant woman may be undocumented. A young woman may be unable to come out publicly because of family pressure. A woman separated from her husband may still be financially dependent on him. Another may be facing violence and control at the hands of a married man. None of these situations automatically establishes marital status, but each can justify emergency protection. The PWDVA is best understood, first, as a framework against violence that centres the victim, and only secondarily as a framework sensitive to relationship status. It was not built to recognise or penalise particular kinds of relationships; it was built to protect against violence wherever interpersonal dependence is being used, socially or privately, as a tool of abuse.

3. Statutory Framework under the PWDVA

The PWDVA is broader than most criminal statutes because, alongside its penal aspects, it creates a bundle of civil rights enforceable directly by a Magistrate. Section 2(a) defines an "aggrieved person" as any woman who is, or has been, in a domestic relationship with the respondent and who alleges domestic violence. Section 2(f) is the key provision for live-in couples: it removes the need to prove a legal marriage before approaching the court. Section 2(s) defines a "shared household" as any household where the aggrieved person lives, or has lived, as part of a domestic relationship. Section 3 defines domestic violence broadly, covering physical, sexual, verbal, emotional and economic abuse. This last category matters more than it might first appear, since economic abuse, denying a woman housing, resources or her stridhan, can be just as damaging as physical violence, sometimes more so.

The Act's positive provisions matter just as much as its definitions. Section 17 gives every woman in a domestic relationship the right to remain in the shared household, regardless of who owns or holds title to it. Section 18 allows a Magistrate to issue protection orders

against continued violence, unwanted communication, alienation of assets, or harassment. Section 19 goes further, letting the court direct the respondent to arrange alternate accommodation, pay rent, or stay away from the household altogether. Section 20 provides for monetary relief, covering loss of earnings, medical expenses, loss of property and maintenance. Section 21 deals with custody, Section 22 with compensation, and Section 23 allows the court to pass interim orders quickly, without waiting for a full hearing.

What runs through all of this is a recognition that domestic violence is rarely a single incident. It is usually a continuing cycle of control, and that is precisely why the Act's remedies are designed to be immediate, protecting both a woman's residence and her economic footing at the same time.

The 2006 Rules flesh out this framework, formalising how incidents of domestic violence are recorded and assigning specific duties to Protection Officers and service providers. In practice, though, poor coordination, a shortage of shelters and legal aid, and inadequate training for Protection Officers often turn what should be an emergency response into just another slow-moving legal process. Women in de facto relationships face an added disadvantage here: alongside the near-certain defence that no legally recognised relationship existed, they must also contend with the social shame their partners can weaponise against them.

4. Judicial Development: From Presumption of Marriage to Protective Recognition

Indian courts first engaged with live-in relationships not through the lens of domestic violence but through marriage and legitimacy. In *Badri Prasad v. Dy. Director of Consolidation*, the Supreme Court held that long cohabitation as husband and wife raises a strong presumption of marriage. *Tulsa v. Durghatiya* followed a similar logic, presuming legitimacy where a couple had lived together for a long period. Neither case dealt with the PWDVA directly, but both reveal a judicial willingness, even decades earlier, to correct the social and proprietary injustices that informal unions can produce. Seen against this backdrop, the PWDVA reads less like a statute built around presuming marriage and more like one built around recognising domestic vulnerability wherever it exists.

The first significant judicial reading of the phrase came in *D. Velusamy v. D. Patchaiammal*, where the Supreme Court made clear that not every live-in relationship qualifies as one "in the nature of marriage." The Court set out three requirements: the parties must have the legal capacity to marry, must have cohabited for a significant period, and must have held themselves out to society as husband and wife. *Velusamy* was important precisely because it gave the phrase judicial content for the first time, but it also drew sharp criticism for borrowing too heavily from the American common-law-marriage model, a framework whose language risks excluding women whose relationships were exploitative rather than voluntarily domestic.

Indra Sarma v. V.K.V. Sarma refined these determinants further, adding duration of the relationship, a shared household, pooling of finances, domestic arrangements, sexual relations, children, social interaction, and the parties' intentions to the list of relevant factors. Yet the Court denied relief on the facts of that case, because the woman had entered the relationship knowing the man was already married. This creates something of a contradiction at the heart of the judgment: it expands the range of factors relevant to protecting women in non-marital relationships, while at the same time smuggling in a moral judgment about the nature of the relationship that the statute was never meant to invite.

Later decisions have widened the Act's remedial reach considerably. In *Hiral P. Harsora v. Kusum Narottamdas Harsora*, the Supreme Court struck down the word "male" from Section 2(q), opening the door to complaints against female relatives as well. This matters a great deal in live-in cases, where violence often comes not just from a partner but from other members of a shared household. *Lalita Toppo v. State of Jharkhand* clarified that a woman who would not qualify as a "wife" under Section 125 of the CrPC is not, for that reason, excluded from relief under the PWDVA. In *Satish Chander Ahuja v. Sneha Ahuja*, the Court broadened the meaning of "shared household," rejecting the earlier, narrower view that tied it to ownership. *Kamatchi v. Lakshmi Narayanan* confirmed that proceedings under Section 12 cannot be shut down through a mistaken application of a one-year limitation period. And *Prabha Tyagi v. Kamlesh Devi* went a step

further still, holding that ownership of the shared household is not a precondition for relief, and that the right to claim a remedy can survive even after the domestic relationship itself has ended. Read together, these decisions have pulled the Act well beyond a narrow, technical reading rooted in matrimonial law.

5. Scope of Protection for Women in Live-in Relationships

The protection on offer is broad, though not unlimited. A woman in a qualifying live-in relationship can seek relief against physical assault, threats, stalking, verbal humiliation, sexual coercion, economic deprivation and dispossession. The statute is especially useful in situations where a man denies any marriage but has nonetheless shared a household with a woman, exercised control over her, fostered her dependence, or presented the relationship to the world as a stable one. Importantly, the remedy does not convert the relationship into a marriage for every purpose. It simply recognises that violence within domestic intimacy creates obligations, of restraint, of residence security, of maintenance and compensation, regardless of whether the relationship was ever formalised.

Residence rights sit at the centre of this scheme. A woman may hold no title to the house she lives in. She may have given up employment to run the household, or relocated entirely for the relationship. Without an immediate remedy protecting her residence, she is left with two equally bad choices: stay with her abuser or become homeless. Sections 17 and 19 exist precisely to prevent that outcome, operating as anti-dispossession provisions. *Satish Chander Ahuja* is particularly valuable here, since it treats the shared household as a functional domestic space rather than simply a property owned or rented by the husband or partner.

Monetary relief forms the second pillar of protection. Live-in relationships often involve unpaid care work, informal labour, and financial contributions to a household built on nothing more than a partner's assurances. Section 20 allows the court to award maintenance and compensation for losses caused by domestic violence, and this provision is wider than ordinary matrimonial maintenance because it looks at loss, need and the existence of a domestic relationship rather than at marital status. Section 22 compensation can also cover mental torture and emotional distress, while interim orders under Section 23 matter enormously, since relief that arrives too late can end up meaning very little.

6. Challenges and Critique

The first challenge is evidentiary. Marriage comes with documentation, rituals and social recognition built in. A live-in relationship carries none of this by default, which leaves cohabiting women with a much harder task in proving that their relationship even existed in the form they describe. That same informality can work against them in another way too, since a respondent can just as easily point to the absence of formal markers and argue the relationship was casual and terminable at will. Judges need to treat these evidentiary gaps as an inevitable feature of informal relationships rather than as a reason for doubt, since the very evidence courts often look for is the evidence vulnerable women are least likely to have.

A second challenge is the risk that courts end up rewarding concealment. By asking whether a relationship was sufficiently public, sufficiently exclusive, and free of any legal impediment to marriage, courts can inadvertently favour men who kept a relationship hidden precisely to avoid these obligations. The better approach is to look at whether the couple's domestic arrangement created real dependency. Public acknowledgment can remain a relevant factor, but it should never be treated as decisive, and the length of a relationship matters far more in terms of the depth of dependence it created than as a number of years to be counted.

A third and more difficult challenge is what might be called the married-man problem. *Indra Sarma* shows a court visibly uncomfortable with a woman who had a relationship with a man who was already married. Refusing to engage with such cases at all does protect the legal wife from further injury, but it also leaves the woman in the second relationship exposed to violence with no remedy at all. This paper argues there is a real difference between a claim to marital status and a claim to protection from violence. The PWDVA should not be read as legitimising bigamy or granting a second partner the entitlements of a lawful spouse, but it can and should still step in to stop violence and economic deprivation, granting a woman relief in the form of residence security or compensation for as long as the relationship in question actually subsisted, without that relief ever extending into

recognition of marital status.

A fourth challenge lies in institutional capacity rather than in the law itself. NFHS-5 data confirms that domestic violence remains widespread in India and that reporting stays far lower than the actual incidence, held back by deep social stigma and strong emotional attachment to abusers. Among cohabiting couples, this stigma runs even deeper, since the relationship itself can become a reason for families, landlords or the police to dismiss a complaint before it is even properly heard. What this means in practice is that enforcing the Act depends heavily on the continuous, reliable functioning of Protection Officers and shelters, on interim orders that are actually granted and enforced quickly, and on legal aid, counselling and police coordination that many women in these relationships simply cannot access.

7. Conclusion and Suggestions

This paper set out to examine how the PWDVA protects women in live-in relationships, given that it never defines "relationship in the nature of marriage" with any precision, and the findings bear out the hypothesis with which the paper began. Sections 2(a), 2(f), 2(s) and 3 show that Parliament built the PWDVA as a response to vulnerability, not as a mechanism for recognising marriage: a woman does not need to prove a valid marriage to invoke the Act, only a domestic relationship marked by cohabitation, a shared household and exposure to violence. Yet the judicial tests traced from *Velusamy* through *Indra Sarma* show courts doing something slightly different in practice. In trying to weed out casual or opportunistic claims, they have repeatedly reintroduced markers of social respectability, exclusivity and public acknowledgment, markers that function as informal stand-ins for a valid marriage. This is the doctrinal gap this paper set out to identify. Women who are most vulnerable, those whose relationships are concealed, unequal, entered under deception about a partner's marital status, or shaped by economic dependency, end up carrying the heaviest evidentiary burden precisely because their relationships lack the visible signs these tests reward. What this confirms is that "relationship in the nature of marriage" cannot be treated as a checklist of marital indicators without undermining the very purpose the Act was written to serve.

That said, the case law has not been moving in only one direction. *Harsora*, *Lalita Toppo*, *Satish Chander Ahuja*, *Kamatchi* and *Prabha Tyagi* together show an Act that keeps expanding who can claim relief and what counts as a shared household, gradually shedding its earlier attachment to ownership and status. The real difficulty, then, is not a shortage of doctrinal tools. It is how inconsistently those tools get applied at the trial and Magistrate level, where proving cohabitation, a shared household and abuse still tends to fall back on rigid, ceremony-oriented thinking, and where Sections 17 to 23 remain underused simply because Protection Officers, police and even lawyers are not equipped to recognise a live-in domestic relationship without proof that looks like marriage. A woman should not lose her claim to protection just because her relationship lacked ceremonies, documents or public approval. If the facts show a shared household, domestic intimacy, dependence, control and violence, the Act should respond, through protection orders, residence orders, monetary relief and compensation. The real gap, in other words, is not in the law but in how it gets read and applied, and the remedies under Sections 17 to 23 will only become meaningful once courts, Protection Officers, police, shelters and legal aid institutions start treating the PWDVA as the urgent remedial statute it was meant to be, one grounded in dignity, autonomy and freedom from violence.

A few reforms follow from all this. At the interpretive level, courts should treat the factors laid down in *Velusamy* and *Indra Sarma* as flexible and non-exhaustive rather than as mandatory boxes to be ticked. The real question should be functional: did the couple build a domestic life together that created dependence, vulnerability and exposure to control or violence comparable to what a marriage might involve? The "married-man" reasoning in *Indra Sarma* is worth revisiting too. A woman's claim to protection from violence should be kept analytically separate from any claim to the status or property entitlements of a lawful spouse, so that a respondent's existing marriage does not automatically bar her from relief. Procedural rules should also let women prove a relationship through circumstantial evidence, digital communications, address and utility records, testimony from neighbours or co-residents, and patterns of financial interdependence, since

documentary or ceremonial proof is simply not available to women in concealed relationships. And Protection Officers need specific training on live-in relationships, so that a domestic incident report does not get watered down or dismissed just because the woman filing it is unmarried. At the institutional level, residence orders need to be crafted with care, protecting the woman while not disregarding third-party property rights; alternate accommodation, rent payments, restraint orders and compensation are all available where direct residence in a disputed household is not practical. Police, Protection Officers and para-legal volunteers need real training so that a complaint is not dismissed simply because the woman making it was never married, and legal aid authorities, shelters and service providers should run outreach that makes clear the PWDVA covers relationships in the nature of marriage, since low awareness only adds to the under-reporting already visible in NFHS data. Better coordination between Magistrate courts, Protection Officers and the police matters too, since interim orders under Section 23 need to be granted and enforced quickly, given that delayed relief in live-in cases can end up being almost as harmful as no relief at all. At the legislative level, some form of explanatory clarification, whether through an amendment, statutory illustrations, or consolidated guidelines from the Supreme Court, would help establish that no single factor, public acknowledgment, duration of cohabitation, or property ownership, should ever be treated as conclusive on its own. This would cut down on inconsistent outcomes at the trial level while still leaving courts room to exclude relationships that really are casual or non-domestic.

None of this is meant to expand the PWDVA to cover every intimate relationship that exists. The point is simply that "relationship in the nature of marriage" should be read for what it was meant to do, identifying domestic dependence and vulnerability to violence, rather than functioning as a second, informal test of marital legitimacy. A survivor-centred reading, grounded in Articles 14, 15 and 21, is the only way to make sure the PWDVA's protection reaches the women who need it most: those whose relationships are least likely to look like marriage, and most likely to carry the very risks marriage was once thought to guard against.

Refrences

- Flavia Agnes, Law and Gender Inequality: The Politics of Women's Rights in India (Oxford Univ. Press 1999).
- Ratna Kapur & Brenda Cossman, Subversive Sites: Feminist Engagements with Law in India (Sage Publ'ns 1996).
- Archana Parashar, Women and Family Law Reform in India: Uniform Civil Code and Gender Equality (Sage Publ'ns 1992).
- Lotika Sarkar & B. Sivaramayya, Women and Law: Contemporary Problems (Vikas Publ'g House 1994).
- Bina Agarwal, A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia (Cambridge Univ. Press 1994).
- Carol Smart, Feminism and the Power of Law (Routledge 1989).
- Elizabeth M. Schneider, Battered Women and Feminist Lawmaking (Yale Univ. Press 2000).
- Susan Schechter, Women and Male Violence: The Visions and Struggles of the Battered Women's Movement (S. End Press 1982).
- Martha A. Fineman, The Vulnerable Subject: Anchoring Equality in the Human Condition, 20 Yale J.L. & Feminism 1 (2008).
- Martha R. Mahoney, Legal Images of Battered Women: Redefining the Issue of Separation, 90 Mich. L. Rev. 1 (1991).
- Elizabeth M. Schneider, The Violence of Privacy, 23 Conn. L. Rev. 973 (1991).
- Flavia Agnes, Protecting Women Against Violence? Review of a Decade of Legislation, 1980-89, 27 Econ. & Pol. Wkly. WS19 (1992).

Endnotes:-

1.Protection of Women from Domestic Violence Act, 2005, hereinafter referred to as the PWDVA.

2.See Flavia Agnes, Law and Gender Inequality: The Politics of Women's Rights in India (Oxford Univ. Press 1999).

3.See Ratna Kapur & Brenda Cossman, Subversive Sites: Feminist Engagements with Law in India (Sage Publ'ns 1996).

4. See Archana Parashar, Women and Family Law Reform in India: Uniform Civil Code and Gender Equality (Sage Publ'ns 1992).
5. See Carol Smart, Feminism and the Power of Law (Routledge 1989).
6. See Martha R. Mahoney, Legal Images of Battered Women: Redefining the Issue of Separation, 90 Mich. L. Rev. 1 (1991).
7. See Susan Schechter, Women and Male Violence: The Visions and Struggles of the Battered Women's Movement (S. End Press 1982).
8. See Flavia Agnes, Protecting Women Against Violence? Review of a Decade of Legislation, 1980-89, 27 Econ. & Pol. Wkly. WS19 (1992).
9. Badri Prasad v. Dy. Director of Consolidation, (1978) 3 S.C.C. 527 (India).
10. Tulsa v. Durghatiya, (2008) 4 S.C.C. 520 (India).
11. See Lotika Sarkar & B. Sivaramayya, Women and Law: Contemporary Problems (Vikas Publ'g House 1994).
12. D. Velusamy v. D. Patchaiammal, (2010) 10 S.C.C. 469 (India).
13. See Ratna Kapur, The Tragedy of Victimization Rhetoric: Resurrecting the Native Subject in International/Post-Colonial Feminist Legal Politics, 15 Harv. Hum. Rts. J. 1 (2002).
14. Indra Sarma v. V.K.V. Sarma, (2013) 15 S.C.C. 755 (India).
15. See Archana Parashar, Women and Family Law Reform in India: Uniform Civil Code and Gender Equality (Sage Publ'ns 1992).
16. Hiral P. Harsora v. Kusum Narottamdas Harsora, (2016) 10 S.C.C. 165 (India).
17. Lalita Toppo v. State of Jharkhand, (2019) 13 S.C.C. 796 (India).
18. Satish Chander Ahuja v. Sneha Ahuja, (2021) 1 S.C.C. 414 (India).
19. Kamatchi v. Lakshmi Narayanan, (2022) 15 S.C.C. 50 (India).
20. Prabha Tyagi v. Kamlesh Devi, (2022) 8 S.C.C. 90 (India).
21. See Elizabeth M. Schneider, Battered Women and Feminist Lawmaking (Yale Univ. Press 2000).
22. Satish Chander Ahuja v. Sneha Ahuja, (2021) 1 S.C.C. 414 (India).
23.See Bina Agarwal, A Field of One's Own: Gender and Land Rights in South Asia (Cambridge Univ. Press 1994).
24. See Elizabeth M. Schneider, The Violence of Privacy, 23 Conn. L. Rev. 973 (1991).
25. See Martha R. Mahoney, Legal Images of Battered Women: Redefining the Issue of Separation, 90 Mich. L. Rev. 1 (1991).
26. Indra Sarma v. V.K.V. Sarma, (2013) 15 S.C.C. 755 (India).
27. See Susan Schechter, Women and Male Violence: The Visions and Struggles of the Battered Women's Movement (S. End Press 1982).
28. See Ratna Kapur & Brenda Cossman, Subversive Sites: Feminist Engagements with Law in India (Sage Publ'ns 1996).
29. See Martha A. Fineman, The Vulnerable Subject: Anchoring Equality in the Human Condition, 20 Yale J.L. & Feminism 1 (2008).
30. D. Velusamy v. D. Patchaiammal, (2010) 10 S.C.C. 469 (India).
31. Indra Sarma v. V.K.V. Sarma, (2013) 15 S.C.C. 755 (India).
32. See Flavia Agnes, Protecting Women Against Violence? Review of a Decade of Legislation, 1980-89, 27 Econ. & Pol. Wkly. WS19 (1992).

***Anuj Jain**,
Research Scholar,
School of Law,
Sushant University,
Sector 55, Gurugram , Haryana
**** Dr. Priya A. Sondhi**,
Dean and Professor, School of Law,
Sushant University,
Sector 55, Gurugram , Haryana
***** Dr. Deepak Miglani**
Associate Professor,
School of Law,
Sushant University,
Sector 55, Gurugram , Haryana

45

भारत को विश्वगुरु बनाने में हिन्दी साहित्य का योगदान

डॉ0 अनु जागलान

सारांशः

हिन्दी साहित्य और विश्वगुरु भारत पर शोध पत्र प्रस्तुत करने से पूर्व विश्वगुरु भारत पर संक्षेप मे विस्तार डालना श्रेष्ठ होगा। उसके पश्चात हम हिन्दी साहित्य का विश्वगुरु भारत में योगदान पर विचारपूर्वक विचार करेंगे।

भारतीय संस्कृति का भव्य भवन सत्य शिवं सुन्दरम् की आधारशिला पर विराजमान है। यह सर्वमंगल कामना से ओतप्रोत है। जीवन के शाश्वत मूल्य इसके सशक्त स्तंभ है। इन्ही उदात मानवीय मूॅल्यों की अजस्त्र धाती के कारण भारतवर्ष को विश्वगुरु कहलाने का गौरव प्राप्त हुआ तथा यहॉ की संस्कृति विश्ववारा कहलाई। इसे प्रणम्य मानवर

एम.लुई जेकोलियट ने इसे श्रद्वा–सुमन समर्पित करते हुए लिखा है– हे प्राचीन भारतभूमि! ळे मानव जाति की पलिका! ळे पूजनीया! ळे पोषिका! तुझे नमस्कार है, नमस्कार है। तुझे शताब्दियो के अत्याचार आज तक नष्ट न कर सके। तेरा स्वागत है। हे श्रृद्वा, प्रेम, कला और विज्ञान की जन्मदा तुझे नमस्कार है।''

जर्मनी के प्रकांड विद्वान प्रो. मैक्समूलर ने भारतीय संस्कृति के विपुल वैभव से अभिभूत होकर इसके गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है– '' न केवल सत्य अपितु इनकी उदारता, सहिण्णुता, मुक्तकंठता, बंद्विमत्ता, सुशीलता, नम्रता, वफादारी, सज्जनता, सुरा–विरक्ति, सम्मान श्रद्वा, श्रम शीलता और विज्ञान–प्रेम इस समय भी उल्लेखनीय है। भारत की आदर्श किन्तु अमर संस्कृति जिसने साम्राज्यों का उत्थान–पतन देखा, मनुष्य मात्र के लिए उपयोगी है यही कारण है कि आज का यूरोप अपनी घातक सभ्यता से दुःखी होकर भारत की ओर देख रहा है। भारतीय कला और संस्कृति के वर्चस्व को उद्घाटित करते हुए पाश्चात्य विद्वान हवेल ने लिखा है– '' अशोक के समय से लेकर आज तक के भारतीय जीवन और विचारधारा का जो अमूल्य संकलन यहॉ की कलापूर्ण रचनाओं पर टूका हुआ है, उसके लिए विश्व भारत का ऋणी है । किसी भी दूसरे राष्ट ने प्राचीन हो अथवा अर्वाचीन, इतनी उच्च संस्कृति का निर्माण नहीं किया। किसी ने धर्म को जीवन का दर्शन बनाने में इतनी सफलता नहीं प्राप्त की। यहॉ तक की किसी ने भी मानवीय ज्ञान को इतना समृद्व एवं शक्तिशाली नहीं बनाया। नाना प्रकार की संस्कृतियों के आक्रमण इस पर हुए पर सबसे सहकर यह अपने सीान पर स्थिर रही। मिस्र, बैबीलान, यूनान तथा रोम की सभ्यताओं का अपने–अपने उत्थान का एक दिन था पर अन्य संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के आक्रमण के फलस्वरुप अथवा जरा ग्रस्त्र होकर वे सब या तो नष्ट हो गई या उनका रुप बदल गया। हमारी संस्कृति अपने मूल रुप में न केवल अभी तक जीवित है वरन निरन्तर नवजीवन भी प्राप्त करती रही है। इसका कारण है कि भारतीय संस्कृति सर्वमंगल कामना से ओत–प्रोत है। इसके द्वारा न केवल अपने अनुयायियों के लिए ही अपितु समान बंहमाड के लिए विश्वपोषक मंगलकारी प्रभाव उत्पन्न होता हैं।

प्राचीन काल में भारत ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का केन्द्र था। पाटलीपुत्र और नालंदा विश्वविद्यालयों की ख्याति समस्त विश्व में व्याप्त थी। देश–देशान्तर के जिज्ञासु विद्यार्थी धर्म, ज्ञान और उच्च आदर्शो का नया प्रकाश पाने के लिए निरन्तर भारत में आते रहते थे। हर्ष के समय चीनी विद्वान श्यूआन चुआंग भारत आया और दस वर्ष तक नालंदा विश्वविद्यालय में रहकर भारतीय विद्वाओं का अध्धयन करता रहा। गौतम और गांधी का यह देश विश्वशान्ति की भासना से अनुप्राणित रहा है। सदियों पूर्व इस देश के पैगंबर बुद्व ने सर्वत्र लोक कल्याण का पैगाम दिया था उनके उपदेश केवल मनुष्यों के लिए ही नहीं अपितु प्रणिमात्र की हितभावना से परिप्लावित थे। युग–युग में भारत की राष्टात्मा विश्वात्मउ के साथ समन्वय ढूॅढती रही है। इस राष्ट में जिस दिन प्रथम बार ज्ञान का नेत्र उघडा उसी क्षण समन्वय के स्वर यहॉ के नीचे नभ में भर गए। समभाव इस देश का गुरुमंत्र है इसी ने इसे विश्वगुरु बनाया है। रामायण भारत का सबसे पूजनीय ग्रंथ है जिसमें त्याग और आदर्श की भावना को प्रस्तुत किया गया है। डॉ.शशिबाला ने रामकथा के विश्वव्यापी प्रसार को रेखांकित करते हुए लिखा है– मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के आदर्शो को अपने जीवन में बनाए रखने की कामना से भारत तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के देश थाइलैंड म्यांमार बर्मा श्रीलंका, इंडोनेशिया आदि ने रामायण की परम्परा को अनेक प्रकार से जीवित रखा है। कहीं मंदिरों की दिवारों पर रामायण के चित्र उत्कीर्ण कर उसे अमरत्व प्रदान करने के प्रयत्न किए गए तो कहीं चित्रकला के माध्यम से जन–जन तक रामायण के प्रेरक प्रसंग पहॅुचाने के लिए रामलीला सर्वोत्कृष्ट माध्यक है।

सितम्बर 1893 में शिकागों अमेरिका में आयोजित विश्व–धर्म सम्मेलन में भारत के युवा संन्यासी स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने सम्मोहक भाषण में समस्त धर्म–संसद एवं अमेरिका के जनमानस को मंत्र–मुग्ध कर दिया था। उनके इस क्रान्तिकारी प्रभावोत्पादक भाषण के संबंध में थिओसोफिस्ट समुदाय की समर्थक श्रीमती एनी बेसेंट ने लिखा है '' इस दूत ने अपनी जन्मभूमि को गौरवपूर्ण गाथाओ को न भूलकर भारत के संदेश को संप्रेषित किया

था। इसअप्रतिद्वद्वी प्राच्च प्रचारक की अतुलनीय आध्यात्मिक वार्ता की महिमा के सामने वे सभी निश्चय ही अवगत हो गए थे। उनके कंठ से निकला हुआ प्रत्येक झंकारमय शब्द आग्रहान्तिवत मंत्रमुग्ध जैसे विराट जनसमूह के मानसपटल पर दृढ रुप से अंकित हो गया था।

हम सभी के जीवन में गुरु की क्या महत्त होती है। इस तत्थ को आसानी से जानते है। गुरु ही हमारे जीवन में अज्ञान को दूर कर ज्ञान का प्रकाश आलोकित करता है गुरु गोविन्द दोअ खडे काके लागोपाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।'' सन्तो ने गुरु के लिए सतगुरु शब्द का प्रयोग किया है जो एक ओर गुरु की महिमा का एवं दूसरी ओर गुरु की सच्ची श्रद्वा का प्रतीक है। अनेक सिलों पर उन्होंने सदगुरु को परमात्मा से भी बढकर बताया है। गुरु की इस महिमा का उल्लेख करने वाले सन्तो का जन्म भारतवर्ष में ही हुआ है। उन्होंने ही अपनी इस वाणी को समस्त विश्व के देशों में फेलाया। शिक्षा एवं ज्ञान के बिना मनुष्य अधूरा है। विश्व की समस्त उपलब्धियों ज्ञार द्वारा ही संभव है।

हिन्दी साहित्य में इतनी प्रचुर मात्रा में विश्वगुरु से सम्बन्धित साहित्य है। जिसके आधार पर भारत को विश्व गुरु आसानी से सिद्व किया जा सकता है। सबसे पहले हम हिन्दी साहित्य जो लगभग 1000 वर्ष पुराना है उसे हम आदिकाल, भक्तिकाल,रीतिकाल एवं आधुनिक काल में विभाजित करते है। अब हम इन कालों के साहित्य के आधार पर भारत को विश्वगुरु की संज्ञा से विभूषित करेंगे।

आदिकाल का साहित्य जिसका समय सवंत् 1050 से 1375 ई तक है। इस काल की यदि हम राजनैतिक परिस्थितियों को देखे तो भारत पर मुस्लिम साम्राज्य था। भारत छोटे–छोटे पखवाडों में बटा हुआ था। राजाओं में सुरा–सुन्दरी में रुचि होने के कारण अक्सर युद्वों का दौर रहता था जहॉस् वीर और श्रृगार रस मिश्र रुप में प्रस्तुत हुए। आदिकाल में हमारी शक्ति का अधिकाश भाग विदेशी आततातियों से अपनी सीमाओं की ओर प्राणों की रक्षा करने में, अपने धर्म और संस्कृति की सुरक्षा करने में और सामाजिक रुप से अपनी स्वस्थ परम्पराओं को बचाने में नष्ट होने लगा।

भक्तिकाल में निर्गुणोपासना में शंकर का अदैतवाद अपने युग की मॉग के अनुरुप था। यज्ञ, पूजा–पाठ आदि में विश्वास रखने वालो के कर्मकाण्ड, सिद्वो में प्रचलित भोगवाद और हिन्दू धर्म में प्रचलित जाति–पाति के भेद–भाव की जड़े काटने के लिए शंकराचार्य ने अदैत–दर्शन का प्रचार किया। शंकर ने आत्मा–परमात्मा की एकता का प्रतिपादन करते हुए माया के सिद्वान्त के आधार पर नाना विषयों और विषय–भोगो से पूर्ण जगत का मिथ्या सिंह किया। जगत् के मिथ्या होने से कर्मकाण्ड और भोगवाद का मिथ्यात्व स्वतः सिद्वहो जाता है। निर्गुणवादी कवियों ने स्वयं ब्राहमण होते हुए वर्णाश्रम व्यवस्था का खण्डन किया। उनके संगठन में वर्ण और जाति के आधार पर भेदभाव नहीं था। निर्गुण कवियों की गम्भीर, सत्यनिष्ठा दृष्टि व्यापक लोकहित की भावना से अनुप्रेरित थी। निर्गुण कवियों की विशेषताओं में निर्गुणोपसना, ज्ञप–महत्त, रहस्यानुभूति अद्रैतवादी चिन्तन, माया का स्वरुप,योग साधना, मानवतावाद एवं सकरात्मक नारी के प्रति दृष्टिकोण ऐसी विशेषताएं है जो सम्पूर्ण विश्व को जीवन एंव जगत की दृष्टि दिखाते हुए भावी जीवन के मार्ग को प्रशसा करती है। ये विशेषताएं भारतवर्ष को विश्वगृरु बनाने में सक्षम है।

सूफी काव्यधारा के कवियों ने नारी को विशेष गौरव गरिमा प्रदान की है। मध्यकाल मे जब नारी को माया रुपी प्रवंचिका समझा जाता था तब इन कवियों ने नायिका प्रधान प्रेम–काव्यों की रचना द्वारा नारी को अद्भूत गौरव एवं दीप्ति से मंडित किया। इन कवियों का मुख्य लक्ष्य लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का निरुपण करना था। इन काव्यों की नायिकाएं परमात्मा के प्रतीक के रुप में अंकित है। सूफी कवियों ने हिन्दू राजकुमार और राजकुमारियो की प्रेम कथाओं को लेकर हिन्दू– मुस्लिम एकता का प्रयास किया है। इन्होंने कुरान के लिए वेद और पुराण शब्दों का प्रयोग किया है। इन कवियों ने हिन्दू रीति–नीति, विश्वास, आस्था, योग–साधना, लोक संस्कृति, काव्य–शास्त्र, नीति शास्त्र, संगीत शास्त्र, पाक–शास्त्र, भारतीय विवाह प्रथा, उत्सव, पर्व, लोक संस्कृति आदि का अपने काव्यों में समावेश करके हिन्दूओं को सूफी साधना के प्रति आकर्षित किया है।

वास्तव में सूफी काव्य की उपर्युक्त विशेषताएं विश्व के सभी देशों की समस्याओं को भी स्पर्श करते हुए उन्हें एक संदेश देकर भारत को विश्व गुरु की श्रेणी मे लाने का प्रयास करती है।

सगुणोपासना काव्य धारा में रामकाव्य धारा की रामकथा मे राम–रावण का युद्व–सत–असत, न्याय–अन्याय, धर्म–अधर्म, विकृति और संस्कृति के मध्य के संघर्ष को गहराई से निरुपित करता है। यह कथा एक प्रतीकात्मक अर्थ ग्रहण करती है। राम–रावण का यह युद्वप्रत्येक व्यक्ति के मान मे होता है और प्रत्येक देश व समाज के स्तर पर होता है। रामकाव्य की विशेषताएं–सामाजिक प्रतिबद्वता एवं मूल्य बोध की प्रबल प्रेरणा लेाक मंगल, भावना, समन्वय भावना, पापका सक्रिय प्रतिरोध, रास्य भाव की भक्ति, अछतोद्वार की भावना, प्रवृति मूलक, जीवन

डॉ0 अनु जागलान
लक्ष्मी नगर, मेन बरोदा रोड़ गोहाना
(सोनीपत)

दर्शन, नारी विषयक, सकरात्मक विचारधारा एवं प्रकृति चित्रण ये सभी विशेषताएं सम्पूर्ण विश्व के देशों को एक आदर्श का संदेश देती है। जीवन में भक्ति के इस मार्ग पर अगर हम चलते है तो ये एक आदर्श परिकल्पना होगी जहॉ चारों ओर सुख एवं शान्ति की सीापना होगी।

कृष्ण भक्ति काव्य परम्परा ने प्रेमाभक्ति के रुप में आस्था परक प्रवृति मार्गी जीवन–दर्शन की प्रतिष्ठा की है। इन कवियों की प्रेमाभक्ति सम्पन्न सौन्दर्य बोध पर आधारित है। इन्होनें नारी को अपूर्व आभा से मण्डित किया है। सम्पूर्ण कृण्ण काव्य विश्व को एक नई दिशा और दृष्टि देने में सक्षम है।

भक्तिकाल के अतिरिक्त रीतिकाल में रीतिबद्वकवियों ने सौन्दय निरुपण,प्रेम निरुपण, नीति–भक्ति, वैराग्य चित्रण एवं वीर काव्यों की रचना द्वारा रीतिमुक्त कवियों ने स्वच्छन्द प्रेम की अभिव्यक्ति एवं व्यक्तिगत अनुभूति की तीवता द्वारा एवं रीति सिद्वकवियों ने वाणी के वाग्वैदगध्य तथा श्रगार निरुपण द्वारा विश्व साहित्य को जीवन–जगत की समस्याओं से जोडकर विश्वगुरु बनने का संदेश दिया है।

आधुनिक काल की रचनाओं में भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग राष्टीय भावना से परिपूर्ण साहित्य है जो सम्पूर्ण विश्व के देशों को देश भक्ति का पाठ पढाकर विश्व गुरु का संदेश देने में सक्षम है।

विश्व संस्कृति के मर्मज्ञ, भारतीय वेदशास्त्रों के अध्येता जर्मन मैक्समूलर का कथन है– '' भारत के उपदेश मनुष्य की भावी पीढियों के लिए बहुत उपादेय एवं कल्याणकारी सिद्वहोगे। वस्तुतः में आने वाली सभ्यताओं का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

उपर्यक्त विवेचन के आलोक में हम कह सकते है कि भौतिकतावाद से संत्रस्त्र पाश्चात्य देशों के लोगो का रुझान दिनोदिन भारत की अध्यात्म विद्या की आरे बढ़ रहा है। ये गुरु, कर्म, निर्वाण, मोक्ष, ओउम, शांति, योग एवं भक्ति में गहरी रुचि ले रहे है। विश्व के कोने–कोने से हजारों पर्यटक शान्ति की खोज मे भारत का रुख कर रहे है। भारत द्वारा प्रसारित योग शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास में रामबाण सिद्व हो रहा है। हमारा भारत देश इस प्रकार की विभूतियों से सम्पन्न होने के पश्चात विश्व गुरु होने का अधिकारी है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ. पूर्णचंद शर्मा, संस्कृति के स्तभं
कल्याण , हिंदू, संस्कृति अंक, सवंत 2055 पृ.205
ई.वी. हवेल, ए स्टडी आफ इंडो , एरियन सिविलाइजेशन
1915 पृ 220 डॉ. पूर्णचंद शर्मा, भारतीय लोक रंगमंच 2017
पृ. 55
श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार, विवेकानन्द चरित्र 1982 पृ 226

46

Voicing the Oppressed: A Posthumanist Reading of Non-Human Agency and Representation.

Ekta Chauhan

Abstract

The emergence of an anthropocentric epoch has led to an unprecedented rate of decline in natural ecosystems. This damage, caused by human activity, is now visible not only in the territories humanity has directly occupied but also, as Emma Marris argues, in places humans have never set foot and among species we have never directly encountered. Posthumanist theory, particularly in the work of Donna Haraway, Rosi Braidotti, and Cary Wolfe, has shifted the critical paradigm from human-centric to non-human-centric frameworks, in which non-human beings are understood to occupy agential roles with perspectives and lives that matter independently of human interest.

This paper investigates the role and space of non-human beings in relation to the challenges of climate change and environmental degradation through a posthumanist lens. Through analysis of two animated films, *Delhi Safari* (2012) and *Animal United* (2010), this paper aims to redefine the agency of anthropomorphic non-human beings and give voice to their unheard experiences. It also examines the following questions: What if nature and non-human beings could speak for themselves? If granted the prerogative to save their only "home" and "habitat," would they be able to resist unforeseen change?

Keywords: Animal Studies, Environmentalism, Post-humanism, Non-human and Visual Narrative Analysis.

INTRODUCTION

"The abuse of the Earth is the ecological crisis" (Shiva 38).

Vandana Shiva's words are apposite in describing the seriousness of contemporary environmental loss. An unbridled series of human interventions has effectively constituted an abuse of the ecosystem, resulting in ecological crises such as climate change, global warming, glacial melting, floods, droughts, forest fires, and, most significantly, biodiversity loss. The rate at which species are affected and driven to extinction is increasing every day. Alongside the non-human components of nature, humans too have been affected by climate change, since deep ecology assigns a visceral role to this shared vulnerability. It would be reductive, however, to assign singular responsibility for this crisis. Following the Industrial Revolution, the whole of nature—and the entire community of non-human beings within it—has suffered under an exploitative human attitude, becoming the recipient of inflicted violence: fast, visible, physical violence in the form of the slaughtering and harming of animals, but also something more insidious, a slow, invisible violence in the form of the climate crisis. This violence against non-human entities necessitates immediate action, not only to protect non-humans but humans as well. Animals, however, appear to lack the agency to act on their own behalf because, from time immemorial, humans—supported by Western religious and philosophical traditions—have sanctioned the neglect of non-human beings, arguing that cattle, beasts, and wild animals, as inferior and agency-less entities, are unworthy of moral consideration. Intellectual and philosophical discourse has further entrenched this divide, asserting that non-human beings, including nature and animals, lack the cognitive capacity to perceive and experience changes in their surroundings and the verbal capacity to express thought, emotion, and agency. Since they are assumed to lack this fundamental matrix of intellectual ability and cannot live with human-like autonomy and agency, they are deemed unworthy of moral consideration and outside the bounds of human moral obligation.

Nevertheless, the emergence of posthumanist studies has altered how this crisis of non-human subjectivity is understood. Posthumanism is an ideology that stands in contrast to humanism. Unlike humanism, which grants autonomy and superior status to the human over other life forms, posthumanism extends autonomy to the "other-than-human"—"pigs or ancestors, spirits or machines, parasites or rocks" (Braidotti 89)—thereby dismantling the assumption of human superiority and uniqueness. Posthumanist scholars recognise the necessity of a post-human, nomadic subjectivity and explore it in depth through literature and media. Since the posthumanist perspective problematises human-centric subjectivity and focuses on articulating discourse from a non-human vantage point, it becomes important to recognise non-human subjectivity within literary and audio-visual art forms to grant such

beings a measure of agency and autonomy. Art forms are crucial here, since no existing legal framework has yet granted animals the fundamental rights required to realise full autonomy. It was only in 2008 that Ecuador became the first country to recognise the "rights of nature": its constitution grants nature—its mountains, islands, rivers, air, forests, and wildlife—the legal right to exist, flourish, and evolve. As environmental lawyer Hugo Echeverria has observed, although the rights of nature were enshrined in the constitution, it remained unclear whether individual animals could be considered rights-holders under this framework until the courts clarified that "animals are subject to rights protected by rights of nature" (Echeverria).

Works that grant non-human beings agency to protect their environment and resist violence include, most prominently, George Orwell's *Animal Farm,* among others. Animals remain poorly represented in literary studies. In literature of any origin, the characterisation of animals is very frequent, but ironically, the animals portrayed represent and stand in for human beings rather than for themselves; their selves, agencies, and concerns are buried and subdued by humanistic preoccupations. Marian Scholtmeijer directly argues that literary animals are instrumentalised for human moral/existential concerns (Scholtmeijer 97). *Animal Farm,* therefore, remains fundamentally anthropocentric, since the work is generally categorised as an allegory of the Russian totalitarian regime and read as a catalyst for human revolution against authoritarianism. It mirrors human-centric concerns and emotions rather than an authentically non-human consciousness. Despite granting animals a degree of autonomy to act and speak on behalf of humans, Orwell seems unable to fully realise their autonomy.

The present ecological crisis demands narratives of non-human beings grounded in an ecological consciousness of habitat and environmental loss. This study's central aim is to examine how such narratives might shape human political and ethical responses and, in turn, reshape the socio-political dynamics between humans and the non-human world.

Anna Barcz, in her essay "Posthumanism and Its Animal Voices in Literature," examines Cary Wolfe's What Is Posthumanism? to understand how Wolfe's conception of posthumanism differs from existing formulations of the theory. She argues that Wolfe's posthumanism is distinctive because it articulates a new sensibility oriented toward the presence of animals within the ecosystem. Wolfe's posthumanism differs, she suggests, because it demonstrates critical scientific and political knowledge while also protesting against those who violate the welfare and interests of "multispecies ecosystems" and "sentient individuals," and because it acknowledges other-than-human voices, thereby "lead[ing] to a pursuit of a new form of expression and literary strategies which take into account and affirm other subjects of life" (Barcz 249). The posthumanism that Wolfe's book represents concerns a consciousness of aliveness and sensation, as well as of experiences shared equally by humans and non-humans. Posthumanism, however, explicitly repudiates the assumption that the representation of animals in culture and literature exists merely to depict something noteworthy about the human world; rather, it is an effort to make animals "think" again, allowing humans to understand them better and to acknowledge their experiences of joy, grief, and rage. By providing a voice to the non-human character, posthumanism seeks to construct ecologically oriented, heterogeneous narratives.

DELHI SAFARI: A LEGAL RESISTANCE

Delhi Safari opens with a vision of joyful coexistence among fellow animals, but this vision is soon shattered into desolation and ruin. It is painful to witness the flight of Sultan and Yuvraj, the father-son leopard duo, as they attempt to save their lives from the machinery of destruction; Sultan ultimately loses his life in that flight. Their habitat and home are under invasion by human capitalist enterprise, and the billboard that reads "Live with Nature & Harmony" is bitterly ironic.

All the animals of the jungle mourn both the loss of their fellow being and the slow destruction they are going to anticipate after being separated from one another and from their home and habitat. In their grief and helplessness, Bajrangi the monkey becomes the mouthpiece of their collective agony, and articulates what might happen if they all get shot like this one day. He responds by calling for violence and war against humans, echoing other narratives of animal rebellion and beast uprising such as the written narrative of *Animal Farm* and

the visual narrative of *Planet of the Apes*. In the latter, war serves as testimony to nature's struggle against exploitative human forces; Caesar's act of claiming space for non-humans through agency and violence resonates, to some extent, with Bajrangi's vision. Unlike Caesar, however, Bajrangi lacks strategic knowledge of human military capacity, so his ambition remains unrealistic given his limited exposure to the human world. None of the other animals agrees with the monkey's proposal; instead, they argue for a different mode of resistance—not active, violent rebellion, but a Gandhian, peaceful, passive coexistence, or what the bear calls, in borrowed human vocabulary, a "civilised approach." But are humans ready to listen? This is the question posed by one of the monkeys. How should the animals speak to humans, and in what language? As John O'Neill argues, nature can neither speak for itself nor understand human speech, so someone must translate between the language of nature and that of human beings. He asks, "Who speaks for nature? With what legitimacy can they speak?" (O'Neill 261). Moreover, what agency and autonomy do those who speak on nature's behalf actually recognise and grant to it? Alex the parrot is given this marginalised voice and the linguistic means to raise these concerns. Without his reasoning, his understanding of the human world, and his capacity for communication, the articulation of non-human woe and distress would not be possible. The other non-human characters, lacking a common language of communication, cannot exercise their agency and remain unable to articulate themselves. Alex becomes the catalyst for their collective quest to meet with government officials and to argue for their rights. Here, the animals speak, argue, and pursue a political solution—petitioning government officials—rather than enacting any authentically non-human form of resistance. This is what Cary Wolfe calls anthropomorphism-as-humanism, in which non-human narratives and subjectivity are validated only through human authority and function. The animals are granted an alternative hearing within the human system, yet their fate remains determined by human officials.

As Jeremy Bentham famously inquires in his *An Introduction to the Principles of Morals and Legislation,* "The question is not, Can they reason? Nor, Can they talk? but, can they suffer?" Drawing on a similar premise, Peter Singer argues that animals are sentient, conscious beings capable of experiencing pleasure and pain and therefore deserve moral consideration and human obligation. He writes that "the only obligation we have to strangers is to avoid harming them; but even if we were to take that view, the facts of climate change would demonstrate clearly that we are harming hundreds of millions, perhaps billions, of the world's poor" (Singer 216).

In Delhi Safari, five animals—Yuvi (short for Yuvraj) the leopard cub, his mother Begum, Bajrangi the monkey, Bagga the bear, and Alex the parrot—mobilise together to politically ask for their rights by pleading to the government of India, because no one else speaks for their habitat loss, biodiversity loss, and eventual extinction. They feel a pressing need to take matters into their own hands, exercising this prerogative to save their only home. They negotiate for space which forms the basis of their identity and existence. The human world ultimately accedes to their demand, reconciling itself to the principle of equal consideration and moral obligation toward non-human beings. Alex's declaration to "live with us" and "share the world"—since the vulnerability of one leads to the extinction of others—highlights the need to overcome shared vulnerability through symbiotic sustainability. Humans' moral responsibilities toward nonhuman animals have become one of the central ethical issues of the present time. Humans share mortality and vulnerability with non-human beings; recognising this idea would change the way humans treat non-human beings, no longer as mere objects but as subjects. Posthumanist ideology embraces this shift and extends it toward the articulation of non-human subjectivity. Yet even with this subjectivity, nature's capacity to "speak for itself" remains ambivalent, since the voice is ultimately granted by human authority, and measuring that agency in terms of moral righteousness is not entirely viable.

In Donna Haraway's terminology, these animals learn to "make kin" by setting aside their rivalries as predator and prey, domestic and wild, to come together against a common ecological threat—and they expect humans to reciprocate this solidarity.

ANIMAL UNITED: RESISTANCE AND SILENCE

The film Animal United, set in the African savanna, draws its plot heavily from human–non-human conflict and only briefly addresses the issue of climate

change. A group of animals—Billy the meerkat, Socrates the vegetarian lion, Sushi the polar bear (a refugee from the melting Arctic and thus a direct victim of climate change, though this dimension receives little attention in the narrative), Ken the koala (who flees a wildfire outbreak), Charles the rooster, and others displaced by human development—convene at an African delta to raise concerns about water scarcity, as the annual flood fails to arrive because of human intervention in the form of dam construction. Using the drought as a call to emergency action, the animals mobilise to resist.

Although the film initially foregrounds real ecological drivers—dam construction, resource extraction for tourism, habitat loss, and climate change—as a form of ecological literacy, it later takes a drastic turn by locating the villainy in individual figures (a materialistic resort owner and a poacher) rather than in the capitalist economic system that produces such outcomes. Without confronting the systemic causes of the problem, the film's engagement with non-human agency remains superficial. Although the animals do reason collectively about how to address the ecological crisis, nature ultimately fights back against human intervention by destroying the dam and restoring the natural flow of water to the jungle. The narrative appears to centralise non-human subjectivity and agency, along with the animals' capacity to resist and retaliate against exploitation, but its resolution operates only at the level of the local plot, not the global level. The film negates the issue of climate change by relegating it to the background and concluding the narrative with the singular destruction of the dam and the restoration of the water bodies. Moreover, this act of restoration is itself achieved through human ingenuity and machinery.

CONCLUSION

In both narratives, the animals mobilise and attempt to assert their agency and subjectivity. They enact certain posthumanist ideals, yet in each case humans remain the ultimate agents of ecological change and resolution. One narrative recuperates agency through legal and political validation while other recuperates it through human technical advancement and competence. In both the narratives, animals plead, invade human spaces, and confront human machinery to exert moral pressure. They can not become genuine co-agents in resolving the crisis. This is exactly Wolfe's point about anthropomorphism-as-humanism: the animal voice and agency is genuine enough to move the plot forward, but never real enough to displace human authority as the mechanism that actually fixes the crisis.

Works Cited

- Barcz, Anna. "Posthumanism and Its Animal Voices in Literature." *Teksty Drugie, Special Issue: English Edition,* vol. 1, 2015, pp. 248–269.
- Bentham, Jeremy. *An Introduction to the Principles of Morals and Legislation.* 1789. Edited by J. H. Burns and H. L. A. Hart, Oxford UP, 1996.
- Braidotti, Rosi. *The Posthuman.* Polity Press, 2013.
- *Dawn of the Planet of the Apes.* Directed by Matt Reeves, 20th Century Fox, 2014.
- *Delhi Safari.* Directed by Nikhil Advani, Krayon Pictures, 2012.
- Echeverría, Hugo. "Rights of Nature: The Ecuadorian Case." *Harmony with Nature,* United Nations, 2011.
- Kalia, Saumya. "Ecuador Becomes the First Country in the World to Give Legal Rights to Animals." *The Swaddle,* 4 Apr. 2022, www.theswaddle.com/ecuador-becomes-the-first-country-in-the-world-to-give-legal-rights-to-animals
- *Konferenz der Tiere [Animal United].* Directed by Reinhard Klooss and Holger Tappe, Rainmaker Entertainment, 2010.
- Marris, Emma. *Rambunctious Garden: Saving Nature in a Post-Wild World.* Bloomsbury, 2011.
- O'Neill, John. "Who Speaks for Nature?" *How Nature Speaks: The Dynamics of the Human Ecological Condition,* edited by Yrjo Haila et al., Duke University Press, 2006, pp. 261–278.
- Orwell, George. *Animal Farm.* Secker & Warburg, 1945.
- *Rise of the Planet of the Apes.* Directed by Rupert Wyatt, 20th Century Fox, 2011.
- Scholtmeijer, Marian. *Animal Victims in Modern Fiction: From Sanctity to Sacrifice.* University of Toronto Press, 1993.
- Shiva, Vandana. *Staying Alive: Women, Ecology and*

- *War for the Planet of the Apes.* Directed by Matt Reeves, 20th Century Fox, 2017.
- Wolfe, Cary. *What Is Posthumanism?* University of Minnesota Press, 2010.

Ekta Chauhan
Visiting Assistant professor
Deenbandhu Chhotu Ram University
of Science and Technology, Murthal,
Haryana

Postal Address H.No -58,
Subedar Dayal Singh
Wali Gali, Sungerpur, Delhi-110036.